सिपाही-विद्रोह

या

सन् सत्तावन का गदर

(सन् १८५७ के प्रसिद्ध गदर का सचित्र-सम्पूर्ण इतिहास)

लेखक :—

"मनोरञ्जन"—सम्पादक,

पण्डित ईश्वरीप्रसाद शर्मा ।

संवत् १९८९ वि०

द्वितीय संस्करण]

[मूल्य ३)

प्रकाशक—
पोपुलर ट्रेडिंग कम्पनी
१४।१ शम्भू चटर्जी स्ट्रीट
कलकत्ता।

मुद्रक—
विश्वमित्र प्रेस
१४।१, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट,
कलकत्ता।

विषय-सूची ।

चित्र-सूची ।

विद्रोहके कारण उपस्थित करनेवाले,
वायसराय लार्ड केनिंग।

भारतके १४ वें वायसराय—
लार्ड डलहौसी।

सिपाही-विद्रोह.

या

सन् सत्तावनका गदर।

उपक्रमणिका

आग कैसे लगी ?

(१)

ईसवी सन् १७५७ में अँगरेजी हुकूमतकी जड़ हिन्दुस्तान में एक प्रकार से जम गयी। गोरे चमड़े का रोब हर जगह छा गया। परन्तु अभी तक बहुत से प्रान्त स्वाधीन थे, उनके पैरों में पराधीनता की बेड़ियां पड़नी बाकी थीं! धीरे-धीरे उन सब प्रदेशोंको भी बृटिश-सिंह के पैरोंके नीचे ला देने की चेष्टा अनेक अँगरेज अधिकारियों की ओर से की जाती और कहीं एक, तो कहीं दूसरी नीति चलाकर उनकी स्वाधीनता हरण करने का प्रयास होता था। बहुतेरे उच्चाकाँक्षा वाले अँगरेज़ अधिकारी कन्याकुमारी से काश्मीर और अटक से कटक तक भारत के सारे मानचित्र को लाल रङ्ग में रङ्गा हुआ देखना चाहते थे। इसके लिये वे मित्रों को भी शत्रु बना लेते, आश्रितों से भी विश्वासघात करते, सहयोगियों पर भी सन्देह करते और धर्माधर्म का विचार छोड़, कूटनीतिसे नाता जोड़, सन्धि के

नियम तक तोड़ डालते थे। इसलिये धीरे-धीरे बहुतों के दिल में अँगरेजों की तरफ से गाँठ पड़ती जाती थी और लोगों को आशङ्का होने लगी थी, कि किसी दिन यह भीतर ही भीतर सुलगने वाली आग, भभक उठेगी और अँगरेजी सत्ता को भस्मावशेष करने का प्रयत्न करने लगेगी।

चाहे जो हो, १८५६ तक यह राज्य-विस्तार—न्याय से, अन्यायसे—साम, दाम, दण्ड भेद से,—हर तरह से किया जाता रहा। वीर अँगरेज जपनी कूटनीति और रण-कुशल सेना के बल पर भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तोंको काबू में करते चले गये।

उस समय लार्ड डलहौसी भारत के गवर्नर-जेनरल थे और आठ वर्ष से बृटिश-अधिकार के विस्तार का भगीरथ प्रयत्न कर रहे थे। इनके जमानेमें भारत की अवस्था में जैसे कुछ विलक्षण परिवर्त्तन घटित हुए, वैसे परिवर्त्तन लार्ड वेलेसलीके सिवा और किसी गवर्नर-जेनरल के शासन-काल में नहीं हुए। इधर तो रेल और तार का जाल सब ओर फैल गया, उधर पञ्जाब और अयोध्या आदि स्वाधीन राज्यों पर अँगरेजी झण्डा फहराने लगा।

जिस समय लार्ड डलहौसी हिन्दुस्तान में आये थे, उस समय उन्होंने इन सब राज्यों को स्वाधीन देखा था और जाते समय वे इन्हें बृटिश-सिंह के पैरों पर लोटता हुआ छोड़ गये! किस तरह पञ्जाब के भिन्न-भिन्न अँगरेज-अधिकारियोंने वहां की सिक्ख-शक्ति को क्षीण करने का उद्योग किया, क्यों कर अँगरेजों ने अपने दोस्त महाराज रणजीतसिंह का राज्य हड़प कर उनकी रानी को

साधारण बन्दिनी की भांति काशी भेज दिया, किस प्रकार इस आचरण से सभी सिक्ख अँगरेजों के विरोधी हो युद्ध में प्रवृत्त हुए, यह सब हाल इतिहास के पन्नों में मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ है। जो सदा से बृटिश-गवर्नमेण्ट के मित्र थे, सदा अँगरेज़ों का साथ दिया करते थे, उन्हीं रणजीतसिंह की पत्नी को बन्दिनी और उनके पुत्र को अपने हाथ की कठपुतली बना कर दोस्ती का हक़ अदा किया गया !

महारानी के इस अन्याय-निर्वासन से दुखी और असन्तुष्ट हो, बहुत से सिख-सरदारोंने सिर उठाये; अँगरेज़ों को अपनी सामर्थ्य भर खूब ही हैरान किया; परन्तु बृटिश सिंह के सामने सभी एक-एक करके परास्त होते चले गये।

अन्त में महाराज रणजीतसिंह के जिन नाबालिग़ लड़के दिलीप-सिंह की रक्षा का भार अँगरेजों ने अपने हाथ में लिया था, उनके हाथ से छः महीने के अन्दर न जाने क्यों सारा राज्य छीन लिया गया ! सन् १८४९ की २४वीं मार्च को पञ्जाब की स्वाधीनता सदा के लिये लुप्त हो गयी। राज्य की सारी सम्पत्ति पर अँगरेज़ों ने अधिकार कर लिया और कुमार दिलीपसिंह को थोड़ीसी पेन्शन देकर फतेहगढ़ भेज दिया। वहीं पर उन का निवास-स्थान बना। उन्हें पहले ५ लाख के क़रीब वार्षिक वृत्ति देनी निश्चय की गई थी; परन्तु पीछे वह रक्म १ लाख ८० हज़ार से कम रह गयी !

गद्दी पर से उतारे जाने के समय दिलीपसिंह की अवस्था ११ वर्ष की थी। उन्हें सरजान-लाजिन नामक एक अँगरेज़ मास्टर

पढ़ाया करते थे। १८५३ में उन्हें यार लोगोंने मिल-जुल कर कृस्तान बना डाला! इस के साल भर बाद ही वे विलायत भेज दिये गये। उनकी माता उन्हें देखने के लिये विलायत गयीं और वहीं स्वर्गवासिनी हो गयीं।

इस तरह वीरवर रणजीतसिंह के लीला-क्षेत्र पञ्जाब को, सन्धिके नियम ताक पर रख कर, लार्ड डलहौसीने अँगरेज़ी सलतनतमें मिला लिया और सर हेनरी लारेन्स वगैरह कुछ सुयोग्य अंगरेज़ कर्मचारियोंकी एक शासन-समिति संगठित कर उसी के ऊपर पञ्जाबके शासन का समस्त भार अर्पण कर दिया। ये लोग बड़ी ही होशियारी और मिलनसारी से सिक्खों को अपने मेल में लाने लगे; क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे, कि इस तरह सन्धि के नियम भङ्ग कर पञ्जाब पर अधिकार जमा लेने से सभी सिक्ख-सरदार, मन-ही-मन असन्तुष्ट हैं और यह असन्तोष किसी दिन बुरा रंग ला सकता है। आखिरकार यह दवा काम कर गयी और इन बुद्धिमान् अँगरेज़ों ने चिकनी-चुपड़ी बातों और मेल-मिलाप के बर्त्ताव से उनके दिलके घाव भर दिये और वे धीरे-धीरे अँगरेज़ों के साथ मैत्री के सूत्र में बँधते चले गये।

परन्तु लार्ड डलहौसी ने उसी साल यह समिति तोड़ दी। उन्होंने अनेक की जगह एक को ही पञ्जाब का अधिकारी बनाना चाहा। इसी लिये सर जान लारेन्स को पञ्जाबका प्रधान कमिश्नर बना कर उन्होंने सर हेनरी लारेन्स को राजपूताने के रेज़िडेण्ट का पद दे उन्हें वहां को रवाना कर दिया।

पहले तो सिक्ख इससे बहुत ही असन्तुष्ट हुए; परन्तु पीछे सर-जान लारेन्स की कार्य-पटुता, दृढ़ता, न्याय-प्रियता आदि से सब लोग उनके प्रशंसक बन गये।

(२)

पंजाब के बाद लार्ड डलहौसी ने पूर्व उपद्वीप ऐरावती-नदी के किनारे बसे हुए 'पेगू' नगर को अधिकार में करने की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया। सन् १८५२ से ही पेगू पर अधिकार हो गया। पेगू पर चढ़ाई करने का भी कोई कारण न था। यह भी महज़ गवर्नर जेनरल साहब की राज्य-विस्तार की लालसा मात्र थी। इस प्रकार लार्ड डलहौसी एक ओर पराये राज्यों को बृटिश-राज्य में मिलाते जाते थे और दूसरी ओर अपनी राजनीति का जाल फैला कर बिना लड़ाई-भिड़ाई के ही मित्र राज्यों में भी अँगरेजी झण्डा फहराने की चेष्टा कर रहे थे। इस तरह की बेइन्साफी की भी लोगों ने क्यों तारीफ़ की है, यह विचारने की बात है !

अब पाठक देखें, कि लार्ड डलहौसी की इस बिलक्षण राजनीति ने अंगरेजों का अधिकार किस प्रकार बिना लड़ाई-भिड़ाई, मार-काट और खून-खराबी के ही बढ़ा दिया। जिन राजाओंके औरस पुत्र न हों, वे दत्तक पुत्र लेकर अपने राज्य का भार उसे अर्पण कर सकते हैं। यह हमारे यहां की प्राचीन परिपाटी है; परन्तु लार्ड डलहौसी ने इस बार यह नियम जारी किया, कि यदि ये दत्तक-पुत्र बृटिश गवर्नमेण्टके पसन्द न होंगे, तो गद्दी से उतार दिये जायेंगे और उनका राज्य अंगरेजी राज्य में मिला लिया जायगा। बंगाल और बम्बई के

कितने ही कूटनीतिज्ञ सिविलियनों ने सोच-विचार कर यह क़ायदा जारी किया था और इस प्रकार हिन्दुओंके शास्त्र-सम्मत दत्तक-विधानको भी उलट देनेकी चेष्टा की गयी ! इससे सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी और लोग समझ गये, कि कम्पनी ने यह चाल आसानी से रियासतों को अपने अधिकार में कर लेनेके लिये चली है ! सब से पहले इस नये नियम का प्रयोग महाराष्ट्र-प्रदेश के सितारा-राज्य पर हुआ ।

सितारा महाराष्ट्र का एक प्रसिद्ध और सुन्दर स्थान है। हिन्दू-जातिके रक्षक, प्रबल प्रतापी महाराज शिवाजी इस स्थान को बहुत पसन्द करते थे । जिस समय भारत में अँगरेजों का सिक्का जम रहा था, उस समय सितारे की गद्दी पर प्रतापसिंह नामक एक प्रसिद्ध वीर बैठे थे, जो शिवाजी के वंशज थे । मराठोंमें उनकी बड़ी मान-मर्यादा थी । १८१९ में बृटिश गवर्नमेण्टके साथ प्रतापसिंह की सन्धि हुई । लेकिन २० वर्ष बाद ही उन पर यह जुर्म लगाया गया, कि उन्होंने गोवा की पोर्चुगीज सरकार से मिलकर बृटिश सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा है। प्रतापसिंह ने वार-वार कहा, कि सन्देह मिथ्या है, मैं अपनी निर्दोषिता पूर्ण रूपसे प्रमाणित कर सकता हूं, पर किसीने एक न सुनी । बिना आईन-कानून और बिना विचार के ही एक दिन रातोरात प्रतापसिंह सितारे से कई मील दूर पहुंचा दिये गये, जहां वे रात भर पशुओं के रहने के एक स्थानमें रखे गये। इसके बाद वे काशी भेज दिये गये और अँगरेजी सरकार ने उनकी समस्त धन-सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया ।

प्रतापसिंह के भाई अप्पासाहब, बाजीराव पेशवा के हाथ कैद होकर कैदखाने में पड़े हुए थे। बृटिश गवर्नमेण्ट ने उन्हें कैद से छुड़ाकर सितारे की गद्दी पर बिठा दिया। १८४८ ई० में ही वे भी परलोक-वासी हो गये। उनके कोई पुत्र न होने के कारण उन्होंने मरने से पहले शास्त्र की विधि के अनुसार दत्तक-पुत्र ग्रहण किया। इधर राज्य से अलग किये हुए प्रतापसिंह ने भी एक लड़के को गोद लिया था; परन्तु लार्ड डलहौसी ने इन दोनों ही दत्तक-पुत्रों को नाजायज ठहरा दिया। फिर क्या था, राज्य लावारिस करार दे दिया गया और बृटिश राज्य में मिला लिया गया!

लार्ड डलहौसी की इस चाल को कोर्ट-आफ-डाइरेक्टर्स ने भले ही मान लिया; परन्तु प्राचीन सन्धि के अनुसार न चलकर उन्होंने जो मित्रराज्य को ही हड़प कर लिया, इसलिये अँगरेज नीतिज्ञों और धर्मज्ञों ने भी उनकी बड़ी निन्दा की।

सितारा के बाद आपने भारत के केन्द्र-स्थल बुन्देलखण्ड के झांसी-राज्य की ओर नजर फेरी। यह राज्य पहले पेशवाओं के अधीन था और बराबर मराठे ही इस राज्य के मालिक रहते आये थे। झांसी के राजा रामचन्द्रराव से अँगरेजों की सन्धि थी और उसके अनुसार दोनों एक दूसरे के साथ भलमनसहत का बर्ताव करने को वाध्य थे। १८२५ में जब लार्ड कम्बरमियरने भरतपुर के मजबूत किले पर हमला किया था, उस समय नाना पण्डित नामक मध्यभारत के एक सरदार ने बड़ी भारी सेना लेकर कालपी नगर पर हमला किया था। उस संकट के समय झांसी के राजा ने ४००

घुड़सवार और १००० पैदल सेना के साथ-साथ दो तोपें भेज कर कालपी-नगर की रक्षा की थी।

इस मित्रता के नाते भारत के गवर्नर जेनरल लार्ड विलियम-बेण्टिङ्क ने १८३२ ई० की १९ वीं दिसम्बर को झांसी के राज दरबार में आकर रामचन्द्रराव को महाराज की उपाधि और छत्र, चँवर आदि राज-चिन्हों से सम्मानित किया। इस घटना के तीन ही वर्ष बाद रामचन्द्रराव की मृत्यु हो गयी।

दुर्भाग्यवश उनके कोई सन्तान न थी, इसलिये रियासत के लिये झगड़ा उठ खड़ा हुआ। अन्तमें बृटिश गवर्नमेण्ट के एजेण्ट ने उनके चचा रघुनाथराव को ही पूरा हक़दार समझ कर गद्दी पर बिठाया; पर तीन ही वर्ष बाद ये भी मर गये। इनके भी कोई पुत्र न होने से फ़िर वही झगड़ा उठ खड़ा हुआ। उस समय गवर्नर-जेनरल लार्ड आकलैण्ड ने इस झगड़े को तय करनेके लिये एक कमीशन बिठाया, जिसने रघुनाथरावके भाई गङ्गाधररावको गद्दी दिलाने की सिफारिश की। अन्तमें येही झांसीके राजा हुए।

परन्तु न मालूम इस वंश पर यह क्या शापसा था कि, गङ्गाधर-रावके घहाँ भी कोई पुत्र न हुआ। मरने से पहले इन्होंने अँगरेज़ रेज़िडेण्ट और एक फ़ौजी अफसर के सामने ही एक लड़के को अपना दत्तक-पुत्र बनाया। इसके बारे में रेज़िडेण्ड को पत्र लिखते हुए उन्होंने लिखा था, कि मैं अपने एक सम्बन्धी के लड़के को गोद लेता हूं। इसका अभी तो आनन्दराव नाम है; पर अबसे दामोदर-गङ्गाधरराव कहलायेगा। जब तक तह लड़का बालिग़ न हो जाये,

तब तक बालक की माता और मेरी विधवा पत्नी ही राज्य की पूरी स्वामिनी होकर रहेगी। आप लोग ऐसी दया-दृष्टि रखेंगे, जिसमें कोई इन लोगोंके साथ बुरा वर्ताव न कर सके।

पर बेचारे मरते हुए गङ्गाधरराव की यह विनती न निभ सकी। ज़माना लार्ड डलहौसी के प्रताप का था। उन्होंने पञ्जाब और सितारे की तरह झांसीको भी हथिया लेना चाहा। चाहने भरकी ही देर थी—एक क़लम फेर देना ही काफ़ी था। उन्होंने झट फ़र्मान जारी कर गोद को नाजायज़ करार दे दिया और झांसी का सिंहासन राव-वंश के हाथ से निकल गया।

गङ्गाधरराव की विधवा पत्नी महारानी लक्ष्मीबाईमें पुरुषों की तरह वीरता, धीरता, दृढ़ता और तेजस्विता भरी हुई थी। उनके विचार बड़े ही उच्च थे। वे सौन्दर्य और वीरत्व दोनों की आधारभूता थीं। रमणी-सुलभ कोमलता, कमनीयता और सुन्दरता के साथ-साथ वीरों कीसी वीरता तेजस्विता और रण-कर्कशता भी उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। वे समझ गयीं, कि अँगरेज़ लोग उनका राज्य हड़प लेना चाहते हैं; तोभी उन्होंने सुलहनामे की शर्तें वग़ैरह बतला कर बृटिश-गवर्नमेण्ट के निकट प्रार्थनापत्र भेजा; परन्तु कुछ भी सुनवाई नहीं हुई। लार्ड डलहौसी की नीति ने झांसी को भी निगल ही लिया! इस अन्याय को देख कर लक्ष्मीबाई बड़ी ही दुःखित हुई। साथ ही उनके मनमें अँगरेज़ों के प्रति घोर द्वेष भी उत्पन्न हुआ। इस विद्वेषने कितनी बड़ी विद्रोहाग्नि सारे भारतमें धधका दी, वह आगे मालूम होगा।

सितारा और झांसी ले लेने पर लार्ड डलहौसी ने नागपुर-राज्य पर दांत गड़ाया। यह राज्य भी मराठों का था। यहांके राजा भोंसला-वंश के थे। १८१८ में राजा, महाराज अप्पा साहब को लार्ड हेस्टिंग्ज़ ने गद्दी से उतार दिया था, उस समय गद्दी पर एक छोटासा बालक बैठा दिया गया और १८२६ में जब वह बालक वयः प्राप्त हुआ, तब अँगरेजों ने उसके साथ सन्धि कर ली और यह प्रतिज्ञा की, कि नागपुर के सिंहासन पर सदा इसी भोंसला-वंश के राजा बैठाये जायँगे। इस बालक का नाम था तृतीय रघुजी भोंसला। दुर्भाग्य से १८५३ ई० की ११ वीं दिसम्बर को इनकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु के समय इनकी अवस्था ४७ वर्ष की थी। ये राजा जिस समय बालक थे, उस समय द्वितीय रघुजी की पत्नी बंकुबाई सारा राजकाज देखती थीं। बंकुबाई बड़ी ही सच्चरित्रा और राज्य-शासन में परम चतुर थीं। पचास साल तक पारिवारिक और राजनीतिक कार्यों में उन्हींका बोल बाला रहा।

जिस समय तृतीय रघुजी निस्सन्तान अवस्थामें ही परलोकवासी हो गये, उस समय बंकुबाई ने यशोवन्त अहरराव (साधारणतः इन्हें अप्पा साहब कहा करते थे) नामक तृतीय रघुजी के एक घनिष्ट आत्मीय बालक को दत्तक-पुत्र बनाने का विचार किया। अँगरेज़ी सरकार के रेज़िडेण्ट मैन्सल साहबने उनका यह प्रस्ताव सुनकर न तो हां ही भरी, न बाधा दी। सिर्फ़ उन्होंने इतना ही लिख भेजा, कि प्रधान गवर्नमेण्ट की सम्मति बिना मैं इस मामले में कुछ भी नहीं कह सकता। खैर, यथासमय और शास्त्रविधिसे दत्तक-ग्रहणकी क्रिया

नागपुर के महल में सम्पन्न हुई और अप्पा साहब ने ही तृतीय रघुजी की समस्त श्राद्धादि क्रियाएँ कीं। इसके बाद इनका नाम जनोजी भोंसला पड़ा।

यह समाचार मैनसल साहब ने प्रधान गवर्नमेण्ट के पास लिख भेजा। उस समय लार्ड डलहौसी नये जीते हुए पेगू-प्रदेश को देखने गये थे, इसी लिये तुरन्त कोई फैसला न हुआ। वहाँ से लौट कर आते ही सन् १८५४ ई० की २८ वीं जनवरी को उन्होंने हुक्म जारी किया, कि यह गोद नाजायज़ हुआ। इस लिये नागपुर की रियायत कम्पनी के अधिकार में कर ली जाती है।

यशोवन्त अहरराव, तृतीय रघुजी के एक निकट के सम्बन्धी थे, इस लिये उनकी माता मैनाबाई भी नागपुर के राजमहल में ही थीं। जिस समय यशोवन्तराव की पैदायश हुई थी, उस समय राजकुमारों के जन्म के समय जैसे २१ तोपों की सलामी दगती थी, वैसे ही दगी और बड़ी धूम-धाम हुई। उनका पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा भी राजकुमारों की ही भाँति हुई। वे तृतीय रघुजी के इतने दुलारे थे, कि सब लोग यही समझते थे, कि वे इसी बालक को अपना उत्तराधिकारी बनाने के लिये गोद लेंगे। ऐसे निकट आत्मीय को भी लार्ड डलहौसी ने अपने फर्मान में इधर-उधर से आया हुआ साधारण मराठा लिख मारा!

इस दत्तक ग्रहण के सम्बन्ध में अहरराव की माता मैनाबाई के साथ बंकुबाई या तृतीय रघुजी की पत्नी अन्नपूर्णाबाई का कोई विरोध न था। आज्ञा पाते ही अप्पासाहब के पिता नाना अहरराव ने अपने

पुत्र को अन्नपूर्णाबाई के हाथों में सौंप दिया। परन्तु लार्ड डलहौसी ने सब किया-धरा मिट्टी कर दिया। उन की इस बेइन्साफ़ी को देखकर सब लोग बड़े अचम्भे में आये और इन लोगों ने बड़ी आरजू-मिन्नत करते हुए दत्तक-ग्रहण को विधि-सम्मत बतलाया; पर यहाँ सुनता कौन था? यहाँ तो लार्ड डलहौसी की लार नागपुर को हड़प जाने के लिये बेतरह टपक रही थी!

इस प्रकार नागपुर को अँगरेज़ी राज्य में मिला कर लार्ड डलहौसीने न्याय के गले पर पैनी छुरी फेर दी और दया, धर्म तथा नीति को बुरी तरह पैरों से कुचल डाला! बेचारी रानियाँ बड़े फेर में पड़ीं। उन्होंने अपनी रक्षा के लिये बहुत कुछ रोया गाया; पर किसी ने उनकी एक न सुनी। वे एक तरह से नज़रबन्द कर ली गयीं—महीनों वे किसी से मिलने तक न पायीं। मेजर आउसेल नामक एक अँगरेज़ ने उनकी ओर से वकालत की थी, इसी लिये वे बेचारे भी पकड़ कर कैद कर लिये गये। कई एक महाजनोंने उन्हें रुपये—पैसे की सहायता दी थी—इस अपराध के कारण वे भी कैद कर लिये गये।

बंकुबाई इस समय ८० वर्ष की थीं, बुढ़ापे में यह आफ़त आ जाने से वे और भी सूख कर काँटा हो गयीं। यहाँ किसी ने कुछ न सुना, तब उन्हों ने अपना प्रतिनिधि विलायत भेजा, परन्तु उनका जोश तुरन्त ही ठण्डा पड़ गया। इधर रघुजी की विधवा पत्नी को पकड़ लाकर अँगरेज़ों ने उन से ज़बरदस्ती नागपुर राज्य स्वत्व-त्याग पत्र पर दस्तखत करवा लिये। इसके बाद सब सैनिकों के

हथियार छीन लिये गये और उनकी जगह अँगरेज़ी सैन्य का चारों ओर पहरा बिठा दिया गया।

इसके बाद नागपुर के राजमहल की लूट-खसोट आरम्भ हुई। ज़मीन खोद-खोद कर रुपये और अशर्फ़ियां निकाली गयीं। रमणियों के स्त्री-धन और धर्म के लिये अलग निकाली हुई सम्पत्ति पर भी कम्पनी ने क़ब्ज़ा कर लिया! इस तरह सुसभ्य अंगरेज़ों ने सन्धि के नियमों से बंधे हुए अपने एक मित्र-राज्य को मटियामेट कर डाला। लार्ड डलहौसी की नीति की यह कैसी अपूर्व महिमा है, वह पाठक ही देखें और विचार करें। जिस समय इङ्गलैण्ड की महारानी अपने युरोपियन मित्र-राज्यों की रक्षा करने में लगी हुई थीं, उसी समय यहां भारत में उनके ही भाई-बन्धु अपने मित्र-राज्यों का सर्वनाश करते हुए भी न हिचकते थे। उधर इङ्गलेण्ड का पर-राष्ट्र-विभाग पोलेण्ड के कुछ बड़े-बड़े लोगों का धन लूट लेने के लिये रूस की निन्दा कर रहा था, इधर भारत की बृटिश गवर्नमेण्ट नागपुर-राज्य की सारी सम्पत्ति लूट लेने से भी बाज़ न आयी!

(३)

इस प्रकार थोड़े ही दिनों के अन्दर मराठों के तीन प्रधान राज्य हड़प कर लिये गये। पहले जिनके साथ मित्रता और सन्धि की गयी थी, पीछे उन्हीं के गले पर छुरी फेर दी गयी। नागपुर को हथियाने का एक कारण तो स्वयं लार्ड डलहौसी ने एक स्थान पर लिखा है। वे लिखते हैं,—"नागपुर-राज्य का शासन ठीक-ठिकाने के साथ

हो, तो इङ्गलैण्ड का एक बड़ा भारी अभाव दूर हो सकता है। यहां रुई बहुत पैदा होती है। यदि यहांसे खूब काफ़ी तादाद में रुई बिलायत भेजी जाया करे, तो इङ्गलेण्ड के व्यापार की बड़ी उन्नति हो। जब मैं इङ्गलेण्ड से चलने लगा था, तब मैञ्चेष्टर के व्यापारियों ने मेरा ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था। इङ्गलेण्डके प्रधानमन्त्री ने भी कई बार इस ओर मेरा ध्यान खींचा है। मैं स्वयं भी इस ओर से उदासीन नहीं हूं। यहाँसे रुई चालान होने लगे, तो इङ्गलेण्ड को फिर किसी देश का मुँह न ताकना पड़े।" *

कहना न पड़ेगा, कि मैञ्चेस्टर के बनियोंके लाभ के लिये ही यह अन्याय का काम किया गया था। इसीलिये सभी अँगरेजों ने आँख-कान बन्द कर इस अन्याय का समर्थन किया है। तभी तो एक निष्पक्षपात अँगरेज लेखक ने लिखा है,—"रुई ने अँगरेजों की न्याय-प्रियताके कान मूँद कर आँखें फोड़ दीं, जिससे वह अन्धी और बहरी हो गयी!" †

इसके सिवा लार्ड डलहौसीने राजपूताने के करौली-राज्य को भी सितारा और नागपुर की तरह हड़प जाना चाहा था; पर इसमें इनको मुँह की खानी पड़ी। दत्तक-पुत्र-नाजायज़ ठहरने पर भी सर हेनरी लारेन्स की चेष्टा से राज्य का एक प्रकृत स्वत्वाधिकारी सिंहासन पा गया। इस बार लार्ड डलहौसी की दाल न गली।

---

* India under Dalhousie & Canning, by Duke of Arqyth. Pt. 38.

† H. J. B. fortors the Rebellion in India.

इसके बाद लार्ड डलहौसीकी दृष्टि और एक राज्य पर पड़ी। भारतका मानचित्र देखने पर दक्षिणी भारत के केन्द्र-स्थल में बरार, पश्चिमघाट, तुङ्गभद्रा और कृष्णा के मध्यवर्त्ती रायचोर, दोआब इत्यादि कई एक प्रदेश दिखलाई देते हैं। यहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ है। यहाँ की जैसी अफीम और रुई की खेती दुनियां में और कहीं नहीं होती। इस सम्पत्ति-शाली राज्य के अधिपतिकी वंशानुक्रमिक उपाधि 'निज़ाम' है और राजधानी हैदराबाद। जिन नवाब की कृपा से कितने ही साधारण अवस्था वाले अँग्रेज़ बनियोंको दक्षिणी भारत में घुसने की जगह मिली थी, वे भी किसी समय निज़ाम के ही आश्रित थे।

सन् १८०० ई० की १२ वीं अक्तूबर को लार्ड वेलेसली ने निज़ाम के साथ जो सन्धि की थी, उसके अनुसार बहुतसे अपने सैनिक उनकी सेना में सम्मिलित कर दिये थे। धीरे-धीरे इन सैनिकोंकी संख्या बढ़ती ही जाती थी, परन्तु इन सैनिकोंका खर्च चलाना निज़ामके लिये बोझसा हो गया और उन पर ऋण का भार लदने लगा। अन्तमें इस ऋण की संख्या ७८ लाख तक पहुंच गयी !

लार्ड डलहौसी यह सहन न कर सके। उन्होंने १८५१ ई० में निज़ामको लिखा, कि आप या तो शीघ्रही यह ऋण अदा कर दीजिये अथवा ५६ लाख सालाना आमदनी की भूमि बृटिश गवर्नमेण्ट को दे दें, गवर्नमेण्ट इससे तीन सालमें अपना रुपया वसूल कर लेगी। यह हुक्मनामा पाते ही निज़ाम घबरा उठे और उन्होंने ऋण परि-

शोध करने की चेष्टा करनी आरम्भ की। ४० लाख रुपये तो उन्होंने उसी दम दे दिये और बाक़ीके लिये कुछ मुहलत माँग ली। पर १८५३ में ही उसका सूद बढ़कर फिर रक़म ४५ लाख तक पहुंच गयी। अब तो लार्ड डलहौसी से सब्र करते न बना और उन्होंने निज़ाम की कुछ ज़मीन्दारी हाथमें कर लेनी चाही। निज़ाम इस पर राजी नहीं थे; परन्तु डलहौसी साहब तो तुले बैठे थे, इसलिये बल प्रदर्शन करनेको तैयार हो गये। पर पीछे सन्धि के ही बहाने भूमि हड़पने की तरकीब सोची गयी। रेज़िडेण्ड ने निज़ाम के पास आकर कहा, कि आपको प्रतिवर्ष आठ लाख रुपये पेन्शन की तरह मिलेंगे, आप इस रियासत का इन्तजाम कम्पनी के हाथों में दे दें; परन्तु निजामको यह प्राण रहते स्वीकार नहीं था। अन्त में अछता-पछता कर उन्हें तब तक के लिये बरार प्रदेश अँगरेजों को दे देना पड़ा, जबतक कि उन परसे सारा ऋण उतर न जाये। इस प्रकार ४५ लाख रुपये के लिये अँगरेजों ने यह विस्तृत प्रदेश निजाम से छीन लिया। इस प्रदेश में भी रुई बहुत उपजती है। अनाज भी काफ़ी पैदा होता है। इस प्रकार एक और मित्र के गले पर भी लार्ड डलहौसीने छुरी चला दी।

बरार के बाद लार्ड डलहौसी ने आरकट के नवाब पर हाथ साफ़ किया और उस के ख़ान-दान को ही वहाँ से खदेड़ भगाया। तब से वे मदरास में जाकर रहने लगे और उनकी नवाबी के साथ ही साथ उनका समस्त प्रभाव और सम्मान नष्ट हो गया। उन्हें केवल १॥ लाख रुपया सालाना पेन्शन के तौर पर दिया जाना स्वीकृत हुआ।

मुग़ल-सम्राट् औरङ्गजेब के ही ज़माने में तञ्जोर का राज्य हिन्दुओं के हाथ से निकल कर मराठोंके हाथ में आ गया था। १७९९ ई० में तञ्जोर के मराठा सरदार सरफजी ने बृटिश गवर्नमेण्ट से सन्धि कर अपना क़िला और राज्य का शासन-भार अँगरेजों के ही हाथ में सौंप दिया। वे आप काठ के पुतले की तरह सिंहासन पर बैठते थे; पर काम सारा अँगरेजों के मन का होता था। १८३२ ई० में सरफ़जी की मृत्यु हो जाने पर उन के इकलौते पुत्र शिवजी सिंहासन पर बैठे। तेरह वर्ष बाद १८५५ ई० की २९ वीं अक्तूबर को ये भी परलोकवासी हो गये। इनके कोई पुत्र नहीं था, केवल दो कन्याएं थीं।

उस समय शिवजी की बड़ी लडकी मरने की दशा को पहुंची हुई थी, इस लिये तञ्जोर के रेज़िडेन्ट फोरबस साहब ने शिवजी की दूसरी लड़की को सिंहासन दिलाना चाहा। क्योंकि इस राज्य में पहले भी स्त्रियों को पुरुष के अभावमें गद्दी मिल चुकी थी। परन्तु जिस दिन रेज़िडेंट का यह प्रस्ताव मद्रास की शासन-समिति में पेश हुआ, उस दिन लार्ड डलहौसी भी वहीं थे। उन्होंने इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया और तञ्जोर भी अँगरेज़ी राज्य में मिला लिया गया।

इसी तरह बङ्गाल की दक्षिण-पश्चिमी सीमा पर अवस्थित सम्बल-पुर-राज्य भी कम्पनी के अधिकार में आ गया। लार्ड डलहौसी ने मानों विलायत से शपथ करके भारत की यात्रा की थी, कि वहाँ चलकर मैं, न्याय से हो या अन्याय से, अँगरेज़ी राज्य का विस्तार करूँगा !

हम लार्ड डलहौसी की इन बे-इन्साफियों का हाल इसी लिये लिख रहे हैं, चूंकि हमें दिखलाना है, कि सिपाही-विद्रोह होने के पहले यहाँ के शासकों ने कैसी-कैसी अन्यायपूर्ण कार्रवाइयाँ करके प्रजा के मन में अपने प्रति प्रेम की जगह घृणा पैदा कर दी थी। ऊपर के वर्णनों से पाठकों को अच्छी तरह मालूम हो गया होगा, कि इन कार्रवाइयों में से एक भी ऐसी नहीं थी, जो न्याय के तराज़ू पर तौलने से लार्ड डलहौसी के पलड़े को भारी कर सके। अब हम एक और घटना का यहाँ वर्णन कर देना आवश्यक समझते हैं, जो कि ऊपर की सब घटनाओं से विशेष महत्त्व रखती हैं और हमारी इस पुस्तक की घटना से विशेष सम्बन्ध रखने वाली है।

(४)

भारतके इतिहास में सितारा, नागपुर और पूना—इन तीनों स्थानों के मराठे राज्य-वंश बहुत प्रसिद्ध हैं। लार्ड डलहौसी ने सितारे और नागपुर राज्यों को किस प्रकार कम्पनी के अधिकार में कर लिया, यह हम पहले ही लिख चुके हैं। अब थोड़ासा हाल पूने का यहाँ लिख देना अत्यन्त आवश्यक मालूम होता है। पूना लार्ड डेलहौसीके बहुत पहले ही कम्पनीके अधिकार में आ चुका था।

सन् १८१८ ई० की ३ री जून को द्वितीय महाराष्ट्र-युद्ध के बाद पूने के प्रसिद्ध पेशवा बाजीराव ने अँगरेज़ सेनापति सर जान मालकम के हाथ में आत्म-समर्पण कर दिया। बाजीराव बड़े वीर थे, अतएव उन्होंने वीर की तरह शक्ति भर लड़ाई की और हार जाने पर हथियार नीचे डाल, सामरिक नियमानुसार विजेता की शरण ले

ली। विजेताओं ने भी उनके साथ वीर कासा वर्त्ताव किया और उन्हें ८ लाख रुपया सालाना वृत्ति देकर किसी खास जगह भेज देने का प्रस्ताव किया। वे पूने से हटा कर कानपुर से बारह मील दूर बिठूर नामक स्थान में भेज दिये गये। वे अपने परिवार वर्ग के साथ वहीं गङ्गा के किनारे रहने लगे। वहाँ पहुंचने पर गवर्नमेण्ट ने उन्हें एक छोटीसी स्वतन्त्र जागीर भी दे दी। सन् १८३२ ई० में गवर्नमेण्ट की आज्ञानुसार इस जागीर के भीतर रहने वाले लोग अँगरेजों के दीवानी और फ़ौजदारी क़ानूनों से बरी कर दिये गये। इस प्रकार बाजीराव इस छोटेसे राज्य के स्वतन्त्र अधिपति होकर अपने प्रिय अनुचरों के साथ रहने लगे।

पहले तो बृटिश गवर्नमेण्ट बाजीराव का यहाँ दल बँधा देख कर डरी; पीछे जब अनेक अवसरों पर बाजीराव ने अँगरेजों की पूरी-पूरी सहायता की, तब उसका सन्देह दूर हुआ। बाजीराव अपनी पहली स्मृति को विसर्जन कर पवित्रता, संयमशीलता और धार्मिकता के साथ तपस्वी की तरह गङ्गा के किनारे वास करने लगे।

बाजीराव को कभी रुपये पैसे का अभाव नहीं होने पाया। ८ लाख सालाना वृत्ति और जागीर की आमदनी मिला कर उनके पास बहुतसा धन होता चला जाता था। परन्तु दुर्भाग्यवश उनके इस सारे ऐश्वर्य का भोगने वाला कोई न था ! सब को इस बात की चिन्ता होने लगी, कि यह सारी दौलत कौन भोगेगा ? स्वयं बाजीराव को इस चिन्ता ने आ घेरा। तब उन्होंने एक दत्तक-पुत्र ग्रहण करने का विचार किया। मृत्यु से कई साल पहले बाजीराव ने अपने

दत्तक-पुत्र को पेशवा की उपाधि तथा ८ लाख वार्षिक वृत्ति का उत्तराधिकारी मान लेने की प्रार्थना बृटिश गवर्नमेण्ट से की; परन्तु उनकी वह प्रार्थना स्वीकृत नहीं हुई। सिर्फ इतना ही कहा गया, कि आप के स्वर्गवासी होने पर आपके परिवार के भरण-पोषण का प्रबन्ध सरकार की ओर से किया जायेगा। मतलब यह, कि बाजीराव के जीते जी कोई बात तय नहीं हुई—सब कुछ भविष्यत् पर निर्भर रखा गया। कुछ समय बाद बाजीराव का शरीर छूट गया, उन्हें लक़वा मार गया, आँखें दृष्टि-शक्ति से हीन हो गयीं और वे मौत के क़िनारे पहुंच गये।

१८५१ ई० को २८ वीं जनवरी को ७७ वर्ष की अवस्था में बाजीराव की मृत्यु हो गयी। उन्होंने १८३९ ई० में जो वसीयतनामा लिखा था, उसमें उन्होंने अपने दत्तक-पुत्र को पेशवा के ख़िताब और अपनी समस्त स्थावर सम्पत्ति का वारिस बनाया था। उनके इस दत्तक-पुत्र का नाम धुन्धुपन्तनाना साहब था। बाजीराव की मृत्यु के समय नाना साहब की उम्र २७ साल की थी। नाना साहब बड़े ही शान्त-स्वभाव, मधुर-भाषी, मिताचारी और अँगरेज कमिश्नरों के अनुगामी थे। अँगरेज़ इतिहास लेखकों की कठोर लेखनी ने भी उनके गुणों की प्रशंसा करने में कमी नहीं की है। पिता की मृत्यु के बाद नाना साहब को प्रायः ३० लाख रुपये की सम्पत्ति मिली। उन्होंने उसका आधे से भी अधिक भाग का कम्पनी-काग़ज़ ख़रीद लिया। कमिश्नरों ने भी अपनी रिपोर्ट में लिखा है, कि नाना साहब को १६ लाख रुपये का गवर्नमेण्ट-पेपर (कम्पनी-काग़ज़) १० लाख

रुपये की मणि-मुक्ता आदि, ३ लाख रुपये की अशर्फियाँ, ८ हज़ार के सोने के गहने और २० हज़ार रुपये के चांदी के बर्तन मिले थे।

बाजीराव के परिवार में बहुत से दास-दासियां थीं। उन सबके भरण-पोषण का भार नाना साहब पर पड़ता था। इसलिये उनको वृत्ति दिलाने के लिये बाजीराव को बड़ी चिन्ता थी। इसी ख़र्च-बर्च के लिये नाना साहब को अँगरेज़ों का मुंह जोहने के लिये लाचार होना पड़ा; क्योंकि ८ लाख की सालाना वृत्ति देने वाले तो वही थे। इस समय सूबेदार रामचन्द्र पन्त नामक बाजीराव के एक बड़े विश्वासी अनुचर के हाथ में परिवार का सारा प्रबन्ध था। वे ही बाजीराव के प्रधान परामर्शदाता और उनके अनुचरों के मुखिया थे। रामचन्द्र पन्त ने अपने स्वर्गीय मित्र का हक़ दिलवाने के लिये कमर कसी। उन्होंने नाना साहब की ओर से पैरवी करते हुए बृटिश-गवर्नमेण्ट को यह पत्र लिखा,—

"परम आदरणीय कम्पनी ने जिस प्रकार भूतपूर्व महाराज का रक्षण और प्रतिपालन किया है, उसे याद कर उनके उत्तराधिकारी नाना साहब को भी पूरा भरोसा है, कि सरकार उन्हें भी पहले महाराज की तरह मानेगी। इस समय बृटिश गवर्नमेण्ट की दया और उदारता के सिवा उनका कोई सहारा नहीं है। नाना साहब सदा गवर्नमेण्ट की शक्ति और अभ्युदय की वृद्धि चाहते हैं और आगे भी चाहते रहेंगे।"

बिठूर के कमिश्नर ने तो इस प्रार्थना को स्वीकार किया; पर ऊपर के अधिकारियों ने नामंजूर कर दिया। उन दिनों टामसन

साहब पश्चिमोत्तर-प्रदेश के छोटे लाट थे। वे बड़े ही विचित्र जीव थे,—भारत के राज-रजवाड़ों पर उनकी तनिक भी श्रद्धा न थी। उन्होंने बिठूर के कमिश्नर को लिख दिया, कि आप प्रार्थना करने वालों को साफ कह दें, कि वे बहुत आशा न करें। इन दिनों भारत के बड़े लाट लार्ड डलहौसी थे। फिर क्या था? टामसन साहब का ही बोल बाला रहा। लार्ड डलहौसी ने साफ़ लिख दिया, कि पेशवा ने ४३ साल तक ८ लाख रुपया सालाना बृत्ति पायी है, इसके सिवा उन्हें जागीर भी मिली हुई थी। उन्हें दो करोड़ से अधिक का लाभ हो चुका था। उन्हें किसी तरह का विशेष ख़र्च-बर्च तो था ही नहीं। उन्हें कोई औरस पुत्र भी नहीं हुआ। वे मरते समय अपने परिवार के लिये २८ लाख रुपये की सम्पत्ति छोड़ गये हैं। इस समय पेशवा के जो सब आत्मीय-स्वजन वर्त्तमान हैं, उनका कोई स्वत्व गवर्नमेण्ट नहीं मानती। उनका सरकारसे दया की प्रार्थना करना भी व्यर्थ है। क्योंकि पेशवा जो कुछ मालमता छोड़ गये हैं, वही उनके पालन-पोषण के लिये काफी है। हो सकता है, कि जितना ऊपर लिखा है, उससे भी अधिक धन पेशवा साहब छोड़ गये हों।"

इस प्रकार नाना साहब की प्रार्थना विफल हो गयी और उनकी बृत्ति जीवन भर के लिये छिन गयी। जिन्होंने काबुल और पञ्जाब की लड़ाइयों में रुपये-पैसे और सैनिकों से अँगरेजों की खूब सहायता की थी। उन्हीं बाजीराव के पुत्र की वार्षिक बृत्ति बन्द कर बृटिश गवर्नमेण्ट ने मानों मित्रता शब्द पर ही लाञ्छन लगा दिया। इतनी ही मिहरबानी की, कि उनकी जागीर नहीं छीन ली—हाँ,

अब से उस जागीर के लोग सरकारी दीवानी और फौजदारी कानून के आधीन बना दिये गये।

यहां की सरकार ने जब धुन्धुपन्त की सारी आशा पर पानी फेर दिया, तब उन्होंने नाना युक्तियों और तर्कों से पूर्ण एक प्रार्थना-पत्र विलायत में कम्पनी के बोर्ड-आफ-डाइरेक्टर्स के पास भेजा उसमें आपने अपने पक्ष की पुष्टि बड़ी ही प्रबल युक्तियों से की थी परन्तु वहां भी कुछ सुनवाई न हुई। विलायत से बड़ी ही निराशा-पूर्ण चिट्ठी आयी, जिसमें बोर्ड ने गवर्नर-जेनरल के ही मत का समर्थन किया था।

विलायत से उत्तर आने के पहले ही नाना साहब ने अज़ीमुल्ला खां नामक एक सुन्दर और सुपठित मुसलमान युवक को अपनी ओर से पैरवी करने के लिये विलायत भेजा था। वह बेचारा भी अपनी चेष्टा में सफल न हो सका। जब अज़ीमुल्ला अपना कार्य सिद्ध न कर सका, तब अपनी इच्छा के अनुसार वहीं मौजें लूटने लगा। वह एक तो बड़ा ही खूबसूरत और ठाठ-पसन्द नौजवान था, दूसरे अँगरेज़ी पढ़ा हुआ था, इसलिये बड़ी आसानी से वहां के मौजी जीवों की जमात में मिल गया और बहुतसी बड़े घराना की औरतों तक को अपना पक्षपाती बना लिया। फिर क्या पूछना है ? उसकी पांचों घी में रहने लगीं। इन्हीं दिनों एक आदमी सितारे के पदच्युत राजा का दूत होकर विलायत की राजधानी में आया हुआ था। वह जाति का मराठा था और उसका नाम था रङ्ग बापाजी। ये बेचारे भी अपने उद्योग में विफल ही हुए। एकही काम से विलायत आकर विप

होने पर ये दोनों दूत आपस में मित्र होकर कुछ दिन वहीं रहे। पीछे रङ्ग बापाजी को तो ईस्टइण्डिया कम्पनी ने नगद २,५०,०००) रुपये देकर बिना भाड़े के ही बम्बई तक पहुंचा दिया; परन्तु अज़ीमुल्ला से विलायत की वह मौजबहार छोड़ते न बनी और इसने जन्मभूमि की मोह-माया त्याग, सदा वहीं रहने का सङ्कल्प कर लिया। मतलब यह, कि नाना साहब का काम तो खटाई में पड़ा ही, उनका दूत उनसे जो कुछ पैसा ले गया था, वह भी उसने वहीं बरबाद कर डाला!

(५)

पंजाब, नागपुर, सितारा, झांसी वगैरह को कम्पनी के राज्य में मिला कर ही लार्ड डलहौसी को सन्तोष नहीं हुआ—उनकी टेढ़ी निगाह एक और समृद्धि-शाली राज्य पर पड़ चुकी थी, परन्तु चूंकि वहां के अधिपति लावारिस नहीं थे, इसलिये उसे जुलाब की गोली की तरह झट निगल जाने का मौक़ा नहीं था, पर जब लार्ड डलहौसी की लोभ-दृष्टि पड़ चुकी, तब उसकी खैरियत कहां थी?

यह राज्य अयोध्या का था। अति प्राचीन काल से अयोध्या सुख-समृद्धि से पूर्ण रहती चली आयी है। उसकी यही समृद्धि उसका काल हो गयी। हिन्दुओं का पतन होने पर भी मुसलमानों के हाथमें अयोध्या धन-धान्य से पूर्ण ही बनी रही। इस लिये लार्ड डलहौसी की इस पर लार टपकी।

जिस समय बंगाल के नवाब मीरक़ासिम अँगरेज़ों से लड़ाई में हार कर अयोध्या के नवाब शुजाउद्दौला की शरण में चले आये थे, उसी समय से कम्पनी के साथ अयोध्या का राजनीतिक सम्बन्ध

विद्रोहके नायक

धूंधूपन्त नाना साहब पेशवा ।

आरम्भ हुआ। शुजाउद्दौला ने शरणागत की रक्षा के लिये अँगरेजों के विरुद्ध बहुत बड़ी सेना इकट्ठी की थी। सन् १७६४ ई० की २३ वीं अक्तूबर को बक्सर में दोनों सेनाओंका सामना हुआ। नवाब ने हारकर अँगरेज़ों से सन्धि कर ली। उस सन्धिके अनुसार नवाब ने युद्ध के व्यय-स्वरूप ५० लाख रुपये देना और अपने खर्चसे बहुतसी अँगरेज़ी सेना अयोध्या में रखना स्वीकार किया। शुजाउद्दौला ने बराबर इस सन्धि के नियमके अनुसार कार्य किया और अँगरेजों को सदा अपना मित्र माना। परन्तु सन्देह बृटिश-शासन का प्रधान मन्त्री है। और सन्देह ही उस समय बृटिश-कम्पनी के स्वार्थ साधन का अद्वितीय साधन था। फिर क्या था? सन्धि हुए तीन वर्ष भी न हुए होंगे, कि इस बात की अफ़वाह उड़ी, कि नवाब ने अँगरेजों के विरुद्ध षड्यन्त्र और सैन्य-संग्रह किया है। नवाब से कैफ़ियत तलब की गयी। उन्होंने उपयुक्त कारण दिखलाते हुए अपनी खूब ही सफ़ाई दिखलायी; मन्त्री-सभा के भी अनेक सदस्यों ने उनका पक्षावलम्बन किया; परन्तु बृटिश-कम्पनी का सन्देह दूर न हुआ। इसलिये फिर से नया सुलहनामा हुआ। इसके अनुसार नवाब ३५ हजार से अधिक सैन्य नहीं रख सकते थे। बस इसी समय से नवाब के भाग्य का चक्र घूमना आरम्भ हुआ। कम्पनीको यह देख कर बड़ा लोभ-समाया, कि नवाब शुजाउद्दौलाके पास इतना बड़ा राज्य है, इतनी सम्पत्ति, इतनी विशाल प्रजा-मण्डली और ऐसा अभेद्य दुर्ग है! इसीलिये कम्पनी के राजनीति-कुशल कर्मचारियोंने उन्हें दोस्ती के बन्धनों में ही बाँध कर फँसा लेना चाहा।

विलायत से डाइरेक्टरों ने भारत गवर्नमेण्ट को लिखा, कि तुम लोग जब मौक़ा पाओ, चुनार का किला अपने हाथ में कर लो। यह किला कुछ दिनके लिये नवाब ने जमानत के तौर पर अँगरेजों के हाथ में दे दिया था; पर जब उन्होंने ५० लाख का अपना ऋण परिशोध कर दिया, तब यह किला उन्हें वापिस मिल गया। इसबार विलायत से पत्र पाकर कम्पनी ने फिर इस किले को क़ब्जे में कर लेना चाहा। अनुकूल अवसर के लिये बहुत दिनों तक इन्तज़ारी नहीं करनी पड़ी। इन दिनों सारे भारतमें मराठोंका उपद्रव जारी था—उनकी सेना रुहेलखण्डसे होती हुई अवधमें आकर उत्पात क़रने लगी। कम्पनी ने अपनी कूट-नीतिको सफल करने लिये यही मौक़ा अच्छ समझा। इन लोगों ने नवाब को मराठों से बचाने की प्रतिज्ञा कर उनसे फिर एक नयी सन्धि की, जिसके अनुसार कम्पनी ने फिर चुनार का किला अपने हाथ में ले लिया और इलाहाबाद को कुछ दिनों के लिये अपने अधिकार में कर रखा। इस प्रकार कम्पनी की दोस्तीका अच्छा नतीजा नवाब को मिला। पहले तो उनकी फौज की संख्या घटाकर ३५ हजार कर दी गयी और पीछे चुनार और इलाहाबादके किले हाथ से निकल गये।

इस समय बृटिश-कम्पनी का ख़जाना एक तरह से ख़ाली हो रहा था। विलायत से डाइरेक्टरों की लगातार चिट्ठी आ रही थी, कि रुपया भेजो, रुपया भेजो ; पर देखना, किसी पर जोर-जुल्म न करना। इस तरह के पत्र पाते-पाते हेस्टिंग्ज की सरकार घबरा उठी। लाचार १७७२ ई० की २० वीं मार्च को बृटिश गवर्नमेण्टने जो कड़ा

और इलाहाबाद के प्रदेश नवाब से खरीदे थे, उन्हें फिर नवाब के ही हाथ ५० लाख रुपये में बेंच दिया। साथ ही नवाब के लिये जो अँगरेज़ी फौज तैयार रखी गयी थी, उसके ख़र्च के लिये नवाब ने हर महीने दो लाख दस हज़ार रुपये देने स्वीकार किये। इस प्रकार दोस्ती के नाम पर नवाब साहब अपनी सम्पत्ति नष्ट करने लगे। एक ओर उनके रुपये से कम्पनी का ख़जाना भरने लगा, और दूसरी ओर उनके अधिकृत प्रदेशों पर अँगरेजी झण्डा फहराने लगा।

सन् १७५७ में नवाब शुजाउद्दौला की मृत्यु हो गयी। उनके पुत्र आसिफ़ुद्दौला गद्दीनशीन हुए, नवाब शुजाउद्दौला के साथ अँगरेजी फ़ौज के खर्च चलाने के लिये जितना रुपया दिया जाना तय पाया था, उसमें अब ५० हजार और जोड़ दिये गये। साथ ही नये नवाब के साथ सन्धि कर बृटिश-गवर्नमेण्ट ने काशी, जौनपुर और गाजीपुर अपने अधिकार में कर लिये।

१७८७ में नवाब आसिफुद्दौला की मृत्यु होनेके बाद उनके पुत्र मिर्जाअली गद्दी पर बैठे ; परन्तु अँगरेजोंने देखा, कि इनकी अपेक्षा आसिफ़ुद्दौला के भाई सआदतअली से रुपया ऐंठने में अधिक सुभीता होगा। इसीलिये मिर्जाअली गद्दी से उतार दिये गये और सन् १७९८ की २१ वीं जनवरी को ही सआदतअलीखाँ लखनऊ की नवाबी पा गये। इनके साथ जो सन्धि हुई, उसके अनुसार बृटिश-सैन्य का ख़र्च ७६ लाख रुपया सालाना कर दिया गया। इधर सेना १० हजार कर दी गयी।

इस प्रकार सन्धि पर सन्धि करके अँगरेज लोग अवध की नवाबी की टांग तोड़ने लगे। ७६ लाख रुपया फ़ौजी ख़र्च और चुनार, काशी

गाजीपुर, जौनपुर, कानपुर, फतेहगढ़ और इलाहाबाद आदिपर अधिकार कर लेने पर भी सन्तोष न हुआ और नवाब के साथ और भी दोस्ती का हक़ अदा करने का संकल्प किया।

इसी समय मार्किस-आफ-वेलेसली कलकत्ता आये। उनका ध्यान अयोध्या की ओर आकृष्ट हुआ। अयोध्या में अब तक जो अँगरेज-सैन्य रहता आया था, उसके सिवा उन्होंने और भी दो दल सैन्य रखनेका हुक्म जारी किया। साथ ही यह भी लिखा कि या तो आप कुछ पेन्शन लेकर गद्दी से अलग हो जाइये और नहीं तो इन सब सैनिकों का खर्च चलाइये। सन् १८०१ ई० की १४ वीं नवम्बर को नवाब के साथ फिर सन्धि हुई। इसके अनुसार उन्हें अँगरेजों के हाथमें १,३५,२६,४७४) रु० सालाना आय की जमीन्दारी को, जो सारे राज्य के आधे से अधिक भाग में फैली हुई थी, दे देनी पड़ी। इस प्रकार जिस मतलब से अँगरेजों ने इन्हें नवाबी गद्दी पर बिठाया था, उसे सवा सोलह आने सिद्ध कर लिया। १८१४ ई० की ११ वीं जुलाई को उनकी मृत्यु हो गयी।

उनके मरने पर उनके बड़े लड़के गाजीउद्दीन हैदर अवध की गद्दी पर बैठे। अँगरेजों ने अब भी अवध का पिण्ड न छोड़ा था। समय-समय पर गाज़ीउद्दीन हैदर भी रुपया दे-देकर पुरानी मित्रता का निर्वाह करते रहे। सन् १८१४ में जब नेपाल की लड़ाई छिड़ी, तब नवाब ने कानपुर में मुलाक़ात कर एक करोड़ रुपये देने चाहे; परन्तु गवर्नर-जेनरल ने यह रुपये न लेकर ६) सैकड़े सूद पर एक करोड़ आठ लाख पचास हज़ार रुपये ऋण के तौर पर लिये। फिर इस

लड़ाई में अधिक ख़र्च पड़ा, इसलिये एक करोड़ का ऋण और भी नवाब से ही लिया गया। १८१९ ई० में बृटिश गवर्नमेण्ट ने ग़ाज़ी-उद्दीन को पुश्त-दर-पुश्त के लिये 'राजा' का ख़िताब दे दिया।

ग़ाज़ीउद्दीन के बाद नसीरूद्दीन हैदर अवध की गद्दी पर आ बिराजे। १८३७ ई० में उनकी मृत्यु हो गयी। तब इनके चचा मुहम्मद अलीशाह नवाब हुए। लार्ड आकलेण्ड ने सन् १८३७ ई० की १८ वीं सितम्बर को इनके साथ जो सन्धि की, उसके अनुसार यह तय पाया, कि अगर नवाब के राज्य में अत्याचार और विश्रृङ्खला फैल जायगी, तो बृटिश गवर्नमेण्ट योग्य कर्मचारी द्वारा सूबे अवध की व्यवस्था करायेगी और सब ठीक हो जायेगा, तब रियासत फिर नवाब के हवाले कर देगी।

१८४२ ई० में मुहम्मद अलीशाह की मृत्यु हो गयी। उनके पुत्र अमजदअली गद्दी पर बैठे; पर कुछ ही दिन बाद १८४७ ई० में नवाब वाजिदअली शाह अवध के नवाब हुए। बस इन्हींकी अमलदारी के समय अँगरेजों की बहुत दिनों की लालसा पूरी हो गयी! अब तक तो सन्धि पर सन्धि करके, अपने मनके नवाब को गद्दी पर बैठा कर मतलब गाँठा जाता रहा। इस बार एकदम मुंह फैला कर अयोध्या का राज्य निगल जानेकी तैयारी हुई।

इस समय भारत के गवर्नर-जेनरल लार्ड डलहौसी थे—वे भला अवध पर नज़रे-इनायत क्यों न फेरते? उस समय कर्नल स्लोमेन नवाब के दरबार में रेजिडेण्ट थे। वे यद्यपि रियासत में जहाँ-तहाँ गोलमाल और अत्याचार होने की शिकायत करते थे, तथापि

यह नहीं चाहते थे, कि बेचारे नवाब की सारी सम्पत्ति ही छीन ली जाय ।

उन्होंने एक पत्र में लार्ड डलहौसी को स्पष्ट लिख दिया था, कि अगर हम लोग अयोध्या या इस राज्य का कोई अंश हड़प लेने की चेष्टा करेंगे, तो सारे हिन्दुस्तानमें हमारी बदनामी फैल जायगी; फिर यह बदनामी किसी तरह दूर न होगी, हमारी नेकनामी ऐसी-ऐसी दर्जनों रियासतों से भी अधिक मूल्यवान् है ।

परन्तु लार्ड डलहौसी ने यह सब एक न सुनी और अयोध्या रियासत में जो गोल-माल फैला हुआ था, उसे ज्यों-का-त्यों जारी रहने दिया । उनकी यह उदासीनता देख, मि० स्लीमेन को बड़ा दुःख हुआ और वे समझ न सके, कि लाट साहबकी इच्छा क्या है ? अन्त में कर्नल स्लीमेन की नौकरी छीन ली गयी और उनकी जगह जेन-रल आउटरम १८५४ ई० की २४ वीं नवम्बर को सूबे अवध के रेजि-डेण्ट होकर आये । उन्हीं के हाथों सारी यज्ञ-क्रिया सम्पन्न कराने का विचार निश्चित हुआ । लार्ड डलहौसी ने अवध के सूबे भर में अत्याचार फैला हुआ है, यही बहाना निकाल कर अयोध्या-राज्य हड़प कर लेना चाहा । इसके लिये उन्हें विलायत से भी परवाना मिल गया ।

अब क्या था ? लार्ड डलहौसी ने झटपट एक सभा एकत्र की और उसमें नवाव के नाम एक फर्मान का मसविदा तैयार किया गया ! यह फर्मान लेकर जिस समय रेजिडेण्ट आउटरम नवाब के दरबार में पहुंचे, उस समय चारों ओर शोरसा पड़ गया था । नवाब

के वजीर ने सारा हाल सुन कर अपनी ओर से कैफियत देने के लिये मुहलत माँगी; नवाब की माँ ने पुनर्विचार के लिये प्रार्थना की; परन्तु रेजिडेण्ट ने कहा, कि अब तो जो कुछ होना था, वह हो चुका, अब कुछ भी नहीं हो सकता। उस दिन चौथी फ़रवरी थी। उसी दिन नवाबी महल की सारी तोपें हटाली गयीं, सब सैनिकों के हथियार छीन लिये गये ! नवाब अपने भाई और कितने ही मन्त्रियों के साथ रेजिडेण्ट के दरबार में आये। इसके बाद बड़ी ही शोचनीय दशा उपस्थित हुई। रेजिडेण्ट ने गवर्नर जेनरल का पत्र और कठोर दण्ड देनेवाला सन्धिपत्र नवाब के हाथ में देकर कहा,—"बस आपको दण्ड दिया गया है, उसे चुप-चाप सिर झुका कर स्वीकार कर लीजिये और इस सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दीजिये।"

यह सुन, नवाब ने अपनी पगड़ी रेजिडेण्ट के हाथ में दे, आँखों में आँसू लाकर कहा,—"सुलह तो बराबर वालों में हुआ करती है। जब अँगरेजी सरकार ने मेरी इज्जत ही धूल में मिला दी, तब अब सुलह का ढोंग कैसा ?" परन्तु उनके लाख रोने-गिड़गिड़ाने का कुछ भी असर न हुआ। नवाब को सिर झुका देना पड़ा। पचास लाख मनुष्यों की आबादी वाला प्रदेश, विस्तार प्रायः २४हजार वर्ग-मील होगा, बृटिश-इण्डिया में मिला लिया गया और इस इतने बड़े राज्य के मालिक थोड़ीसी पेन्शन मात्र के हक़दार रह गये ! जिस राज्य को धीरे-धीरे बहुत दिनों से लूटा-खसोटा जा रहा था, वह इस बार सोलहो आने अँगरेजों के ही अधिकार में आ गया !

इस तरह न्यायान्याय की कुछ परवा न कर लार्ड डलहौसी ने भारत के बहुत बड़े भूत-भाग पर अँगरेजी सिक्का सदा के लिये जमा दिया। अवध का राज्य मिल जाने से कम्पनी को मानों हीरे की खान मिल गयी। इस प्रान्त कीसी उपजाऊ भूमि और समृद्धिशाली प्रजा और कहीं नहीं देखने में आती। इसलिये लोग लार्ड डलहौसी की बड़ी प्रशंसा करते हैं; परन्तु हम तो यही कहेंगे, कि यह सब उनकी अपकीर्त्ति के ही अमिट चिह्न हैं। बहुत से अँगरेज लेखकों का भी ऐसा ही मत है।

बेइन्साफी की हद यहां तक हुई, कि नवाब-वाजिद अलीशाह को अपना मामला पार्लामेण्ट में पेश करने के लिये विलायत जाने की आज्ञा तो दी ही नहीं गयी, साथ ही कुल कागज पत्र, जिन पर उनके मामले की पैरवी का दारमदार था, रेजिडेण्ट ने हथिया लिये। इसके बाद नवाबकी धन-सम्पत्ति, गृह-सज्जा, वस्त्राभूषण, गाड़ी, घोड़े, हाथी और पुस्तकालयकी हस्त लिखित पुस्तकें तक नीलाम कर दी गयीं! इतना ही नहीं, महल-सराकी औरतों तक को अन्दर से घसीट, आम रास्ते पर लाकर उनके गहने-कपड़े छीने गये! अयोध्याके नवाबों के साथ अँगरेजोंकी पुश्तैनी प्रीतिका अन्त में यही परिणाम निकला!

अन्याय और अत्याचार कहां नहीं होते? चोरी डकैती क्या आज भी संसार से उठ गयी हैं? आज भी तो अयोध्याके वर्त्तमान शासकों के अधीन चोरी-डकैती बहुत होती है—फिर ऐसा कह कर सारे राज्य को ही हज़म कर लेना, साफ़-साफ़ अनधिकारचर्चा करना

था। नवाब वाजिदअलीशाह पढ़े-लिखे विद्वान् थे; क्या उनके आँखें नहीं थीं, जो वे अपने राज्यमें होने वाले घोर अत्याचारोंको सुनकर भी चुपचाप बैठे रह जाते ? इतिहास में कहीं कोई ऐसा वर्णन नहीं मिलता, जिससे सूबे भरमें कहीं किसी ऐसे अत्याचारका होना पाया जाता हो, जैसे अत्याचार और किसी प्रान्तमें न होते हों।

इसी तरह अपने आठ वर्ष के शासनकालमें लार्ड डलहौसी ने मनमाने ढङ्गसे राज्य-विस्तार किया। हमने जितने प्रदेशों का हाल लिखा है, उनके अलावा भी उन्होंने कितने ही राज्य अँगरेजी राज्य में मिलाये थे; परन्तु हमने उनका हाल इसीलिये नहीं लिखा, चूंकि हमारे इस ग्रन्थके प्रतिपाद्य इतिहास से उनका वैसा लगाव नहीं है।

इस तरह अपनी संहारिणी नीतिका चक्र आठ वर्ष तक चलाकर, सन् १८५६ में उन्होंने अपनी विदाई के लिये जो पत्र विलायत भेजा, उसमें अपनी नीति के बहुत गुण गाये और अपने गौरव के गर्वमें आप ही अपनी शेखी बघारी; परन्तु उनकी कार्रवाइयों ने अन्तमें भारतमें बड़ी आग सुलगा दी, यही बतलाना हमारा उद्देश्य है।

(६)

देशी-राज्योंका बल घटानेके सिवा बृटिश गवर्नमेण्टने जागीर-दारों और जमींदारों का बल भी खूब ही घटाया। बंगाल और पश्चिमोत्तर प्रदेशमें इससे बड़ी गड़बड़ मची। इसी समय बम्बईमें भी निष्कर-भूमिके बन्दोबस्त की चेष्टा आरम्भ होने से असन्तोष की आग भड़क उठी ! बम्बई-प्रदेशके निवासियों पर इसके सम्बन्ध में बड़े-बड़े अत्याचार भी हुए। जिनसे ऊब कर सब लोग ऐसे समयकी

प्रतीक्षा करने लगे, जब कहीं भी कोई ऐसा विप्लव उठ खड़ा हो, तो अँगरेजी सत्ता की जड़ खोद डालें।

इधर इन राजनीतिक कारणों के सिवाय कई सामाजिक कारण भी ऐसे जमा हो रहे थे, जो आने वाले विप्लव के सहायक बन गये। अँगरेजी शिक्षा के प्रचारसे जहां एक ओर नवयुवकोंमें नये विचार घर कर रहे थे, वहां दूसरी ओर पुराने ख़यालके लोग यही सोचने लगे, कि कम्पनी ने यह ढङ्ग हमें कृस्तान बना डालने के लिये निकाला है।

जो लोग किसी अपराध के लिये सरकार से दण्ड पाकर कैद-खाने में भेज दिये जाते हैं, उनके भरण-पोषण का प्रबन्ध करना सरकार का काम है। प्राचीनकाल में यह नियम था, कि कैदियों को खाने के ख़र्चके लिये कुछ बँधी हुई रक्म ही महीने में दे दी जाती थी, जिससे वे इच्छानुसार चीजें ख़रीद कर बनाते खाते थे। पर इस नियम के चलने में बड़ी गड़बड़ होने लगी। कैदी लोग एक की जगह तीन घण्टे खाने ही पीने में लगा देते थे, जिससे काम में बड़ा नुक्सान होता था। इसलिये कैदखाने में रसोइये नौकर रखे गये और कैदी लोगोंके अलग-अलग चूल्हे चौके बने। परन्तु इस पर बहुत से कैदियोंको आपत्ति होने लगी; क्योंकि रसोइये सभी समय अपनी ही जाति के नहीं मिलते। उन लोगों ने सोचा, कि खाने-पीनेका यह गोलमाल रच कर ये अँगरेज लोग हमें कृस्तान बना लेना चाहते हैं। यह विचार कैदखाने की चाहारदिवारी तक ही बन्द न रहा बल्कि, नगर-नगर और ग्राम-ग्राममें फैलने लगा। फिर क्या था? सब

लोग यह सोचकर क्षुब्ध हो उठे, अन्तमें ये अँगरेज हम सब लोगों को सस्ते ही सस्ते कृस्तान बना लेना चाहते हैं। इसीलिये हिन्दुओं में अँगरेजों के प्रति द्वेष और सन्देह के भाव भरने लगे और अन्तमें इसका परिणाम बड़ा ही भयानक हुआ।

इधर तो हिन्दू, जाति चली जानेके सन्देहमें पड़ कर अँगरेजों से द्वेष रखने लगे, उधर जो मुसलमान अपने राज्य खोकर उर्दू-फारसी और मौलवी-मुल्लाओं का आदर होते देख, बड़े राजी रहते थे, वे ही अव यह देख कर अँगरेजों के कट्टर दुश्मन बन गये, कि ये लोग तो हमारी भाषा के साथ हमारे मौलवियों का मान घटा देना चाहते हैं।

जो हो, कैदियों के लिये रसोईदार नियुक्त करने के मामले में गवर्नमेण्ट को बड़ी-बड़ी आफतोंका सामना करना पड़ा। इससे शाहाबाद, सारन, पटना आदि स्थानों में लोमहर्षणकाण्ड हो गये और अधिकारियों को बेतरह तंग होना पड़ा। इसी सिलसिलेमें यह हालत लिख देनी भी ज़रूरी मालूम पड़ती है, कि पहले कैदियोंको पानी पीनेके लिये लोटा दिया जाता था, परन्तु कभी-कभी यह लोटा पीनेके स्थानमें मार-पीटके काममें भी लाया जाता था, इसी-लिये अधिकारियों ने लोहे की जगह मिट्टी के बर्तन देने शुरू किये। रसोईदारों के पीछे जैसी हलचल मची थी, इसबार लोटेके मामले में भी वैसी ही हलचल आरम्भ हुई। कैदखाने में ही नहीं, बाहर भी, यह चर्चा होने लगी, कि जाति नष्ट करनेका यह नया तरीका निकाला गया है। फिर क्या था ? उधर कैदियों में असन्तोष फैला

उधर बाहरी जनता में। आरेमें तो इन कैदियों ने ऐसा ऊधम मचाया कि अन्तमें लाचार होकर जेल के अधिकारियों को उन पर गोली चलानी पड़ी। उधर मुजफ्फरपुर में कैदियों के इतने सहायक वहाँ के अधिवासियों में हो गये, कि उन लोगोंकी बढ़ी चढ़ी शक्ति को लौटा देने में ही अधिकारियोंने अपनी कुशल समझी।

इस प्रकार बृटिश-गवर्नमेण्ट को मानो ईश्वर की ओरसे एक चेतावनी मिली, कि यद्यपि भारतवर्ष के मनुष्य स्वभाव से ही सीधे-सादे और सन्तुष्ट हैं, तथापि जाति और धर्म का नाश होने की आशंका से वे अपनी सारी सीधाई भूल जा सकते हैं। यह हल-चल तो जेल की चहारदिवारी के अन्दर बन्द हथकड़ी-बेड़ियों से जकड़े हुए कैदियों की थी, इससे वैसा कुछ भय का कारण नहीं था; परन्तु जिन लोगों से भय किया जा सकता था, उनमें भी इस तरह के सन्देह-पूर्ण भाव घर कर रहे थे, यह गवर्नमेण्ट को ताड़ लेना चाहिये था और उसका झट प्रतिकार कर अपनी रक्षा कर लेनी थी ; पर यहां वह चूक गयी और इसीलिये उसकी गोलमाल कार्रवाइयों और विद्या के अभिमान में चूर रहने वाले ब्राह्मण पण्डितों तथा मौलवी-मुल्लाओं की उत्तेजना ने देश भरमें एक प्रचण्ड आग लगा दी।

(७)

जब अँगरेज़ों ने देखा, कि इतने बड़े विशाल देश में अपनी सत्ता जमाये रखने के लिये बहुत बड़ी सेना की आवश्यकता है। और वह सारी सेना विलायत से ही ले आना बड़ा कठिन और खर्चीला ढङ्ग है, तब यहीं के लोगों को धीरे-धीरे सेना में भर्ती करना आरम्भ

किया और अँगरेजी ढङ्ग से सामाजिक शिक्षा देनी शुरू की। क्रमशः इस भारतीय सेना की संख्या में वृद्धि होती चली गयी। इन्हीं सैनिकों का नाम 'सिपाही' प्रसिद्ध हुआ।

क्रमशः भारतीय-सिपाही वीरता और रण-कुशलता में अँगरेज़-सैनिकों की रण-कुशलता की बराबरी करने लगे और अपनी स्वामि-भक्ति तथा आज्ञानुगामिता के कारण अधिकारियों की श्रद्धा और विश्वास के पात्र होते चले गये। दूसरे इन सिपाहियों के लिये उन्हें उतना ख़र्च भी नहीं करना पड़ता था, जितना गोरे सिपाहियों के लिये।

पहले-पहल दक्खिन की लड़ाइयोंमें, जब कि अँगरेजों को फरांसीसी सेना के साथ लोहा बज़ाना पड़ा था, तभी भारतीय सिपाही-सैन्य का ठीक-ठिकाने के साथ संगठन हुआ था। इन लोगों ने प्रत्येक युद्धमें अँगरेजों की ऐसी सहायता की—आधा पेट खाकर, घोर दुःख-कष्ट उठा कर भी जैसी वीरता दिखायी— उसे देख कर अँगरेज प्रभुओं को दंग रह जाना पड़ा।

उस समय मद्रास में भारतीय सिपाही-सैन्य के १४ दल वर्तमान थे, जिनके प्रत्येक दल में एक हज़ार सैनिक रहते थे। राबर्ट-क्लाइव जब अपना और कम्पनी का भाग्योदय करने के विचार से मद्रास से कलकत्ते चले, तब उन्होंने इन सैनिकों का एक दल अपने साथ ले लिया और कलकत्ते में पहुंच कर और भी सिपाही भर्ती करने आरम्भ किये। क्रमशः उनके पास सिपाहियों के नौ दल तैयार हो गये, जिन्होंने पलासी की लड़ाई में खूब ही वीरता दिखायी।

उस समय तक अँगरेजों और भारतीय सिपाहियों में मनो-मालिन्य का कोई प्रसङ्ग नहीं आया था। न तो सिपाहियों के धार्मिक कार्यों की खिल्ली उड़ायी जाती, वे सानन्द छापा-तिलक लगाते, कण्ठी पहनते, अलग रहते और अलग खाते-पकाते थे। कोई उनकी इन सब बातों में दखल नहीं देता था।

परन्तु धीरे-धीरे बृटिश गवर्नमेण्ट की ही ओर से सन्देह के कारण पैदा किये जाने लगे। एक बार पहले कई एक सिपाहियों को मामूली अपराध के लिये प्राणदण्ड दिया गया और इससे जब उनके मनमें कुछ आतङ्क फैला, तब उनकी स्वतन्त्रता में अनुचित हस्तक्षेप किया जाने लगा। हिन्दू-सिपाहियों की कण्ठी-माला और छापा-तिलक तो गये ही, साथ ही उनकी पगड़ी भी उतार ली गयी और उसकी जगह अँगरेज़ी ढङ्ग को टोपी पहननेका हुक्म जारी हुआ। साथ ही मुसलमान सिपाहियों को दाढ़ी मूछ घुटवाने का भी हुक्म हुआ, जिससे वे भी हिन्दुओं की तरह परम असन्तुष्ट हो उठे। पर यह असन्तोष केवल मन-ही-मन पुष्ट होता रहा; क्योंकि वे जानते थे, कि यह प्रकाशित होने पर हमें भी पहले के सिपाहियों की तरह तोप के सामने रख कर उड़ा दिया जायगा।

इसके सिवा सिपाहियों को कम्पनी से और भी कई बातों की शिकायत थी। वे चाहे लाख होशियार क्यों न हों और नौकरी में सारा जोवन ही क्यों न बिता चुके हों; पर ऊँचे-ऊँचे पद उन्हें मिलने असम्भव थे। वे सब अँगरेजों के बांटे पड़ते थे। इसके सिवा पहले के राज-रजवाड़े, लड़ाई जीतने पर,अपने सैनिकों को पुरस्कार-

स्वरूप भूमि दान दिया करते थे ; परन्तु कम्पनी केवल चिकनी-चुपड़ी बातें ही बना कर काम निकालने लगी। बड़े-बड़े युरोपियनों के साईसों से भी सिपाहियों की अवस्था गिरने लगी। वे पशु की तरह माने जाने लगे। यह सब बातें धीरे-धीरे सिपाहियों के मनमें कम्पनी के प्रति घृणा उत्पन्न करने लगीं। वे जी-ही-जी में सोचने लगे, कि ये अँगरेज तो हमारी इज्ज़त, हमारी जाति और हमारा धर्म भी लिया चाहते हैं, इसलिये अपने को इनके हाथों से बचा लेना चाहिये। हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के सिपाही एक ही कारण से असन्तुष्ट हो रहे थे, अतएव इस मामले में दोनों एक हो गये।

इसी समय एक हवा का झोंका ऐसा लगा, कि आग कुछ भड़क उठी और सिपाहियों के हृदय में छिपा हुआ असन्तोष प्रकट हो पड़ा। नवाब हैदरअली के वंशधर, सिंहासन-भ्रष्ट होकर बेलोर के क़िले में अपने दिन बिता रहे थे। उनके पास बहुत कुछ मालमता था और साथ ही अनेक धर्मावलम्बी साथी भी थे। वे लोग बड़ी मौज से अपनी पराधीनता काट रहे थे ; परन्तु सिपाहियों के मारे उनके आनन्द में विघ्न पड़ा करता था, इसलिये उन लोगों ने सोचा, कि इन सिपाहियों को किसी तरह यहां से दूर करना चाहिये।

इधर सिपाही-सैन्य के पुराने अफसरों की पेन्शन हो जाने से उनकी जगह पर नये-नये अफसर जाते थे, जो सिपाहियों के साथ बड़ा बुरा वर्त्ताव करते थे। बस इसी मौके को अच्छा समझ कर नवाब के आदमियों ने सिपाहियों को भड़काना शुरू किया।

इसका परिणाम यह हुआ, कि सभी सिपाही अँगरेजों के विरुद्ध हो गये और उन्होंने एक दिन रात को अचानक युरोपियन फौजों पर धावा बोल दिया। इससे बहुत से युरोपियन मारे गये; परन्तु तुरन्त ही इसका प्रतिकार हुआ और विद्रोहियों को अँगरेजी सेनाकी गोलियों के आगे मरना और भागना ही पड़ा। टीपू सुलतान के वंशधरों ने जिस मतलब से यह उपद्रव खड़ा कराया था, वह पूरा न पड़ा। बड़ी-बडी मुश्किलों से उनके प्राण बचे, नहीं तो फौजी कानून के अनुसार विचार होने पर उनको बड़ा भारी दण्ड मिलता।

यह आग बेलोर तक ही न रही। और-और जगहों में भी फैल चली। सारे मैसूर, मदरास, कर्नाटक और निजाम राज्य में सिपाही लोग अँगरेज़ों की सत्ता मिटा देनेके लिये षड्यन्त्र करने लगे। परन्तु साल बीतते-न-बीतते यह विप्लव समाप्त हो गया, हां, दिलों के अन्दर से द्वेष की जड़ न दूर हुई—वह केवल कुछ काल के लिये छिप रही।

क्रमसे बहुत दिनों तक सिपाही लोगों में शान्ति विराजती रही। इनको जहाँ-जहाँ लड़ने के लिये भेजा गया, वहाँ-वहाँ इन लोगों ने बड़ी कुशलता और ईमानदारी के साथ युद्ध कर अँगरेज़ी राज्य का विस्तार करने में श्वेताङ्ग प्रभुओं की सहायता की; पर इस सेवा के बदले में उन्हें क्या मिला? कुछ भी नहीं। इसी लिये फिर असन्तोष की वृद्धि हो चली। वे लोग सोचने लगे,—"जब इस प्रकार अपनी जान संकट में डालने पर भी इनाम-वनाम तो दूर रहा, रुपये-दो-रुपये की वृद्धि वेतन में भी नहीं होती, तो फिर इस झकमारी से क्या लाभ?

इसी तरह का मनोभाव उस समय सिपाहियों के चित्त में धड़क रहा था, जिन दिनों वे पञ्जाब जीतने के लिये गये हुए थे। धीरे-धीरे उनमें लुक-छिप कर सलाहें होने लगीं। किसी तरह प्रधान सेनापति सर चार्ल्स नेपियर को इसका पता लग गया और उन्होंने इन षड्यन्त्रकारियों के तीन मुखियों को पकड़ कर जन्म भर के लिये कालेपानी भेज दिया। परन्तु इससे सन्तोष कम न होकर और भी बढ़ गया। ६६ नम्बर की पल्टन ने खुल्लम-खुल्ला बग़ावत कर दी। पहाड़ी गुर्खों की पल्टन ने इन लोगों को पराजित कर उनके हथियार-वगैरह छीन लिये। पीछे इस पल्टन के सिपाहियों ने अपनी भूल मान ली और प्रधान सेनापति सर चार्ल्स नेपियर से कहा, कि हम लोग सरकार के दुश्मन नहीं हैं, केवल वेतन बढ़वाने के लिये ही हमने अपने असन्तोष का सरकार को परिचय दिया है। यह कैफ़ियत पाकर सर चार्ल्स नेपियर ने भारत-सरकार को सिपाहियों का वेतन बढ़ा देने के लिये लिखा।

उस समय लार्ड डलहौसी गवर्नर जेनरल के पद पर विराजमान थे। उन्होंने इस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया, जिससे असन्तुष्ट होकर सर चार्ल्स नेपियर ने इस्तीफा दे दिया। इससे सिपाहियों को बड़ी निराशा हुई और उनकी श्रद्धा भी कम्पनी पर से घट गयी।

इसी समय वर्मा की लड़ाई छिड़ी और सिपाहियों को जहाज में भरकर वहाँ भेजने का विचार हुआ; परन्तु चूंकि सिपाहियों ने पक्की प्रतिज्ञा कर ली, कि हम लोग समुद्र-यात्रा करके धर्म न गँवायेंगे, इस लिये सरकार को उन्हें भेजने का विचार छोड़ देना पड़ा।

उधर इसी जमाने में विलायत में नेपोलियनके वीर-दर्प से त्राहि-त्राहि मची हुई थी, अतएव वहाँ से अधिक गोरी पल्टनें नहीं मँगायी जा सकतीं थीं; क्योंकि वहीं के युद्ध के लिये बहुत से सैनिक दरकार थे, यहाँ से कैसे भेजे जाते ?

जब से अँगरेजों से हिन्दुस्तान का सम्बन्ध स्थापित हुआ, तब से यूरोप की राजनीतिक हलचलों और लड़ाई-भिड़ाइयों के विषय में हिन्दुस्तान में भी हलचल मचे बिना नहीं रहती थी। क्रीमिया-युद्ध के समय हिन्दुस्तान में बड़ी-बड़ी विचित्र गप्पें उड़ा करती थीं। हर गली कूचे में रूस और इङ्गलैण्ड की इस लड़ाई की ही चर्चा रहती थी। एक बार गप्प उड़ी, कि रूस ने इङ्गलैण्ड पर कब्जा कर लिया है; महारानी विक्टोरिया वहाँ से भाग कर भारत के गवर्नर जेनरल के यहां छिपी हुई हैं ! इस उड़ती खबर ने सर्वसाधारण के मनमें अँगरेजों के प्रति श्रद्धा दूर करने में बड़ी मदद पहुंचायी। इसी समय क्रिमिया युद्ध में भारतीय सिपाहियों को भेजने का भी प्रस्ताव हुआ। इससे सब लोग बड़े विस्मित हुए और धर्मनाश की आशङ्का से सिपाही सब घबरा उठे। सूक्ष्मदर्शी लोगों ने सिपाहियों के मन का यह भाव ताड़ लिया।

कह चुके हैं, कि यह जमाना डलहौसी के शासन-काल का था। उनकासा गवर्नर जेनरल हिन्दुस्तान में शायद ही और कोई आया हो। उनके समय में भारत की बहुत कुछ उन्नति हुई, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु साथ ही उनकी राजनीतिक चालें ऐसी क्रूर थीं; कि उन्होंने प्रजा के बहुत बड़े भाग को अँगरेजी सलतनत का कट्टर

दुश्मन बना दिया। वे जो मन में आता, वही करते—किसी की एक न सुनते थे। इसी लिये उन्हें अपने शासनकाल के अन्त तक यह न मालूम होने पाया, कि हिन्दुस्तान के लोग जाति और धर्म को किस प्रकार प्रियतम पदार्थ समझते हैं ? यहां वाले अपने प्राचीन राजाओं और उनके वंशधरों को कैसी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं; यह भी उन्होंने नहीं जाना। इसलिये उन्होंने कितने राज्यों को चौपट कर डाला, कितनों को जाल में लाकर ऐसा फाँसा, कि वे क़यामत तक सिर न उठा सकें और नाना साहब की वृत्ति भी बन्द कर दी। इस तरह हिन्दुस्तानियों के मनोभाव के विरुद्ध लगातार आचरण करते हुए उन्होंने हिन्दू, मुसल्मान, दोनों ज़ातियों को अँगरेजी राज्य का शत्रु बना दिया। वृत्ति बन्द करने से नाना साहब अँगरेजों के जानी दुश्मन हो गये, झाँसी छिन जाने से महारानी लक्ष्मीबाई जली बैठी थीं और अयोध्या का विस्तृत राज्य हड़प कर लेने से बङ्गाल के सिपाही मन-ही-मन खार खाये बैठे थे। इस प्रकार सारे भारत-वर्ष के लोगों के मन में असन्तोष का बीज बोकर लार्ड डलहौसी सन् १८५६ ई० में हिन्दुस्तान से विलायत चले गये। वे आप तो चले गये, परन्तु अपने उत्तराधिकारीका मार्ग कण्टकाकीर्ण बनाते गये !

लार्ड डलहौसी के बाद लार्ड केनिङ्ग यहाँ के गवर्नर-जेनरल बनाये गये। इन्हीं के समय में वह प्रसिद्ध सिपाही-विद्रोह हुआ, जिसका इतिहास लिखने के लिये हमने इस समय लेखनी उठायी है।

इतनी उपक्रमणिका इसलिये दे दी गयी है, जिससे पाठकगण इस भयानक-विद्रोह के मूल कारणों को समझ सकें।

सिपाही-विद्रोह।

पहला अध्याय।

विद्रोह का आरम्भ।

हम पहले लिख आये हैं कि न्याय से अथवा अन्याय से, अंगरेजी राज्य का बहुत विस्तार कर, लार्ड डलहौसी १८५६ ई० में विलायत चले गये और उनके बाद लार्ड केनिंग का शासन-काल आरम्भ हुआ। सन् १८५६ किसी प्रकार बीत गया। सन् १८५७ का शीतकाल भी आनन्दसे अतिवाहित हो गया। चारों ओर शान्ति ही शान्ति दिखलाई दे रही थी। परन्तु यह सारी शान्ति बड़ी भारी अशान्ति की सूचना दे रही है, यह कोई न जान सका।

लार्ड डलहौसी ने अपनी हरकतों से हिन्दुस्तान के बहुतसे लोगों को अंगरेजों का जानी दुश्मन बना दिया था। कोई तो इनसे घृणा करने लगे थे, कोई डाह करने लगे थे और कोई सन्देह तथा आशङ्का से इनकी प्रत्येक चाल को परखा करते थे। उक्त लाट-साहब की बदौलत कितनों ने अपनी सम्पत्ति खो दी, कितने राजा से रङ्क हो गये, कितने ही अपनी जननी जन्मभूमि से हटाये जाकर निर्जन में दिन बिता रहे थे और कितने ही अपने लुप्त गौरव के उद्धार के लिये उत्कण्ठा के साथ उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

क्रमशः इन सब लोगों ने एकमत होकर भारतवर्ष से अंगरेज़ों की सत्ता उठा देने का सङ्कल्प किया और विद्रोह मचाने की धुन में लग गये। परन्तु उनका उद्देश्य हिंसामूलक होने के कारण उसमें धीरता, धर्म-भाव और विवेक की एकबारगी कमी थी। यों भी वे लोग चेष्टा करने से बाज न आये और उन्होंने मौक़ा पाकर अंगरेज़ों के अधीन भारतीय सिपाहियों को ही भड़काना शुरू किया। मौक़ा भी अच्छा हाथ लगा। एक सच्ची घटनाको लेकर ही चारों ओर भयङ्कर किम्वदन्ती फैल गयी। यही किम्बदन्ती अन्तमें समस्त अनर्थों की जड़ हुई।

अब तक सिपाही "ब्राउन-वेस" नामक बन्दूक व्यवहार करते थे; परन्तु इस बार एक नयी तरह की बन्दूक जारी की गयी, जिसका निशाना "ब्राउस-बेस" से वहुत दूर तक पहुंचता था। पहले तो इस नये हथियार की बात सुनकर सिपाहियों को बड़ा हर्ष हुआ; परन्तु पीछे तो इसीने वह काण्ड कर डाला, जो भारत के इतिहास का एक अपूर्व अध्याय है। ख़बर उड़ी, कि इस नयी बन्दूक़ में चर्बी मिले हुए टोटे व्यवहृत करने होंगे; क्योंकि ऐसा किये बिना ये बन्दूकें भरी ही नहीं जा सकतीं। ये टोटे दाँत से काटकर बन्दूक में भरने पड़ते हैं। इसके सिवा ये सुअर और गाय की चर्बी से तैयार किये जाते हैं। यह ख़बर क्रमशः तमाम जगह फैल गयी और सिपाहियों में घोर आन्दोलन आरम्भ हुआ।

सब से पहले यह ख़बर कहाँ से और कैसे जाहिर हुई, उसका इतिहास भी बड़ा ही मनोरञ्जक है। पाठकों की जानकारी के लिये हम उसे भी नीचे लिखे देते हैं।

कलकत्ते से आठ मील उत्तर 'दमदम' में पहले एक सैनिक-निवास था, जहां बङ्गाल के तोपचियों का प्रधान अड्डा था। यहीं सैनिकों को अस्त्र-विद्या की शिक्षा दी जाती और बहुत से रणपण्डित वीर पुरुष यहीं पड़े हुए अपने दिन बिताया करते थे। परन्तु अन्त को यह स्थान इस काम के लिये अच्छा न समझा गया और यहाँ का तोपखाना मेरठ भेज दिया गया। तोपख़ाना हटाये जाने पर सिपाहियों के बारिकों और अफ़सरों के बंगलों में और—और लोग रहने लगे। हां, अबतक यहां कारतूस तैयार करने वाला एक कारख़ाना और गोदाम रह गया। साथ ही जो नयी बन्दूक सरकार ने जारी की थी, उसको व्यवहार-शिक्षा के लिये जितने स्थान सरकार ने नियत किये, उनमें एक 'दमदम' भी प्रधान स्थान बनाया गया।

एक दिन जनवरी के महीने में 'दमदम' के पास ही उक्त स्थान में एक सिपाही बैठा हुआ था। इसी समय उसके निकट एक ख़लासी जो 'दमदम' के कारतूसवाले कारख़ानेमें काम करता था, आया और बोला,—"महाराज, मुझे बड़ी प्यास लगी है, ज़रा अपना लोटा दीजिये, तो मैं जल पीलूं।"

सिपाही जाति का ब्राह्मण और ख़लासी किसी नीच जाति का मनुष्य था। महाराज ने बिगड़ कर कहा,—"अबे! क्या बकता है? मेरे लोटे में पानी पीने का तेरा ही मुंह है? जानता नहीं, मैं ब्राह्मण हूं?"

यह सुनते ही उस ख़लासीने जरा हँसकर कहा,—"बड़े ब्राह्मण बने हो! रहो—ये साहब लोग देखते-देखते सब को एक करे डालते हैं!"

सिपाही ने पूछा,—"अबे ! इसका क्या मतलब ?"

खलासी बोला,—"महाराज ! अब के हमारे कारखाने में एक गये ढङ्ग का कारतूस तैयार हो रहा है। उसमें गाय की चर्बी और सूअर का पित्ता लगा हुआ है। अब उसे ही आप लोगों को ओठ से पकड़ कर दांत से काटना पड़ेगा। अबके सब सिपाहियों की जाति गयी।"

यह कह, वह खलासी मुस्कराता हुआ चला गया। बेचारे ब्राह्मण सिपाही की तो बोलती बन्द हो गयी। वह घबराया हुआ अपने बारिक में आया और उसने सब किसी को यह समाचार सुनाया। सुनते ही सब लोग अचम्भे में आ गये। जाति और धर्मके नाश की तैयारी होती देख, सबके सब थर्रा उठे ! सब के जीमें यह बात जम गयी कि ये अंगरेज़ इसी ढङ्ग से हमें कृस्तान बना लेना चाहते हैं।

बस इसी बात को लेकर धीरे-धीरे, चुपचाप, सिपाहियों में कानाफूसी होने लगी। अबतक तो बराबर ही ये लोग अपना दुखड़ा अपने गोरे अफसरों को सुनाया करते थे; परन्तु अब आपसमें ही बातें होने लगीं—साहब लोगों को कानोंकान ख़बर न होने पायी कि किस प्रकार ऊपर बिना बादल के ही बज्र गिरने की तैयारी हो रही है। इधर एक छावनी से दूसरी छावनी में एक नगर से दूसरे नगर में यह अफ़वाह फैलने लगी। उधर अंगरेज़ अफसर निश्चिन्तता की नींद में खुर्राटे मारते रहे ! धीरे-धीरे यह जनरव सारे बङ्गाल में फैल गया !

बङ्गाल के सिपाहियों में अधिकांश लोग सूबे अवध के रहने वाले थे। किस तरह अँगरेज़ों ने इस प्रान्त को धीरे-धीरे निगल लिया

और अन्त में यहां के नवाब वाजिदअलीशाह को मटियाबुर्ज में लाकर नजरबन्द कर दिया था, यह बात वे आंखों देख चुके थे। इस लिये बङ्गाल के सिपाहियों में यह ख़बर पाते ही घोर असन्तोष फैलने लगा। उन लोगों ने मन-ही-मन सोचा,—"देखो, इन अंगरेजों ने हमारे देश के नवाब साहब को यहां लाकर कैद कर रखा है और अब हम लोगों की जाति और धर्म का नाश करने की धुनमें हैं। इन लोगोंका इरादा सब को एक कर देने का है, जिसमें सब लोग फिरङ्गियों कीसी पोशाक पहनें और उन्हीं कीसी चाल चलें। फिर तो सारे देश में अङ्गरेज़ियत की ही धूम हो जायगी, हिन्दू और मुसलमान धर्म मिट कर सब का धर्म ईसाई हो जायेगा।"

इसीं तरह के विचारों ने सिपाहियों के मनमें अँगरेजों के प्रति घोर घृणा और द्वेष उत्पन्न करना आरम्भ कर दिया। फिर क्या था? जिन लोगों को अँगरेजों ने धोखा दिया था, जिनका राज्य छीना था, जिनका हक़ मारा था, उन सब लोगों ने इस मौके को अच्छा समझ कर सिपाहियों के असन्तोष को और भी बढ़ाना आरम्भ किया। लार्ड डलहौसी जिस अनिष्ट का बीज बोगये थे, वह अब धीरे-धीरे अंकुरित होने लगा।

जिन लोगों ने धीरे-धीरे भारतवर्ष के सभी प्रधान-प्रधान राज्यों को कम्पनी के हाथ में चले जाते देखा था, ज़मींदारों के स्वत्व छिनते देखे थे, और यह सब देख-सुन कर जो मन-ही-मन अँगरेजों से जले बैठे थे, वे लोग इस अवसर-पर भला कब चुप बैठे रह सकते थे? उन्होंने सिपाहियों के मनमें कम्पनी के दोषों की बात बैठाने

भरपूर चेष्टा की। इसके बाद ही जब-जब टोटे में गाय और सुअरको चर्बी मिलाई जाने की बात फैली, तब तो सिपाहियों के साथ-साथ सर्वसाधारण भी उत्तेजित हो उठे। जो अग्नि कुछ काल से भीतर-ही-भीतर धूमायित हो रही थी, वह इसबार बड़े ज़ोरों से भड़क उठी।

दमदम से कई मील दूर पुण्यपयस्विनी भागीरथीके किनारे बारकपुर में एक प्रसिद्ध सैनिक-निवास है। बंगाल के सैनिकों का अधिकांश निवास यहीं रहता है। सन् १८५७ ई० में यहां पैदल सिपाहियों की चार टुकड़ियां रहती थीं। इन चारों में से नम्बर दो और नम्बर तेंतालिस की पल्टनों ने सेनापति नाट की अधीनता में काबुल की लड़ाई जीती थी। शेष दोनों में से नं० ३४ की पल्टन तो एकबार हुक्म उदूली करनेके कारण तोड़ दी गयी थी और उसकी जगह नयी पलटन खड़ी की गयी। इस नयी पल्टन ने द्वितोय सिक्ख-युद्धमें बड़ी वीरता के साथ लड़ाई की और सरकार से प्रशंसा पायी थी। इस सैन्यदलके सेनापति कर्नल ह्वेलर थे।

ये थोड़े ही दिन से इस काम पर नियुक्त थे। ४३ वीं पल्टन के सेनापति कर्नल कनेड़ी थे। ये भी थोड़े ही दिनों से इस जगह पर आये थे। पर १७ वीं और दूसरी पल्टन के सेनापति बहुत दिनों के पुराने थे। इसलिये वे लोग सब के सुपरिचित थे। सैनिक-निवास के कर्त्तत्व का भार चार्ल्स ग्रान्ट के ऊपर था। जौन हियर यहाँ के समस्त सैनिक विभाग के सेनापति थे। एक दिन एकाएक बारकपुर के तारघर में आग लगी। दूसरे दिन एक अँगरेज अफसर का बंगला जल गया। इसी तरह एक-एक करके अँगरेजों के रहने के स्थान

प्रति दिन जलाये जाने लगे। केवल बारकपुर में ही क्यों, यहां से बहुत दूर पर रानीगञ्ज में, जहां एक पल्टन की एक शाखा रहती थी, वहां इसी तरह का अग्निकाण्ड जारी हुआ। साथ ही ढलती रात को सिपाहियों की सभा होने लगी। प्रत्येक रात्रि को सब लोग इकट्ठा होकर तीव्र भाषा में अँगरेजों की निन्दा करने लगे। इस प्रकार ये लोग केवल सभा कर या साहबों के घर में आग लगा कर ही नहीं रह गये, बल्कि भिन्न-भिन्न छावनियों में चिट्ठीमें-भेज कर यह सब हाल सब पर प्रकट करने लगे। इस तरह सभी छावनियों में चर्बी लगे टोटे की बात प्रकाशित हो गयी।

बारकपुर से प्रायः सौ मील दूर उत्तर की ओर बरहमपुर में गङ्गा के किनारे ही पलटनों की छावनी है। जो सब नवाब किसी समय दिल्लीके बादशाहके नाम मात्र अधीन रह कर बङ्गाल, विहार औरउड़ीसा के मालिक बने रहते थे, उन लोगोंके सुन्दर-सुन्दर वास-भवन इसके पास ही अपनी निराली छटा लहराते हुए दिखाई पड़ते हैं। इस समय मुर्शिदाबाद के नवाबों की इतिहास-प्रसिद्ध क्षमता और गौरव लुप्त हो चुका था। नवाब नाज़िम इस समय प्रचुर धन-सम्पत्तिके अधिकारी होकर असंख्य दास-दासियों के साथ भोग-विलासी धनिक की तरह अपने अपूर्व प्रासाद में रहते थे। लोग अँगरेजों की बदौलत मुर्शिदाबाद की नवाबी की तबाही भी देखे हुए थे। यहां १९ नं० की देशी पल्टन ही सिर्फ रहती थी। गोरे सिपाही नाम को भी न थे। हां, कुछ थोड़ेसे अँगरेज अफसर थे; ३४ नं० पल्टन के सिपाहियों ने बरहमपुर पहुंच कर चर्बी मिले हुए टोटे की बात १९ नं०

पल्टन के सिपाहियों से कही। सुन कर सभी सन्दिग्ध और अँगरेजों के प्रति विद्वेष-पूर्ण हो उठे।

जेनरल हियरसे ने ताड़ लिया, कि सिपाहियों में असन्तोष उत्पन्न हो गया; अतएव उन्होंने ऐडजुटेण्ट-जेनरल के पास लिख भेजा, कि यहां के सिपाहियों में यह विश्वास जड़ पकड़ रहा है, कि अँगरेज लोग सबको क्रस्तान बनाना चाहते हैं। परन्तु इस ओर किसीने कुछ ध्यान नहीं दिया। इसके एक महीने बाद बारकपुर के सिपाहियों के सिखलाये पढ़ाये हुए बरहमपुर के सिपाहियों ने क़वायद के लिये जाना और चाँदमारीके लिये कारतूस और टोटे ग्रहण करना अस्वीकार किया। उनके सेनापति कर्नल मिचेल इस बात को सुनते ही बिगड़ उठे और उन्हें डराने धमकाने लगे, जिससे उन लोगोंको और भी विश्वास हो गया, कि टोटे ज़रूर अपवित्र पदार्थों के बने हैं। यही इतनी भगवान् ने दया की, कि उन लोगों ने उसी समय बग़ावत नहीं कर दी; बल्कि चुपचाप रह गये और अपनी करनी पर पछताने लगे। उन लोगों को दण्ड देने का निश्चय तो किया गया; परन्तु चूँकि वहां की गोरी पलटन रंगून चली गयी थी, इसीलिये यह बात कुछ समय के लिये टाल दी गई।

इधर बारकपुर में जेनरल हियरसे ने अपने सिपाहियों को देशी भाषा में समझाना शुरू किया, कि तुम लोग व्यर्थका सन्देह न करो; जो टोटे तुम्हें आज दिये जा रहे हैं, वे ही सदा दिये जायँगे—तुम लोग चुपचाप धैर्य और सन्तोष के साथ कार्य करो, नहीं तो जिस प्रकार १९ वीं पलटनके लोगोंको दण्ड दिया जाने को है, वैसा ही

यहां भी होगा। इस तरह की अन्तिम वक्तृता जेनरल हियरसे ने २९ वीं मार्च को दी थी। परन्तु बक्तृता की मोहिनी शक्ति और तेजस्विनी भाषाका अपूर्व उच्छ्‌वास, बहुत दिनों तक सिपाहियों को शान्त न रख सका। जेनरल हियरसे के श्रोताओं ने ऊपरसे तो बड़ी शान्ति-प्रियता दिखलायी; पर भीतर-ही-भीतर चक्र चलाते रहे। १९ नं० पल्टन को दण्ड दिया जायगा, उसके सिपाहियों के हथियार छीन लिये जायँगे, इस समाचार से उन लोगों का द्वेष और भी बढ़ चला।

इसी समय कर्नल मिचेल बहरमपुर से १६ वीं पल्टन को लिये-दिये आ पहुंचे। साथ ही यह खबर फैली, कि बहुतसे गोरे सिपाही जहाज से कलकत्ते में उतरे हैं और अभी बारकपुर पहुंचा ही चाहते हैं। यह खबर पाते ही सिपाही लोग और भी उत्तेजित हो उठे। उन्होंने सोचा, कि यह पल्टन हमें दण्ड देने के लिये ही बुलायी गयी है।

उस दिन रविवार था। दोपहर में सभी अँगरेज अफसर और सेनापति—अपने-अपने विश्रामसागर में आराम कर रहे थे। उन्हें उस समय क्या खबर थी, कि इधर सिपाहियों में कैसी हलचल जारी है।

सिपाहियों में मंगल पाँडे नामका एक हट्टा कट्टा; मज़बूत और नौजवान सिपाही था। वह बड़ा ही धर्मनिष्ठ हिन्दू था। उस दिन उसने भी सुना, कि हम लोगों को सजा देने के लिये बहुतसे गोरे सिपाही बुलाये गये हैं। भाँग के नशे में चूर मंगल-पाँडेके होशो-हवास जाते रहे—वह आपेसे बाहर हो गया। जाति और धर्मनाश

करने वाले अँगरेजों को सज़ा देने के लिये एक हाथ में तलवार और दूसरे में भरी पिस्तौल ले, वह सिपाहियाना ठाठ से बाहर निकला। रास्ते में जो कोई मिला, उसीसे मङ्गल पाँडे ने कहा, कि देखो, ये अँगरेज हमारा धर्म लेना चाहते हैं, तुम लोग इनके दिये हुए टोटे न छूना, इनमें गाय की चर्बी लगी हुई है! इसी समय रास्तेमें एक बिगुल वाला मिला। मङ्गल पाँडे ने उससे कहा, कि बिगुल बजाकर तमाम सिपाहियों को एकत्र करो; पर उसने बिगुल नहीं बजायी; किन्तु युवक सिपाही का जोश तो कम न हुआ और वह उन्मत्त की तरह दौड़ा हुआ अँगरेजों की तरफ चला। इसी समय सामने एक अँगरेज अफसर को खड़ा देख, मङ्गल पाँडेने उस पर गोली छोड़ी; परन्तु वह उसके न लग कर बग़ल से निकल गयी।

पास ही ३४ नं० पल्टन के सिपाही भी थे; पर उन्होंने मङ्गल पाँडे के साथ मिल कर युद्ध की घोषणा नहीं की। हाँ, उसे रोक-टोक कर उसके हथियार छीनने का भी उन लोगों ने प्रयास नहीं किया। इन्हीं में से एक हवल्दार ने एडजुटेण्ट के घर में जाकर मङ्गल पाँडे का सिर फिर जाने का समाचार कह सुनाया। लेफ्टिनेन्ट बौग़ उस समय ऐडजुडेण्ट थे। वे सार्जेण्ट-मेजर हिडसन के साथ परेड में चले आये, जहां मङ्गल पांड़े का ऊधम मच रहा था। उन्हें देखते ही पास ही पड़ी हुई तोप के पीछे से मंगल पांड़े ने उन पर गोली छोड़ी, जो उनके घोड़े को लगी। घोड़े के साथ-साथ वे भी गिर पड़े। पलक मारते ही वे सावधान होकर उठ खड़े हुए और उन्होंने अपने ऊपर हमला करने वाले पर निशाना साध कर

गोली छोड़ी ; पर उनका भी निशाना ठीक न बैठा । तब वे तलवार लेकर आगे बढ़े । इसी समय एक और सैनिक उनकी मदद को चला आया । यह देख कर भी मङ्गलपांड़े का जोश कम न हुआ ! वह भी तलवार लेकर आगे बढ़ा । चारों ओर प्रायः ४०० सिपाही आकर खड़े हो गये ; परन्तु और किसीने इस युद्ध में किसी का पक्षावलम्बन नहीं किया । सब लोग चुपचाप दो युरोपियन सैनिकों के साथ एक देशी सिपाही का युद्ध देखने लगे । मङ्गलपांड़े तलवार चलाने में ग़ज़बका फूर्तीला था—उसने उन दोनों होशियार सैनिकों की देह मारे तलवार के बार के लहूलुहान कर दी । दोनों की जान जाने की नौबत आ पहुंचो । तब मुसलमान सैनिक साहस कर उनके प्राण बचाने के लिये आगे बढ़ा । उसका नाम था, शेख़ पलटू । मङ्गलपांडे ने लेफ्टिनेण्ट बौग को मारने के लिये तलवार उठायी ही थी, कि पलटू ने पीछे से आकर उसका हाथ थाम लिया । तलवार घूम कर पलटू के हाथ पर बैठी, तो भी पलटू ने उसे न छोड़ा । इसी समय लेफ्टिनेण्ट बौग और उनके साथी प्राण लेकर अपने-अपने निवास-पर चले आये । यदि उस समय शेख पलटू उनकी रक्षा को न आ जाता, तो वे मङ्गलपांड़े के हाथों वहीं ढेर हो जाते ।

जाते-जाते लेफ्टिनेण्ट बौग अपने सिपाहियों को खूब खरी-खोटी सुनाते गये ; पर किसी ने उनकी बात का कुछ ख़याल नहीं किया ; क्योंकि उनका मिजाज ही कुछ ऐसा था, कि कोई सिपाही उन्हें अच्छी निगाह से नहीं देखता था । उनके चले जाने पर सब सिपाही शेख पलटू को मङ्गलपांड़े को छोड़ देने के लिये तङ्ग करने लगे ।

पल्टू ने चुपचाप उसे छोड़ दिया। सिपाहियों ने सेनापतियों के इस अपमान को चुपचाप देखा और हाथ-पैर न हिलाये, इसका कारण यह है कि वे जाति-धर्म के नाश की आशङ्का से समस्त अँगरेजों को अपना बैरी समझने लगे थे।

इस घटना का संवाद पाकर जेनरल हियरसे भी वहां आ पहुंचे। उनके दोनों पुत्र भी उनके साथ ही आये। तीनों ही आदमियों की पोशाक फौजी थी और तीनों के हाथ में भरी हुई पिस्तौलें थीं। उन्होंने आते ही अफ़सरों से पूछा, कि तुम लोगों ने पागल युवक को क्यों नहीं रोका? क्यों नहीं पकड़ा? अफसरों ने कहा, कि जमादार ने हमारी आज्ञा नहीं मानी। इस पर गुस्सेके मारे जेनरल हियरसे ने कहा,—"अच्छा, मैं देखता हूं, कि कौन मेरी बात नहीं मानता। जो मेरे साथ आगे न बढ़ेगा, उसे जान से हाथ धोना पड़ेगा।"

यह कहते हुए जेनरल हियरसे ने अपना घोड़ा मङ्गल पांड़े की ओर बढ़ाया। साथ ही उनके पुत्र और बहुत से सिपाही, जमादार भी चले। उन्हें आते देख, जेनरल ने अपने एक पुत्र की ओर फिर कर कहा,—"देखना जान, अगर मैं उसकी गोली का शिकार हो जाऊँ, तो तुम उसे मारे बिना न छोड़ना।" सिपाहियों की ओर पिस्तौल का निशाना साध कर कहा,—"देखो,—जो कोई आज्ञा न मानेगा, उसे मैं यहीं का यहीं ढेर कर दूंगा!"

इधर मङ्गलपांड़े ने देखा, कि मेरे ही भाई-बन्धु साहबों की मदद के लिये चले आ रहे हैं। यह देख, उसने पिस्तौल का निशाना अपनी छाती पर किया और अँगूठे से घोड़ा दबा दिया, जिससे गोली

उसकी देह में घुस गयी और वह लहूलुहान होकर नीचे गिर पड़ा। परन्तु वह मरा नहीं था। इसी लिये झटपट अस्पताल भेज दिया गया। कुछ ही दिनों बाद वह ज़रा अच्छा हुआ, तब उस पर मामला चला, जिसके फल से उसे फाँसी की सज़ा सुनायी गयी। ६ ठी अप्रैल को वह सारी पल्टनों के सामने फाँसी पर लटकाया गया। जिस जमादार ने हुक्म नहीं माना था उसे भी फाँसी का ही हुक्म सुनाया था, पर वह २१ तारीख को फाँसी पर लटकाया गया ! इससे जो प्रभाव उसे तुरत फाँसी दे देने से पड़ता, वह न पड़ सका। जिन सिपाहियों ने लेफ्टिनेण्ट बौग और उनके साथी के ज़मीन पर गिर पड़ने पर उन्हें ठोकर मारी थी, उन्हें कुछ भी सजा न दी गयी। इसका असर भी अच्छा न हुआ।

इसी बीच बरहमपुर की १९ वीं पल्टन के लोगों के हथियार छीन लिये गये और उन्हें अपने-अपने घर जाने का हुक्म दे दिया गया। ये लोग अपनी पहली करनी के लिये दुःखित थे और अब तक गवर्नमेण्ट के विरोधी नहीं हुए थे। यद्यपि ३४ वीं पल्टन के लोगों ने उनके पास जाकर कई बार उन्हें उभाड़ने की चेष्टा की थी। इतने पर भी इनकी सजा बहाल रही। यदि इनका पश्चात्ताप और वर्तमान शान्तभाव देख, गवर्नमेण्ट पुरानी बातें भूल जाती, तो शायद इस दल के सभी लोग गवर्नमेण्ट के सच्चे मित्र प्रमाणित होते; परन्तु होनहार को कौन मेट सकता है ? गवर्नमेण्ट ने इन्हें मित्र न बना कर शत्रु ही बना लिया !

दूसरा अध्याय।

आग चेती।

मङ्गल पांड़े की हरकतों ने हर अँगरेज के मन में हड़कम्प पैदा कर दिया। गवर्नर-जेनरल के पास इस सैन्यदल को भी तोड़ डालने के लिये अर्जी भेजी गयी, परन्तु लार्ड केनिङ्ग केसे शान्त-स्वभाव और सुविवेक से जल्दबाजी करते न बनी। कभी-कभी तो जल्दबाज़ी बहुत बुरी होती है; पर कभी उसके सिवा कल्याण का और कोई मार्ग ही नहीं रह जाता। इस विषय में भी ऐसा ही हुआ। उस सैन्यदल को निरस्त्र करने में जितनी ही देर होने लगी, उतना ही इन लोगों के मन में गवर्नमेण्ट के प्रति घृणा, विद्वेष और उपेक्षा का भाव भरने लगा। इधर यह असन्तोष केवल बंगाल तक ही सीमावद्ध न रह कर समस्त भारतवर्ष में व्याप्त होने की तैयारी करने लगा।

कलकत्ते से हजारों मील दूर पञ्जाब-प्रदेश में अम्बाला नाम का एक नगर है। इसके पास ही भारतवर्ष के भाग्य का वार-वार फैसला करने वाला वह कुरुक्षेत्र नामक युद्धक्षेत्र है, जहां कौरव-पाण्डवों के भयङ्कर वन्धु-विरोध की मीमांसा हुई थी, जहां पृथ्वीराज और समर-सिंह की प्राण-वायु के साथ-ही-साथ हिन्दुओं का सौभाग्य-सूर्य्य सदा के लिये डूब गया था, जहां मराठों ने रत्न-सिंहासन पानेकी

आशासे युद्ध कर अन्तमें अपनी जन्मभूमि खो दी, जहां हिन्दू और मुसलमान—विजेता और विजित—दोनों ही अनन्त निद्रा में शयन कर संसार को साम्यवाद की अपार महिमा बतला रहे हैं। जिस समय युरोप के बड़े-बड़े राष्ट्र जंगली पशुओं को मार-मार कर खाने के सिवा और कुछ भी नहीं जानते थे, उस समय भी यह अम्बाला वर्त्तमान था और यहां के अधिवासी परमोच्च सभ्यता के अधिकारी थे।

जिन दिनों का हाल लिखा जा रहा है, उन दिनों यहीं पर गवर्नमेण्ट का प्रधान सैनिक अड्डा था। प्रधान सेनापति जार्नसन साहब मार्च महीने के मध्य में ही यहां आकर शिमले जाने की तैयारी कर रहे हे थे। इसी समय सिपाहियों में असन्तोष फैलने की खबर उनके पास पहुंची।

इस समय अम्बाले में जो भिन्न-भिन्न सैनिक दल थे, उन्हें भी नयी बन्दूकों के चलाने की विधि सिखलायी जा रही थी। शिक्षा देने का काम लेफ्टिनेण्ट मार्टिनों के सुपुर्द था।

इन्हीं दिनों ३६ नं० की पलटन प्रधान सेनापति के साथ-साथ अम्बाले आयी हुई थी। अम्बाले के कुछ सिपाही उन लोगोंसे मिलने गये। नयी बन्दूकों के चलाने की शिक्षा दी जा रही है, यह बात सुनते ही ३६ वीं पल्टन के सिपाहियों ने कहा, कि ये अँगरेज इसी बहाने से हमें कृस्तान बनाया चाहते हैं—अपवित्र टोटे देकर ये हमारी जाति और धर्म नष्ट करने को तैयार हैं, यह सुनते ही अम्बाले के वे सिपाही बड़े ही चिन्तित हुए। उन्होंने वहां से आकर

यह बात लेफ्टिनेण्ट मार्टिनों से कही। इतने में एक सिपाही रोता-चिल्लाता हुआ वहां आ पहुंचा और मार्टिनों साहब से कहा, कि मेरी तो जाति चली गयी—कोई मेरे साथ भोजन करने को तैयार नहीं है। यह सुन कर मार्टिनों साहब बड़े ही चक्कर में पड़े। दर्याफ्त करने पर उन्हें मालूम हुआ, कि अम्बाला छावनी के सभी सिपाही यह सुनकर आतङ्कित हो रहे हैं कि उन्हें अपवित्र चर्बी मिले हुए टोटे व्यवहार करने होंगे। किसी-किसी को तो इस बात का भी सन्देह हो गया है, कि उसने वही अपवित्र टोटा व्यवहार किया है, इसलिये घर जाने पर कोई उसके हाथ का छुआ पानी भी न पियेगा। मतलब यह, कि सभी भीत, चञ्चल और धर्म तथा जाति की रक्षा के लिये व्याकुल हो रहे हैं। यह सब मालूम कर साहबने सहकारी एडजुटेण्ट जेनरल के पास एक पत्र लिखा। प्रधान सेनापति को पहले ही इस बातका पता लग गया था, इसीलिये वे उचित कार्रवाई करने के विचार में लगे हुए थे। २३ वीं मार्च को वे अस्त्र-शिक्षा किस प्रकार हो रही है, इसका मुलाहिज़ा करने आये। इसके एक दिन पहले उनके पास खबर आयी थी कि सिपाही लोग अपने हृदय के कुछ भाव उन पर प्रकट किया चाहते हैं। अतएव उन्होंने आते ही सब सिपाहियों को अपने पास बुलाया और इस आशय की एक वक्तृता दी,—

"इन सिपाहियों में जो यह भ्रम फैल रहा है, कि गवर्नमेण्ट इन लोगों की जाति और धर्म नष्ट किया चाहती, वह एक बारगी ही बेजड़ है। भला सरकार को आप लोगों की जाति या धर्म नष्ट करने

से क्या लाभ होगा ? जिन नये टोटों को लेकर यह मिथ्या भ्रम फैल रहा है, वे अब तक न तो जारी किये गये हैं, न जारी किये जायँगे। ऐसा कहने पर भी जो लोग अपने अफसरों या सेनापति की बातका विश्वास नहीं करते, वे सैनिक नहीं कहे जा सकते; क्योंकि सैनिकों का पहला कर्तव्य अपने ऊपर वाले अफसरों की आज्ञा पालन करना है। मैं आप लोगों को बतला देना चाहता हूं, कि सैनिकों को इस प्रकार की हुक्म-उदूली के लिये बहुत कड़ा दण्ड दिया जाता है। मैं यह बात आप लोगों को डराने के लिये नहीं कहता; सिर्फ यह जँचा देना चाहता हूं, कि आप लोग अपने-अपने साथियों और अधीन सिपाहियों को समझा दें, कि गवर्नमेण्ट ने न तो आज तक किसी के धर्म में हस्तक्षेप किया है और न आगे करना चाहती है। मेरा यह पूर्ण विश्वास है, कि आप लोग सैनिक धर्मका पालन करेंगे।"

यह कह प्रधान सेनापति चुप हो गये। उन्हें हिन्दीमें बोलने का अभ्यास नहीं था, इसलिये वे अँगरेजीमें ही बोले थे। उनकी बातों का मर्म मार्टिन साहब ने सिपाहियों को समझा दिया। पर जैसे जेनरल हियर से की वक्तृताओं का कोई फल न हुआ, वैसे ही प्रधान सेनापति की बातें भी सिपाहियों के एक कानसे जाकर दूसरे कान से निकल गयीं। हां, कुछ देशी अफसरों को प्रधान सेनापति की बातें बहुत पसन्द आयीं और उन्होंने सिपाहियों की ओरसे मार्टिनो साहब से कहा,—"आप प्रधान सेनापति साहब को यह बतला दें, कि सिपाही लोग नये टोटे व्यवहार करने को तैयार हैं; परन्तु इस समय यह बात हर गांव और हर कसबे में फैल रही है, कि सरकार ने

सिपाहियों के धर्म बिगाड़ने के लिये चर्बी मिले हुए टोटे जारी किये हैं। इसीलिये सब लोगों को भय हो रहा है, कि कहीं घर जाने पर वे अपने भाई-बन्धुओं द्वारा जातिच्युत न कर दिये जायें। ऐसा होनेसे बेचारों का जीवन ही बरबाद हो जायगा।"

मार्टिनो साहब ने यह सब हाल प्रधान सेनापति को बतला देने की प्रतिज्ञा की और अपनी इस प्रतिज्ञा का यथासमय पालन भी किया। उन्होंने ऐडजुटेण्ट जेनरल को जो पत्र लिखा, उसमें साफ़-साफ़ लिख डाला, कि—

"सैनिकों में बहुत से बुद्धिमान् और विश्वासी मनुष्य भी हैं। इन लोगों का कहना है, कि हम लोग सेनापति का हुक्म मानने को तैयार हैं, परन्तु उन्हें भय है, कि जैसा शोर चारों ओर मच रहा है, उससे उनके जाति से अलग किये जाने का डर है। मैंने जहाँ तक पता लगाया है, उससे मैं कह सकता हूं, कि उनका यह कहना बेजा नहीं है। भारतवासियों को धर्मका बड़ा ख़याल रहता है। आजकल न जाने क्यों, उनके धर्मभाव को इतनी ठेस पहुंची है, कि सब के सब उत्तेजित हो रहे हैं। अपवित्र टोटेवाली बात तो गौण है; प्रधान कारण कोई और ही मालूम होता है।"

यथासमय मार्टिनों साहब का यह पत्र ऐडजुटेण्ट जेनरल के आफ़िस से प्रधान सेनापति के पास भेज दिया गया। जेनरल आनसन यह पत्र पाकर बड़ी चिन्ता में पड़े। उन्होंने उसी दिन गवर्नर-जेनरल को इस आशय का एक पत्र लिखा, कि मुझे इस बातका विश्वास है कि 'शिक्षागार' का सैनिक दल सन्तुष्ट है और ठीक-

ठिकाने से रहेगा; परन्तु उनके साथ उनके भाई-बन्धु कैसा व्यवहार करेंगे, यही एक चिन्तनीय विषय है। गवर्नर-जेनरल को यह पत्र भेज कर सेनापति आनसन साहब फिर सोचने लगे, कि अब कैसे क्या करना चाहिये ? पहले तो उन्होंने अम्बाले का शिक्षागार ही उठा देना चाहा; पर पीछे यही निश्चय किया, कि टोटोंके काग़ज़ के बारे में ही सिपाहियोंके मनमें सन्देह उत्पन्न हुआ है, इसलिये जब तक उनके बारेमें मेरठ से कोई संवाद नहीं प्राप्त होता, तबतक उनका व्यवहार बन्द रखना ठीक है।

इधर गवर्नर-जेनरल साहब ने प्रधान सेनापति की चिट्ठी के जवाब में इस आशय का एक पत्र लिखा,—

"अम्बाले के सैनिक शिक्षागार को उठा देना जितना बुरा होगा, उतना ही बुरा टोटेका व्यवहार बन्द करना भी होगा, क्योंकि इससे सैनिकों की शिक्षा पूरी न होगी और वे यह ठीक समझ जायेंगे, कि टोटेमें ज़रूर ही कोई अपवित्र वस्तु थी। तभी गवर्नमेण्टने उसका व्यवहार बन्द कर दिया है। इसलिये मेरी तो यही राय है, कि टोटे काम में लाये जायें। इससे वे अपना भ्रम दूर कर सकेंगे और औरों का भी भ्रम छुड़ायेंगे। अभी टोटे का इस्तेमाल रोक देनेसे जो सन्देह पैदा हुआ है, वह और भी बढ़ जायेगा—फिर उसका परिणाम बड़ा बुरा होगा।

यह पत्र पाकर प्रधान सेनापति आनसन को अपना विचार बदल देना पड़ा और अम्बाले के शिक्षागारमें टोटे का व्यवहार बन्द न हुआ।

इसके बाद ही आनसन साहब शिमला चले गये और वहां पहुंच कर उन्होंने गवर्नर-जेनरल को वहाँ आनेके लिये पत्र लिखा, परन्तु उन्हें कहाँ फुर्सत थी जो शिमला-शैल को छोड़ते ? पञ्जाब की उच्च भूमि से लेकर बंगाल की सम भूमि तक एक प्रकार की घोर अँधियारी फैलती चली आ रही थी सभी स्थानों से आतङ्क पैदा करने वाले संवाद पा-पाकर वे शङ्कित, विचलित और चञ्चल हो रहे थे। पहले बारकपुरमें जैसा अग्निकाण्ड सिपाहियों ने मचा रखा था, वैसा ही अन्यान्य स्थानोंमें भी होने लगा। सारे एप्रिल महीने में अम्बाले में अग्निकाण्ड जारी रहा। वहांके सैनिक शिक्षार्थी टोटेको मोम या घी से मुलायम कर लेते थे और इस विषयमें सन्देह-रहित हो गये, कि गवर्नमेण्ट उनका धर्म नष्ट करना नहीं चाहती। तो भी उनको इस बात का भय बना ही रहा, कि वे घर जाते ही जाति से बाहर कर दिये जायेंगे। इस आशंका से वे रात-दिन घबराये रहने लगे। साथ ही हर रात को अग्नि-लीला भी होती रही। हर रात को युरोपियनोंके डेरे, मालगुदाम, अस्पताल, सिपाहियों के बारिक, आदि एक-एक कर जलने लगे। यह लीला देख, अम्बाले के अधिकारियों की पिलही चमकी। कड़ाके की गरमी और तिसपर यह अग्निलीला ! सबकी जान घपले में पड़ गयी। अधिकारियों ने इन उपद्रवकर्त्ताओं को पकड़-पकड़ कर दण्ड देने का विचार किया; पर कोई पकड़ा न गया। २२ वीं एप्रिल को सैनिक—विद्यालय के एक सिपाहीका घर जल गया। इसके बाद ६० वीं पल्टन के पांच मकान जल कर खाक हो गये। कहते हैं, कि महीना खतम होते न होते

एक सिख सिपाही ने अफसरों से आकर कहा, कि टोटे का व्यवहार जारी रखने की जो आज्ञा हुई है, उसीसे जिढ़कर सिपाहियों के रहने के सब घर जला डालेंगे।* परन्तु विचारकों के सामने कोई अपराधी नहीं लाया जा सका। यद्यपि किसीने गवाहों को गवाही देनेसे न रोका, न डराया-धमकाया, तथापि किसीने किसीके ऊपर अपराध न लगाया। यह देख समस्त अधिकारी हैरतमें आ गये। प्रधान सेनापति ने बड़े खेद के साथ गवर्नर जनरल को लिखा,—"हम लोग अम्बाले के इस अग्नि-काण्ड के एक भी अपराधी को अब तक नहीं पकड़ सके, यह बड़े विस्मय की बात है। दुष्टगण जिसे अपना बैरी समझते हैं, उसीका घर जला डालते हैं और इन लोगों ने ऐसी गुट्टबन्दी कर रखी है, कि जो असल हाल जानता है, वह भी भेद खोलनेको तैयार नहीं है।"

इसी तरह दिन बीतने लगे। भारतवर्ष से अँगरेजों को दूर कर देने का सिपाहियों का सङ्कल्प दृढ़ होता चला गया, गवर्नर जेनरल और उनके मन्त्रीगण रात-दिन इसी चिन्ता में चूर रहने लगे, कि किस प्रकार आनेवाली विपद् टाली जा सकेगी; परन्तु भारतके प्रधान सेनापति आनसन इस विषयमें उतने दत्तचित्त नहीं थे। वे शिमला-शैल के सौन्दर्य का ही आनन्द उपभोग कर रहे थे। उनकी यह उदासीनता बड़ी ही बुरी थी।

---

* Holmes history of the Indian mutiny.

† Kayes sepoy war Vol-I-

लार्ड केनिङ्ग जिस बात से डर रहे थे, अन्तको वही सामने आयो। एक ही उद्देश्य-साधन को अपना लक्ष्य बनाकर, हिन्दू और मुसलमान एक हो रहे हैं, इस बात का पूरा-पूरा प्रमाण पाया गया। अब तक अधिकारी वर्ग यही जानते थे, कि नयी राईफल-बन्दूकें और चर्बी मिले टोटे ही सारे असन्तोष की ज़ड़ हैं, क्योंकि पैदल-सेना में हिन्दू अधिक हैं और वे जाति और धर्मनाश की शंका पद-पद पर किया करते हैं। अब के मेरठसे खबर आयी, कि वहाँ के घुड़सवार सिपाही भी सरकार के विरुद्ध सिर उठा रहे हैं। ये सिपाही अधिकाँश में मुसलमान ही थे, अब अधिकारियों की आँखें खुलीं और वे समझ गये, कि इस समय हिन्दू और मुसलमान अपना आपस का लड़ाई-झगड़ा भूल कर हम अँगरेजों के विरुद्ध एक होकर खड़े होना चाहते हैं। उनका एक मात्र उद्देश्य हमें हिन्दुस्तान से मार भगाना ही हो रहा है।

मेरठ में सैनिकों की एक बड़ी भारी छावनी थी। यहां देशी और गोरी पलटनें रहती थीं। यहाँ तोपचियोंका भी एक बड़ा भारी अड्डा था। पैदल और घुड़सवार, दोनों तरह के सिपाही भी चतुर सेनापतियों के अधीन हर घड़ी तैयार रहते थे। यहां नये टोटे तैयार रहनेका कारखाना भी था। सैनिक-निवास के बीचो-बीच काली नदी बह रही थी। सारी छावनी की लम्बाई चौड़ाई दो मील थी। उत्तर की ओर अफसरों के रहने के मकान बने हुए थे। वहीं गोरे सिपाहियों के डेरे भी थे। युरोपियन सैनिकों के डेरे से बहुत दूर नदी के दूसरी तरफ हिन्दुस्तानी सिपाहियों के रहने के स्थान थे। कहने

का मतलब यह, कि गोरे और काले सिपाही एक साथ नहीं रहते थे। इस समय मेरठ में १८५३ गोरे और २९२२ काले सिपाही मौजूद थे।

पहले ही खबर उड़ चुकी थी, कि मेरठ के सिपाहियों में बड़ा असन्तोष फैला हुआ है; इसलिये पश्चिम की प्रायः सब छावनियों के सिपाही उधर ही कान लगाये हुए थे। प्रति दिन लोगों का कौतूहल बढ़ता ही जाता था। लोगों के हृदय में यह विश्वास जड़ पकड़ता ही गया; कि अँगरेज लोग हमारा धर्म लेने को तुले बैठे हैं। बहुतसे लोगों ने तो इस बात का हर जगह प्रचार करनेका बीड़ा उठा लिया। वे कहीं साधु-संन्यासी या कहीं फ़क़ीर बन कर पहुंचते और लोगों को तरह-तरह के लटके सुना कर अँगरेजों के विरुद्ध उभाड़ा करते थे। कोई कहता,—"कम्पनी का राज्य सन् १७५७ में हिन्दुस्तान में जारी हुआ, अब सौ वर्ष बाद इनका क्या परिणाम होता है, वह देखना।"

दूसरा कहता,—"मुसलमानों में यह बात पहले से ही कही हुई है; कि सौ साल तक पूजने वालों का राज्य रहेगा, इसके बाद सौ साल तक इसामसीह के मानने वालों का। इनके राज्य में लोग दुखी होंगे, इसलिये उनके आँसुओं से तरस खाकर खुदा फिर सचाई का राज्य कायम करेगा और हरएक काफिर का शिर तन से जुदा कर दिया जायेगा।"

ऐसा ही एक फ़क़ीर इन दिनों मेरठमें आया हुआ था, जो हाथी पर सवार हो तमाम जगह घूमता फिरता था। उसके साथ बहुतसे चेले और नौकर-चाकर थे। पहरे वालों को उस पर कुछ सन्देह

हुआ। उन्होंने अधिकारियों को खबर दी। अन्त में उसे शहर छोड़ देने का हुक्म दिया गया। इसके बाद ही वह अपने साथियों समेत अपने स्थान से हट गया, पर मेरठ से न टला। बहुतों का अनुमान है, कि वह किसी पल्टन में ही लुक-छिप कर रहता होगा।

टोटे के मामले को लेकर जैसी उत्तेजना मेरठ में फैली, वैसी और कहीं नहीं। ३ नं० घुड़सवार पलटन, इन दिनों यहीं थी, जो लार्ड लेक के अधीन दिल्ली, लासवारी और भरतपुर में बड़ी वीरता दिखला चुकी थी तथा अफगानिस्तान, अलीऔवल और सोवरराव की लड़ाइयों में भी नाम पा चुकी थी। इस दल में बहुत से संभ्रान्त और उच्च श्रेणी के मनुष्य भी थे। वे तलवार और बन्दूक दोनों चलाते थे। एप्रिल महीने के अन्त में सबसे पहले इसी पल्टन ने अपने अफसरोंका हुक्म मानने से इन्कार किया। इन्हें न तो कोई नया हथियार दिया गया और न दूसरी कोई चीज इस्तेमाल के लिये दी गयी—उलटे जो टोटा ये लोग पहले दांत से काटा करते थे, उसे हाथ से ही काट लेने का काम जारी किया गया था। जिस उद्देश्य से यह नयी रीति प्रचलित की गयी थी, उसे ही समझाने के लिये सेनापति कर्नल स्माइथ ने सबको परेड के स्थान में आने का हुक्म दिया। यही निश्चय हुआ कि २४ वीं एप्रिल को सब लोग परेड के स्थान में एकत्र होंगे। इसके एक दिन पहले साँझ होते न होते खबर उड़ी थी, कि अश्वारोही सैनिकों ने टोटे को हाथ से छूना भी अस्वीकार किया है। २३ वीं को सेनापति का हुक्म भी जारी हुआ। इसी दिन हीरासिंह नामक एक पुराने हवलदार ने अपने दल के कप्तान से

कहा कि टोटे के मामले में सब के दिलों शक पैदा हो गया है; तिस पर सेनापति साहब का हुक्म जारी होने से लोग और भी गरम हो रहे हैं, इसलिये परेड के समय टोटे का व्यवहार न करने को कहा जाये, तो अच्छा होगा। कप्तान ने रात को दस बजे ही यह बात ऐडजुटेण्ट के पास लिख भेजी; पर उन्होंने इसके अनुसार काम करनेमें अपनी कापुरुषता समझी, इसलिये जो आज्ञा जारी हुई थी, वह ज्यों-की-त्यों रही !

नियत दिन को, नियत समय पर, सब लोग परेड-भूमि में आ पहुंचे, परन्तु ९० सैनिकों में से बूढ़े हीरासिंह वगैरह पाँच जनों ने ही सेनापति की आज्ञा मानी, ८५ सैनिकों ने टोटे को हाथ भी न लगाया। कर्नल स्माइथ ने उन्हें लाख समझाया; पर वे टस जे मस न हुए।

कर्नल स्माइथ पर सिपाहियों की श्रद्धा न थी। वे बड़े ही उद्धत-प्रकृति के जीव थे, इसलिये समय की गति देखे बिना ही मनमानी कार्यवाही कर बैठते थे। इस समय भी वे हवा के रुख पर न चले। इसी से सिपाहियों का असन्तोष और भी बढ़ता चला गया।

इन सब घटनाओं से लार्ड केनिंग स्पष्ट समझ गये, कि सिपाहियों के हृदय में क्रमशः गहरा सन्देह जड़ पकड़ रहा है, जिससे थोड़े ही दिनों के अन्दर कोई भारी अनिष्ट हुआ चाहता है। वे बड़े धीर पुरुष थे, तथापि इस मामले में उनकी धीरता जवाब देने लगी। उन्हें चारों ओर अशान्ति ही दिखाई देने लगी। उन्होंने देखा, कि केवल सिपाहियों में ही नहीं, सर्वसाधारण में भी उत्तेजता फैली हुई

है। मेरठ की ही तरह और भी बहुतसे स्थानों के हिन्दू-मुसलमानों में यह विश्वास जड़ पकड़ने लगा, कि ये अँगरेज लोग हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही का धर्म बिगाड़ना चाहते हैं। अब तक तो बात सिपाहियों के टोटे में चर्वी मिलायी जाने की ही थी, अबके यह अफ़वाह उड़ी कि हिन्दुस्तानियोंके खाने-पीने की चीजों में गाय की हड्डीका चूरा मिलाया जा रहा है और कुओं में सुअर की चर्बी डाल दी गयी है। यह अफवाह तमाम जगह बिजली की तरह फैलने लगी। भय, आशंका और उत्तेजना का राज्य सा फैल गया। लाहौर से कलकत्ते तक समस्त सिपाहियों में नयी-नयी अफवाहें प्रचारित होने लगीं। प्रत्येक देशी रियासत, जिसको अँगरेजों से कुछ नुक़-सान पहुंचा था, अराकजता का अड्डा हो गयी। सारा देश अफवाहों की आँधी में उड़ता हुआ मालूम पड़ने लगा।

इन दिनों कानपुर में आटे का भाव चढ़ा हुआ था; इसलिये व्यापारी लोग मेरठ से आटा ख़रीद कर सरकारी नाव द्वारा कानपुर ले आने लगे। यह चालानी का आटा जब पहले-पहल कानपुर पहुंचा, तब भाव में सस्ता होने के कारण सब लोग यही आटा खरीदने लगे। परन्तु दूसरी बार चालान आनेके पहले ही कानपुर में हल्ला हो गया कि यह आटा अँगरेजों की चक्की में पीसा गया है और उन लोगों ने इसमें गाय की हड्डी का चूरा मिला कर हम लोगों का धर्म-नाश करना विचारा है। फिर क्या था। बात की बात में मेरठ के आटे की बिक्री बन्द हो गयी। क्या सिपाही, क्या साधारण प्रजा, सबने मानों इस आटे को न छूने की शपथ कर ली। यह खबर भी

बड़ी जल्दी अन्य स्थानों में पहुंच गयी। सब लोग सोचने लगे, कि आज यह आटा कानपुरमें लाया गया है, तो कल यहां भी लाया जायगा। फिर तो सबको क्रुस्तान होना ही पड़ेगा। इस बातने तो पिछली सब बातों से नंबर मार लिया और लोगों का अँगरेजों के प्रति विद्वेष बढ़ने लगा। जिन्होंने मेरठ का आटा ख़रीदा था, उन्होंने वह सब का सब फेंक दिया, जिन्होंने भूल से रोटी पका ली थीं, उन्होंने पकी-पकायी रोटियाँ फेंक दीं, जिन्होंने ग्रास मुंह में डाल लिया था, उन्होंने भी समाचार पाते ही उसे मुंह से नीचे गिरा दिया। कानपुर के आटे के व्यापारियोंने ही अपना रोजगार घटते देखकर गप्प उड़ायी थी, या जो अँगरेजों को बदनाम करने के लिये उधार खाये बैठे थे, उन्होंने उड़ायी थी, यह तो अबतक मालूम न हो सका; पर गप्प जरूर उड़ी और उसने इन दोनों ही के मतलब सिद्ध कर दिये। लोगों के जी में यह बात पत्थर की तरह बैठ गयी।

इधर यह हो ही रहा था, कि एक और विचित्र घटनाने इस आग में घी डाला। आटे की गप्प की तरह आज तक इसका भी पता न लगा, कि यह कहाँ से पैदा हुई और कौन इसका आविष्कार करने वाला था। पश्चिमके लोग रोटीको 'चपाती' कहते हैं। जिस समयका हाल लिखा जा रहा है। उस समय न मालूम किस मतलबसे एक गाँव का आदमी दूसरे गाँव के मुखिये के पास एक 'चपाती' दे आता था। इस तरह हर गाँव में एक-एक चपाती पड़ोसी ग्रामोंसे पहुंचने लगी। पहले तो सरकारी अधिकारियों का इस ओर ध्यान ही न गया; पीछे जब इस पर निगाह पहुंची, तब जाँच करने का

हुक्म हुआ; परन्तु कोई असली हाल.न मालूम कर सका। किसी ने कहा, कि यह महज़ देहातियों का गँवारपन है—उनका विश्वास है, कि इस तरह एक गाँव की चपाती दूसरे गाँव में भेज देने से यहां की रोग-बला दूसरे गाँव में चली जाती है। किसीने कहा, कि इन चपातियों के भीतर गुप्त-पत्र भेजे जाते हैं, जिनमें लिखा हुआ होता है, कि ये अँगरेज अब हमें अपवित्र आटेकी रोटी खिलाकर विधर्मी बनाना चाहते हैं। इस तरह जितने मुंह उतनी बातें सुनने में आतीं; परन्तु इस में कोई सन्देह नहीं, कि जिन-जिन स्थानों में यह चपाती पहुँची, वहीं तरह-तरहकी गप्पें उड़ने लगीं और लोगों में उत्तेजना दिखाई देने लगी।

इन्हीं उत्तेजना के दिनोंमें कुछ लोगों का ध्यान नाना साहब की ओर गया, जो कानपुर के पास ही बिठूर नामक स्थान में रहते थे। बेचारे समस्त पद गौरव और सम्मान से वञ्चित होकर पिता की छोड़ी हुई वृत्ति खोकर, बड़े दीन भाव से अपना समय बिता रहे थे। महाराष्ट्र-राजचक्र के नेता पराक्रमशाली वीर बाजीराव के उत्तराधिकारी की इस समय बड़ी ही शोचनीय अवस्था थी। १८५७ में जब चारों ओर असन्तोष की लहरें उठने की सूचना हो रही थी, तभी नाना साहब सैर को निकले। पहले वे कालपी में आये। वहां से मुग़ल-सम्राट् बहादुरशाह से मिलने के लिये दिल्ली गये। दिल्ली से लौटती बार वे १८ वीं एप्रिल को लखनऊ आ पहुंचे। उस समय सर-हेनरी लारेन्स सूबे अवध के गवर्नर थे। लखनऊ के नवाब की सारी सम्पत्ति छीन कर अँगरेजों ने जो उन्हें कलकत्ते के पास ले जाकर

नजरबन्द कर रखा था, इसी लिये इस सूबे के लोग अँगरेजों से बेतरह जले हुए थे। इधर पहले से अधिक मालगुजारी वसूल कर, तथा कितने ही ताल्लुकेदारों की जगह-जमीन छीनकर अँगरेजों ने सूबेदार के आदमियों को अपना बैरी बना लिया था। नवाब की अमलदारी में वे बड़े सुख-चैन से रहते थे, बृटिश अमलदारी में उनके वे सुख-चैन नष्ट हो गये। उनके बड़े-बड़े महल-मकान ढा दिये गये, धर्ममन्दिरों पर भी सरकार का दखल हो गया, जमींदारी भी छीनी जाने लगी और मालगुजारी वसूल करने का ढङ्ग ही कुछ और हो गया। इन सब कारणों से लोगों के मनमें यहां तक असन्तोष बढ़ गया, कि कोई-कोई तो अँगरेज अफसरों पर कङ्कड़ फेंकने से भी बाज़ न आये।

जिस दिन नाना साहब ने लखनऊ की यात्रा की, उसी दिन सर हेनरी लारेन्स ने इस सम्बन्ध में गवर्नर-जेनरल को लिखा,—"इस नगर में ६।७ लाख आदमी रहते हैं। मैंने सुना है, कि इन में प्रायः २०,००० निरस्त्र सैन्य हैं। ये सब अन्न के लिये तरस रहे हैं। आज सवेरे विचारकर्त्ता कमिश्नर साहब को एकने कङ्कड़ फेंक कर मारा। प्रधान इञ्जिनियर ऐण्डरसन साहब पर भी ईंट फेंकी गयी है।..............महल मकानों के तोड़े जाने से लोगों में बड़ी नाराजी फैल रही है। यह खबर सुन कर लोग और भी असन्तुष्ट हो रहे हैं, कि अभी और भी बहुत से मकान गिराये जायेंगे। खासकर धर्ममन्दिरों पर अधिकार कर लेने से लोगों में विशेष असन्तोष फैल गया है।..............मालगुजारी वसूल करने का ढङ्ग भी ठीक

नहीं। बेचारे ताल्लुकेदारों को बहुत नुकसान पहुंचाया गया। फैजाबाद विभाग के किसी-किसी ताल्लुकेदार का आधा और किसी-किसी का सर्वस्व नष्ट हो गया है।"

इसी मर्मभेदी असन्तोष और गम्भीर उत्तेजना के जमाने में नाना साहब ने लखनऊ में पदार्पण किया। सर हेनरी लारेन्स ने उनकी बड़ी आवभगत की और अन्य कर्मचारियों को भी उनके प्रति सम्मान प्रकट करनेकी ताकीद कर दी।

बहुतसे अँगरेज इतिहास-लेखकों ने लिखा है, कि नाना साहब की यह यात्रा सैर-सपाटा के लिये नहीं थी; वलिक वे जहां-तहां सब लोगों को अँगरेजी शासन के विरुद्ध उभाड़ते चलते थे। परन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता। उस समय लखनऊ के लोग अपने नवाब के नजरबन्द किये जाने और उनकी नवाबी छिन जाने से बड़े ही उत्तेजित हो रहे थे; परन्तु नाना साहब ने वहां आकर कोई ऐसा कार्य नहीं किया, जिससे उनके लखनऊ आने का सैर के सिवा कोई और मतलब निकाला जा सके।

पर यदि मान भी लें, कि वे ऐसा ही कर रहे थे; तो भी उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता; क्योंकि उनके साथ बहुत बड़ी बेइन्साफ़ी की गयी थी। हो सकता है, कि उनके विचार अच्छे न हों, उद्देश्य पवित्र न हों, परन्तु उनके मन में प्रतिहिंसा का भाव उत्पन्न होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं कही जा सकती। उनके साथ जो अन्याय हुआ था, उसने उनके मन में यदि ईर्ष्या और बदले की आग पैदा कर दी, तो कौन कह सकता है; कि यह मनुष्य-स्वभाव से विरुद्ध बात थी?

उपक्रमणिका में हमने नाना.साहब के जिस दूत अज़ीमुल्लाखां का हाल लिखा है, तथा सितारेके राजदूत जिन रंगबापाजी का जिक्र किया है , ये दोनों ही दूत विफल मनोरथ हो, इस समय विलायतसे भारतमें चले आये थे । लार्ड डलहौसी की राजनीति दृष्टि ने जब चारों ओर असन्तोष की आग सुलगा दी, तब दक्षिण में रंगबापाजी और उत्तरमें अज़ीमुल्लाख़ांने उस आग में फूंक मारनी शुरू की ।

कुछ ही दिनों बाद, नाना साहब का नाम अंगरेज़ों के लिये एक भय की वस्तु हो गया । जो कदाचित् बहुत बड़ा मित्र होता, अपनी क्षुद्र स्वार्थपरता के कारण लार्ड डलहौसी ने उसे अँगरेजी राज्य का इतना बड़ा शत्रु बना दिया, जिसने इस सल्तनत को नींव ही खोद डालने का प्रयत्न किया । यदि परमात्मा का ही आदेश न होता; कि भारत कुछ दिनों और अँगरेजोंके चरणों में झुककर उनकी शिष्यता करे, तो जैसी भयंकर आग इन पीड़ित व्यक्तियों ने प्रतिहिंसा के आवेश में आ कर लगायी थी, उससे उद्धार पाना ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के लिये बडा ही कठिन कार्य था । तब शायद यह युद्ध विद्रोह न कहला कर भारतीय राष्ट्रका स्वातन्त्र्य-युद्ध कहा जाता और इसके लिये हम पर गोलियोंकी बौछार न कर, विश्व के ऐतिहासिक; पुष्पोंकी वर्षा करते !

तीसरा अध्याय।

चिनगारियां उड़ने लगीं।

मई का महीना आ पहुंचा। कहीं किसो तरह की गड़-बड़ नहीं नज़र आती थी। बारकपुरके सिपाही चुप-चाप थे, पंजाबके स्यालकोट और अम्बाले के सिपाही नयी बन्दूकों का व्यवहार करना बड़ी खुशी से सीख रहे थे। भारत के गवर्नर-जेनरल के पास चारों ओर से यही सब शान्तिदायक समाचार आ रहे थे। इसीलिये उन्होंने सोचा, कि सिपाहियोंके दिलमें धर्म और जाति के नाश की जो आशङ्का उत्पन्न हुई थी, वह अब नहीं है। यही सोचकर लार्ड केनिंग साहब ने शान्ति के समय जिन सब कार्यों की ओर ध्यान देना चाहिये—उन्हीं सब कार्योंमें मन लगाया। उन्होंने बम्बई के गवर्नर के साथ फ़ारस की सन्धि और फ़ारस की लड़ाई के खर्च के बारे में लिखापढ़ी शुरू की। पश्चिमोत्तर प्रदेश से गवर्नर के पास शिक्षाविभाग की सहायता और स्त्री-शिक्षाके बारे में, हैदराबाद के रेज़िडेण्ट के पास निज़ाम की रियासत के बारे में और बड़ौदे के रेज़िडेण्ट के पास गायकवाड़ के राजस्वके सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी चलने लगी।

परन्तु एकाएक न जाने किधर से तूफान उठ खड़ा हुआ, कि सारी शान्ति हवा हो गयी; प्रलय-काल के मेघ गगन मण्डल में छा

गये और यह स्पष्ट मालूम पड़ने लगा, कि अभी-अभी वज्रपात हुआ ही चाहता है।

मेरठ की ३ री घुड़सवार पलटन के जिन ८५ सिपाहियों ने टोटा हाथ से न छूने की शपथ की थी, उनकी बात कर्नल स्माइथ ने जेनरल हिवेट के कान में डाली। उन्होंने हुक्म उदूली का कारण अनुसन्धान करने की आज्ञा दी। अनुसन्धान से विदित हुआ कि सिपाहियों के मन में सरकार की ओर से शङ्का उत्पन्न हो गयी है—वे समझने लगे हैं, कि ये अँगरेज हमारा धर्म नष्ट करना चाहते हैं, इसीलिये टोटेमें अपवित्र वस्तु मिलायी गयी है—इसी कारण उन्होंने अपने अफसर का हुक्म नहीं माना। यही बात प्रधान सेनापतिको लिख दी गयी और सब अँगरेज बड़ी उत्सुकता के साथ उनके यहाँ से हुक्म आने की राह देखने लगे। उन लोगों का विश्वास था, कि वहाँ से इन सिपाहियों के एक दम बर्खास्त कर देने की आज्ञा जारी होगी; परन्तु २ री मई तक कोई समाचार न आया। अन्त में ६ ठी मई को ऐडजुटेण्ट जेनरल ने गवर्नमेण्ट के सेक्रेटरी के पास लिख भेजा, प्रधान सेनापति आनसन साहब ने मेरठ के उन ८५ घुड़सवारों का विचार फौजी अदालत के सामने करने का हुक्म दिया है। ६ ठी मई को ही फौजी अदालत बन गयी। १५ विचारक बनाये गये, जिनमें नौ हिन्दू और ६ मुसलमान अफसर थे। सबके ऊपर एक अँगरेज जज थे। विचार ६ ठी मई से ९ वीं मई तक चलता रहा। विचारानुसार सबको दस-दस बरस की कड़ी कैद की सजा हुई!

९ वीं मई के सवेरे ही सेनापति हिवेट, सारी सेना के सामने ही इस कठिन दण्ड को अमल में लाने की चेष्टा करने लगे। उन्होंने सब सिपाहियों को परेड के मैदान में बुलाया। धीरे-धीरे सारी सेना के लोग क़वायद के मैदान में आ पहुंचे।

उस दिन आसमान में घोर बादल छाये हुए थे। हवा बड़े ज़ोरों से चल रही थी। अन्धड़-पानी के लक्षण साफ दिखाई दे रहे थे। ऐसे दुर्दिन में भी सब सिपाही हिवेट साहब के हुक्म से उनके सामने आ खड़े हुए। ऊपर जैसी अँधियारी आसमान में छायी हुई थी, वैसी ही कालिमा उनके हृदयों में छायी हुई थी। वे इसी चिन्ता में चूर हो रहे थे, कि देखा चाहिये, अब क्या हुक्म होता है ? थोड़ी ही दूर पर तोपें सजी रखीं थीं, जिनके पास गोरे सिपाही खड़े थे, जिसका मतलब यह था, कि अगर काले सिपाही कुछ भी गोलमाल करेंगे; तो तोप से उड़ा दिये जायँगे। परन्तु किसी प्रकार का गोल-माल न हुआ ; सिपाहियों ने अपनी दण्डाज्ञा बड़ी शान्ति के साथ सुनी। एक-एक करके सबके शरीर पर से फौजी पोशाक उतार ली गयी और उनके हाथ-पैरों में हथकड़ी-बेड़ी डाल दी गयी। इतने पर भी न तो किसी ने प्रतिहिंसा का भाव दिखलाया, न किसी प्रकार की अबाध्यता प्रकट की, इस काम में तीन घण्टे लग गये। शृङ्खलावद्ध सिपाहियों में से कितनों ही ने हाथ जोड़ कर सेनापति हिवेट से क्षमा-प्रार्थना की ; किन्तु उसका कुछ भी फल न हुआ। वे सब मैजिस्ट्रेट के पास भेज दिये गये, जिन्होंने उन्हें १२०० कैदियों के जेलखाने में भेज दिया !

इसके बाद जिस ३४ वीं पलटन के मङ्गल पांड़े को फांसी का हुक्म हुआ था, उसको भी निरस्त्र करने का विचार हुआ ; क्योंकि बहुतसे सिपाहियों ने मङ्गल पांड़े को गोली छोड़ते देख कर भी कुछ नहीं किया था। इसी समय २२ एप्रिल को इस पल्टन के जमादार ईश्वर पांड़े को भी फांसी हुई। इसके बाद सेनापति हियरसे के प्रस्ताव और भारत के प्रधान सेनापति जेनरल आनसन के अनुमोदन पर बड़े लाट ने ३४ वीं पल्टन को भी निरस्त्र करने का हुक्म दे दिया। यह आज्ञा ४ थी मई को जारी हुई। तदनुसार यह पल्टन तोड़ दी गयी और इसके सिपाही घर भेज दिये गये। पहले तो १९ वीं पल्टन के सिपाही बेहथियार करके घर भेजे गये थे, उन्हीं के साथ-साथ ये भी घर पहुंचे और दोनों पल्टनों के सिपाही सूबे अवध में अँगरेजों के प्रति विद्वेष का बीज बोने लगे। बङ्गाल के सिपाहियों में प्रायः सब अवध प्रान्त के ही रहने वाले थे, अतएव इस दण्ड के बदले इन सिपाहियों ने सारे अवध-प्रान्त में अँगरेजों को बदनाम करने का बीड़ासा उठा लिया और लोगों के दिलों में फिरङ्गियों के प्रति घोर घृणा उत्पन्न कर दी। इधर जो असन्तोष समस्त भारत के सिपाहियों में धीरे-धीरे फैल रहा था, वह पश्चिमोत्तर प्रान्त की ४८ वीं और ७ वीं पल्टनों में भी घर करने लगा। अन्त को सर हेनरी लारेन्स ने ७ वीं पलटन के सिपाहियों को दिन-दिन अधिक अबाध्यता प्रकट करते देख, निरस्त्र करनेका विचार किया।

३ री मई की रात को उन्होंने सब सिपाहियों को कवायद के मैदान में आने का हुक्म दिया। वहां पहुंच कर सिपाहियों ने देखा,

कि कितनी ही तोपें करीने से सजी रखी हैं। यह देखते ही वे लोग भय के मारे भागने लगे। कोई १२० सिपाही दौड़ कर भाग गये। शेष सिपाहियों के हथियार छीन लिये गये। पीछे सर हेनरी लारेन्स ने उन्हें यह वचन दिया, कि तुम लोगों के मामले पर अलग-अलग विचार किया जायेगा, उस समय जो कोई निरपराध प्रमाणित होगा, उसे फिर भर्ती कर लिया जायेगा। यह सुनकर बहुतसे भगोड़े सिपाही भी फिर अपनी जगह पर चले आये।

पीछे इस सैन्यदल के ५० आदमियों को षड्यन्त्रकारी प्रमाणित कर कैदखाने की हवा खिलायी गयी। इसी सर हेनरी लारेन्स ने सुना, कि ४८ वीं पल्टन के सिपाहियों के सब मकान जल गये और उनका बड़ा नुकसान हुआ है। यह सुन कर वे जली हुई छावनी देखने आये। सर हेनरी लारेन्स ने उस दिन एक सिपाही से बड़ी देर तक बातचीत कर यथार्थ परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा की।

वहाँ से आकर उन्होंने बड़े लाट को लिखा,—"मैंने अयोध्या के तोपखाने के एक जमादार से घण्टों बातचीत की। उसने मुझसे कहा, कि गत वर्ष से सरकार हम लोगों का धर्म लेने की चेष्टा कर रही है, यही बात सबके दिलों में घर कर रही है।" यह सुन कर मैं तो चौंक पड़ा। उसने और भी कहा, कि आप लोग बड़े चतुर हैं; चतुराई से ही यहां सलतनत जमाये चले जाते हैं; भरतपुर, लाहौर वगैरह को उस्तादी से ही हथिया लिया है, अब उसी चतुराई से छिपे-छिपे हमारा धर्म नाश कर रहे हैं! इस पर मैंने उससे कहा, कि यहां के सिपाहियों की हम लोगों को जरा भी परवा नहीं,

हमने विलायत में रूस से लड़ने से लिये पहले से चौगुनी पलटन इकट्ठी कर ली है। जब जरूरत होगी, विलायत से पलटन मँगवा सकते हैं, यह सुनकर उस सिपाही ने कहा, कि यह बात हम लोगों को मालूम है, कि आप लोगों के पास धन-जन की कोई कमी नहीं है ; पर वहां से यहां सैनिकों को लाना, बड़ा व्ययसाध्य कार्य है ; इसीलिये हम लोग हिन्दुओं की पलटन खड़ी कर पृथ्वी-विजय कर सकते हैं। इस पर मैंने उत्तर दिया, कि यद्यपि सिपाही लोग स्थल-युद्ध में बड़े होशियार हैं ; पर उनका भोजन ऐसा बुरा है, कि वे जल-युद्ध में काम नहीं आ सकते। इस पर झटपट उस जमादार ने कहा, कि इसीलिये तो आप लोग हमें अपने मनके मुताबिक खाना खिला कर मज़बूत बनाना चाहते हैं ! इस बात का मतलब क्या है, यह पूछने पर उस जमादार ने कहा, कि मैंने वही बात कही है, जो इस समय लोग कह रहे हैं ; मैंने कहा, कि यह सब बातें एकदम गलत हैं। उसने कहा, कि यहां के लोग भेड़ हैं—एक जिस ओर जायगा, सब उसी ओर जायँगे ! मैंने उससे तरह-तरह की बातें समझा कर उसके हृदय से उन सब बातों को दूर करना चाहा, जो न जाने कैसे दिल में बैठ गयी थीं। वह हम लोगों के साथ बहुत दिनों से काम करता चला आया है और कभी हम लोग उस पर अविश्वास नहीं कर सके ; परन्तु आज तो उसकी बातें घोर विश्वासघातक कीसी मालूम पड़ीं।

इसी दिन सर हेनरी लारेन्सने उत्तर-पश्चिम प्रदेश के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर कालविन साहब को उत्तर-भारत के दुर्गों पर दृष्टि रखने के

लिये लिखा। सर हेनरी लारेन्स बड़े दूरदर्शी थे। वे आनेवाली विपद् को पहले ही से ताड़ गये थे और इसीलिये बड़े लाट को बराबर असली हाल लिखते जाते थे; परन्तु बहुत दिन तक उनके लिखे की ओर किसी ने कुछ ध्यान ही नहीं दिया। जब उनके पत्रों के उत्तर में ७वीं पल्टन के बारे में कोई फैसला लिख कर नहीं आया, तब उन्होंने आप हो बीमारी की दवा करनी बिचारी। उन्होंने सारी पल्टन को सजा न देकर कुछ षड्यन्त्रकारियों को दण्ड दिया और जिन लोगों ने नेकनीयती और ईमानदारी दिखलायी, उन्हें खिलअ़त और इनाम भी दिया।

३४ वीं पल्टन के सिपाहियों को जो दण्ड दिया गया था, उसकी बात सब सैनिकों को सुना देने का हुक्म सर हेनरी लारेन्स के पास लिख आया; परन्तु उन्होंने सोचा, कि इससे सिपाहियों में और भी असन्तोष बढ़ेगा। उनकी इस दूरदर्शिता ने अयोध्या के सिपाहियों में बंगाल के सिपाहियों वाला असन्तोष नहीं आने दिया; परन्तु भीतर-ही-भीतर जो आग सुलग रही थी, वह धीरे-धीरे धधक उठने की दूचना देती ही जाती थी।

किस प्रकार मेरठ की ३ री पल्टन के घुड़सवारों को कठोर दण्ड दिया गया और वे हथकड़ी-बेड़ी पहना कर जेलखाने में ठूँस दिये गये, यह हम पहले ही लिख चुके हैं। उस समय कहीं कोई उत्तेजना नहीं दिखलाई दी; परन्तु पीछे उन लोगों की दुर्दशा ने बड़ी भारी दुर्घटना उपस्थित कर दी। जिस दिन पलासी के मैदान में शत्रुओं की सजिश से अभागे नवाब सिराजुद्दौला का पतन हुआ,

जिस दिन लार्ड क्लाइव की चतुराई से बंगाल, बृटिश कम्पनी के पैरों के नीचे आ रहा, उसके बाद सौ वर्ष तक ऐसी घटना कभी नहीं हुई थी और कभी अँगरेजोंकी सलतनत की नींव ऐसी नहीं हिली थी, अँगरेजों को और कभी ऐसी विपद का सामना नहीं करना पड़ा था।

मेरठ की ३ री घुड़सवार पलटन के दण्ड प्राप्त करने पर वहां की पलटनों में विद्वेष और प्रतिहिंसा की आग भड़क उठी।

इधर इतनी बड़ी विपद् सिर पर आयी देखकर भी लार्ड केनिंग बिना घबराये हुए शान्ति स्थापन की चेष्टा करने लगे। उन्होंने एक ओर तो अधिक संख्या में युरोपियन सैनिक जमा करके, दूसरी ओर घोषणापत्र प्रकाशित कर, तथा अन्य उपायों से सिपाहियों के मन से असन्तोष का अंकुर उखाड़ फेंकने का प्रयत्न किया। परन्तु उनके किसी प्रयत्न का सुफल न हुआ। असन्तोष की जड़ बहुत गहरे पहुंच गयी। साथ ही कलकत्तेमें जो अँगरेज राजकर्मचारी थे, वे लार्ड केनिंग की सहायता करने को तैयार नजर नहीं आते थे, उलटे वे लोग देश-विदेश में तरह-तरह की अफवाहें फैलाकर—परिस्थिति को और भी विकट करते जाते थे। हाँ, बम्बई और मद्रास के गवर्नर उनकी सहायता करने के लिगे हरतरह से तैयार थे और उन लोगों ने काफी सेना उनकी मदद के लिये कलकत्ते भेजी। जिन विचक्षण और सुचतुर राजपुरुषों के ऊपर इन दिनों पञ्जाब और अयोध्या के शासन का भार था, वे भी अपनी कार्य-तत्परता दिखलाने से बाज़ न आये। पञ्जाब के सर जान लारेन्स और अवध के सर हेनरी लारेन्स ने इस समय अपना कर्त्तव्य-पालन बड़े ही ठिकाने के साथ

किया। ये दोनों भाई बड़े ही होशियार, दूरन्देश और अँगरेज़ी सरकार के दो मज़बूत खम्भे थे। लार्ड केनिंग ने इन्हीं लोगों की सहायता से भारत-राज्य की रक्षा करने का सङ्कल्प किया।

हाँ, तो हम पहले कह चुके हैं, कि तारीख ९ वीं मई को ८५ सैनिक दस बरस के लिये कैदखानने में ठूंस दिये गये थे, जिससे उनके सङ्गी-साथी बेतरह उत्तेजित हो गये थे, उस दिन शनिवार था। रात भर सिपाहियों में सलाहें होती रहीं। सवेरे ही से उत्तेजना और प्रतिहिंसा के चिह्न दिखाई देने लगे। रविवार के प्रातःकाल में किसी साहब का कोई हिन्दुस्तानी नौकर काम पर नहीं आया। उस समय उन लोगों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया और यही सोचकर चुप हो रहे, कि कोई ऐसा सार्वजनिक कारण उपस्थित हो गया होगा, जिससे वे लोग न आ सके होंगे, दिन इसी तरह बीत गया। शाम हुई। साहब लोग फिर गिर्जाघर में प्रार्थना करने चले। इसी समय कुछ लोगों ने ख़बर दी, कि हिन्दुस्तानी सिपाही लड़ाई करने की तैयारी कर रहे हैं।

शाम को पाँच बजते-न-बचते ३ री पलटन के शेष सिपाही, हथियारों से लैस हो, मेरठ की जेल की ओर चल पड़े। उस समय उनका ध्यान अपने उन ८५ साथियों को छुड़ाने की ही ओर था, जो उनके सामने ही अपमानित और निरस्त्र किये गये थे। वे निर्भय चित्तसे जेल के अन्दर घुस पड़े और अपने सब साथियोंको छुड़ा लाये। उन्होंने जेलर, वार्डर या अन्य किसी मनुष्य को चोट नहीं पहुंचायी।

३ री घुड़सवार पलटन के रंग बदलते ही पदल सिपाहियों ने भी पैतरें बदलने शुरू किये। ११ वीं और २० वीं पलटन के सैनिक, धर्म-नाश की आशङ्का से क्रुद्ध हुए बैठे ही थे, कि घुड़सवारों के बिगड़ उठने की खबर पाकर ये भी उठ खड़े हुए। सन्ध्या के समय ११ वीं पलटन के अध्यक्ष कर्नल फ़िनिस घोड़े पर सवार हो, सिपाहियों का हालचाल लेने आये। उन्होंने सोचा, कि जैसी अफवाह उड़ रही है, उससे भय है, कि कहीं हमारी पलटन भी बिगड़ खड़ी न हो, इस-लिये चलकर सिपाहियोंको समझाना-बुझाना चाहिये। परन्तु उन्हों-ने इस पलटन के पड़ाव में आकर ज्योंही लेकचर झाड़ना शुरू किया, त्योंही एक सिपाही ने उन पर गोली छोड़ दी, पर वह उन्हें न लग-कर उनके घोड़े को लगी। इतनेमें ही एक दूसरी गोली उनकी पीठमें आकर लगी। दमभर में उनके प्राण शरीर से बाहर हो गये। इस तरह २० वीं पलटन के सिपाहियोंने कर्नल फिनिस की जान ले ली। सिपाही-विद्रोह यज्ञका मानों पहला बलिदान हुआ! इनकी देखा-देखी ११ वीं पलटन भी बिगड़ खड़ी हुई और हिन्दू-मुसलमान सभी समान एकाग्रताके साथ, जाति-नाश और धर्म-नाश का बदला लेनेके लिये हथियार लेकर उठ खड़े हुए। क्रोध इस दर्जे तक पहुंच गया, कि उन्हें भले-बुरेका एकबारगी ज्ञान न रहा। उन लोगोंने अँगरेज-स्त्रियों और अँगरेज बालक-बालिकाओं पर भी हथियार चलाना शुरू किया। जेलखानेके कैदी सब छुड़ा लिये गये और ये लोग भी सिपाहियों के साथ मिलकर उपद्रव करने लगे। सिपाहियों के इस उत्पात से सारा मेरठ भयानक काण्डोंका लीलाक्षेत्र बन गया। ऐसे

द्वेष, प्रतिहिंसा और विजातीय घृणाके ज़माने में भी कितने ही हिन्दुस्तानियोंने अँगरेजों के साथ धोखाधड़ी नहीं की; बल्कि उनकी खूब सहायता की। ख़ज़ानेके पहरेदारों ने इस वीरता और साहसके साथ ख़जाने की रक्षा की, कि विद्रोही उससे एक रुपया भी न निकाल सके। अन्तमें उन लोगोंने अपनी जवाबदारी छुड़ानेके लिये ख़जानेकी रक्षा का भार युरोपियन सिपाहियों के हाथ में सौंप दिया।

इस समय मेरठ में दो गोरी पल्टनें और एक तोपखाना था, जिसके सब सिपाही गोरे ही थे। दुर्भाग्यवश सिपाहियों के बिगड़ खड़े होनेकी खबर पाते ही ये लोग भी उनका सामना करनेके लिये तैयार नहीं हो गये। पचास वर्ष पहले जेनरल गिलिसीने केवल एक गोरी पल्टनकी मदद से बेलोर के सिपाहियों का विद्रोह दमन किया था। पर आज बहुतसे गोरे सिपाहियों के होते हुए भी ये लोग कुछ न कर सके। उन लोगोंने सबके सामने ८५ आदमियों को दण्ड तो दे दिया; पर यह न सोचा, कि इसका कैसा बुरा नतीजा होगा? इसी शानमें वे आँखे मूंदे सो रहे, कि हमारी गोरी चमड़ी देख कर ही हिन्दुस्तानी डर जाते हैं—ये क्या ख़ाक सिर उठायेंगे? इसीलिये जब गहरी विपद् घहरायी, तब उनके होश ठिकाने न रहे।

देखते-देखते सारा मेरठ महाप्रलय-काण्डका लीलाक्षेत्र बन गया। जबतक अँगरेज सेनापति अपनी फ़ौज और तोपख़ानों को लेकर तैयार होना चाहते थे, तबतक तो यहाँ खून की नदियाँ जारी हो गईं। सिपाहियों ने बिना कप्तान और जेनरलके ही ऐसी वीरता से युद्ध किया, कि देखने वाले दङ्ग हो रह गये। यदि वे ठीक ठिकानेके

साथ लड़ते; कोई होशियार सेनापति उनका सैन्य-संचालन करता, तो उन्हें परास्त करना अँगरेजी सैन्यके लिये बड़ा ही कठित था। पर नहीं, इस समय तो वे लोग महज बदला लेनेकी नीयतसे अन्धा-धुन्ध नर-हत्या करनेको तुले हुए थे—हथियार से हो, बन्दूक से हो, चाहे जैसे हो, अपने धर्मनाशक अँगरेजोंको मारना ही उनके जीवन का व्रत हो गया था! उत्तेजना और क्रोधके आवेगमें उनकी बुद्धि ठिकाने न रही—वे अपने साथियोंको कैदखानेसे छुड़ा लानेके बाद से ही पागल की तरह अँगरेजों पर आक्रमण करने लगे।

इधर गोरी पल्टन और तोपख़ाने के तैयार होने में काफ़ी देर हुई। जब ये लोग देशी सिपाहियों की छावनी के पास पहुंचे, तब साँझ हो गई थी। कोई सिपाही आस-पास नहीं दिखलायी देता था। उस समय सब सिपाही वहाँसे टल गये थे। इससे सेनापति को बड़ा अफ़सोस हुआ। दूर से चार सिपाही नजर आये सही; पर ज्यों ही उनपर बन्दूक छोड़ने की तैयारी होने लगी, त्योंही वे न जाने अँधेरे में कहां छिप गये। इससे सैनिक और सेनापति दोनों ही लज्जित हुए। इसी समय कर्नल बिलसन ने कहा, कि हो सकता है, कि वे सब हमारी छावनी की ओर गये हों। यह सुनते ही अपना दल बल लेकर उसी ओर चल पड़े। कुछ दूर ही से उन्होंने देखा, कि उनके मकान तो धायँ-धायँ जल रहे हैं। आगकी भयङ्कर लपटें आसमान को छू रही हैं। यह अवस्था देखते ही वे लोग दौड़े हुए वहाँ पहुंचे, पर वहाँ भी कोई सिपाही नहीं दिखाई दिया। लाचार, वे लोग मन मार और हाथ मलकर रातभर मैदानमें पड़े रह गये।

इधर आगका जोर रातभर कम न हुआ। पहले तो सिपाहियों के घर जले; पीछे अफसरों के घर जलने लगे। कितनी ही औरतें, बच्चे और जानवर बड़ी मुश्किलोंसे उस अग्निकाण्ड से बचाये जा सके; इस कार्यमें अँगरेजों की पूरी-पूरी मदद उनके हिन्दुस्तानी नौकर-चाकरोंने की थी। कमिश्नर-ग्रिथेड साहब और उनकी स्त्रीको उनके काले नौकरों ने ही बचाया था। इस समय सरदार बहादुर सैय्यद मीरखाँ नामक अफ़गान सिपाही मेरठ में ही था। काबुल की लड़ाई में जितने अँगरेज कैद हुए थे, उनकी इसने खूब मदद की थी। इसी लिये गवर्नमेण्ट ने उसकी ६००) की मासिकवृत्ति निश्चित कर दी थी। मेरठमें गोलमाल मचते ही इसने और ३ री पल्टन के एक देशी अफ़सर ने कमिश्नर को कहा, कि आप अपनी जान बचाने के लिये तैयार हो जाइये। सुनते ही कमिश्नर साहब अपनी स्त्री और कई अन्य शरणागत स्त्रियों के साथ घर के ऊपर वाले खण्डमें जा छिपे। तुरत ही उन्मत्त सिपाही गण वहां आ पहुंचे और नीचेके घरों में आग लगाकर वहाँकी चीजें लूटने लगे। देखते ही देखते सारा घर जल उठा—धुएँसे दशों दिशाएँ भर गयीं। क्रमसे आग ऊपर उठने लगी। कमिश्नर साहब ने सोचा, कि अब हम लोगोंकी रक्षा कठिन है।

परन्तु भारत के लोग नमकहराम नहीं होते। वे अपने मालिक के लिये अपना सब कुछ विसर्जन करने को झट तैयार हो जाते हैं। यदि इस समय कमिश्नर साहब के नौकर उनकी रक्षा को आगे न बढ़ते; तो इस आगसे भला उन्हें कौन बचा सकता था?

कमिश्नर साहब के एक प्रधान माली का नाम गुलाबसिंह था। उसने जब देखा, कि आततायी लोग चीजें चुरा रहे हैं, तब सोचा, कि इन्हें कहीं और गहरे मालका लालच दिखा कर, टरका ले चलना चाहिये । यही सोचकर उसने विद्रोहियों के पास आकर कहा,-"भई ! वहां क्या रखा है ? चलो मैं तुम्हें एक बड़ा भारी गुदाम दिखलाता हूं । वहां बहुतसा माल हाथ लगेगा और कितने ही वे अँगरेज भी पकड़े जायेंगे जो कि वहाँ जाकर छिपे हुए हैं ?" यह सुनते ही वे लोग कमिश्नर साहब के घर से बाहर हो गये। कमिश्नर के और-और नौकर-चाकर वहीं थे । वे चुप-चाप यह तमाशा देखते रहे । ज्योंही विद्रोही वहाँ से कुछ दूर गये, त्योंही उन सबने एक ओर से सीढ़ी लगा दी, जिसके सहारे कमिश्नर और उन के साथकी स्त्रियां नीचे उतर आयीं। उनके नीचे उतरते ही वह छत, जिस पर वे लोग अब तक खड़े थे, मड़मड़ा कर नीचे गिर पड़ी !

वहाँ से चल कर वे लोग एक बग़ीचेमें जाकर छिप रहे। सारी रात उन्होंने वहीं काटी—दूसरे दिन सवेरे ही एक गाड़ी लाकर गुलाबसिंहने उन लोगोंको मेरठ के समर-शिक्षागारमें पहुंचा दिया। मेरठ में कोई किला न होने के कारण और भी बहुत से अँगरेज़ों ने यहीं शरण ली थी।

मि० ग्रिथेड को भाग्य से जैसे रक्षक मिल गये, वैसे रक्षक मेरठ के सभी अँगरेजों को नहीं नसीब हुए। उधर अँगरेज-सैनिक गण उत्तेजित सिपाहियों की गति रोकने के लिये समर-क्षेत्र में गये हुए थे, उधर उनकी स्त्रियाँ और बाल-बच्चे असहाय अवस्था में पड़े हुए

थे। उन्मत्त सिपाहियों ने इन स्त्रियों और बच्चों को बुरी तरह मार डाला। घोर शत्रुता के कारण इन लोगों की बुद्धि ऐसी फिर गयी, कि ये अपराधी और निरपराध का विचार किये बिना ही अँगरेज स्त्री-पुरुषों और बच्चों को मार डालते थे। बदले की आग ने उनके हृदय के सारे करुण-रस को सुखा कर उसे ठोस पत्थर का बना दिया था। इसीसे वे अबला स्त्रियों और कोमल-सुकुमार बच्चों की कातरता भरी रुलाई सुनकर भी न पसीजते थे। अनबोलते बच्चों को मारते हुए भी उनके हृदय को ठेस नहीं लगती थी। उन्होंने एक क्षण के लिये भी यह नही सोचा, कि इस तरह औरत-बच्चों के खून से हथियार तर कर वे अपनी वीरता पर धब्बा लगा रहे हैं!

कप्तान क्रेगी बड़े ही होशियार आदमी थे। उन्होंने मीठी-मीठी बातों से अपने दल के सैनिकों को ऐसा लुभा रखा था कि इस गम्भीर उत्तेजना के समयमें भी वे लोग इनका या अन्य अँगरेजों का कुछ अनिष्ट करने को तैयार नहीं हुए। कप्तान क्रेगी की पत्नी ने घर में बैठे-बैठे सिर पर आयी हुई विपद से अपने को अपने बुद्धि-बल से बचा लिया। वह जिस घर में थी उसके पास ही एक घर में दूसरी मेम थी। जब चारों ओर डेरे-मकानों में आग लगने लगी, तब वह अपनी पड़ोसिन की रक्षा करने के लिये अग्रसर हुई। उसने अपने नौकरों को उसे एक निरापद स्थान में पहुंचा देने का हुक्म दिया; पर नौकरों के आने में देर हो गयी। उन्होंने आकर देखा, कि वे जिसे बचाने आये हैं, उसकी तो लहू से तर लाश जमीन में लोट रही है! तब वे सब घबराये हुए अपनी मालकिन के पास लौट

चले। यहाँ आकर उन नौकरोंने आततायियोंसे कहा; कि क्रेगी सहब सबके हितैषी और सबके प्यारे हैं, इसलिये आप लोग इनका घर न जलायें। यह सुन उन लोगोंने उस घरमें आग नहीं लगायी।

इतनेमें कप्तान क्रेगीके भेजे हुए चार घुड़सवार वहाँ आ पहुंचे, जिन्हें उन्होंने अपने मकान और स्त्रीको रखवाली करनेके लिये भेजा था। उन लोगोंने आकर मिजेज क्रेगीको ढाँढ़स बँधाया और उनसे कहा कि हमारे शरीरमें प्राण रहते आपका कुछ भी अनिष्ट न होने पायेगा; यह सुन, क्रेगीकी पत्नीको धैर्य हुआ।

परन्तु रह-रहकर उसे अपने स्वामी के लिये चिन्ता होने लगती थी। गिद्रोही-सिपाहियोंके उन्मत्त रवके सिवा और कुछ सुनाई नहीं पड़ता था। धुएँ और आगकी लपटोंके सिवा और कुछ दिखलाई नहीं देता था। इसलिये उसे अपने स्वामी के लिये बड़ी चिन्ता हो रही थी। उधर कप्तान क्रेगी अपने कर्त्तव्य पालन में लगे ही हुए थे, उन्हें घर आनेका मौका ही हाथ न लगा। जब वे अपने कर्त्तव्य-पालनमें सफल हो चुके, तब घर लौटे। रास्तेमें जाते-जाते उनके मन में यही शङ्का उत्पन्न हो रही थी, कि कहीं उनका घर जल न गया हो और प्रियतमा पत्नीको शत्रुओंने मार न डाला हो। परन्तु घर आकर उन्होंने देखा कि घर और घरनी, दोनों ही सुरक्षित हैं। तब वे अपनी स्त्री और अन्य स्त्रियोंके साथ किसी दूसरे निरापद स्थानों में जाने को तैयार हुए। कहीं आग की लपटोंके उजियालेमें इन स्त्रियोंकी सफेद पोशाकें देख, बलवाई इधर ही न आ टूटें, इसी भय से उन्होंने सबको काली पोशाक पहना कर घोड़ों पर सवार कराया

और सबको लिये हुए एक टूटेसे मकानमें जा छिपे। वहीं वे रात भर छिपे रहे। उस समय भी चारों ओर शत्रुओंकी हुंकार सुनाई पड़ रही थी। उधर क्रेगी के नौकरों ने रातभर उनके मकानकी रक्षा की। क्रमशः रात बीती, सबेरा हुआ। कप्तान क्रेगी अपने घरसे ज़रूरी चीजें लाने चले। वहाँ आने पर उन्होंने देखा, कि हमारी चीजें हमारे विश्वासी नौकरोंने जमीनमें गाड़ रखी हैं। इस प्रकार जब अँगरेजोंके प्रति प्रायः समस्त भारतवासियोंके मनमें घोर विद्वेष भरा हुआ था, हरएक अँगरेज अपनी जानको ही रो रहे थे, उस समय भो उनके विश्वस्त अनुचरोंने प्रभु-भक्तिकी पराकाष्ठा कर दिखलायी थी। अस्तु, वे अपनी आवश्यक वस्तुएँ लेकर उन सिपाहियों के साथ, जिन्होंने उनके प्रति अपना अटल सम्मान और भक्ति प्रकट की थी, युरोपियन तोपखानेकी ओर चले। यह देख, उन सिपाहियोंने कहा,—"हमसे जहां तक नेकनीयती के साथ आपकी भलाई करते बनी; वहां तक हमने कर दी; अब हम युरोपियन सैनिकवास में जानेको तैयार नहीं—आप स्वयं चले जाइये।"

सैनिकों के अस्वीकार करने का कारण यह था, कि वे जानते थे, कि युरोपियन सैनिकों के सामने जाते ही हमारी इस भलाई का बदला इस बुरी तरह से दिया जायेगा, छठीका दूध याद आ जायेगा। उन्हें यह मालूम था, कि अँगरेज सिपाही क्रोध में आने पर शत्रु या उपकारी अनुपकारीका विचार नहीं करते, धर्माधर्म का ख्याल न कर अपने दिल का बुखार निकालने लगते हैं। यह कारण सुनकर कप्तान क्रेगी ने उन्हें बहुत समझाना-बुझाना शुरू किया; परन्तु किसी

बात का उनके दिल पर असर न हुआ; क्योंकि अँगरेजों की शासन-नीति पर यहाँ के लोगों की श्रद्धा एकबारगी उठ गयी थी और सच पूछिये; तो यही इस विद्रोह का असली कारण था। अँगरेजों ने यहाँ जिस ढङ्ग की कार्रवाइयाँ करनी शुरू की थीं, उनसे सर्व साधारण के मनमें घोर सन्देह और आशंका जड़ पकड़ गयी थी। बृटिश गवर्नमेण्ट यदि धीरता की सीमा उल्लङ्घन न कर जाती, उदारता के साथ शासन करती, लोगों के चिरकालिक स्वत्व, विश्वास और अनुभूति को पैरों तले रौंद न डालती; तो सदा से प्रभु-भक्त बने रहनेवाले सिपाही कभी उसके विरुद्ध न होते। गवर्नमेण्ट की कूट-नीतिने ही उसको सिपाहियों की नज़रों से गिरा दिया।

उसी रात को मेरठ के बाजारों और आसपास के गांवों के बहुत जोशीले लोग बलवाई सिपाहियों के दल में आ मिले। अँगरेजों की रीति-नीति और शासनप्रणाली को देख करके भी उनसे जले हुए थे, इसलिये मौका पाकर ये लोग बहती गङ्गा में हाथ धोने के लिये उतर पड़े। इन लोगोंने बातकी-बात में सारे मेरठ में वह नर-हत्या, गृह-दाह और लूट-खसोट जारी की कि सब अँगरेज त्राहि-त्राहि कर उठे! जिसका जिधर सींग समाया वह उधर ही भाग कर जा छिपा। रातभर उनके घर जलते रहे, सम्बन्धीगण मरते रहे, पर जो प्राण के भय से कहीं शरण लिये हुए थे, वे उस स्थान से बाहर नहीं निकले।

क्रमशः सवेरा हुआ। रातभर के छिपे हुए लोगों ने अब के सिर निकाला और अपने-अपने घर की ओर चले। घर आकर उन्होंने देखा कि उनके घर जल गये हैं, नाते-रिश्तेदारों की लाशों के ढेर लगे

हुए हैं और कुछ टूटी-फूटी चीजो के सिवा उनकी कोई चीज़ सही-सलामत नहीं है। फिर तो वे उसमें मरे हुए सम्बन्धियों की लाशें देख-देखकर आंसू गिराने और हड्डी तोड़ मिहनत करके पैदा की हुई चीजों को नष्ट-भ्रष्ट अवस्था में देख लम्बी सांसें लेने लगे। यह हालत देखकर उनके मनमें घोर प्रतिहिंसा जगी; पर इस समय क्रोध या प्रतिहिंसा का फल ही क्या था ?

इसी समय एक अँगरेज, जिनका नाम लेफ्टिनेण्ट मेलर था, अपने एक मित्र की स्त्रीको बलवाइयों के हाथों मारे जाते देख, बड़े ही क्रुद्ध हो उठे। किसी ने उनसे आकर कहा, कि यह काम बाजार के एक कसाईने किया है। बस, वे झटपट उस क़साई को पकड़ कर छावनी में रख आये। बात की बात में उस पर मामला चला और फैसला भी हो गया। और कुछ ही मिनटोंके अन्दर उस क़साई की निर्जीव देह पास ही के एक आमके पेड़ पर झूलती दिखाई देने लगी !

उस समय मेरठ के अँगरेजों के मनमें जैसी प्रतिहिंसा जाग उठी थी, उसे देखकर तो यही मालूम पड़ता था, कि ऐसे-ऐसे बहुतसे काण्ड हो जायँगे और कितने ही मुफ्त में जानें गवायेंगे। क्योंकि जिस समय सिपाहियोंने उनके घर में आग लगायी या उनके औरत-बच्चों को मारा, उस समय तो वे न जाने कहां छिपे हुए थे; पर सवेरा होते ही घर आकर अपने ऊपर किये हुए अत्याचार का बदला गांव वालों या दूकानदारों से लिये जाने का विचार कर रहे थे; परन्तु चूंकि अधिकारियों ने इस तरह की हरकत पसन्द नहीं की, इसीलिये यह काण्ड होते-होते रह गया।

अस्तु; कहने का मतलब यह, कि जो आग बरसों से भीतर ही-भीतर सुलग रही थी, वह एकाएक मेरठ में धधक उठी और क्रमशः उसकी चिनगारियाँ उड़-उड़ कर भारत के कोने-कोने में पहुंचने लगी ?

—-—०——

चौथा अध्याय।

दिल्लीपर धावा।

मेरठ के बाद, युद्धके लिये उन्मत्त सिपाहियोंने दिल्लीपर हमला किया। यों तो दिल्ली की तबाही के दिन आज से ५० वर्ष पहले ही आ गये थे और दिल्ली के नाम-मात्र के बादशाह, कम्पनी के इशारे पर ही नाचते रहते थे, तथापि उनके वंश का प्राचीन गौरव अब तक लुप्त नहीं हुआ था। अब तक लोगोंके हृदय से अकबर, शाहजहाँ और औरङ्गजेब की कहानियाँ दूर नहीं हो गयी थीं। इसलिये वहाँ के बादशाह को अंङ्गरेजों के हाथ की कठपुतली बना देखकर सर्व-साधारण के मनमें उनके प्रति वही सहानुभूति हो रही थी।

दिल्ली की घटनाओं का वर्णन करने से पहले हम वहाँ का कुछ इतिहास लिख देना बहुत जरूरी समझते हैं। उन्नीसवीं सदी के शुरू में ही लार्ड लेक और लार्ड वेलेसली ने दिल्ली के सम्राट् शाह आलम को मराठों के हाथ से छुड़ाया था। उस समय बादशाह की अवस्था बड़ी ही शोचनीय थी। वे बूढ़े, अन्धे और दीन-भावापन्न हो रहे थे। बूढ़े बादशाह मराठों के हाथ से छूट कर अँगरेजों के चंगुल में फँसे। मराठों की सारी आशा पर पानी फिर गया, फरांसीसियों ने सदा के लिये भारत में फरांसीसी राज्य स्थापित करने की आशा छोड़ दी और अँगरेजों की चारों ओर धाक बैठ गयी। अँगरेजों ने जाहिरा तौर से शाहआलम के साथ कोई बुरा बर्ताव नहीं किया।

भारत के सभी गवर्नर-जेनरल शाहआलम का सम्मान करते थे ; किन्तु इस सम्मान के भीतर-ही-भीतर अँगरेज बनियों की कम्पनी अपना मतलब गाँठने की धुन में ही सदा लगी रहती थी। शाह-आलम को छुड़ाकर इन्होंने अपना राज्य विस्तार किया और मराठे उनको जो कुछ देना चाहते थे, उससे एक कौड़ी भी अधिक इन लोगों ने नहीं दी ! प्रबल पराक्रमी महान् अकबर की सन्तान शाह आलम को सालाना दस लाख रुपये की वृत्ति लेकर ही सन्तोष करना पड़ा !

मुग़ल बादशाहों में बहुतेरे अच्छे भावुक और कवि हो गये हैं। बूढ़े और अन्धे शाह आलम को भी कुछ-कुछ कविता का शौक था। राज्य-सम्पद् को खोकर उन्होंने साहित्य-सम्पद् से ही मन लगाना आरम्भ किया। देखिये, अपनी हालत बयान करते हुए आपने जो कुछ लिखा है, वह कैसा मर्मस्पर्शी है। आपकी कविता का भाव यह है,—"तबाही के तूफ़ान ने उठ कर मुझे बरबाद कर डाला। उसने मेरी कुल इज्ज़त हवा में उड़ा दी और मेरे तख्ते-ताऊस को दूर फेंक दिया ! अँधेरी गुफा में छिपा हुआ हूं—इस मुसीबत से मेरी रूह पाक हो जायेगी और मैं पाक-परवरदिगार की मिहरबानी से ही इस अँधेरे से छुटकारा पाकर उजेले में आ सकूंगा।"

इसी तरह वे अपने दुःख के दिन बिता रहे थे ; पर उनकी बाद-शाह की उपाधि अब तक नहीं छिनी थी और लोग उन पर श्रद्धा दिखाने से भी बाज़ नहीं आते थे। इसीसे लार्ड वेलेसली ने सोचा, कि कहीं यह बूढ़ा बादशाह अपने बाप-दादों का बड़प्पन याद कर

देहलीके अन्तिम मुग़ल-सम्राट्
बहादुरशाह ।

बहादुरशाह बादशाहकी
बेगम ज़िन्नतमहल ।

फिर भी कोई बृहत् साम्राज्य स्थापित करने की चेष्टा न करने लगे; फिर तो अँगरेजों को बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ेगा। यही सब सोच-विचार कर उन्होंने उन्हें दिल्ली से हटा कर मुंगेर भेज देना चाहा ; पर पीछे यही सोच कर यह विचार किया, कि पीछे इसके उत्तराधिकारियों को यहां से हटा दिया जायेगा, इस अन्धे को अधिक कष्ट देना ठीक नहीं।

सन् १८०६ ई० में शाह आलम की मृत्यु हो गयी। उनके पुत्र अकबर शाह उनके बाद गद्दी पर बैठे। उनकी प्रतिभा भी किसी तरह कम न रही और बगैर उनके दस्तखत के किसी तरह की कार्रवाई कम्पनी नहीं कर सकती थी। सन् १८२७ ई० तक यही हाल रहा। उस समय तक यह अवस्था थी, कि दिल्ली के अँगरेज रेजिडेण्ट को जूता पहने हुए बादशाह के सामने जाने की हिम्मत नहीं होती थी। वे दूर ही जूते खोल, नंगे पाँवों, चुपचाप उनके सामने आकर खड़े रहते थे। दीनता की सीमा पार कर जाने पर भी मुग़ल-बादशाह का यह रौब सब पर छाया रहता था। अँगरेजी कम्पनी उनका सब कुछ छीन कर भी उनके वंशगौरव और राजकीय सम्मान को अब तक नहीं छीन सकी थी। इस समय तक मुगल-सम्राट् के ही नाम का सिक्का चलता था।

इसी तरह समय बीतने लगा—अँगरेजी कम्पनी की जड़ दिन-दिन जमती चली गयी। मराठों और फरांसीसियों को हरा कर अँगरेज "परम स्वतन्त्र न सिर पर कोऊ' हो गये। जो एक दिन बनिये-सौदागर होकर यहाँ आये थे, वे अब क्रमशः भिन्न-भिन्न

प्रदेशों में अपना प्रभुत्व-स्थापन करने लगे। अब जब कि उनके घर के शत्रु हार गये, तब उन्होंने यहां अपने हथकण्डे दिखाने शुरू किये। सबसे पहले उनकी निगाह दिल्ली पर ही पड़ी। मुगल बादशाह अब तक 'बादशाह' कहलाते हैं और अपने नाम का सिक्का चलाते हैं; यह सब अँगरेजों की आँखों में बेतरह खटकने लगा। परन्तु सर्व साधारण की मनोवृत्ति देख कर उनको कुछ करने का साहस नहीं हुआ।

सन् १८३७ ई० की २८ वीं सितम्बर को ८२ वर्ष की अवस्था में अकबरशाह की मृत्यु हो गयी। उनके पुत्र अब्दुल मुजफ्फ़र सुराजुद्दीन मुहम्मद बहादुरशाह गाज़ी उनकी गद्दी पर बैठे। इतिहासों में प्रायः हर जगह इनका नाम 'बहादुरशाह' ही लिखा हुआ है। ये बड़े ही शान्त, धीर, विद्या-व्यसनी और स्वयं बड़े अच्छे कवि थे। कविता में ये अपना उपनाम 'ज़फ़र' लिखते थे। इनकी कविताएँ बड़ी ही सर्वजन-प्रिय हैं और इनकी काव्य-प्रतिभा का अच्छा परिचय देती हैं। अस्तु, गद्दी पर बैठते ही कम्पनी से प्रार्थना की, कि अभी जो वृत्ति हमें दी जाती है, उससे हमारा खर्च नहीं चलता, इसलिये यह रक़म बढ़ा दी जानी चाहिये। इनके पिता अक़बरशाह ने भी एक बार इसी तरह की प्रार्थना कम्पनी के डाइरेक्टरों से की थी; पर उन्होंने यही फैसला किया, कि यदि आप अपना रहासहा सम्मान और अधिकार भी कम्पनी को दे दें, तो आपको तीन लाख रुपया सालाना और भी दिया जा सकता है। पर तीन लाख रुपये सालाना वृत्ति के लिये उन्होंने अपना बचा बचाया मान संभ्रम मिट्टी

में नहीं मिलाना चाहा और डाइरेक्टरों को लिखा, कि हमारे-आपके बीच जो सन्धि हुई है, उसके अनुसार हमारे परिवार के पालन-पोषण के उपयुक्त वृत्ति आपको अवश्य ही देनी होगी; किन्तु 'कार्यकालेऽति निष्ठुराः' वणिकों ने उनका यह रोना-गाना नहीं सुना। अब के बहादुरशाह ने फिर यह मामला कम्पनी के डाइरेक्टरों के सामने पेश किया। इस समय भारतवर्ष के गवर्नर-जेनरल लार्ड आकलैण्ड थे। उन्होंने प्रस्ताव किया कि यदि बादशाह पूर्व प्रस्ताव पर राजी हों, तो उनकी वृत्ति बढ़ा दी जा सकती है। परन्तु उन्होंने अपने पिता की ही भाँति उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिये अपने एक ख़ास आदमी को विलायत भेजा। ये ही थे बङ्गाल के परम प्रसिद्ध पुरुष, राजा राममोहनराय। बहादुर-शाह ने ही इन्हें 'राजा' का ख़िताब दिया था। राजा ने विलायत पहुंच कर डाइरेक्टरों के सामने बादशाह की प्रार्थना उपस्थित करते हुए बड़ी अकाट्य युक्तियां पेश कीं, पर डाइरेक्टरों ने एक न सुनी। राजा साहब की चेष्टा व्यर्थ गयी।

यह खबर पाकर बहादुरशाह ने जार्ज टामसन नामक एक अँग-रेज सुवक्ता को अपनी सब बातें समझा बुझा कर विलायत भेजा; सोचा कि शायद गोरे चमड़े से काम निकल जायेगा, परन्तु यह होने को नहीं था। जार्ज टामसन भी राजा साहब की भांति ही विफल हुए। कम्पनी ने अपनी शर्त नहीं बदली। हाय! एक दिन जिनके पूर्व-पुरुषों के आगे इस कम्पनी के पूर्व कार्य-कर्त्ता दीनभाव से उपस्थित हुए थे, उन्हीं का सब कुछ हड़प कर जानेपर भी कम्पनी

के दाँत उनके नाममात्र अधिकार और सम्मान पर इस तरह गड़े हुए थे! इसे हम क्या कहें? अतिलोभ या अकृतज्ञता?

बहादुरशाह ने वृद्धावस्था में 'ज़ीनत महल' नामक एक परम सुन्दरी युवती से विवाह किया था, वह जैसी ही सुन्दरी थी, वैसी ही साहसी, तेजस्विनी और आत्माभिमानिनी भी थी। अँगरेज ऐतिहासिकों ने भी इसके इन गुणों की बड़ी प्रशंसा की है। कुछ दिन बाद ज़ीनतमहल के एक पुत्र हुआ, जो इतिहास में 'जवान बख्त' के नाम से प्रसिद्ध है। क्रमशः इस पुत्र पर बादशाह को बड़ी ममता हो गयी। यहां तक कि इसके आगे और शाहज़ादों को भूल गये। उन्होंने ठीक सोच लिया कि इसे ही अपना वारिस बनाऊँगा। बेगम ज़ीनत-महल अपनी सुन्दरता के सिवा, कार्य-कुशलता और तेजस्विता के कारण बादशाह की परम प्रेमपात्री हो रही थी। ज़ीनत-महल बेगम ने भी अपने पुत्र को सिंहासग दिलवाने के लिये बादशाह से कई वार कहा, अतएव उनका यह विचार दृढ़ होता चला गया। बस इसी मामले को लेकर खानदान में झगड़ा उठ खड़ा हुआ।

सन् १८४६ ई० में बड़े शाहज़ादे दाराबख्त की मृत्यु हो गयी। इस समय बहादुरशाह की उमर ७० बरस से भी अधिक हो गयी थी—उनका भी अन्तकाल निकट ही था। इसी लिये गवर्नर-जेनरल साहब भी इसी सोच में थे, कि बादशाह के मरने पर किसे गद्दी दी जानी चाहिये। कहना फिजूल है, कि इस समय लार्ड डलहौसी ही गवर्नर-जेनरल थे। वे दिल से यही चाहते थे, कि दिल्ली के बादशाह का सत्यानाश कर डालूं! शाहजादा फकीरुद्दीन नामक

एक तीस बरस के राजकुमार के सिंहासन पाने की सम्भावना थी। ये अँगरेजों को बहुत मानते थे और अँगरेज भी इन्हें दिल से पसन्द करते थे। इसी लिये लार्ड डलहौसी ने इन्हीं की गद्दी दिलानी चाही। पर लार्ड डलहौसी के दांत दिल्ली के दुर्ग पर बेहद गड़े हुए थे। वे किसी-न-किसी तरह उसे अँगरेजों के हाथ में आया हुआ देखना चाहते थे। इसके लिये तो वे बहादुरशाह की मृत्यु तक भी इन्तजार करने को राजी नहीं थे। इसीलिये उन्होंने सोचा कि बादशाह को लोभ दिखला कर दिल्ली से हटा देना चाहिये। इस अभीष्ट-सिद्धि के लिये उन्होंने विलायत में डाइरेक्टरों के पास लिख भेजा, कि दिल्ली से प्राय: ६ कोस दक्षिण की तरफ 'कुतुब मीनार' नामक जो प्रसिद्ध स्तम्भ है, वहीं पहले के दिल्ली के राजा लोग रहा करते थे, यहीं पर बहादुरशाह के पूर्व पुरुषों की और साथ ही एक मुसलमान फकीर की कब्रें हैं; इसीलिये इस स्थान को शाही घराने के लोग बड़ा पवित्र समझते हैं। बादशाह को अपने परिवार के साथ साथ यहीं ला रखना चाहिये।

आपका यह प्रस्ताव विलायत से स्वीकृत होकर आ गया, तो भी वे यहां का रङ्ग बेरङ्ग देखकर इसके अनुसार कार्य न कर सके और दूसरे किसी ढङ्ग की तलाश में लगे।

इन्हीं दिनों दिल्ली के तख्त के लिये झगड़ा उठ खड़ा हुआ। फक़ीरुद्दीन को गद्दी न मिलने पाये, इसके लिये ज़ीनतमहल बेगम ने कान बेतरह भरने शुरू किये। अन्त में बेगम ने बादशाह को यह युक्ति बतलायी, कि इस खानदान में किसी का ख़तना नहीं किया

जाता और फ़कीरुद्दीन का हुआ है, इसलिये उसे गद्दी नहीं दी जा सकती । * बादशाह को भी यह बात जँच गयी और उन्होंने अपनी राय गवर्नर-जेनरल को लिख भेजी ।

गवर्नर-जेनरल ने तुरत कोई उत्तर नहीं दिया ; पर अपनी मन्त्रिसभाके सभासदों से इसके बारे में खूब सलाह-मशविरा किया । अन्त में यही तै पाया, कि बादशाह के मर जाने पर फकीरुद्दीन को गद्दीपर बिठाया जाये ; क्योंकि वह अँगरेजों का दोस्त है । और चूँकि उसका एक प्रतिद्वन्दी तैयार है, इसलिये उसे फुसला कर दिल्ली के क़िले से हटाकर कुतुब के पास भेज दिया जा सकेगा । फिर तो

---

* यह प्रथा अकबर के समय से ही चली थी, क्योंकि उन्होंने न केवल हिन्दू-राजकुमारियों से ब्याह करने की ही चाल चलायी, बल्कि बहुतसे हिन्दू आचार-व्यवहारों को मुगल राजघराने में घुसाया । खुद अकबर का खतना इसलिये नहीं हुआ था, कि उनकी पैदाइश से लेकर हुमायूँ के पुनः राज्य पाने तक उनका जीवन बड़े ही संकटों में बीता । जब हुमायूँ को फिर राज्य मिला, तब अकबर की उमर १२ वर्ष की थी और खतने का समय बीत गया था । अस्तु, अकबर ने अपने खानदान से खतने की चाल ही उठा दी, पर बेचारे फ़कीरुद्दीन को बीमारी के कारण खतना करवाना पड़ा था, इसीलिये ज़ीनत महल को एक बहाना सा मिल गया था, परन्तु इसी कारण फकीरुद्दीन को गद्दी नहीं मिल सकती, ऐसा कहना महज़ बेइन्साफी थी ; पर बादशाह तो बेगम के हाथ के खिलौने हो रहे थे, इसलिये उन्होंने भी इस आपत्ति को मान लिया ।

—Keyes sepoy war.

उसे कुछ अधिक पेन्शन देनी पड़े, तो कुछ हर्ज नहीं। यही बात विलायत के अधिकारियों के पास लिख भेजी गयी और उन्होंने भी इसे मंजूर कर लिया।

विलायत से मंजूरी आ जाने पर लार्ड डलहौसी ने दिल्ली के एजेण्ट सर टी० मेटकाफ़ साहब को लिखा, कि आप फकीरुद्दीन को एकान्त में बुलवा 'कर उससे गवर्नमेण्ट के इरादे के बारे में बातें कीजिये और उसे राजो करने की चेष्टा कीजिये। ऐसा ही हुआ। एक दिन फकीरुद्दीन चुपचाप अकेले में एजेण्ट से आ मिला। एजेण्ट ने उससे गवर्नमेण्ट का इरादा बतलाया। वह झट राजी हो गया। उसने कहा, कि अगर मैं 'बादशाह' कहा जाऊँ, तो मुझे सब कुछ स्वीकार है—मुझे दिल्ली के किले को छोड़कर कुतुब के पास जाकर रहना भी मंजूर है। यह सुन, एजेण्ट बड़े खुश हुए और उन्होंने एक इकरारनामा तैयार करा, उसीपर फ़क़ीरुद्दीन ने दस्तख़त करके दे दिये ; पर तुरत ही उसके मनमें अपने किये पर पछतावा होने लगा।

बादशाह को इस गुप्त इकरारनामे का पता लग गया। सारा माजरा सुनकर वे बड़े ही दुखी हुए। तो भी उन्होंने ज़ीनत-महल के लड़के जवानवख्त को गद्दी दिलाने के लिये लिखा-पढ़ी करनी बन्द नहीं की।

समय निकलता चला गया; कोई फैसला नहीं हुआ। बादशाह दिन-दिन बूढ़े होते चले जाते थे और हर घड़ी मौत की आमद का इन्तजार किया करते थे; पर उनकी मौत नहीं आयी; १८५६ ई० की १० वी जुलाई को फकीरुद्दीन का ही अचानक एक दिन देहान्त हो

गया! बहुतों को सन्देह होने लगा, कि कहीं उसे विष तो नहीं दे दिया गया; पर इसका कोई सुबूत नहीं पाया गया।

बादशाह को इस दुर्घटना से बड़ा ही दुःख हुआ; क्योंकि वह उनका बड़ा बेटा था। परन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, त्यों-त्यों बादशाह का दुःख कम होता गया और वे जीनत-महल के उकसाने से फिर जवानबख्त के लिये लिखा-पढ़ी करने लगे। इसके साथ ही एक प्रतिद्वन्द्वी उठ खड़ा हुआ। इस समय मिर्जा कुरैश ही बादशाह के बेटों में बड़े थे। उन्होंने अँगरेज रेजिडेण्टके पास एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने तख्त पर अपना पूरा हक़ दिखलाया था।

इस समय लार्ड डलहौसी की गवर्नरी का जमाना नहीं, बल्कि लार्ड केनिङ्ग का था। वे अभी हाल ही इस पदपर प्रतिष्ठित होकर आये थे। आते ही दिल्ली की विरासत का झगड़ा उनके सामने पेश हुआ। वे एक दम नये आदमी थे, इसलिये उन्हें अपने पूर्व अधिकारी और मन्त्रियों की रायें देखनी पड़ीं। सब पढ़कर उन्होंने लार्ड डलहौसी का ही मत मान लिया और दिल्ली के अँगरेज रेजिडेण्ट मेटकाफ़ साहब को इस प्रकार कार्य करने का हुक्म दिया गया,—

१—यदि बादशाह के पत्र का उत्तर देना ज़रूरी हो, तो उनसे कह देना, कि गवर्नर-जेनरल की सम्मति में जवानबख्त को तख्त न मिलना चाहिये।

२—फ़क़ीरुद्दीन के साथ जो शर्तें तै हुई थीं, उन शर्त्तों पर मुहम्मदकुरैश को बादशाहत नहीं मिल सकती। जब तक बहादुरशाह

जीते हैं, तब तक बिरासत के बारे में उनके या और किसी के कुछ लिखने-पढ़ने की ज़रूरत नहीं है।

३—सम्राट् की मृत्यु होने पर गवर्नमेण्ट, मिर्ज़ा मुहम्मद कुरैश को शाही ख़ानदान का प्रधान व्यक्ति मानेगी। इस सम्बन्ध में फ़क़्रीरुद्दीन के साथ की हुई सब शर्तें ज्यों-की-त्यों रहेंगी; सिर्फ मुहम्मद-कुरैश को बादशाहका ख़िताब न दिया जायेगा। वे 'शाहज़ादा' कहला सकेंगे। पर सरकार किसी तरह की लिखा-पढ़ी करने को तैयार नहीं न वृत्ति बढ़ानेको ही राजी है।

४—जितने लोग भविष्यत् में दिल्ली के सिंहासन के उत्तराधिकारी होने का दावा कर सकते हैं, उनकी एक सूची तैयार करके भेजना। वेटा हो या पोता हो, सबके नाम लिख भेजना, लेकिन भूतपूर्व बादशाहों के दूर के नातेदारों के नाम न लिखना।

५—दिल्ली के राजवंश को इस समय जो वृत्ति दी जाती है, उसमें से शाहजादे को केवल १५ हज़ार रुपये दिये जायंगे।

लार्ड केनिङ्ग ने इस मामले में न तो अपनी आँखों से देखा, न अपनी बुद्धि से विचार किया; क्योंकि उनके से उदार और महत् व्यक्तियों में भला इतनी कतर-ब्यौंत कहाँसे आ सकती थी? उन्होंने वही बातें लिख भेजीं, जो लार्ड डलहौसी लिखने को कह गये थे।

जिस समय लार्ड केनिङ्ग के पत्र का हाल ज़ीनत-महल बेगम को मालूम हुआ, उस समय वह मारे क्रोध के पगलीसी हो गयी। वह इस बात को बर्दाश्त न कर सकी कि ये बनिये तो हमारा किला दखल करें और हम लोग इधर-उधर भटकते फिरें! मारे क्रोध, दुःख

और अभिमान के उसके अँग-अँगमें चिनगारी लग गयी। पर बेचारी क्या करती ? लाचार, मन मार कर; चुप हो रही।

क्रमशः जीनत-महल बेगम का लड़का जवानबख्त, जिसे सिंहासन दिलाने के लिये जी-तोड़ कोशिस कर रहे थे, जवान हुआ। और राजनीतिक दांव-पेचों को समझने लगा। उसने अब देखा, कि मेरे मां—बाप तो सिंहासन देने को तैयार हैं; पर ये अँगरेज ही उसमें बाधा डाल रहे हैं, तब तो वह अँगरेजों का घोर शत्रु बन गया।

इधर सर्वसाधारण लोग, यह जानकर बड़े ही दुखी हुए, कि अँगरेज सरकार दिल्ली की बादशाहत की जड़ खोद डालना चाहती है। सन् १८५७ ई० के शुरूके महोने बीतते-न-बीतते दिल्ली के मुसलमानों में बड़ी उत्तेजना फैली; फारिस की लड़ाई का झूठा-सच्चा हाल सुना-सुना कर लोग, लोगों के कान भरने और उन्हें भड़काने लगे। सब को इस बात का विश्वाससा होने लगा, कि अब इन अँगरेजों के बुरे दिन आ गये हैं। कभी गप्प उड़ती, कि फ़ारिसवाले अटक तक चले आये हैं, तो कभी यह अफवाह सरगरमीके साथ फैल जाती, कि रोम और फ़ारिस मिल गये हैं, रोम के सुल्तान और फ़ारिस के बादशाह इनकी मदद करने को तैयार हैं। मुसलमानों में तो यह बात बरसों से फैली हुई थी, कि अँगरेजों का राज्य सिर्फ़ १०० वर्षों तक ही रहेगा। इसलिये सब लोग इसी भविष्यवाणी पर विश्वास करते हुए अँगरेजों का पतन और प्राचीन राज्यवंश की पुनःप्रतिष्ठा होने की आशा करने लगे।

किसी-किसीने तो यहाँ तक कह डाला, कि बृद्ध बहादुर-शाहने फारिस के बादशाह के साथ साजिश की थी और उन्हींकी मदद से अपना खोया हुआ राज्य उबार लेना चाहा था, किन्तु इस बात का सबूत आज तक नहीं मिला। लेकिन बादशाह षड्यन्त्र करें या नहीं; उनके अनुचर उनका अपमान और अवश्यम्भावी पतन देख कर सर्वसाधारण के मनमें अँगरेजों के प्रति घृणा, द्वेष और बैर का भाव उत्पन्न करने लगे। उनके प्रयत्न से दिल्ली के समस्त मुसलमान अँगरेजों को अपना दुश्मन समझने लगे। सन् १८५७ के मार्च महीने में वहाँ की जुमा-मसजिदमें एक परचा चिपकाया हुआ पाया गया, जिसमें लिखा हुआ था, कि—फारिस की सेना अँगरेजों के हाथ से भारतका उद्धार करने के लिये चली आ रही है; इसलिये हर मुसलमान का कर्त्तव्य है, कि इन काफिरोंसे लड़ने के लिये तैयार हो जाय। यद्यपि यह पर्चा कुछ ही घण्टों के अन्दर मसजिद की दीवार से उखाड़ लिया गया, तथापि यह खबर चारों ओर फैल गयी। लोग अँगरेजों के विरुद्ध उत्तेजित हो ही रहे थे—अबके ऐसा मालूम पड़ने लगा, कि शीघ्र ही विप्लव मचने वाला है। दिल्ली के सिपाहियों में भी हलचलसी पड़ गयी, लेकिन बूढ़े बादशाह बहादुर-शाह को इन सब आन्दोलनों से कोई सरोकार नहीं था। वे उदासीन-भाव से अपने बुढ़ापे के दिन बिता रहे थे। इतने में १० वीं मई को मेरठ के सिपाही बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने जैसा अन्धेर मचाया, उसका वर्णन हम पहले अध्याय में कर चुके हैं; साथ ही यह भी लिख चुके हैं, कि इधर तो अँगरेज लोग गयी रातका बदला लेने

के लिये सिपाहियों की खोज में निकले, उधर उनके आने के पहले ही रातोंरात विद्रोहियों ने दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया था।

बड़ी तेज़ी से कूच करते हुए उन्मत्त विद्रोही सिपाही ११ वीं मई के सवेरे ही भारत की प्रसिद्ध और प्राचीन राजधानी दिल्ली के पास यमुना के किनारे आ पहुंचे! दिल्ली का जो हिस्सा यमुना के किनारे पड़ता है, उसमें पहले एक नौसेतु था। यह सेतु एक ओर सलीमगढ़ और दूसरी ओर मेरठ जाने के रास्तों को मिलाये हुए था। इसलिये मेरठ से आये हुए लोगों को इसी सेतु को पार कर सलीमगढ़ पहुंचना पड़ता था। दिल्ली लाल पत्थरों की दीवारोंसे घिरी हुई थी, जिसमें ११ प्रवेश द्वार थे। जिस ओर यमुना बह रही हैं, उस ओर छोड़ कर और सब तरफ आठ दरवाजे थे, जिनके नाम क्रमशः काश्मीरीदरवाजा, मोरीदरवाजा, क़ाबुलीदरवाजा, लाहौरीदरवाजा, फ़रासखाँ दरवाजा, अजमेर दरवाजा, तुर्कीदरवाजा, और दिल्लीदरवाजा हैं। सम्राट् का वास-भवन नगरके किनारे यमुना तीर पर है। उसके तीन तरफ लाल रङ्ग की दीवारें हैं। काश्मीरी दरवाजे में फौज की छावनी थी। नगर की रक्षा करने वाले सिपाही यहीं रहा करते थे।

मेरठ के अश्वारोही सिपाही दिन के ८ बजते न बजते पुल पार कर दिल्ली के शहरपनाहके पास आ पहुंचे और चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगे,—हम लोगों ने मेरठ में बहुतसे अँगरेजों को कत्ल कर डाला है और इन फिरङ्गियों के साथ खुल्लम-खुल्ला युद्ध करने को तैयार हैं; इसलिये हम बादशाह सलामत की मदद लेने आये हैं।

रणोन्मत्त सिपाहियों का कोलाहल सुन; दिल्ली के वृद्ध बादशाह ने महल के रक्षक सैनिकों के अध्यक्ष कप्तान डगलस साहबको बुला भेजा। डगलस साहबने हुक्म पाते ही दिवान-ए-आममें आकर बादशाहसे मुलाकात की। डगलस साहबने सब हाल सुन कर कहा, कि मैं नीचे चल कर सिपाहियों को लौट जाने के लिये कहता हूं। बादशाहने उन्हें नीचे जानेसे मना किया। तब मि० डगलस ने खिड़की पर खड़े होकर सिपाहियों से कहा,—कि तुम लौट जाओ; क्योंकि तुम्हारे आनेसे बादशाहको बड़ी नाराजी हो रही है, पर सिपाहियों को उनकी बात नहीं सुनाई दी। उन्होंने जब एक रास्ता बन्द देखा, तब और रास्ते से नगर में प्रवेश करनेकी चेष्टा करने लगे। यमुना की ओर जो दरवाजे हैं, उनमें एक का नाम कलकत्ता-दरवाजा और दूसरे का नाम राजघाट दरवाजा है। कलकत्ता दरवाजा पुलके बहुत ही पास है। पर जब यह दरवाजा बन्द मिला, तब आगन्तुक अश्वारोही सैनिक राजघाट दरवाजे की ओर चले। वहाँके मुसलमान रखवालों ने झटपट फाटक खोल दिया, जिसके द्वारा मेरठ के उत्तेजित सैनिक नगर के भीतर चले आये।

मेरठ में सिपाहियों ने अँगरेजों की खूब हत्या की है और अब विद्रोही यहाँ आ रहे हैं, यह बात दिल्ली में रहने वाले अँगरेजों को नहीं मालूम थी; क्योंकि विद्रोहियों ने पहले ही मेरठ और दिल्ली के बीच का तार काट दिया था।

११ वीं मई के सवेरे ही दिल्लीके टेलीग्राफ आफिस के कर्मचारी टाड साहब की समझमें आया, कि जरूर दिल्ली और मेरठ का तार

सम्बन्ध काट डाला गया है। यही सोच कर वे उस समय यमुना के उसी पुल पर पहुंचे; जहां विद्रोही घुड़सवार इकट्ठे थे। उन्हें देखते ही सबके सब उनपर टूट पड़े और तलवार से उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। पर इस हत्याकी बात भी वहाँ के राजपुरुषों को ठीक समय पर नहीं मालूम हो सकी।

मेरठसे जो घुड़सवार आये थे, उनकी संख्या वैसी कुछ अधिक नहीं थी; परन्तु तुरत ही मेरठ के पैदल सिपाही भी उन के सङ्ग आ मिले। इधर दिल्ली के बहुतसे मुसलमान उनके साथी हो गये और दिल्लीके सिपाही भी क्रमशः उन लोगोंका पक्ष-समर्थन करने को प्रस्तुत हो गये। परन्तु दिल्ली के सर्वसाधारण लोग इन विद्रोहियों का साथ देने को तैयार न हुए। हाँ, कुछ 'गूजर' लोगों ने इनका साथ अवश्य दिया।

बस फिर क्या था ? चारों ओर हलचलसी मच गयी। सारी दिल्ली उथल-पुथल होने लगी। सब बाजार बन्द हो गये। १० वीं मई की सन्ध्या को जैसे भयङ्कर काण्ड मेरठ में हुए थे, ११ वीं मई के सवेरे दिल्ली में भी वैसे ही काण्ड होने लगे।

इस समय ३८ वीं, ५४ वीं और ७४ वीं पलटनें थी। इन तीनों में ३५०० सिपाही थे। इनके सिवा गोलन्दाजों की भी एक पलटन थी, जिसमें १६० गोलन्दाज थे। इन सब पलटनों में ५२ अँगरेज भिन्न-भिन्न पदों पर कार्य करते थे।

मेरठ के सिपाही दिल्ली में घुसते ही जिस अँगरेजको सामने पाते, उसे ही मार कर ढेर कर देते। उन्होंने बहुतसे अँगरेजों के

घरोंमें आग लगा दी और 'दीन-दीन' की पुकार मचाते हुए दिल्लीमें अँगरेजोंका अनिष्ट-साधन करने लगे। दिल्ली के बहुतसे मुसलमान 'दीन-दीन' की पुकार सुन उनके साथ हो लिये और फिरङ्गी लोगों का सत्यानाश करनेका सङ्कल्प सिद्ध करने लगे।

इस समय ३८ वीं पल्टन राजमहलकी रक्षा कर रही थी। जब मेरठवाले सिपाही महलों के पास चले आये, तब कप्तान डगलस और कमिश्नर फ्रेजर साहब ने इस पल्टन के सिपाहियों को अपने मेलमें ले आनेका बड़ा प्रयत्न किया; पर ये लोग तो पहलेसे ही जाति और धर्म का नाश करनेवाले अँगरेजों से जले बैठे थे, इसलिये उनकी बात न मान कर ये लोग भी विद्रोहियों के साथ हो लिये। कमिश्नर और कप्तान की कोई कला न चलने पायी।

इतने में विद्रोही घुड़सवार वहाँ आ पहुंचे। तब कमिश्नर और कप्तान साहब, बग्घी पर सवार हो आक्रमण करने वालोंको रोकने की चेष्टा करने लगे। उनके हाथ में भी पिस्तौलें थीं। इतने में उस बग्घीपर सवार हिन्दुस्तानी अर्दलियोंको देखकर विद्रोही सिपाहियों ने बड़े जोशसे ललकार कर कहा,—"तुम लोग अपने दीनो-ईमानको मानते हो या इन काफ़िर अँगरेजों को ?" यह सुनते ही वे मुसलमान अर्दली बड़े ऊँचे स्वरसे 'दीन-दीन' की पुकार कर उठे। मुसलमानों का यह युद्ध-रव सुनते ही फ्रेजर और डगलस साहबकी तो जान घपले में पड़ गयी और वे झटपट गाड़ीसे नीचे उतर कर पुलिसकी चौकी की ओर चले। इधर से घुड़सवार उनके सामने आ पहुंचे। फ्रेजर साहब ने एक को ताक कर गोली छोड़ी और दूसरी गोलीसे

एक दूसरे घुड़सवार का घोड़ा ज़मीन पर गिरा दिया। इतने में विद्रोहियों का दल बढ़ते-बढ़ते ऐसा अपार दिखाई देने लगा, कि फ्रेजर साहब को सिवा भागने के और कुछ न सूझा। वे फिर गाड़ी पर सवार हो लाहौरी दरवाजे की ओर चले। इधर कप्तान डगलस राजमहलकी खाई पार करनेकी चेष्टा करने लगे; पर ऐसे गिरे, कि बेतरह चोट आयी। कई पहरेदार उन्हें धर-पकड़ कर उनके घरमें रख आये। कमिश्नर फ्रेजर और दिल्लीके कलक्टर हचिनसन साहब (इन्हें भी चोट लगी थी) यहीं आ पहुंचे।

क्रमशः बलवाई सिपाही कप्तान डगलसके घर के पास आ पहुंचे। इस समय एक अँगरेज पादरी और कई युरोपियन स्त्रियाँ भी उन्हीं के घर आई हुई थीं। पादरी ने हल्लागुल्ला सुन नीचे आकर देखा, कि कप्तान और हचिनसन साहब तो नीचे ही पड़े हैं; जो कोई पहरेदार उन्हें यहां तक ले आये थे, वे उन्हें ऊपर के एक कमरे में ले गये। कमिश्नर साहब नीचे ही रहे और उत्तेजित लोगोंको समझाने बुझाने लगे। इतने में उनपर चारों ओरसे तलवारोंके ऐसे विकट वार हुए, कि उनका शरीर जीवन-शून्य होकर सीढ़ी के पास लोट गया!

कमिश्नर साहब का काम तमाम कर ये लोग ऊपर पहुंचे। डगलस, हचिनसन आदि अँगरेज पुरुष और कई एक मेमें वहीं मौजूद थीं, पहले तो उन लोगों ने भीतर से किवाड़ बन्द कर इन्हें रोक रखना चाहा; पर इतने आदमियों के आगे इने-गिने लोगों का जोर कहाँ तक चल सकता है? उन लोगोंने दरवाजा तोड़कर ही रख दिया और भीतर घुस कर पलक मारते में एक-एक की हत्या कर डाली!

इस तरह दिल्ली के दुर्ग में अँगरेज-स्त्री-पुरुषों के रक्त की नदी बहायी गयी ; परन्तु बहादुरशाह का इसमें कुछ भी हाथ न था। बेचारे बहादुरशाह तो यह सब हाल-बेहाल देख, घबरा उठे। उन्हें रह-रह कर अपनी ही जानकी फिक्र होने लगी !

देखते-देखते दिल्ली का प्रसाद-प्राङ्गण विद्रोही सिपाहियोंसे भर गया। चारों ओरसे मुसलमानों के दल-के-दल आकर इनसे मिलने लगे। रात भर के थके हुए सिपाही सम्राट् के सुरम्य सभा-मण्डपमें विश्राम करने लगे। चारों ओर हथियारबन्द सिपाही पहरा देने लगे।

इधर दिल्ली में जो अँगरेज़ोंका मोहल्ला था, वहाँ—अर्थात् दरिया-गञ्ज में भयङ्कर काण्ड होने शुरू हुए; दोपहर दिन चढ़ते-न-चढ़ते प्रधान-प्रधान अँगरेजों को इन बलवाइयोंने मृत्युके घाट उतार दिया। इसी समय दिल्ली के बेङ्क पर हमला हुआ। बेङ्कके कर्मचारी बाधा देते जाकर मारे गये। फिर तो बेङ्क की बेरोक-टोक लूट आरम्भ हुई। इसके बाद उन लोगों ने 'दिल्ली गजट' नामक अखबार के छापेखाने को तहस-नहस करना आरम्भ किया। बातकी-बातमें वहाँके सभी ईसाई कम्पोजिटर कत्ल कर डाले गये। सिपाहियों को अँगरेजों से ऐसी चिढ़ हो गयी थी, कि वे जहाँ कहीं किसी अँग-रेज या ईसाई की सूरत देखते, वहीं उसे मार डालते, उसका घर जला देते और उसकी जमा-पूंजी लूट लेते थे।

अब तक ख़ास दिल्ली के सिपाहियों के सिर नहीं फिरे थे। अबकी बार इनके भी चित्तमें चञ्चलता उत्पन्न हुई, पर तो भी वे चुप रहें। इतनेमें मेरठ के सिपाहियों के दिल्ली में आनेकी ख़बर सुन कर

दिल्ली के समस्त सैनिक दलों के अध्यक्ष ब्रिगेडियर ग्रैव्सने कर्नल रिपले के अधीन ५४ वीं पल्टन को काश्मीरी-दरवाजे की ओर भेजा। जिस समय आक्रमण करने वाले सिपाही सैनिक छावनी की ओर बढ़े चले जा रहे थे, उसी समय ५४ वीं पल्टन उनके सामने आ पहुंची; पर अफसरों के लाख चिल्लाते रहने पर भी इन लोगोंने बलवाइयों पर हाथ नहीं उठाया और उससे साफ कह दिया, कि हम लोग तुम्हारे दुश्मन नहीं। फिर क्या था ? बलवाई सिपाहियों ने उस पल्टन के साथ रहने वाले सभी अँगरेज अफसरों की हत्या कर डाली।

इधर ५४ वीं पल्टन के जाने के बाद ही मेजर पैटरसन शेष दोनों पल्टनों और तोपों के साथ-साथ काश्मीरी दरवाजे की ओर चले। यद्यपि उस समय इन गोलन्दाज सिपाहियोंने ऊपर से किसी प्रकार की उदासीनता नहीं दिखाई, तथापि उनके हृदयमें भी बलवाई सिपाहियों के प्रति सहानुभूति थी, इसमें सन्देह नहीं। उस समय अँगरेजों के प्रति विद्वेष और जाति तथा धर्म को नाश से बचाने की आकांक्षा इस प्रबलता के साथ काम कर रही थी, कि सभी एक प्राण हो रहे थे। ये लोग भी भीतर-ही-भीतर अपने देशी भाइयों से युद्ध करने को तैयार नहीं थे। खैर, मेजर पैटरसन ५४ वीं पल्टन के दोनों दल और तोपें लिये हुए काश्मीरी दरवाजे पर पहुंचे। उस समय तक तो दुश्मन सारे नगर में फैल चुके थे। मेजर ने उन्हें वहां नहीं पाया। हाँ, उन्होंने अपने साथियों की लाशें अलबत्ता कटी देखीं। यह देख, मेजर पैटरसन को बड़ा भारी शोक हुआ।

काश्मीरी दरवाजे के भीतरी हिस्से में एक बड़ासा मकान था। जिसे अँगरेज लोग 'मेन गार्ड' कहते थे। उसीमें कप्तान वालेस ३८ वीं पल्टनके के कुछ सिपाहियों के साथ रहते थे। बलवाइयों को हमला करते देख, कप्तान ने अपने सैनिकों को गोली चलाने का हुक्म दिया; पर इसका कोई फल न हुआ। इसी समय कर्नल पैटरसन अपने साथियों की लाशें लिये हुए यहीं आ पहुंचे। उनके सब साथी भी तोपें वगैरह लिये-दिये यहीं आ रहे। सब लोग मेरठ के बलवाइयों के हमले की प्रतीक्षा करने लगे और यह भी आशा करने लगे; कि मेरठ की गोरी पल्टन भी अब आती ही होगी।

यहां आते ही मेजर पेटरसन ने कप्तान वालेस को ७४ वीं पल्टन के पैदल सिपाहियों और दोनों तोपों को ले आने के लिये छावनी में भेज दिया। उधर ७४ वीं पल्टन परेड के मैदान में खड़ी थी। गोलन्दाज पल्टन के अध्यक्ष कप्तान डि० टीशियर भी कुछ सिपाहियों और तोपों के साथ यहीं डटे हुए थे। मेज़र ऐबट ७४ वीं पल्टन के अध्यक्ष थे। उन्हें ग्यारह बजे के करीब खबर मिली, कि ५४ वीं पलटन के सब अफसर मारे गये। यह सुनते ही वे अपनी पल्टन में आये और जो सामने मिला उसी से बोले, कि अभी काश्मीरी दरवाजेकी तरफ चलना होगा। यह सुनते ही सब सिपाही उनके साथ चलने के लिये तैयार हो गये। काश्मीरीदरवाजे के मेनगार्डमें पहुंच कर वे लोग शत्रुओं के आनेकी राह तकने लगे; पर तीन बजे तक कोई बल्वाई दिखाई न दिया। इधर विद्रोही लोग नगरमें घुस कर कौनसा उपद्रव कर रहे हैं, यह इन लोगोंको मालूम भी न होने पाया।

शाम हो चली, सूरज डूबने को पश्चिम में आ विराजे। परन्तु अब तक नगर की अवस्था मेनगार्ड में टिके हुए अँगरेजों को न मालूम होने पायी। ३८ वीं और ५४ वीं पल्टन के बहुत से देशी सिपाही मेरठ वालों के तरफदार होकर अँगरेजों के दुश्मन हो गये हैं, यह बात भी उन लोगों को न मालूम हो सकी। इसी समय एकाएक नगर की ओर से बड़े भारी धड़ाके की आवाज सुनाई दी! क्षण भर में आग की लपटें और धुआँ दिखाई देने लगा। इसके बाद ही तोपों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ने लगी। जिधरसे यह आवाज लगातार आ रही थी, उधर की ओर नजर फेरते ही अँगरेज सैनिकों ने देखा, कि ऊँची-ऊँची पर्वताकार धूमराशि आकाश में छा रही है— प्रज्वलित वह्निशिखा उस धूमराशि को भेद कर अनन्त आकाश की ओर उठ रही है। यह देखते ही सब लोग समझ गये, कि दिल्ली के शस्त्रागार में आग लग गयी है; पर आग आपसे आप भड़क उठी या किसी आदमी ने लगा दी, यह बात नहीं मालूम हो सकी। इसी समय दो युरोपियन वहाँ आ पहुंचे। ये गोलन्दाज फौज के कर्मचारी थे। घोर धुएँ के भीतर से आनेके कारण एक का चेहरा तो इतना काला पड़ गया था, कि उसे पहचानना ही कठिन था। उन्होंने आते ही अस्त्रागार की जो भीषण कथा कह सुनायी, उसे सुन कर लोग अचम्भे में आ गये।

दिल्ली का प्रसिद्ध अस्त्रागार नगर के अन्तर्मार्गमें शाही महल से कुछ दूर पर स्थित था। वहाँ तोप, बन्दूक, गोला, बारूद, सब कुछ रखा रहता था। लेफ्टिनेण्ट जार्ज विलोबी नामक एक अँगरेज इस

अस्त्रागार के अध्यक्ष थे। इनके अधीन ८ और युरोपियन काम करते थे। और सब कर्मचारी हिन्दुस्तानी ही थे।

सोमवार तारीख ११ वीं मई के सवेरे ही जब विलोबी साहब अस्त्रागार की देखभाल कर रहे थे, इसी समय दिल्ली के अँगरेज रेजिडेण्ट सर टी० मेटकाफ ने उनसे आकर कहा, कि मेरठ के बहुतसे बलवाई सिपाही नदी पार कर रहे हैं।

साथ ही उन्होंने उन लोगों का रास्ता रोकने के लिये दो तोपें भी मांगीं, जो उन्हें तुरत ही मिल गयीं; पर नदी के पुलपर आकर उन्होंने आकर देखा, कि दुश्मन तो पुल पार कर गये। यह देख कर वे दूसरे काम को चले गये और विलोवी साहब अस्त्रागार की रक्षा करने लगे। उन्हें डर था, कि कहीं बलवाई लोग यहाँ आकर हथियार-बन्दूक न लूट लें। उन्हें यहाँके आदमियों पर भी सन्देह होने लगा; अतएव रह-रहकर उनके जीमें यही बात आने लगी कि मेरठ से गोरी पल्टन आये विना इस अस्त्रागार की रक्षा करना मेरे लिये सम्भव नहीं। खास, अपने एक दरबान पर, जिसका नाम करीमबख्श था, उन्हें विशेष सन्देह हुआ और इसीलिये उन्होंने अपने एक युरोपियन साथी से कहा, कि इस आदमी पर निगाह रखना और जहाँ इसे अस्त्रागार की ओर पैर बढ़ाते देखना, वहां झट इसपर तमञ्चा छोड़ देना। इस प्रकार सन्देह करना उचित ही था; क्योंकि उस समय ऐसी कुछ लहर आ गयी थी, कि समस्त हिन्दुस्तानी, अँगरेजों के प्रति एक ही प्रकार का भाव रखने लगे थे, सब के जीमें यही बात बैठ गयी थी, कि इन लोगों ने जिस प्रकार धोखे से यहाँ

का राज्य लिया है, उसी प्रकार अब हम लोगों का 'धर्म' लेना चाहते हैं। इसीलिये सब एक हो रहे थे।

इसीलिये अस्त्रागार में जो नौ अँगरेज काम करते थे, उन लोगों ने सोचा, कि हम लोग भी एक होकर अन्त तक आत्मरक्षा करेंगे। तबतक तो मेरठ से सहायता पहुंच ही जायेगी। यही सोच-कर वे अपने कर्तव्य में लगे। अस्त्रागार का दरवाजा बन्द कर दिया गया, गोलों से भरी हुई तोपें सजा कर रखी गयीं और एक-एक अँगरेज हाथ में बत्ती लिये उन क़रीने से रखी हुई तोपों के पास खड़ा हो गया।

यह काम ख़तम हो जाने पर जिस घर में बारूद रखी थी, वहां से लेकर अस्त्रागार के आँगन वाले बृक्ष तक, मिट्टी के नीचे-नीचे बारूद बिछा दी गयी। यहाँपर स्कली नामक एक अँगरेज कर्मचारी खड़ा कर दिया गया। थोड़ी दूरपर बकली नामक विलोबी साहबके एक सहयोगी अन्तिम आज्ञा सुनानेके लिये खड़े किये गये। यही बन्दो-बस्त सोचा गया, कि जब कोई तरकीब न लगेगी, तब ज्यों ही बकली साहब टोपी उतार कर इशारा करें, त्यों ही मिट्टी के नीचे छिपी हुई बारूद में आग लगा दी जाये। जिससे सारा अस्त्रागार ही उड़ जाये। इस आदेश के पालन का भार स्कली साहब को सौंपा गया।

इतने में बलवाई अस्त्रागार के द्वार पर पहुंचे और बोले,—"बाद-शाह का हुक्म है—फाटक खोल दो।" पर अँगरेजों ने बात अन-सुनी कर दी—उन्होंने फाटक नहीं खोला। इतने में बलवाइयों का

शोरो-गुल सुन कर भीतर के सभी देशी कर्मचारी ऊपर छत पर चढ़ गये और बलवाइयों को दीवार पर सीढ़ियां लगाते देख, उन्हीं सीढ़ियों के सहारे नीचे उतर बलवाइयों के दल में जा मिले।

अब ज़रा भी देर करना मुनासिब न समझ कर अँगरेजों ने भीतर से गोले बरसाने शुरू कर दिये। बलवाइयों ने भी अपने को बचाना आरम्भ कर दिया। वे भी गोली छोड़ने लगे, उनकी गोली खाकर बहुतसे अँगरेज तो उसी क्षण मर गये। धीरे-धीरे बलवाइयों का जोर बढ़ता ही गया और ये सातों अँगरेज घबरा उठे। अन्तमें कोई उपाय न देख, विलोबी साहब ने बकली को इशारा किया, जिन्होंने टोपी उतार कर स्कली साहब को अपने कर्तव्य पालन का संकेत किया। स्कली साहब ने उसी समय प्राणों की परवा न कर, अपने देश-बन्धुओं की रक्षा के लिये, बारूद में आग लगा दी! आग लगाते ही बारूद स्कली साहब को लिये भक् से उड़ी और सारा अस्त्रागार फट पड़ा! चारों ओर तबाही फैल गयी। बहुतेरे बलवाई मारे गये। विलोबी और उसके पांच साथी, किसी-किसी तरह, जलते-झुलसते हुए बाहर निकल पाये। विलोबी साहब तो अपने एक साथी के साथ-साथ मेनगार्ड में चले आये और बाकी के लोग मेरठ की तरफ भाग खड़े हुए।

उस समय विलोबी साहब ने कहा था, कि इस दुर्घटना के कारण प्रायः एक हजार आदमी मौत के शिकार हुए थे। एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है, कि इस दुर्घटना के कारण दिल्ली के भिन्न-भिन्न मुहल्लों के प्रायः ५०० आदमी मर गये। किसी-किसी घर में इतनी

गोलियां गिरी थीं, कि पीछे लड़कों ने सेरों चुनीं तो भी खतम न हुईं। इस तरह अस्त्रागार को नष्ट कर डालने से बलवाइयों का एक बड़ा भारी उद्देश्य विफल हो गया। विलोबी और खास कर स्कली ने इस विषय में जैसी वीरता दिखायी, उसके लिये इन लोगों की सर्वत्र बड़ी प्रशंसा हुई। परन्तु दुर्भाग्यवश विलोबी साहब मेरठ जाते समय रास्ते ही में मारे गये। हाँ, उनके पाँच साथियों—फ़ारेस्ट, रेनर, बकली, शा और स्टुएर्ट को पीछे विक्टोरिया क्रास से सम्मानित किया गया।

दिल्ली शहर और छावनीके बीच जो छोटीसी पहाड़ी है, उसी पर एक गोलघर बना हुआ है, जिसे अँगरेजी इतिहासों में (Flag Staff Tower) अर्थात् पताका-मन्दिर कहा गया है। बहुतसे युरोपियनों ने यहीं आश्रय लिया था। ३१ वीं पल्टन को यहीं रहने का हुक्म दिया गया था। यहां पर दो तोपें रखी हुई थीं। सैनिक अफसरों के सिवा वहां १९ युरोपियन ईसाई और थे। इनके अतिरिक्त बहुतसी अँगरेज औरतें और बालक-बालिकाएँ भी मौजूद थीं। यहाँ अस्त्रागार के ध्वंस के चिह्न साफ दिखलाई पड़ते थे। गोलघर के युरोपियनों ने आसमानमें बेतरह धुआं उड़ते देखा। उस समय दिनके ४ बजे थे। उस समय भी यहां के अँगरेज मेरठ की गोरी पल्टन के आने की राह देख रहे थे! पर अन्त में उन्हें उम्मीद छोड़ देनी पड़ी। तब बाटसन गामक एक अँगरेज, ब्रिग्रेडियर ग्रेब्स(GraV-s) का पत्र लेकर संन्यासी का वेश बना; मेरठ जाने को तैयार हो गया। यह आदमी डाक्टर था और हिन्दुस्तानी भाषा बड़े मजे में बोल

लेता था। मगर जब बेचारा नदी के किनारे पहुंचा, तब देखता क्या है कि पुल तो टूटा पड़ा है। यह देख कर वह छावनीकी तरफ आकर नाव द्वारा नदी पार करने की चेष्टा करने लगा! इसी समय ३ री पलटन के घुड़सवारों की नजर उस पर पड़ी—उन्होंने उसे लक्ष्य कर गोली छोड़ी। पास के गांव के गूजरों ने आकर उसके कपड़े-लत्ते उतार लिये और उसकी बड़ी दुर्दशा की। बेचारे का बहुरूपियापन किसी काम न आया। खूब अच्छी तरह उसकी मरम्मत करने के बाद उन लोगों ने उसे छोड़ दिया और बेचारा नङ्ग-धड़ङ्ग करनाल की तरफ भागा—मेरठ की ओर न जा सका। अगर जाता भी तो क्या करता? वहाँवाले क्या यहां आकर अपने भाई-बन्दों की कुछ मदद कर सकते? कदापि नहीं।

क्रमशः रात हुई। दिल्ली भरके सिपाहियोंने सलाह कर ली। अपने सेनापतियों की बात न मान कर उन्हें छोड़ कर चल देना ही ठीक समझा गया। चारों ओर असन्तोष और विद्रोहका दौर-दौरा हो गया। विद्रोहियों ने यही कह-कह कर लोगोंको अपने-अपने मत में लाना शुरू किया, कि हम लोग फिर से मुगल-राज्य सारे भारत में फैला देना चाहते हैं, जिसमें जाति और धर्म का भेद किये बिना ही, सब किसी को बड़े से बड़ा पद मिल सके। सब लोग इस बात के लिये उत्सुक दिखलाई पड़ते थे, कि इन अँगरेजों की यह भड़कशाही दूर हो और मुगलिया सल्तनत फिर से पुराने गौरव को पा जाये। जोश में भर-भर कर लोग दिल्ली के बादशाह की जय-जय मनाने लगे और उत्सह के साथ विद्रोहियों के दल में मिलने लगे। मेरठ की

गोरी पल्टन को न आते देख, इन लोगों का साहस और भी बढ़ता चला गया। क्रम से सारी दिल्ली में विद्रोह लहरें मार उठा!

सिपाहियों ने यहाँ केवल अँगरेजोंके घर ही नहीं जलाये और लूटे; बल्कि उनके साथ बड़े पराक्रम दिखलाते हुए सम्मुख-समर भी किया। अँगरेजों की संख्या कम होनेके कारण, वे लोग सिपाहियों को परास्त न कर सके। इसलिये कितने तो मारे गये और कितने जान को बचा कर जिधर सींग समाया, उधर ही भाग चले। जिन लोगों ने सिपाही-विद्रोह का इतिहास लिखा है, उन्हें यह बात स्वीकार करना ही पड़ी है, कि यद्यपि इन सिपाहियों के सेनापति या कामाण्डर नहीं थे, तथापि इन लोगों में ऐसी एकता पैदा हो गयी थी, कि उसीके बल पर ये बड़े जोश और मुस्तैदी के साथ अँगरेजोंके साथ लड़ते और उन्हें हराते थे।

इधर मेन गार्ड में जो सब युरोपियन जमा थे, उनपर ३८ वीं पल्टन के सिपाही, लगातार गोलियाँ बरसाने लगे। तीन जने अफ़-सर तो मारे गये, बाकी लोग भागने की राह ढूढ़ँने लगे। सामने के दरवाजे से तो भागना नहीं हो सकता था; क्योंकि उधर तो सिपाही खड़े गोलियाँ छोड़ ही रहे थे। तब उन लोगोंने सोचा कि मेनगार्ड के ऊपरी हिस्से में कहीं-कहीं तोप बैठाने के लिये जमीन ढलवीं कर दी गयी थी। इसी ढालवीं राह से नीचे खाईमें कूद कर भागने के सिवा और कोई चारा न था। खाई की गहराई प्रायः ३० फुट थी। अफसरों ने अब देर न कर इसी उपाय को काम में लाना चाहा। ज्यों ही वे लोग भागने का उद्योग करने लगे, त्यों ही मेनगार्ड के

घर में बैठी हुई अँगरेज औरतें चिल्ला उठीं। बेचारों से इन्हें छोड़कर भागते न बना। इन लोगों ने कमरबन्द खोल, उसमें रूमाल बाध बारी-बारी से कई आदमियों को उसी के सहारे नीचे उतारा; वे लोग फिर ऊपरवालों को नीचे उतरने में सहायता देने लगे। वे औरतें बच्चों सहित खाई में उतार दी गयीं। खाई की दूसरी ओर जङ्गल था। सब लोगों ने खाई से उतर कर जङ्गल में या और कहीं छिप जाना चाहा। पर निकल आना जैसा सहज था, वैसा उस में से निकल कर बाहर आना सहज नहीं था। किन्तु जब सिरपर विपद् आ जाती है तब आप ही आप शरीर में न जाने कहाँ से ऐसी फुर्ती, तेजी और हिम्मत आ जाती है, कि सब कुछ करने को तैयार हो जाता है। बड़ी-बड़ी मुश्किलों से सब लोग इसके बाहर निकले। कोई पास के जङ्गल में छिप गया, कोई छावनी की तरफ चला और कोई यमुना के किनारे बने हुए मेटकाफ साहब के बँगले की ओर चल पड़ा।

इधर विपद् क्रमशः ऐसी विकट होती गयी, कि और जितने अँगरेज गोल-घर में आश्रय ग्रहण किये हुए थे, वे सब घबरा उठे। ब्रिग्रेडियर ग्रेव्सने जब सुना, कि मेन-गार्ड के अफसर मारे गये और बलवाइयों ने प्रायः सभी प्रधान स्थानों पर कब्जा कर लिया है, तब उन्होंने सबसे कहा, कि आप लोग चाहे जैसे हो, भाग कर प्राण बचाइये। पर अब तो भागनेका समय हाथ से निकल गया। यदि वे पहले ही ऐसा कह देते, तो अब तक बहुतसे लोग भाग गये होते, तो भी ये लोग गोलधर के बाहर जाने को तैयार हो गये। गोलघर के

नीचे गाड़ी, घोड़े आदि खड़े थे। युरोपियनों ने अपने अपने आत्मीय स्वजनों को इन्हीं घोड़ा-गाड़ियों पर चढ़ा लिया और कोई करनाल तो कोई मेरठ की ओर चल पड़े। जिनको गाड़ी या और कोई सवारी नहीं मिल सकी, वे पैदल ही चले। इन लोगों ने अपने साथ सिपाहियों से चलने के लिये कहा। पहले तो वे झट राजी हो गये और उनके साथ हो लिये; पर पीछे रास्ते से ही छँट गये और बाजार में इधर-उधर छिप गये। जाते-जाते वे यह कहते गये, कि अब आप लोग अपने प्राण बचाने की चेष्टा कीजिये, बलबाई शीघ्र ही आया चाहते हैं। समय देखकर इन सिपाहियों ने अपने अफसरों का साथ भले ही छोड़ दिया; पर उनका कोई अनिष्ट नहीं किया।

ब्रिग्रेडियर ग्रेब्स ने अन्ततक छावनी की रक्षा करने की ठान ली थी, इसलिये उन्होंने मेनगार्डसे मेजर एबट को दो तोपें भेजनेके लिये लिखा; किन्तु वे बेचारे न भेज सके। क्यों? सो उन्हींके मुंह से सुन लीजिये। मेजर एबट ने स्वयं कहा है, कि—

"मैं ब्रिग्रेडियर ग्रेब्स की बात मान कर तोपें भेजने को ही था, कि इसी समय मुझ से मेजर पैटरकन ने कहा, कि आप चले जायेंगे तो मैं भी यहां से चला जाऊँगा················एक डिप्टी कलक्टर ने मुझ से कम से कम १५ मिनट ठहर जाने के लिये कहा। मैंने इस पर आपत्ति की; कहा ऐसा करने से अफसर की हुक्म-उदूली होगी। खैर, १५ मिनट बाद मैंने तोपें भेजीं तो सही; पर जो लोग उन्हें लिये जा रहे थे, वे तुरत ही उन्हें लौटा लाये। मैंने इसका कारण पूछा। उन्होंने कहा कि तोपचियों ने काम छोड़ दिया है; इसलिये

हम तोपें न ले जा सके। मैंने पूछा,—'तुम लोगों को छावनी में गोली छूटने की आवाज सुनाई दी है या नहीं ?' मेरे अर्दली ने कहा कि मैंने कई बार बन्दूक के छोड़े जाने की आवाज सुनी है ! यह सुनते ही मैंने सब आदमियों को वाक़ायदे लैस होकर आने का हुक्म दिया। मेरे अरदली ने कहा—'साहब ? इस वक्त कायदा बेकायदा रहने दीजिये, जल्दी यहाँ से चलिये।' तब मैंने लोगों को यात्रा करने की आज्ञा दी; क्योंकि मैंने सोचा कि अरदली मुझे छावनी की रक्षा के लिये शीघ्र ही वहाँ भेजना चाहता है। कुछ ही दूर जाते-न-जाते मुझे मेनगार्ड की ओर से बन्दूक छूटने की आवाज सुनाई दी। मैंने जब लोगों से इसका कारण पूछा, तब किसी-किसी ने कहा कि ३८ वीं पलटन के सिपाही, अङ्गरेज अफ़सरों पर गोली छोड़ रहे हैं; मेरे साथ प्रायः १०० आदमी थे। मैंने उन लोगों से कहा, कि तुम लोग अभी मेनगार्ड में पहुंच कर अफसरों की जान बचाओ, इस पर उन लोगों ने कहा कि अबतक तो वे कभी के खतम हो गये होंगे, अब तो वहां जाकर सिर्फ जान गँवाना है। आपकी जान बची है, यही गनीमत है। यह कह, सब के सब मुझे घेर कर खड़े हो गये और इसके वाद मुझे छावनी में ले आये; परन्तु वहाँ बहुत ढूँढ़ने पर भी ब्रिगेडियर का कहीं पता न चला !"

अस्तु, ऊपर के विवरण से पाठकोंको भली भांति मालूम हो गया होगा, कि उस समय अँगरेजों की दशा कैसी हो रही थी ? उन्हें सूझता ही न था, कि क्या करें और कहां जायें ?

जब सब लोगों को गोलघर से निकल भागने का हुक्म हुआ तब कई औरतों ने यह कह कर भागने से इन्कार किया, कि जब

तक उनके स्वामी नहीं आते, तब तक वे कहीं न जायेंगी । सवेरे से ही बहुतों के स्वामियोंका पता नहीं था, इसीलिये वे जानेको राजी नहीं होती थीं । पर जब रात तक उनका पता न लगा, तब ३८ वीं पलटन के कप्तान टाइटलर ने सब को भाग जाने के लिये कहा । अब तो दिल्ली में जितने भी गोरे सैनिक पुरुष, कुलनारियां और बालक-बालिकाएँ थीं, सबकी सब भागने को तैयार हो गयीं ।

इस प्रकार क्या गोलघर और क्या नगर, सभी जगहों के अँगरेज प्राण लेकर भाग चले । भागते समय इनकी बड़ी दुर्दशा हुई । कोई जंगल में जा छिपा, कोई टूटे-फूटे मकानों या मन्दिरों में जा छिपा, कोई सङ्कट-पूर्ण रास्ते से चला और किसीको नाव या जहाज पर चढ़ कर भागना पड़ा । कितने लोगों को कई रोज तक अन्न-जल नसीब नहीं हुआ, कितने ही दिन की धूप और रात के पाले से परेशान हो गये । कितनों हो के साथी छूट गये, तो कितने ही बिना खाये-पिये तड़प-तड़प कर मर गये ।

इस प्रकार हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने अँगरेजों की बेतरह दुर्दशा की; परन्तु दूसरी ओर बहुतसे हिन्दुस्तानियों ने ही युरोपियनों की प्राण-रक्षा की, नहीं तो शायद एक भी नाम-लेवा पानी-देवा वहाँ न रह जाता ! जिस ज़ीनत-महल बेगमका सर्वनाश करने के लिये यहां से लेकर विलायत तक के राजपुरुष एक मत हो रहे थे, उन्होंने ही ५० युरोपियनों को अपनी शरण में रख लिया था । हां, पीछे बलवाइयों के हाथ क़िले के आ जाने से उन्हें डर के मारे उन शरणागतों को छोड़ भी देना पड़ा था ।

इसमें कोई शक नहीं, कि सिपाही गण उत्तेजित हो रहे थे और अपने धर्म-नाश की आशंका से मन-ही-मन अँगरेजों से जल कर यहां से अस्तित्व ही मिटा देने को तुले हुए थे। परन्तु उस समय की बहुतसी ऐसी दुर्घटनाओं का वर्णन कितने ही लेखकों ने समाचारपत्रों और स्व-रचित पुस्तकों में किया है, जिनके होने का प्रमाण कहीं नहीं पाया जाता। कितने ही अँगरेजों ने अँगरेज-महिलाओं पर घोर अत्याचार किये जाने की बात लिख कर यहां और विलायत के अँगरेजों के मनमें आतङ्क और घृणा उत्पन्न करने की चेष्टा की थी ; उन्होंने लिखा है; कि "इन दुष्ट सिपाहियोंने कितनी ही युवतियों और बालिकाओं पर पाशविक अत्याचार कर अन्त में उन्हें बुरी तरह मार डाला !" परन्तु इन सब घटनाओं के लिखे जाने का कारण बाजारू गप्प के सिवा और कुछ भी नहीं है। ऐसी-ऐसी कहानियों के बारे में एक सहृदय अँगरेज इतिहास-लेखक का कहना है,—यह सब घृणित अत्याचारों के वर्णन केवल बाजारू गप्पों पर ही अवलम्बित है। ये इसी उद्देश्य से नोन-मिर्च लगा कर लिखे जाते हैं, कि दूसरे सुनते ही जोश में आ जायें। × × × × जैसे अत्याचारों का होना बतलाया जाता है, स्त्रियों पर वैसे अत्याचार करने पर कोई ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो या वैश्य हो, अवश्य ही वह जाति से बाहर किया जाता है। यह बात हिन्दुओं के चरित्र और स्वभाव के बिलकुल विरुद्ध है। जो सब गुण्डे-बदमाश पराया माल लूटना ही अपना पेशा समझते हैं, वे भी ऐसा पाप करते हुए हिचकते हैं। वे केवल लूट-पाट करना ही जानते हैं, इसके पीछे यदि उन्हें किसी

बिवाहिता अँगरेज महिला की अँगूठी छीन लेनी पड़े, तो वे अलबत्ता इसे कर गुजरते थे; क्योंकि उनका उद्देश्य उसके विवाह की पवित्रता नष्ट करना नहीं, बल्कि सम्पत्ति हरण करना ही होता था। मुसलमानों की बात और है। कुरान के उपदेशों के सम्बन्ध में हमारी धारणा चाहे जो कुछ हो, परन्तु नाममात्र के ईसाई विजेताओं ने युरोप के युद्धों में नगरों का जैसा ध्वंस किया है, उनके उपद्रवों के जैसे भयानक चित्र इतिहासों में अङ्कित हैं, उनके मुक़ाबले में दिल्ली की दुर्घटना और बलवाइयों की निष्ठुरता कुछ भी नहीं है।

उक्त इतिहास-लेखक ने जैसा कुछ लिखा है, वही बात यहां भी देखने में आयी। युरोप के इतिहास में ईसाइयों के जो भी भयङ्कर चित्र अङ्कित हों, पर इस सिपाही-विद्रोह के इतिहास में भी इनके कुछ महाभयङ्कर कृत्यों के चित्र अङ्कित होने योग्य हैं। दिल्ली की ऊपर लिखी दुर्घटना के बाद यहां के युरोपियनों ने रास्ते में ही सात नम्बरदारों (इजारदारों) को फांसी दी और चार गांव जला डाले, क्योंकि इन्हें महज़ इस बात का सन्देह हो गया था, कि इन नम्बरदारों ने कुछ भागती हुई अँगरेज महिलाओं की हत्या कर डाली है। सेनापति नीलसाहब भी ईसाई ही थे, जिन्होंने इलाहाबाद से यात्रा करते समय इतने आदमी मार डाले, कि अन्तमें उनकी पलटन के अफसर को यह कहना पड़ा कि,—"बस इस सर्व विध्वंस से हाथ खींच लीजिये—क्या दुनियां से आप आदमी का नाम ही मिटा देना चाहते हैं?" इस बलवे के समय ईसाई सिपाहियों ने बेहथियार लोगों पर गोली छोड़ कर बेरहमी के साथ उनकी जान ले ली,

हिन्दुओं के पवित्र देव-मन्दिर तोड़ डाले और शरण में आये हुए निरपराध बच्चों तक की जान मार कर अपनी वीरता का परिचय दिया। यथास्थान इन सब घटनाओं का वर्णन पाठकगण इस पुस्तक में पायेंगे। जो लोग दिल्ली से जान लेकर भागे थे, उनमें से एक आदमी एक गांव में जाकर बोला, कि तुम लोग मुझे यहां छिपा कर कहीं रखो, नहीं तो मैं तुम लोगों को गोली मार दूँगा। शरण माँगने का यह कैसा अच्छा ढङ्ग है! अस्तु, इन सब सच्ची घटनाओं के वर्त्तमान रहते बाजारू गप्पों के आधार पर लिखी हुई बातों को कोई कब मान सकता है?

खैर, दिल्ली से अँगरेज़ों का अड्डा उखड़ गया। बहुतेरे तो मारे गये और कितने ही जान बचा कर इधर-उधर भाग गये। १६ वीं मई के बाद तो वहां अँगरेज का एक बच्चा भी न रहा। इधर मेरठ में ऐसी मार पड़ी थी, कि दिल्ली से एक दम भाग जाना ही पड़ा। जितने दिनों से अँगरेजों के पैर इस जमीन पर पड़े थे, उतने दिनों के अन्दर उन्हें कभी इस तरह की बेभावकी नहीं सहनी पड़ी थी। बड़े-बड़े पदाधिकारियों को नंगे बदन और नंगे पांवों जान लेकर दिल्ली से मुंह फेर लेना पड़ा! मुगल सम्राट् बहादुरशाह की चारों ओर दुहाई फिर गई। बलवाइयों ने उन्हें ही देशका हर्त्ता कर्त्ता, और विधाता मान लिया।

कहते हैं, कि इन दिनों दिल्ली के दरियागञ्ज बाजार में, जहाँ अँगरेजों की बस्ती थी, वहीं बलवाइयों का प्रधान अड्डा था। शहर का सबसे बड़ा और प्रधान रास्ता—चांदनी चौक—पांच दिनों त

बन्द रहा। अन्तमें सम्राट् स्वयं नगर से बाहर हुए और लोगों से दूकान खोलने के लिये अनुरोध करने लगे। तब लोगों ने दूकानें खोलीं। पहले तो बादशाह ने सिंहासन पर बैठना नहीं चाहा था; पर जब सिपाहियों ने उन्हें विश्वास दिलाया कि कलकत्ते से लेकर पेशावर तक के सब अँगरेज इसी तरह मार डाले गये हैं, तब वे सिंहासन पर बैठे; क्योंकि वे जानते थे कि इस जोश के जमाने में सिपाहियों के विरुद्ध एक बात भी बोलना अपनी जान के लिये आफत बुलाना है। सिपाहियों ने उन्हें सिंहासन पर बिठा, समस्त भारतवर्ष का स्वाधीन सम्राट् मान लिया। इसके बाद तो वे बादशाह को अपने इशारे पर नचाने लगे। कहते हैं, कि एक दिन बादशाह ने अपने शहर के महाजनों को बुला कर कहा, कि अगर तुम लोग सिपाहियों की बात न मानोगे, तो मारे जाओगे। फिर क्या था? महाजनों ने सब सिपाहियों को २० दिन तक दाल-रोटी देनी स्वीकार कर ली। परन्तु सिपाहियों ने इससे राजी न होकर यह प्रस्ताव पेश किया, कि वे लोग हर घुड़सवार को एक रुपया और हरएक पैदल सिपाही को चार आना रोज दिया करें। लाचार उन्हें यह प्रस्ताव मान ही लेना पड़ा। यद्यपि लेफ्टिनेण्ट विलोबी ने अस्त्रागार को बारूद से उड़ा दिया था, तथापि वे उसका सारा सामान नष्ट न कर सके थे। बहुत कुछ गोले, गोलियां और बारूद वहां मिली, जिन्हें सिपाहियों ने खुले आम बाजार में बेच डाला।

सिपाहियों को बहादुरशाह के नाम पर काम करते देख, बहुतेरे अँगरेजों की उस ससय यही धारणा हुई कि यह सारा षड्यन्त्र
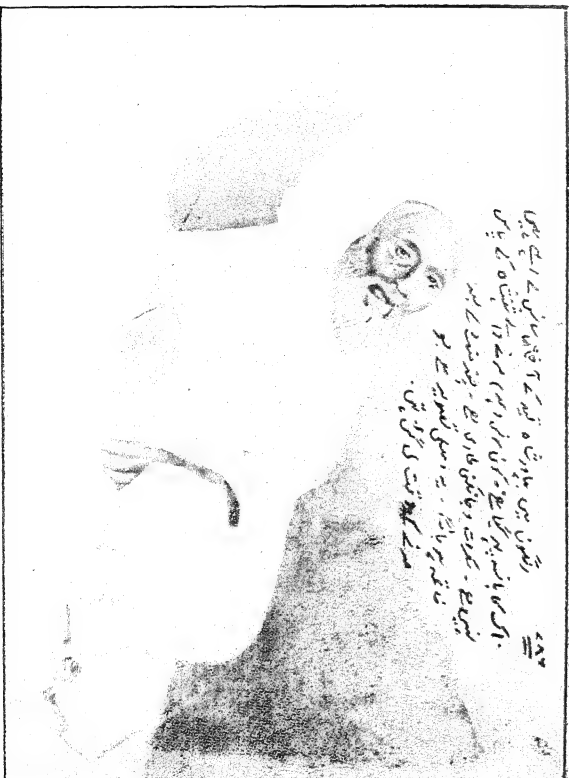
अन्तिम मुग़ल-सम्राट् बहादुरशाह
रंगूनमें नज़रबन्द—अन्तिम सांस ले रहे हैं।

उन्हीं का रचा हुआ है ; पर बेचारे बूढ़े बादशाह को यह अपराध व्यर्थ ही लगाया गया। आज तक उनके विरुद्ध अभियोग प्रमाणित भी न हो सका और बड़े-बड़े ऐतिहासिकों ने उनको एकबारगी निर्दोष माना है। साथ ही ३८ वीं पलटन के सिपाहियों पर जो दोषारोपण किया जाता है, वह भी ठीक नहीं मालूम पड़ता ; क्योंकि इस पलटन के किसी अफसर पर आँच नहीं आयी।

जो हो, अधिकांश अँगरेजों ने बहादुरशाह को ही षड्यन्त्र का नेता बताया है, और यह भी प्रतिपन्न किया है, कि ३१ वीं मई को सारे हिन्दुस्तान में एक ही वार एक समय अँगरेजों पर धावा बोल देने की तैयारी महीनों पहले से हो रही थी। परन्तु भिन्न-भिन्न लेखकों की लिखी हुई पुस्तकों को पढ़ने और विचार करने से तो यही मालूम पड़ता है, कि यदि कोई ऐसा व्यापक षड्यन्त्र होता, तो अँगरेजों को अपनी जान छुड़ानी मुश्किल हो जाती और सिपाहियों ने भी जहां-तहां बेढङ्गे तौर से युद्ध न कर योग्य सेनापतियों के अधीन ठिकाने से युद्ध किया होता। भिन्न-भिन्न स्थानों के लोग भिन्न-कारणों से अँगरेजों के शत्रु बन गये थे। यदि सबकी एक सांठ-गांठ होती तो वे इधर-उधर बिखरे हुए न रहते और एक बहुत बड़ी फौज तैयार कर एक ही जगह लड़ते और अपने बल की परीक्षा करते। उस समय सम्भव था कि वे सफल भी हो जाते ; पर यहां तो वैसी कोई बात नहीं थी और न ऐसा कोई नेता ही था, जो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक के लोगों को अपने इशारे पर चला सके।

पांचवां अध्याय ।

लार्ड केनिङ्ग की चेष्टा ।

दिल्ली की इस दुर्दशा का समाचार पाते ही लार्ड केनिङ्ग इस विपत्ति की बाढ़ को रोकने के लिये मुस्तैद हुए। उन्होंने उन सब स्थानों की रक्षा का बन्दोबस्त करना चाहा, जो विद्रोहियों के अड्डे हो रहे थे। इसी अभिप्राय से उन्होंने बोर्ड-आफ़-कण्ट्रोल के सभापति महोदय के पास निम्नलिखित आशय का एक पत्र लिखा था,—

"बङ्गाल के बारकपुर से लेकर पश्चिमोत्तर प्रदेश के आगरा तक पूरा पूरा खतरा है। इन साढ़े सातसौ मिलों के दर्म्यान सिर्फ दानापुर में ही गोरी पल्टन है। बनारस में सिर्फ सिखों की फौज है; इलाहाबाद का भी यही हाल है। इधर इन सभी जगहों के देशी सिपाही अँगरेजों से फिरण्ट हो रहे हैं। यदि इन्हें मालूम हो जायगा, कि दिल्ली पर सिपाहियों ने कब्जा कर लिया है तो ये जहाँ-तहाँ सरकारी किलों और खजानों पर छापा मारने पर मुस्तैद हो जायेंगे। इसी लिये मैं इस बातपर विशेष जोर दे रहा हूं, कि गोरी पल्टनें एक जगह इकट्ठी हो जायें और दिल्ली से बलवाई निकाल डाले जायें।"

इसी आशय से उन्होंने गोरी फौजों को जमा करना शुरू कर दिया; परन्तु वे जिस धैर्य और शान्ति के साथ कार्य कर रहे थे;

उससे कलकत्ते के अँगरेजों को सन्तोष नहीं हुआ। वे उनकी इस धीरता को अयोग्यता, कायरता समझ रहे थे। इसीलिये कलकत्ते भरके अँगरेज अपनी जानको खतरे में ही समझने लगे थे। इसी तरह के अकारण भय और मिथ्या-अशङ्का के मारे बहुतसे अँगरेज तो रात-दिन जहाजों में ही पड़े रहने लगे, कितने ही किले में जा छिपे, कोई इधर-उधर सुनसान और अँधेरी जगहों में छिपे रहते, कोई इंङ्गलैण्ड चले जाने के लिये जहाज में 'सीट-रिज़र्व' कराने लगे और कोई-कोई जो बड़े बाँके बहादुर थे; वे सदा बन्दूक और पिस्तौल लिये तैयार रहने लगे। परन्तु लार्ड केनिङ्ग जानते थे, कि कलकत्तेवालों का यह भय व्यर्थ है, इसीलिये वे दूर उन्हीं स्थानों की रक्षा का ध्यान विशेषतया रखते थे, जहां के लोगों पर वास्तव में बड़ी विपद् थी।

मई का महीना खतम होते-न-होते कलकत्ते के युरोपियन बहुत घबरा उठे। वे लार्ड केनिङ्ग की दिली बात न समझ कर व्यर्थ ही उनकी निन्दा करने लगे। साथ ही कलकत्ते की 'बङ्गाल चेम्बर आफ़ कामर्स' आदि प्रधान-प्रधान सभाओं की ओर से उनके पास प्रार्थना-पत्र भी पहुंचने लगे। फ्राँसीसी और अमेरिकन आदि अन्य विदेशी भी इस विषय में अँगरेजों का साथ देने लगे। इन आवेदनों में अपनी खास स्वेच्छासेवक सेना संगठित करने की अनुमति मांगी जाती थी, परन्तु लार्ड केनिंगने इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझी। इसीलिये उन्होंने इन आवेदनों का यही उत्तर दे दिया, कि आप लोग विशेष कांस्टेबल भले ही हो जायें, पर स्वेच्छासेवक-सैन्य संगठन करना तो अनावश्यक है। इस जवाब से सभी अँगरेज

बड़े लाट पर कुढ़ गये। परन्तु लार्ड केनिङ्ग की यह कार्रवाई भी सबके भले ही के लिये थी।

इधर यहां के हिन्दुस्तानियों में भी तरह-तरह की अफवाहें उड़ रही थीं। जाति और धर्म के नाश का भय तो इन्हें पहले से डराये ही हुए था, अबकी बार बलवे के कारण जानोमाल के भी खतरे में पड़ जाने की उन्हें आशङ्का होने लगी। उनके इस भय को दूर करने के लिये लार्ड केनिङ्ग ने २० वीं मई को एक सूचना निकाली, जिसमें लिखा था,—"बाजार में इस बातकी अफवाह बड़े जोरों से उड़ रही है; कि मैंने हिन्दुओं की जान मारने के लिये उन तालाबों में जिनमें वे स्नान करते हैं, गोमांस डाल देने का हुक्म जारी किया है, और लोगों को महारानी के जन्मोत्सव के दिन जिसमें बाध्य होकर अपवित्र वस्तुएँ खानी पड़ें, इस लिये तमाम बाणिकों की दूकानें बन्द रखने की आज्ञा दे रखी है। बुद्धिमानों ने मुझे इन सब अफवाहों का खुले-आम खण्डन कर देने की आवश्यकता सुझायी है। अबतक ऐसा नहीं किया गया, इसीलिये इन लोगों को हथियार वगैरह पैना रखना पड़ा है। इन सब झूठी अफवाहों का असर रोकने के लिये मुझसे जहां तक बन पड़ रहा है, वहां तक युक्ति-सङ्गत उपायों से काम ले रहा हूं। मुझे आशा है कि धीरता और दृढ़ता के साथ चलने से सब के हृदय शान्त हो जायेंगे।"

महामना लार्ड केनिङ्ग, इसी प्रकार धीरता के साथ सब बातों का विचार कर अपने कर्त्तव्यों का पालन कर रहे थे और अपने ही भाई-बन्दों की चिल्लाहट मचाने पर भी विचलित न होते थे।

१५ वीं मई को महारानी का जन्म-दिवस पूर्ववत् धूम-धाम के साथ मनाया गया। लार्ड केनिंग ने इस दिन ऐसी कोई हरकत नहीं होने दी, जिससे लोगों की राजभक्ति विचलित हो, उन से कहा गया कि अपने शरीर-रक्षक देशी सिपाहियोंके स्थानमें वे गोरे सिपाहियों को रखें, पर उन्होंने इसे न माना। यह भी कहा गया कि महारानी के लिये तोपों की सलामी न दागी जाय; पर उन्होंने यह प्रस्ताव भी अस्वीकार कर दिया। इस उपलक्ष्य में नये टोटे व्यवहार करने से सिपाही लोग इन्कार करेंगे और झूठमूठ का फिसाद उठ खड़ा होगा। इसी लिये उन्होंने एक पल्टन को पुराने टोटे ले आने के लिये बारकपुर भेज दिया। रातको गवर्नमेण्ट हाउस में जो नाच होनेवाला था, उसमें कितने लोगों ने इसी डर के मारे जाना नहीं चाहा कि कहीं बहुतसे युरोपियन स्त्री-पुरुषों का जमाव देख, दुश्मन उसी मकान पर हमला न कर दें। इसी समय मुसलमानों का 'ईद' नामक त्योहार भी आ पड़ा था। इस लिये अँगरेजों को डर था कि इस दिन केवल कलकत्ते के ही नहीं बल्कि और-और जगहों के मुसलमान भी गवर्नमेण्ट को तंग करने की चेष्टा करेंगे; किन्तु कलकत्ते में कोई गड़बड़ नहीं हुई।

इधर लार्ड केनिंग दिल्ली के उद्धार और पश्चिमोत्तर के अन्य नगरों की रक्षा के विषय में अपने मन्त्रियों से सलाह कर रहे थे; परन्तु इस समय ये दोनों कार्य एक साथ होने असम्भव थे। गोरी फौज की तादाद बहुत ही थोड़ी थी, इसलिये कौंसिल के भिन्न भिन्न सदस्यों के भिन्न-भिन्न मत थे। इसीसे कुछ लोगों ने कुछ दिनों

के लिये दिल्लीके उद्धार की बात ताक पर रख कर और-और स्थानों की रक्षा करने पर ही अधिक जोर दिया, किन्तु सुचतुर 'सरजान-लों' ने खोये हुए नगरों को ही फिर अधिकार में लाने की सलाह दी। यह बात गवर्नर जेनरल को भी पसन्द आ गयी। उन्होंने ठीक सोच लिया कि पहले दिल्ली को ही हाथ में कर लेना चाहिये; क्योंकि ऐसा न करना बड़ी भारी राजनीतिक भूल समझी जायेगी। कारण, दिल्ली पर बूढ़े बहादुरशाह की ही हुकूमतका बोलबाला हो जानेसे विद्रोहियों को सारे देश में बलवा करा देने और अँगरेजों का रहना दुश्वार कर देने का बड़ा भारी मौका मिल जायेगा। दिल्ली हाथ में आ जाने से दुश्मनों के दिल दहल जायेंगे—उनकी हिम्मत टूट जायगी और बलवे का नामोनिशान मिट जायेगा।

फिर क्या था? बड़े लाट साहब दिल्ली के उद्धार की चेष्टा करने के लिये रोज ही प्रधान सेनापतिके पास पत्र भेजने लगे। वे इस समय घटनास्थल से हजारों मील की दूरी पर थे, इसलिये ठीक-ठीक सारी व्यवस्था करना उनके लिये सम्भव नहीं थी; परन्तु पश्चिमोत्तर प्रदेश के छोटे लाट और पञ्जाब के कमिश्नर पर उनका बड़ा भारी विश्वास था। इसी से इन्हीं दोनों व्यक्तियों के बल-भरोसे पर अपना काम निकालना चाहा।

इस समय कलकत्ते में और उसके आस-पास केवल दो पलटनें गोरे सिपाहियों की थीं। इनमें ५३ वीं पलटन तो कलकत्ते के किलेमें रहती थी और ८४ वीं चुंचुड़े में। बंगाल की रक्षा का भार इन्हीं दोनों पर था। कलकत्ते से प्रायः ४०० मील दूर दानापुर के

सिवा आस-पास के और किसी स्थान में गोरी पल्टन नहीं थी। लार्ड केनिंग ने पहले पूर्वोक्त दोनों पलटनों से ही काम लेना चाहा। कई कारणों से राजधानी में गोरी फौज रखना बहुत ही जरूरी था। कलकत्ते के किले में एक बड़ा भारी अस्त्रागार था, जिसमें हर तरह के हथियार रहते थे; उससे कुछ ही दूर काशीपुर में तोप और बन्दूक का कारखाना था; इच्छापुर में बारूद बनती थी और दमदम में तरह तरह के अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा देने के लिये एक अस्त्र-शिक्षाशाला थी, जिसमें नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र सदा मौजूद रहते थे। चौरङ्गी से थोड़ी ही दूर पर अलीपुर में कैदखाना था, जिसमें बहुतसे बदमाश कैद रहते थे। इन सब के सिवा गवर्नमेण्ट के कपड़े के गोदाम थे, तरह-तरह की फौजी पोशाकें रहती थी। टकसाल, खजाने और बेङ्क में रुपयों का ढेर लगा था। अतएव शत्रु अगर हानि ही पहुंचाना चाहे, तो कलकत्ते और उसके आस-पास के स्थानों में बहुत कुछ उपद्रव कर सकते हैं, इसलिये यहां तो हरदम गोरी पल्टन रहनी ही चाहिये थी। यही सोच कर उन्होंने कलकत्ते में गोरे सिपाहियों को टिका रखा और अन्य स्थानों के विषय में विचार करते हुए स्थानीय अधिकारियों के पास आवश्यक सूचना भेजते रहे। सारे मई महीने भर उनके पास जगह-जगह से यही खबर मिलती रही, कि जहाँ पहले उपद्रव हो चुके हैं, और कहीं कुछ गोलमाल नहीं है। बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ और आगरे से सन्देशे आते रहे। इधर गवर्नर-जेनरल साहब भी चुप नहीं थे—वे भीतर ही भीतर अपनी कार्रवाई भी करते रहे। उन्होंने देशी सिपाहियों और साधारण

प्रजा पर रोब जमाने के लिये विलायत से थोड़ीसी फौज मँगवाली। इस फौजका सेनापति बड़ा ही दिलेर और होशियार था। इस फौजके आने से, भय से व्याकुल अँगरेजों के जी में जी आया।

कर्नल नील मदरास की युरोपियन फौज के सिपहसालार होकर कार्यक्षेत्र में अग्रसर हुए। ये २३ वीं मई को अपनी फौज की एक टुकड़ी के साथ कलकत्ते से रवाना हुए। क्रमशः उनकी बची-बचायी फौज जहाज से उतर कर उत्तर पश्चिम प्रदेश की ओर चल पड़ी। इस समय केवल कलकत्ते से रानीगञ्ज तक ही रेल जारी हुई थी। गवर्नमेण्ट ने सिपाहियों की सुविधा के लिये बैलगाड़ियों और घोड़े-गाड़ियोंका प्रबन्ध कर दिया। इसके सिवा स्टीमर द्वारा भी फौजें रवाना हुई थीं। कर्नल नील अपनी फौज के साथ हबड़े के स्टेशन पर पहुंचे। कई कारणों से उनके बहुतसे सिपाही गाड़ी छूटने के समय के पहले स्टेशन पर न पहुंच सके; इसलिये स्टेशनमास्टर ने बिगड़ कर कहा, कि पल्टनके लिये कितनी देर तक गाड़ी रुकी रहेगी? अब तो गाड़ी जरूर ही खुल जायगी। इसपर सेनापति ने आपत्ति उपस्थित की और बहुत तरह से स्टेशनमास्टर को समझाना शुरू किया। पर वह क्यों मानने लगे? इतने स्टेशन के ही एक अधि-कारी ने कर्नल को फटकार बतलाते हुए कहा,—"आप फौज के सिपाहियों को ही चराया कीजिये, रेलवे के कामों में क्यों टांग अड़ाते हैं?" यह सुन, कर्नल नील को बड़ा गुस्सा चढ़ आया और उन्होंने रेलवे वालों को नीच, विश्वासघातक और अँगरेजी सरकार का शत्रु बतलाते हुए अपनी पल्टन के सिपाहियों को हुक्म दिया,

कि गाड़ी का रास्ता रोक दो—जब तक हमारे सब सिपाही नहीं आ जाते, तबतक हरगिज गाड़ी न जाने पायेगी।

तदनुसार गाड़ी रोक दी गयी और नियमित समय से दस-पन्द्रह मिनट के बाद जब सब सिपाही उस पर सवार हो गये, तभी खुली। कर्नल की इस दृढ़ताकी बात जिसने सुनी, उसीने उनकी तारीफ की और सब किसी को भरोसा हो गया, कि इस सेनापति के द्वारा बहुत कुछ काम बनेगा।

मई का महीना पूरा होते-न-होते पश्चिमोत्तर प्रान्तमें भयङ्कर विद्रोहाग्नि सुलग उठी। जिसे देखो; वही अँगरेजों का जड़मूल से सत्यानाश करने को उतारू दिखाई देता। मेरठ में अँगरेजों की पूरी दुर्गति हो चुकी थी, दिल्ली से उनका बोरिया-बधना उठ ही गया था और मुगल बादशाह का रोब एकबार फिर सर्वत्र छा गया था; अबकी और-और स्थानों में भी अँगरेजों की सत्ता हिलती हुई मालूम पड़ने लगी।

तब लाचार होकर गवर्नमेण्ट ने अपराधियों को दबाने के लिये दमन पर कमर कसी। ३० वीं मई को गवर्नर-जेनरल की मन्त्रिसभा में इस आशय का एक कानून पेश हुआ, कि जहाँ कहीं के सिपाही बलवा करेंगे, वहाँ के सर्वसाधारण के जानोमाल की रक्षा का भार, शासन-विभाग की किसी श्रेणी, किसी वयस और किसी तरहके अख्तियार वाले कर्मचारीके हाथ में दे दिया जायेगा। इसी आईनके अनुसार गवर्नमेण्ट ने सर्वसाधारण में इस बात की घोषणा की, कि जो कोई मनुष्य महारानी या गवर्नमेण्ट के विरुद्ध युद्ध करेगा या

युद्ध के लिये चेष्टा करेगा अथवा किसी तरह की साजिश में शामिल होगा, उसे फाँसी, कालेपानी या कैद की सजा दी जायेगी। जिस किसी विभाग में किसी तरह का दङ्गा फिसाद होगा, वहीं यह कानून लागू होगा। जिन लोगों पर सरकार के साथ शत्रुता करने, नर-हत्या करने अथवा चोरी-डकैती अथवा अन्यान्य गुरुतर अपराध करने का अभियोग उपस्थित होगा, उनका विचार गवर्नमेण्ट कमीशन द्वारा करायेगी। ऐसी शक्ति पाये हुए एक या अनेक कमिश्नरों को सभी स्थानों में विचार करने का अधिकार होगा। वकील या असेसर के न रहने पर भी वे लोग उक्त प्रकार के अपराधियों को फाँसी, कालेपानी या कैद की सजा दे सकेंगे। इन का ही हुक्म सब पर बाला होगा—इस पर किसी ऊँची अदालत में अपील नहीं की सकेगी।

गवर्नर-जेनरल के सम्मति दे देने पर यह कानून ८ वीं जून को पास हो गया। इसी के बल पर हरएक अँगरेज को बेहद अख्तियारात दे दिये गये; किन्तु हाँ, विचार-विभागके कर्मचारियों को अलबत्ते असाधारण अधिकार प्राप्त हुए। मन्त्रिसभा के साथ परामर्श करके गवर्नर जेनरल ने यही निश्चय किया, कि पुराने या किसी दर्जे के कर्मचारी, बङ्गाल प्रेसीडेन्सी की किसी छावनी में पाँच युरोपियन और देशी सज्जनों को लेकर फौजी अदालत कायम कर सकते हैं; जिसमें इन सब अपराधियों के मामलों पर विचार करके फैसलों पर विचार करके फैसले सुनाये जायेंगे।

छठा अध्याय ।

लड़ाई जारी ही रही ।

हम पहले ही कह चुके हैं, कि इस समय भारतवर्ष के प्रधान सेनापति जेनरल आनसन शिमले में थे। वे मामले की इस भयङ्करता को समझ नहीं सके। उन्हें इस बात का सपना भी न आया, कि इस विप्लव की वजह से अँगरेजी सल्तनत की नींव ही हिल जा सकती है। वे मौज से इस गरमी के जमाने में शिमले की सर्द हवा का मजा ले रहे थे ! परन्तु यह मजा जल्दी ही किरकिरा हो गया। १२ वीं मई को अम्बाले से एक नौजवान दिल्ली की घटनाओं का संक्षिप्त विवरण बतलाने वाला एक पत्र लेकर उनके पास आ पहुँचा। उस पत्र में मेरठ के सिपाहियों के बलवे का भी हाल लिखा हुआ था। घण्टे ही भर बाद उनके पास एक और पत्र आया। इसमें भी यद्यपि संक्षेप में ही सब हाल लिखा हुआ था, तथापि युरोपियनों की हत्या होने का हाल खुलासा लिखा हुआ था। परन्तु इतने पर भी वे परिस्थिति की गुरुता का अनुभव न कर सके। उन्हों ने अपनी जिम्मेवारी का जरा भी ख्याल न किया। हाँ, इतना तो वे जरूर समझ गये कि इस समय चुप बैठे रहनेसे काम नहीं चलेगा, कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा। उन्होंने सोचा, कि आस-पास में जितने गोरे सैनिक मिलें, सबको इकट्ठा कर दिल्ली के बलवाई सिपा-

हियों की गति के रोध करने में ही भलाई है। यही सोच कर उन्होंने १२ वीं मई को एक आदमी मसूरी नामक स्थान को रवाना किया; क्योंकि वहां ७५ नं० की पलटन थी। उसी पलटन को उन्होंने और-और स्थानों के युरोपियन सैनिकों को भी बतलाये अनुसार इधर-उधर जाने के लिये तैयार रहने का हुक्म दे दिया। इन्होंने इस प्रकार आवश्यकता के अनुसार सैनिकों की सहायता प्राप्त कर लेने का प्रबन्ध तो किया; पर उनसे शिमले की बहार नहीं छोड़ते बनी। उन्होंने लार्ड केनिंग को लिखा,—"मैं इस मामले का शुरू से आज-तक का पूरा हाल जानने को बहुत ही उत्सुक हो रहा हूं; कृपा कर लिखेंगे और यदि अवस्था बड़ी ही विकट हो तो मुझे अम्बाले जाने का हुक्म देंगे। बस मैं झटपट चला जाऊँगा। इस पत्र के भेज चुकने पर उनके पास तार से मेरठ का पूरा समाचार प्राप्त हुआ। अब भी उनके चित्त में चञ्चलता न हुई; वे पहाड़ की ही तरह अचल बने रहे। बहुत कुछ सोच-विचार करने के बाद उन्होंने गोरे सिपा-हियों की दो टुकड़ियाँ अम्बाले की ओर रवाना कीं। सिरमूर की गोरखा पलटन को देहरादून से मेरठ जानेका हुक्म हुआ। पहले तो प्रधान सेनापति ने यही सोचा था कि दिल्ली का सिलहखाना बल-वाइयों के हाथ आ गया है; इसीलिये उन्होंने और-और स्थानों के अस्त्रागारों की रक्षा के लिये शीघ्र ही पलटनें रवाना कर दीं। उन्हों ने बड़े लाट को लिख भेजा,—"फिरोजपुर के किले की रक्षा ६१ वीं पलटन करेगी और गोविन्दगढ़ की रक्षा का भार ८१ वीं पलटन पर रहेगा। जालन्धर की ८ वीं पलटन फिल्लौर के किले की रक्षा करेगी

और वहाँ की तोपें सब बराबर चढ़ी रहेंगी। नवसारी की गुर्खा पल्टन और ९ वीं घुड़सवार पलटन तोपखाने के साथ-साथ अम्बाले रवाना कर दी जायेगी।"

इसके बाद प्रधान सेनापति साहब ता० १४ वीं मई को अम्बाले के लिये रवाना हो गये और दूसरे दिन सवेरे ही वहाँ पहुंच गये। यहाँ आते ही आप के पास तरह-तरह की भयङ्कर खबरें पहुंचने लगीं। वे घबरा उठे। उन्हें आशङ्का होने लगी कि उन्हें इस भयङ्कर उपद्रव को दबाने में कहीं से किसी प्रकार की सहायता नहीं प्राप्त होगी। पञ्जाब के समस्त सैनिक उन्हें बलवाई ही प्रतीत होते थे और उनके साथ काम करनेवाले बड़े-बड़े सरकारी अफसर भी उनकी हरकतों से असन्तुष्ट थे। अतएव सम्भव था, कि वे भी उनकी मदद के लिये तैयार न हों। पञ्जाब के सैनिकों का तो उन्हें जरा भी भरोसा नहीं था। एक तो उनकी तन्दुरुस्ती अच्छी नहीं थी, दूसरे यहाँ आनेसे सालभर के भीतर ही उन्हें इतनी बड़ी भयङ्कर स्थिति का सामना करना पड़ा! इसलिये वे घबरा उठे। इसी समय पञ्जाब के प्रधान कमिश्नर सर जान लारेन्स ने (जो पीछे लार्ड लारेन्स कह-लाये) उन्हें अम्बाले के सिपाहियों के हथियार छीन लेने की सलाह दी। पर उन्हें यह राय नहीं पसन्द आयी; क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं अम्बाले के फौजी अफसर इस कार्रवाई का बिरोध न करें। कारण, इन अफसरों ने सिपाहियों से इस बात की प्रतिज्ञा की थी कि वे उनके हथियार न छीनने देंगे। अब तो प्रधान सेनापति बड़े फेर में पड़े। उनसे इन सिपाहियों को साथ लेकर दिल्ली की यात्रा

करते भी न बनी और इन्हें हथियारबन्द की हालत में छोड़ जाते भी न बना। लाचार, पञ्जाब के फौजी अफसरों की बात मान कर उन्होंने अम्बाले के देशी सिपाहियों के हथियार नहीं छिनवाये और उन्हें उनकी भलमनसाहत और ईमानदारी पर छोड़ दिया। पर सिपाहियों ने प्रधान सेनापति की इस नरमी का भी लिहाज नहीं किया और कुछ ही दिनों के भीतर उन्होंने सरकार के दिये हुए हथियारों को सरकार अँगरेजके कर्मचारियों के विरुद्ध उठा ही लिया। अब तो प्रधान सेनापति मि० आनसन को अपनी गलती साफ मालूम पड़ने लगी और वे चकराये। इस समय सिर्फ दो अँगरेज राजकर्मचारी उनकी मदद करने के लिये आगे बढ़े। इनमें एक तो अम्बाले के डिपटी कमिश्नर मि० फारसेट थे और दूसरे सतलज के तीरवर्ती प्रदेशों के कमिश्नर मि० जार्ज बार्नेस। ये लोग बड़ी फुर्ती और मुस्तैदीके साथ सिपाहियों के बलवे को दबाने के लिये तैयार हो गये। दिल्ली की गड़बड़ का समाचार पाते ही फारसेट साहब ने मि० बार्नेस को आत्मरक्षा का पूरा-पूरा बन्दोबस्त करने के लिये पत्र लिखा था। उस समय बार्नेस साहब कसौली नामक स्थान में थे। उन्होंने सब से पहले अम्बाले की रक्षा के लिये सिक्ख-पुलिस—की एक पलटन तैयार की। इसके बाद सतलज के तीरवर्त्ती प्रदेशोंकी रक्षाका बन्दोबस्त करना शुरू कर दिया। सतलज से यमुना तक फैले हुए लम्बे-चौड़े प्रदेश में बहुत से सिक्ख सरदारों की जमींदारी थी। वे सब के सब अँगरेजों की मदद करने के लिये तैयार हो गये। सिपाही-विद्रोह के इतिहास में यह बात स्पष्ट अक्षरों में लिखी हुई

है, कि जहाँ-कहीं सरकार की दूषणीय नीति के कारण सिपाहियों में उत्तेजना फैली और वे उसका बदला लेनेके लिये हथियार लेकर उठ खड़े हुए, वहीं के लोगों ने उनका विरोध किया और अँगरेजों की मदद की। जिस समय इन विद्रोहियों ने अँगरेजी सरकार को पूरी तरह परेशान कर डाला था, उस समय इनके देशी भाइयोंने ही सरकार को मदद पहुंचायी। जब विद्रोही सिपाही पूरे पागल बन गये थे और इसी पागलपन के कारण अँगरेजों के स्त्री-बच्चों के खून से भी अपनी तलवार को रँगते हुए नहीं शर्माते थे, तब यहीं के लोगों ने अपनी जान आफत में डाल कर उनकी रक्षा की थी। इस समय क्या भारत के राजे-रजवाड़ों तथा जमींदारों ने, क्या वीर पुरुषों ने, क्या शिक्षितों ने, क्या अशिक्षितोंने—सभी ने अँगरेजों की तन-मन-धन से सहायता की थी। धनी-दरिद्र सभी इस विद्रोह-दमन में अँगरेजोंका साथ देने के लिये तैयार हो गये थे। सिपाहियों ने जिस समय अँगरेजी सलतनत को नेस्तो-नाबूद करने का बीड़ा उठा लिया था; और मेरठ में बहुतों को मार कर दिल्ली को अपने पैरों के नीचे कर लिया था, उस समय हिन्दुस्तानियों की ही दया और परोपकारिता के कारण उन अँगरेजों ने इस महाविपद्से छुटकारा पाया था। इस बातसे कोई अँगरेज इतिहास-लेखक इनकार नहीं कर सका और न कर सकता है।

जार्ज बार्नेस जिस समय अपने शासनाधीन प्रदेशों की रक्षा करने के लिये तैयार हुए, उस समय उन्होंने पटियाला और झीन्द के राजाओं से सहायता मांगी। पटियाला के राजा ने उनके हुक्म

की झटपट तामील की और एक पलटन थानेश्वर को रवाना कर दी। यह पलटन करनाल के रास्ते में अम्बाले से आने वाले सिपाहियों की राह रोके पड़ी रही। इधर झीन्द के राजा साहब ने तो दिल्ली का समाचार पाते ही आप-से-आप पूछा था कि इस समय हमारे लिये क्या आज्ञा होती है ? इतने में ही बार्नेस साहबका पैगाम आ पहुंचा। फिर क्या था ? वे झट करनाल की रक्षा के लिये तैयार हो गये। इधर करनाल के नवाब साहब भी निश्चिन्त नहीं थे। वे भी रुपया, फौज सिपाही सब कुछ देने के लिये तैयार हो गये। इसी तरह अँगरेजों को जगह-जगह से मुंहमाँगी और बिना मांगी सहायता प्राप्त होने लगी।

१३ वीं मई को बार्नेस साहब अम्बाले में आये। वहां दिल्ली और मेरठ की घटनाओं के कारण लोगों में जो उत्तेजना फैली हुई थी, वह इनके आने से दब गयी। उन्होंने यमुना के पुल पर पहरे का प्रबन्ध किया और स्थानीय राजे-रजवाड़ों की सेनाओं को भेज कर उस विभाग की शान्ति-रक्षा का भी पूरा-पूरा बन्दोबस्त कर दिया। इसके बाद बार्नेस और उनके सहयोगी फारसेट साहब प्रधान सेनापति की सेना के लिये सवारियों और रसद वगैरह का बन्दोबस्त करने लगे, इस समय क्या कोठीवाल, क्या आढ़तिये, क्या ठेकेदार, क्या कुली-मजदूर—सभी सरकारी काम करने से जी चुरा रहे थे ; क्योंकि उन्हें पूरा विश्वास हो गया था, कि अब इस देश से कम्पनी की हुकूमत उठने में देर नहीं है ; पर बार्नेस और फारसेट साहबों के सुप्रबन्ध से प्रधान सेनापति की सेना के लिये सब जरूरी सामान शीघ्र ही इकट्ठे कर दिये गये।

इतने में खबर आयी, कि मसूरी की गुर्खा-पल्टन भी बागी हो गयी है और वह प्रधान सेनापति के सब आवश्यक सामानों को लूट कर शिमले पर चढ़ाई करने की धुन में है। यह खबर पाते ही शिमले और उसके आस-पास के अँगरेजों में घोर आतङ्क फैल गया। उन्होंने यह जानने की तो कोशिश नहीं कि, कि गुर्खों में क्यों असन्तोष फैला है, उलटे यह समझ कर कि ये लोग भी मेरठ वालों की तरह अँगरेजों के स्त्री-बच्चों की जान ले लेंगे, वे लोग जिधर सींग समाया; उधर ही भागने लगे। असल बात यह थी, कि गुर्खों को तनख्वाह बाकी पड़ गयी थी, इधर उन्हें फिल्लौर जाने का हुक्म दे दिया गया, इसीलिये उन्होंने जाने से इनकार कर दिया ; क्योंकि यदि ये चढ़ाई पर चले जाते, तो फिर इनके बाल-बच्चों के पालन-पोषण की कौन व्यवस्था करता ? मामूली नौकर-चपरासियों की हिफाजत में उनकी स्त्री-बच्चों को रखने की जो बात सरकार की ओर से कही गयी, उससे भी उनके जी में बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ।

इसी क्रोध के कारण उन्होंने अपने सेनापति मेजर बैगट की बात को नहीं माना और जाने से साफ इन्कार कर दिया। फिर क्या था चारों ओर यह खबर उड़ा दी गयी, कि ये लोग भी बागी हो गये। सच पूछिये, तो उस समय अँगरेजों की मति मारीसी गयी थी, इसीलिये वे केवल चारों ओर भीषणता की मूर्ति ही देख रहे थे और किसी बात की तह तक पहुंचने की कोशिश नहीं करते थे। इसी से जब शिमले में यह खबर पहुंची, कि गुर्खे शिमले पर चढ़ाई करने जा रहे हैं और 'जुतोग' नामक स्थान में कितने ही

अँगरेज मारे भी गये हैं, तब तो शिमले में बड़ा भारी हड़कम्प पैदा हो गया। सब लोग जान ले-लेकर भागने लगे। शिमले के गिर्जाघर के ऊँचे शिखर पर चढ़ कर लोग दूरबीन से गुर्खों के आने की राह देखने लगे। बालक, बृद्ध, युवक, युवती—सभी लोग अपने-अपने प्राण बचाने के लिये बेंक में आ जमा हुए। बेंक के पास दो तोपें रख दी गयीं। इस तरह यहां प्रायः ४०० मनुष्य लुके-छिपे हुए थे। इस समय शिमले में गोरी पल्टन नहीं थी। इसीलिये अँगरेजों के हृदय दूने भय से कांप रहे थे। पर अन्त को यह आशङ्का झूठी ही निकली। गुर्खों के असन्तोष के दूर होते ही वे फिर नमकहलाली के साथ नौकरी बजाने लगे। जो डर के मारे बेंक में जा छिपे थे, वे झेंपते-शर्माते हुए अपने-अपने घर चले आये।

इधर कलकत्ते से लार्ड केनिङ्ग और पञ्जाब के सर जान लारेन्स प्रधान सेनापति को शीघ्र ही दिल्ली पर चढ़ाई करने के लिये बार-बार उकसाने लगे। इन लोगों के जी में यह बातें बैठ गई थीं, कि अगर अधिक दिन तक दिल्ली पर सिपाहियों और मुगल-सम्राट् का कब्जा बना रह गया, तो लोगों के जी से अँगरेजों की धाक निकल जायेगी और सब लोग यही समझेंगे, कि अँगरेजों की सत्ता सदा के लिये मिट गयी। इसका नतीजा यह होगा, कि लोग सिपाहियोंकी और भी पीठ ठोकने लगेंगे। अन्तमें भारत के गवर्नर-जेनरल की आज्ञा लेकर २५ वीं मई को प्रधान सेनापति ने दिल्ली की यात्रा कर ही दी।

रास्ते में पटियाला, झीन्द, नाभा और करनाल के अधिपतियों की दी हुई सेनायें पहरे पर तैनात थीं। इनके रहने से अँगरेजों को

संवाद पाने और भेजने में बड़ी सुविधा होती थी। इन रियासतों की यह सहायता उस समय अँगरेजों के लिये संजीवनी बूटी ही सिद्ध हुई थी।

जो हो, प्रधान सेनापति बड़े ही बुरे मुहूर्त में अम्बाले से दिल्ली की ओर रवाना हुए थे। करनाल पहुंचते-न-पहुंचते उनकी हैजे से आकस्मिक मृत्यु हो गयी। इस बार जेनरल सर हेनरी बोनार्ड पर ही उनके कर्त्तव्य का भार सौंपा गया। वे झटपट दिल्ली की ओर चल पड़े। रास्ते में इनके अधीन सैनिकों ने रास्ते के आस-पास वाले गांवों के रहने वालों पर बड़े-बड़े अत्याचार किये और कितने ही निरपराध मनुष्यों की हत्या भी कर डाली; क्योंकि उस समय उनके हृदय में प्रतिहिंसा की अग्नि धधक रही थी और वे सभी हिन्दुस्तानियों को अँगरेजों का प्रबल शत्रु समझ रहे थे। बहुतेरे सहृदय अँगरेज लेखकों ने भी इन कार्यों की घोर निन्दा की है।

१० वीं मई को मेरठ में जो काण्ड हुआ था, उसका हाल हम पहले ही लिख आये हैं। सिपाहियों के उपद्रव से जान बचाने के लिये सरकारी कर्मचारियों ने वहां के बचे-बचाये युरोपियनों को मेरठ के फौजी स्कूल में जमा कर, कलेक्टरी के खजाने से रुपया-पैसा भी वहां मँगवा कर रख लिया था। कारण उस समय मेरठ में अँगरेजों की जानोमाल की खैर नहीं थी। बहुतेरे अँगरेज मारे भी गये थे। कितने ही रास्ते में लुट गये, कितने ही कुट-पिट गये, सरकारी डाक लूट ली गयी, कितनों के घर जला दिये गये। इन सबका

बदला अँगरेजों ने निरपराध लोगों पर फौजी कानून जारी करके वसूल कर लिया। यदि सिपाहियों के विद्रोह के कारण अँगरेजों की जान खतरे में थी, तो भी इस फौजी कानून के कारण सर्वसाधारण भारतीयों के प्राण भी विपत्ति से शून्य नहीं थे। वे चाहे जिस हिन्दुस्तानी को केवल सन्देह में पकड़ कर फांसी पर लटका दिया करते थे ! इस कानून ने चारों ओर त्राहि-त्राहि की पुकार मचा दी थी। कितने भारतीय इस प्रकार अँगरेजों की प्रतिहिंसा के शिकार बने, इसका कोई ठिकाना नहीं।

मेरठ से ६० मील दूर गङ्गा के किनारे पर रुड़की नामक नगर बसा हुआ है। यहां एक बहुत बड़ा इञ्जिनियरिङ्ग कालेज है। इसका सम्बन्ध सामरिक विभाग से भी था। उस साल मई महीने के आरम्भ में यहां पूरी शान्ति थी ; पर जिस समय मेरठ की दुर्घटना का समाचार यहां पहुंचा, उस समय वह शान्ति नष्ट हो गयी। मेरठ के सेनापति की आज्ञानुसार यहां के सामरिक इञ्जिनियरिङ्ग विभाग के अध्यक्ष मि० फ्रेजर ने यहां से ७१३ सैनिक इञ्जिनियरों को मेरठ भेजने की व्यवस्था की। इतने में हुकम आया, कि रुड़की की रक्षा के लिये कुछ थोड़ेसे सिपाही वहीं रहने दिये जायँ और बाकी मेरठ भेज दिये जायें। तदनुसार केवल ५०० मनुष्यों को साथ लेकर मि० फ्रेजर मेरठ की ओर चल पड़े।

इसके बाद ही दिल्ली में युरोपियनों की हत्या होने का समाचार रुड़की में आ पहुंचा। इञ्जिनियरिङ्ग-कालेज के अध्यक्ष मि० बेयर्ड-स्मिथ अपने कल-कारखानों की रक्षा के लिये विशेष प्रबन्ध करने

लगे। उन्होंने रुड़की में रहने वाली सभी अँगरेज-महिलाओं और बालक-बालिकाओं को यहां बुलवा लिया। बेयर्ड साहब अपने अधीनस्थ इंजिनियरों में से किसी-किसी पर बेतरह सन्देह करते थे, तो भी चुपचाप पड़े रहे और उन्हें किसी तरह का उपद्रव करने का अवसर न मिले, इसकी सदैव चेष्टा करते रहे।

इधर फ्रेजर साहब की अधीनता में जो लोग मेरठ की यात्रा कर रहे थे, उन्होंने पहले तो किसी तरह का विरोध-भाव नहीं प्रकट किया ; पर मेरठ पहुंचने पर ये भी बदल गये। सेनापति ने सुरक्षित समझ कर गोला-बारूद एक सुदृढ़ गृह में रखने की व्यवस्था की। इस कारंवाई से सिपाहियों के मन में बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सोचा, कि यह काम हमारे ऊपर अविश्वास करके किया जाता है। इसीलिये उनमें से एकने फ्रेजर साहब के गोली मार दी और बहुतेरे इधर-उधर भाग गये। केवल ५० आदमी गिरफ्तार हुए, जिन्हें क्रोध से पागल बने हुए अँगरेज सिपाहियों ने बड़ी ही निर्दयता के साथ मार डाला !

२७ वीं मई को ब्रिगेडियर जेनरल मि० बिलसन के अधीन एक पल्टन मेरठ से आकर सर हेनरी बर्नार्ड की सेना की सहायता के लिये आ पहुंची। जिस समय बिलसन की यह सेना 'हिन्दन' नदी के किनारे के गाजीउद्दीन नामक नगरमें थी, उसी समय दिल्लीके विजयी सिपाहियों ने उसे हराकर सर हेनरीबोर्नार्ड से न मिलने देने की चेष्टा की। दोनों दलों का सामना हुआ—घोर युद्ध होने लगा। सिपाहियों ने वीरता और आत्म-बलिदान के अद्भुत आदर्श दिखलाये

और अँगरेजों को बहुत हानि भी पहुंचायी; पर अन्त में उन्हें हार कर भागना पड़ा। इस युद्ध में सिपाहियों ने जो वीरता, साहसिकता और तेजस्विता दिखलायी, यदि युरोप के किसी देशमें दिखलायी गयी होती, तो इतिहास में चिरस्मरणीय होती; पर इस अभागे देश में किसी अच्छी चीज का मोल नही है। इसीलिये अपनी और अपने देशकी स्वतन्त्रता के लिये जान होनेवाले सच्चे वीरों की तरह युद्ध करने वाले इन सिपाही-वीरों का किसी इतिहास में नाम तक नहीं पाया जाता। हां, कोई-कोई इतिहास-लेखक इन वीरों को अच्छे शब्दों में याद करते हुए सङ्कोच नहीं करते। (The story of Indian mutiny) नामक ग्रन्थमें लेखक मिस्टर हेनरी गिलबर्ट अपनो पुस्तक में इस युद्ध के सम्बन्ध में लिखते हुए कहते हैं,—

" The battle was sternly fougnt by the mutineers, who displayed the greatest courage, worked their guns with precision, and being attacked in force, fought bravely beside the cannon, asking for no quarter."

अर्थात्—"बलवाइयों ने बड़ी वीरता से युद्ध किया और ऊँचे दर्जे का साहस दिखलाते हुए बड़ी बुद्धिमानी से अपनी तोपोंका सञ्चालन किया। जिस समय उन पर बड़े जोर का आक्रमण होता, उस समय भी वे छिपने के लिये—जान बचाने के लिये— आतुर न होते और अपनी तोप के पास खड़े-खड़े सच्चे वीरों की भांति युद्ध करते रहते थे।"

सच पूछिये, तो जातीय-जीवन-स्वाधीनता के भावों से अनुप्राणित होकर वीर पुरुष किस प्रकार अपने साहस का प्रकृष्ट परिचय प्रदान करते तथा हँसते-हँसते मौत को गले लगा लेते हैं, यह बात इन सिपाहियों के साहस, वीरत्व और तत्परता को देख कर विदित हो जाती है।

अस्तु; पहली लड़ाई में हार कर सिपाही दिल्ली चले आये और फिर अँगरेजों से लोहा बजाने की तैयारी करने लगे। इन्होंने फिर बड़ी तैयारी के साथ हिन्दन के तीर पर आकर शत्रुओं पर गोले बरसाने शुरू किये। दो घण्टों तक दोनों ओर से गोले छूटते रहे। धूप के मारे अँगरेज सैनिकों का बुरा हाल हो गया। परन्तु इतने पर भी साहसी अँगरेजों ने पीछे पैर नहीं दिया और बराबर आगे बढ़ते चले गये। यह देख, सिपाही लोग फिर क्रमशः दिल्ली लौट आये।

दिल्ली के उद्धार के लिये अम्बाले से जो सेना चली आ रही थी, उसकी सहायता के लिये मेरठ से ही कुमुक नहीं आ रही थी—५०० गुर्खे बुलन्दशहर से भी आ रहे थे। पहले तो अँगरेजों ने उन्हें भी अपना शत्रु ही समझा था; पर पीछे जब वे पास आ गये और उन्हें असल हाल मालूम हुआ, तब बड़े ही खुश हुए।

५ वीं जून को बर्नार्ड साहब की फ़ौज दिल्ली से पांच मील दूर अलीपुर नामक स्थान में आ पहुंची। वहां ठहर कर वह मेरठ की कुमुक की राह देखने लगी! छठी जून को विलसन साहब की सेना भी यमुना पार कर चली आयी और बड़ी-बड़ी तोपें दिल्ली में उतर पड़ीं।

७ वीं जून को मेरठ की सेना ने अलीपुर की यात्रा की और दूसरे दिन एक बजे दिल्ली की ओर अग्रसर होती हुई नज़र आयी। जासूसों ने आकर ख़बर दी, कि दिल्ली के बलवाई-सिपाही पूरी तैयारी के साथ नगर की राह रोके खड़े हैं। यह सुन, अँगरेज और भी उत्साह के साथ अग्रसर होने लगे

उस समय सिपाहियोंका अड्डा दिल्ली से ६ मील दूर 'बादली की सराय' नामक स्थान में था। वहां पर बहुत से पुराने खण्डहर और बागीचे थे, जिनके चारों ओर चहारदीवारी खिंची हुई थी। मुग़लों के राज के जमाने में यहाँ दरबार के कितने ही वज़ीर और उमरा रहा करते थे। सेनापति बर्नार्ड उस स्थान को लक्ष्य मानकर अग्रसर होने लगे। ८ वीं जून को सबेरे से ही सिपाहियों के गोले उनपर बरसने लगे। अँगरेजी सेनाओं ने अपनेको चार दलों में विभक्त कर चारों तरफसे सिपाहियों को घेर लिया। परन्तु इस प्रकार चारों ओर से घिर जाने पर भी उन स्वाधीनता के यज्ञ के होताओं ने अपना साहस और वीरत्व हाथसे नहीं जाने दिया। अँगरेजों ने जब भी अपना अद्भुत वीरत्व और पराक्रम दिखलाना आरम्भ किया, तब ये स्वाधीनता के पुजारी पीछे न हटे। जिस व्रत को हृदय में धारण कर वे इस युद्ध-यज्ञ में अपने प्राणों की आहुति देने के लिये अग्रसर हुए थे, उस व्रत को वे प्राणों के रहते हुए न छोड़ सके। उन्होंने युद्धाग्नि में ही मर मिटने का संकल्प कर लिया। गोले आ-आकर उनका संहार करने लगे, अँगरेजों की सङ्गीनें उनके कलेजों में चुभने लगीं; पर वे वीरता के पुतले अपनी तोपों को छोड़ कर न हटे।

अन्त में उनका दल तितर-बितर होने लगा और भाग चला। इस युद्ध में गुर्खों ने अँगरेजों की बड़ी मदद की। शायद वे न होते, तो अँगरेजों को इतनी जल्दी विजय मिलनी मुश्किल थी। गुर्खों के अतिरिक्त मेरठ की देशी सेना, झीन्द के राजा की सेना तथा जांफिशांखाँ नामक एक अफगान सरदार की घुड़सवार सेना ने भी इस लड़ाई में अँगरेजों को अच्छी सहायता पहुंचायी। सच पूछिये, तो आरम्भ से ही सब लड़ाइयों में अँगरेज हिन्दुस्तानी सेनाके ही बलपर विजयी होते चले आये हैं। सबसे पहले लार्ड क्लाइव ने जब अभागे सिराजुद्दौला को मिट्टी में मिलाया था, तब उन्होंने भी हिन्दुस्तानी सिपाहियों को ही लेकर अपना काम बनाया था। अबकी बार जब अङ्गरेजी सरकार के वेतन-भोगी सिपाही विद्रोही हो गये, तब भी उन्हें हिन्दुस्तानियों की ही मददसे उनका दमन करना पड़ा। यदि इस देश के लोग इस संकट के समय अपने स्वजातियों, स्वधर्म्मियों और स्वदेश-वासियोंके विरुद्ध हथियार न उठाते, तो अँगरेजों के लिये इस विपद् से छुटकारा पाना मुश्किल था।

बर्नार्ड साहब विजयी हुए। उन्होंने दिल्ली के पास ही पड़ाव डाल दिया; पर सिपाही उनके आगे सिर झुकाने नहीं आये। वे मौके की राह देखते हुए चुपचाप पड़े रहे।

सातवां अध्याय ।

विद्रोह फैलने लगा ।

देखते-देखते छूतकी बीमारी की तरह विद्रोह हर तरफ अपना प्रभाव दिखलाने लगा। इसका सबसे अधिक प्रभाव उत्तर-पश्चिम-प्रदेश (वर्त्तमान संयुक्त-प्रान्त) में दिखाई दिया। कलकत्ते से प्रायः ४०० मीलकी दूरीपर हिन्दुओंकी परम-पवित्र तीर्थपुरी काशी बसी हुई है। यहाँ के लोग प्रायः धार्मिक हैं, पर इस उत्तेजनाके समय में ये लोग भी शान्तभावसे न रह सके। चिनगारी इस रुईके ढेरमें भी आ लगी। १८५७ के गरमीके दिनोमें खाने-पीनेकी चीजें बहुत महँगी हो गयी थीं। लोगोंने सोचा कि यह महँगी अँगरेजोंकी ही बदौलत हो रही है। बस, सब लोग अँगरेजोंके दुश्मन बन बैठे। इसके सिवा दिल्लीके शाही खानदानके लोग उस समय काशीमें निवास कर रहे थे। उन लोगोंने भी मौका देखकर लोगोंके कानमें अपने मन्त्र फूंकने आरम्भ किये। जातीय सम्मान और जातीय धर्म के लोपकी आशंकाके साथ साथ भोजन-सामग्रीकी महँगाईने लोगों-को अँगरेजोंका कट्टर शत्रु वना दिया। सब लोग एक बड़े भारी षड्यन्त्रमें लिप्त हो गये। नगरसे ३ मील दूर सिकरौल नामक बस्ती है। यहींपर अँगरेजों की बस्ती है। सरकारी कचहरियां, कैदखाना, गिर्जाघर, गवर्नमेण्ट कालेज, अस्पताल, पलटन की छावनी, बड़े-बड़े

बाग-बगीचे आदि यहीं पर हैं। उस समय यहाँ की छावनीमें केवल ३ दल देशी पैदल सैनिक और कितने ही अँगरेज तोपची थे। सब मिलाकर कोई २,००० पैदल सैनिक और ३० अँगरेज तोपची थे। इस सारी सेनाके अध्यक्ष जार्ज पानसनबी थे। उस समय हेनरी टुकर बनारस डिवीजन के कमिश्नर, फ्रेडरिक गविन्स जज तथा लिण्ड साहब मजिस्ट्रेट थे। इन लोगोंने मेरठ और दिल्लीकी घटनाओंका समाचार सुन, अपने यहाँ शान्ति बनाये रखनेके लिये बड़ी चेष्टा की; पर इनकी कोई कला काम न आयी—जो हाल मेरठ और दिल्लीका हुआ, वही यहाँका भी देखने में आया।

जून महीनेके आरम्भमें ही सिपाहियोंके कितने ही सूने मकानों में आग लग गयी। इसके बाद काशी से ६० मील दूर आज़मगढ़ नामक स्थान से खबर आयी, कि वहाँकी १७ नं० पलटन के सिपाही बलवाई हो गये हैं। इस सेनाके अध्यक्ष मेजर बरोस नामक एक फौजी अफसर थे। वे बेचारे बड़े सीधेसादे आदमी थे, इसलिये सिपाहियों को काबू में न कर सके। टोटेवाली बात से तो उत्तेजना फैली ही हुई थी, अबके भयानक अर्थलोभ भी उनके सिर पर सवार हो गया। १७ नं० पलटन के कुछ पैदल सिपाहियों और १३ नं० पलटन के चन्द घुड़सवारों के साथ ५,००,०००) पांच लाख रुपये गोरखपुर से आ रहे थे। इनके अधिनायक लेफ्टिनेण्ट पालिशर थे। इन रुपयों के साथ आजमगढ़ के दो लाख और रुपये मिलाकर, सारी रकम बनारस पहुंचा देने की बात थी। एकबारगी सात लाख रुपयों का लोभ सिपाही न सम्हाल सके, वे आजमगढ़ से रुपये

ले जाने में आनाकानी करने लगे। पीछे ३ री जून को वे लोग सातों लाख रुपये लिये हुए आजमगढ़ से चल पड़े। पर स्थानीय अफसरों के मन में सन्देह बना ही रहा। एक दिन अफसर लोग अपने अपने डेरों में बैठे हुए भोजन कर रहे थे, इसी समय परेड के मैदान से बन्दूक की आवाज सुनाई दी। बस, सबके कान खड़े हो गये। लोग समझ गये, कि यहां के सिपाही भी बलवाई हो गये। युरोपियनों में घोर आतङ्क छा गया। मेमें और गैर पल्टनियें अँगरेज दौड़े हुए कचहरी की तरफ चले गये। जिला मैजिस्ट्रेट और उनके सहयोगियों ने कचहरी की पूरी-पूरी रक्षा कर रखी थी। अँगरेज लोग अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ यहीं आ पहुंचे। इधर सिपाहियों ने अपने क्वार्टर-मास्टर और क्वार्टर-मास्टर-सर्जन की हत्या कर डाली। हाँ, और किसी अफसर को उन्होंने हाथ नहीं लगाया। इसके बाद वे उपर्युक्त सात लाख रुपयों को लूट लेनेके लिये दौड़े। सेनापति पाली-शर उस धन की रक्षा न कर सके—सारी जमा विद्रोहियों के हाथ लग गयी। इतने पर भी विद्रोहियों ने अपने अफसरों की कुछ क्षति नहीं की, बल्कि उन्हें सही-सलामत गाजीपुर तक पहुंचा दिया। जो लोग उन्हें मारने में भी सङ्कोच नहीं करते, उनको भी उन्होंने उस सङ्कट में पतित देख कर दयासे प्रेरित हो छोड़ दिया! इसके बाद वे सब रुपये लिये हुए आजमगढ़ लौट आये। यहां आकर उन्होंने देखा, कि यहां तो कोई युरोपियन नहीं है—क्या कचहरी, क्या छावनी, सभी जगहें अँगरेजों से सूनी पड़ी हैं। यह देख वे विजय से उन्मत्त बने, खूब शोर गुल मचाते हुए, फैज़ाबाद की ओर चल पड़े।

आजमगढ़ की इस घटना का हाल काशीवालों ने भी सुना। बनारस के हाकिमों ने शहर की रक्षा का प्रवन्ध करना आरम्भ किया। इधर उनकी सहायता के लिये सेनापति नील साहब अपने सिपाहियों के साथ चले आ रहे थे। वे रानीगंज तक रेल से आये, इसके बाद घोड़ों की डाकगाड़ी पर सवार हो, काशी तक चले आये। नील साहब और उनके मदरासी सिपाहियों के अतिरिक्त दानापुर से कुछ पैदल सिपाही भी आये। इस प्रकार जब सहायता करने के लिये कितने ही सैनिक और सैनिक अफसर आ पहुंचे, तब हाकिमों ने सोचा, कि कल सवेरे सिपाहियों को परेड के मैदान में ले जाकर वहीं उनसे हथियार रख देने के लिये कहा जाय! पर बहुतों को इतनी देर भी खलती थी, इसलिये उन लोगों की राय हुई, कि अगर सैनिकों के हथियार उतरवाने ही हैं, तो अभी उतरवा लिये जायें। पानसनबी साहब यहां के सब से बड़े फौजी अफसर थे। इसलिये यह आज्ञा यदि कोई दे सकता था, तो वही दे सकते थे। इतने में सिक्ख सिपाहियों के अफसर गार्डन साहब ने उन्हें खबर दी, कि शहर के बदमाशों के साथ, सिपाहियों की छिपे-छिपे खूब बातें हो रही हैं। यह सुन कर वे लोग जज और कमिश्नर से इस बारे में राय लेने लगे। थोड़ी ही देर बाद वहाँ कर्नल नील साहब भी आ पहुंचे। अन्त में यही बात तय पायी, कि आज ही शामको ५ बजे सब सिपाहियों को परेड के मैदान में आनेका हुक्म दिया जाये।

इसके बाद पानसनबी साहब गार्डन साहब के साथ अपने डेरे पर आये। वहां उनकी ३७ वीं पलटन के अध्यक्ष मेजर बारेट के

साथ मुलाकात हुई। मेजर बारेट सिपाहियों के बड़े अनुरागी थे। उनका सिपाहियों की प्रभुभक्ति पर अटल विश्वास था। उन्होंने उनके हथियार छिनवा लेने के प्रस्ताव का घोर विरोध किया। पर पानसनबी साहब ने उनकी एक न सुनी। लाचार, उन्होंने ५ बजे सब को परेड के मैदान में हाज़िर होने का हुक्म दिया। कुछ ही देर बाद प्रधान सेनापति का घोड़ा आ पहुंचा। पानसनबी और गार्डन दोनों ही जने घोड़ों पर सवार हो परेड के मैदानकी ओर चल पड़े। पानसनबी साहब इधर बहुत दिनों से बीमार थे—अबतक उनकी कमजोरी दूर नहीं हुई थी। इसी बीच यह मामला आ पड़ा, इसलिये उनका मत भी ठिकाने नहीं था ? ऐसी ही हालत में उन्होंने परेड के मैदान में आकर देखा, कि कर्नल नील अपनी गोरी पलटन के साथ मौजूद हैं—तोपें भी तैयार रखी हैं। अन्तमें पानसनबी साहब को पहले से सोचा हुआ हुक्म सुनाना पड़ा। उस समय बनारस की छावनी में २,००० हिन्दुस्तानी सिपाही थे—युरोपियनों की संख्या २५० से अधिक नहीं थी। इन दो हजार सिपाहियों के मन में उस समय घोर उत्तेजना उथल-पुथल मचाये हुए थी। ऐसे २,००० उत्तेजित सिपाहियों पर निरस्त्रीकरण का आदेश प्रचारित करना, कम साहस का काम नहीं था। उस समय मैदान में ४१४ सिपाही थे। उन लोगों ने हुक्म पाते ही चुपचाप अपने हथियार नीचे डाल दिये। सामने चढ़ी हुई तोपें रखी थीं, संगीनधारी गोरे थोड़ी-थोड़ी दूर पर खड़े, उनके जीवन के शोचनीय परिणाम की सूचना दे रहे थे। एक-एक करके

सब लोग अपने-अपने हथियार उतारने लगे। परन्तु एकाएक उनका भाव बदल गया। जिस समय गोरे सैनिक उनके परित्याग किये हुए हथियारों को उठाने के लिये पास आये, उस समय उनसे चुपचाप न रहा गया। उन्होंने सोचा, कि सम्भव है, हमारे हथियार छीन लेनेके बाद हम पर तोपों से गोले छोड़ने शुरू कर दिये जायें। यही सोच कर उन्होंने परित्याग किये हुए हथियार फिर हाथ में ले लिये और अपने अफसरों पर ही हमला किया। इधर-उधर से अँगरेजों पर गोलियां भी छोड़ी गयीं। थोड़ी ही देर में सब सिपाहियों ने अपनी-अपनी बन्दूकें भर लीं और अँगरेजों से लड़ने को तैयार हो गये। अंगरेज भौंचकसे हो रहे। सात-आठ अँगरेज सिपाही, घायल हो गिर पड़े। अफसर लोग तोपों के सहारे हमला रोकने की चेष्टा करने लगे। मेजर बारेट पहले से ही हथियार छीनने के विरोधी थे। अब यह हाल देख, उनका तो होश ही गायब हो गया। वे चुप-चाप हक्का-बक्कासे होकर खड़े रहे। सिपाहियों ने अपने अनुरागी मेजर बारेट का कुछ भी अनिष्ट नहीं किया। उन्होंने उन्हें एक निरापद स्थान में पहुंचा कर उनके जीवन की रक्षा की। विद्रोही होने पर भी वे हिताहित की पहचान करना नहीं भूले थे और पुरानी श्रद्धा उनके हृदय से दूर नहीं हो गयी थी।

सिपाहियों को इस प्रकार उत्तेजित और युद्ध के लिये तैयार होते देख; अँगरेज सिपाहियों ने तोपों से गोले बरसाने शुरू किये। तोपों के सामने खड़े होने की भला किसकी सामर्थ्य थी? इसलिये सिपाही लोग अपने-अपने घरों की तरफ दौड़ पड़े। वहीं से वे

दीवारों की ओट में खड़े होकर गोरे सैनिकों पर गोलियां छोड़ने लगे। परन्तु इससे गोरे सैनिकों ने तोपें छोड़नी बन्द नहीं कीं। गोलों ने कई सिपाहियों को मार गिराया। तब तो बहुतेरे सिपाही नगर में जा छिपे और कितने ही भाग कर आस-पास के गांवों में जा रहे और बदला लेने की ताक में वहीं पड़े-पड़े दिन बिताने चले गये।

इधर इसी समय देशी घुड़सवार-पलटन का एक दल और एक दल सिक्खों का परेड के मैदान में आ पहुंचा। इन लोगों के मनमें भी पूर्वोक्त सिपाहियों की तरह शङ्का और सन्देह भरा था। इसलिये यहां आते ही एक घुड़सवार ने अपने सेनानायक को गोली मार दी और दूसरे ने तलवार निकाल कर उस बेचारे के दो टुकड़े कर देने चाहे। बेचारे सिक्ख चुपचाप यह सारा तमाशा देखते रहे। पहले उनका इरादा अँगरेजी सरकार के विरुद्ध हथियार उठाने का नहीं था; पर जब उन्होंने देखा, कि गोरों को हमारे ऊपर भी सन्देह हो रहा है, तब तो एक सिक्ख ने एक गोरे अफसर पर गोली चला ही दी। पर इसी समय एक दूसरा सिक्ख उस अफसर की जान बचाने के लिये आगे बढ़ आया ; पर उसकी इस उदारता का कुछ भी विचार न कर, सभी देशी सिपाहियों को एक ही थैली के चट्टे-बट्टे समझ कर, अँगरेजों ने उनके विरुद्ध हथियार उठा लिये। फिर क्या था ? सभी देशी सैनिकों ने अँगरेजों पर गोली छोड़नी शुरू कर दी। इस समय तोपें अरक्षित दशामें पड़ी हुई थीं; क्योंकि गोलन्दाज गोरे ३७ नं० पल्टन के सिपाहियों का पीछा करते हुए उनके डेरे तक चले

गये थे, यदि उस समय सभी देशी सिपाही मिल जाते और उन तोपों को हाथमें करके ठीक-ठिकाने से युद्ध करते, तो बनारस को तो वे निश्चय ही अँगरेज़ों से छीन लेते; पर नहीं, सिपाहियों में न तो कोई शृङ्खला थी, न काम करने का कोई सिलसिला। उनका कोई ऐसा युद्धवीर सेनापति भी नहीं था, जो उन्हें कायदे से लड़ने के लिये कहता। इसीलिये जब वे आपस में ही शेखी बघारने में लगे हुए थे, तभी एक अँगरेज ने आकर उन तोपोंपर कब्जा कर लिया और गोले बरसाने शुरू कर दिये, जिससे सिक्खों और सिपाहियों को वहांसे भाग जाना पड़ा।

क्रमशः सूर्यास्त हो गया और जेनरल पानसनबी ने नील साहब पर अपने कर्त्तव्य का भार दे, वहां से खिसक जाना ही अच्छा समझा। कर्नल नील बनारस के प्रधान सेनानायक हो गये और शत्रुओं से गिन-गिन कर बदला लेने लगे। जो सिपाही अपने बारकों में लौट आये थे, वे या तो मार डाले गये या निकाल बाहर कर दिये गये और जो निर्जन कुटीरों में जा छिपे थे, वे कुटीर सहित भस्म कर दिये गये।

परन्तु इतने पर भी बनारस के अधिकारियों की चिन्ता दूर न हुई। उन्हें भय होने लगा, कि कहीं रातको ये सिपाही शहर के बद-माशोंकी सहायता से और भी उपद्रव न करने लगें। इसी डरसे लोग जहां-तहां भागने और छिपने लगे। ईसाई पादड़ी लोग तो भाग कर चुनार चलने की तैयारी करने लगे और सिविल कर्मचारी कलक्टरी-कचहरी में जा छिपे। इस समय खजाने की रक्षाका भार

कुछ सिक्ख-सिपाहियों पर ही था। अधिकारियों ने सोचा कि कहीं ये लोग भी अपने भाइयों के मारे जानेके कारण सरकार के शत्रु न हो जायें; पर एक शान्त-प्रकृति सिक्ख-सरदार ने जिसका नाम सूरतसिंह था, वह आशंका दूर कर उनको शान्त कर दिया।

दूसरे सिक्ख-युद्धके बाद जब लार्ड डलहौसी के हुक्मसे पंजाब-केसरी महाराज रणजीत सिंहका विस्तृत राज्य अँगरेजी राज्य में मिला लिया गया, तब सरदार सूरतसिंह भी पंजाब से काशी में लाये गये थे और तबसे यहीं कैद थे; पर कैदी होते हुए भी वे हृदय के काले नहीं थे। वे अँगरेजों की मदद के लिये इस बुढ़ापे में भी कन्धे पर बन्दूक लिये हुए कचहरी के खजाने के पास चले आये और उत्तेजित सिक्खों को समझा-बुझा कर शान्त करने लगे; इससे अँग-रेजोंको वहांसे रुपया-पैसा और लाहौरके किलेसे लूट कर लाया हुआ रत्न-भाण्डार, दूसरे स्थान में ले जानेका मौका मिल गया। यदि यह सिक्ख-सरदार इस मौके पर सहायता न करता और अपने कैद करने वालों से सूद समेत बदला वसूल करने को तैयार हो जाता, तो न केवल उसीका बदला वसूल होता; बल्कि सारी सिक्ख जातिके किये हुए अपमान का बदला वसूल हो जाता। इसके सिवा बहुतसे हिन्दुओं ने भी अँगरेजों की बड़ी सहायता की। इसके लिये कितने ही अँगरेज अधिकारियों ने भी आश्चर्य प्रकट किया है; पर इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। हिन्दू विपद् में पड़े हुए अपने शत्रु की भी रक्षा करने से विमुख नहीं होते। अँगरेजों ने हिन्दुओं को नहीं पहचाना, इसीलिये अमृत भी उनके लिये विष बन गया, नहीं तो भले

काशी-नरेश चेतसिंह ।
(विक्टोरियल मेमोरियल कलकत्ताके एक चित्रसे)

तौरसे पेश आनेपर कोई हिन्दू कभी किसी अँगरेज पर हाथ नहीं उठा सकता था।

जो हो, जैसा कि यहाँके गोरे अधिकारियोंने सोच रखा था, वैसा नहीं हुआ, अर्थात् बलवाइयोंने उन्हें मारा भी नहीं और सारे नगरमें लूट-पाट भी नहीं मची—उलटे वे लोग सोलह आने सुरक्षित रह गये। इससे उनकी आशंका और चिन्ता तो मिट्टी हो गई, पर क्रोध और प्रतिहिंसाके भाव दिलसे दूर नहीं हुए। बहुतसे सिपाही जहाँ-तहाँ जाकर छिपे हुए हैं, यही सोचकर वे सारे बनारस-विभागके रहनेवालों का सत्यानाश करनेको तैयार हो गये! ९ वीं जूनको सारे डिवीजन में फौजी-कानूनकी घोषणा की गयी। गाँव-गाँवमें लोगोंपर बेतोंकी मार पड़ने लगी और हर जगह फाँसीका बाजार गरम हो गया। छोटे-बड़े भले-बुरे सभी एक भावने पिटने और कुत्ते, स्यार या जहरीले सर्पकी तरह बेरहमीसे मारे डाले जाने लगे। जिन हिन्दुस्तानियोंकी बदौलत वे लोग बुरी मौत नहीं मरने पाये, उन्हींके निरपराध भाई-बन्धुओंको इस प्रकार कुत्तेकी मौत मरते देख, वे लोग खिलखिलाकर हँसते हुए भी न शर्माये!

कुछ बालकों ने खेलके बहाने सिपाहियों की तरह झंडा उड़ाते हुए ढोल बजाया और जुलूस निकाला। इसी अपराध पर उन्हें फाँसी की सजा दी गयी! बेचारे जज को भी उन बालकों पर तरस आ गया और उन्होंने सेनापति से उन्हें क्षमा कर देने का अनुरोध किया; पर वे माननेवाले जीव नहीं थे। बालकों की सजा बहाल रही! बनारस से ३० मील दूर किसी गांव में कुछ सिपाही छिपे हुए

थे । २२ वीं जून को अधिकारियों को यह बात मालूम हुई । बस २७वीं जून को २४० गोरे और कुछ थोड़ेसे सिक्ख उनके विरुद्ध भेजे गये । उनके आते ही सिपाही लोग इधर उधर भागने लगे । कितने ही मारे गये, कितने ही घायल हुए; कितने ही फाँसी पर लटका दिये गये । गोरे सिपाहियों में एक नौजवान गोरा भी था, जिसके हृदय के समस्त कोमल भाव औरों की तरह नष्ट नहीं हो गये थे । उसने एक पत्र में, जो विलायत के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'टाइम्स' में प्रकाशित हुआ था, इस अग्निकाण्ड का बड़ा ही हृदयस्पर्शी वर्णन किया था; उसके कुछ अवतरण हम यहां प्रकाशित करते हैं, जिन्हें पढ़ने से पाठकों को उस राक्षसोलीला का बहुत कुछ आभास मिल जायेगा । उक्त नवयुवक लिखता है,—

"हम लोगों ने ८ दिन और ९ रातें चल कर ४२१ मील का सफर तै किया और २५ वीं जून को बनारस पहुंच गये । २७ वीं जून की संध्या को हमारे दलके २४० सैनिक (जिनमें एक मैं भी था), ११० सिक्ख सिपाही और २० घुड़सवार बनारस से रवाना हुए; घुड़सवारों के सिवा हम लोग बैल गाड़ियों पर थे । दूसरे दिन तीसरे पहर ३ बजे हम लोग उन देहातों के पास पहुंच गये, जिनमें बलवाइयों आश्रय ग्रहण किया था । मैं जिस दल में था; उसके एक गांव में घुसते ही गांववाले गांव छोड़ कर भाग गये । हम लोगों ने सारे गांव को आग लगाकर भस्मीभूत कर दिया । जिस समय हम लोग यहां से लौट कर चले, उसी समय एक आदमी ने हमारे सामने आकर कहा,— 'यहां से दो मील दूर पर एक गांव में बहुतसे लोग लड़ाई के लिये
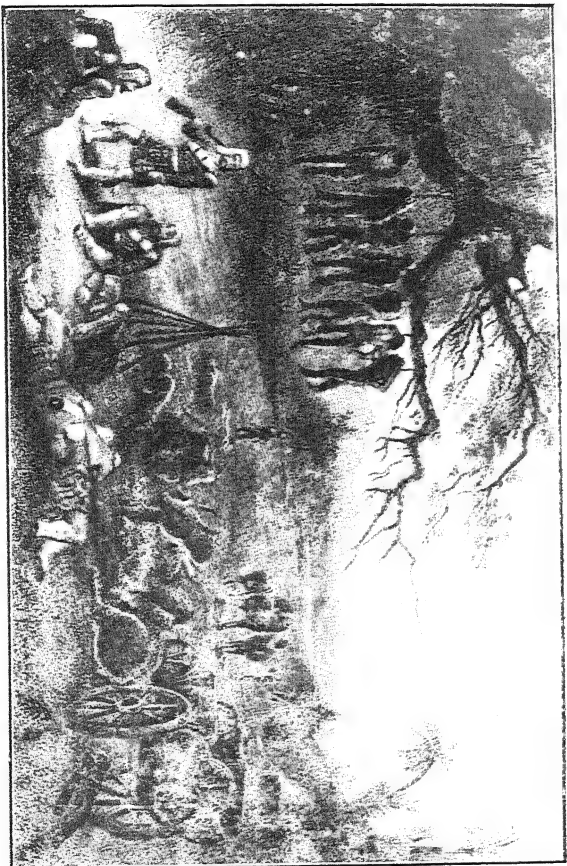
बनारस—कमिश्नरी के देहातका एक दृश्य ।
सैनिक-शासनकी पराकाष्ठा !

तैयार बैठे हुए हैं।' हम लोग यह समाचार पाते ही उधर को रवाना हो गये। जिस समय हम लोग उनसे ६०० हाथ दूर पर ही थे, उसी समय वे लोग हमको देख कर दौड़े और भाग चले। हमने गोलियां छोड़नी आरम्भ कीं और ८ आदमियों को मार गिराया। इसके बाद हम लोग गांव की ओर बढ़े। इसी समय एक आदमी ने जल्दी-जल्दी हमारे पास आकर हमारे अफ़सरको सलाम किया। हम लोगों ने उसे सिपाही समझ कर गिरफ्तार कर लिया। इसके सिवा हमने और भी २० आदमियों को पकड़ लिया। उन्हें लिये हुए हम लोग अपनी बैल-गाड़ियोंके पास चले आये,जो सड़क के किनारे खड़ी थीं। इसी समय एक बूढ़ा हमारे पास थे।आया और बोला, कि हम लोगों ने जो गांव जलाया है, उसका हर्जाना हमें देना पड़ेगा। हमारे साथ एक मजिस्ट्रेट साहब भी थे, उन्होंने उस बूढ़े पर बलवाइयों को छिपा रखने का जुर्म लगाया और ५ मिनट में उसके मामले का फ़ैसला सुना दिया। पूर्वोक्त सिपाही और बूढ़े को फांसी का हुक्म सुनाया गया! पास ही एक पेड़ में लटकाकर उन्हें फाँसी दे दी गई! रात भर उनकी लाशें हमारे सामने के पेड़ पर लटकती रहीं। सवेरे उठ कर हम लोग मैदान की राह कई मील आगे बढ़ गये। इसी समय बड़े जोर से वर्षा होने लगी। बस हम लोग वहीं रुक गये और एक गांव में आग लगा दी। इसके बाद हम फिर आगे बढ़े। हमारे दल के सभी लोग अपना काम बड़े मजे से कर रहे थे। उन्होंने ८० आदमियों को गिरफ्तार किया, जिनमें छः आदमियों को तो उसी दिन फाँसी दे दी गयी। ६० आदमियों पर बेतें पड़ीं। इसके बाद

मजिस्ट्रेट साहब ने घोषणा की, कि जो कोई बलवाइयों के सरदार को गिरफ्तार करा देगा, उसे २०००) इनाम दिया जायगा। उस दिन रात को हम लोग रास्ते में ही सो रहे। जिन छः जनों को फांसी दी गयी थी, उनकी लाशें हमारे सामने ही पेड़ों से झूल रही थीं। दूसरे दिन तीसरे पहर हम लोगों के कूच की तैयारी हुई। आज भी बड़े जोर का पानी आया और हम भीगते हुए आगे बढ़ने लगे। इसी तरह भीगते-भागते हम लोगों ने रातको एक गाँव में पहुंच कर उसमें आग लगा दी। सवेरा होने पर सूर्योदय हुआ और हमने धूप में अपने गीले कपड़े सुखा डाले, पर थोड़ी ही दूर जाते-न-जाते हमारे कपड़े फिर पसीने से तर हो गये। अबकी वार हम लोग एक बड़े गांव में पहुंचे। हमने वहाँ के दो सौ आदमियों को गिरफ्तार कर उस गांवमें आग लगा दी। चारों ओर आग धधकने लगी। एक बूढ़ा जो चलने फिरने से भी लाचार था, भागने की चेष्टा कर रहा था, पर उससे बाहर नहीं आया जाता था। हमने उसे बाहर आने को कहा। जब वह स्वयं न आ सका, तब मैंने उसके साथ ही खाट खींच कर बाहर कर दी। इसके बाद हम लोग एक गली के मोड़ पर आये। वहाँ एक घर की दीवार पर एक चार वर्ष का छोटासा बच्चा आग की लपटों से झुलसा हुआ निकल भागने की चेष्टा कर रहा था। उस घरमें चारों ओर आग धधक रही थी। मैंने पास आकर देखा, कि उस घरमें उसके अतिरिक्त आठसे लेकर दो बरस तककी उम्र तक के ६ और लड़के हैं। साथ ही एक बूढ़ा पुरुष और एक बुढ़िया स्त्री भी है। एक २० वर्ष की युवती गोद में एक बच्चे को लिये हुए रो रही थी। वह
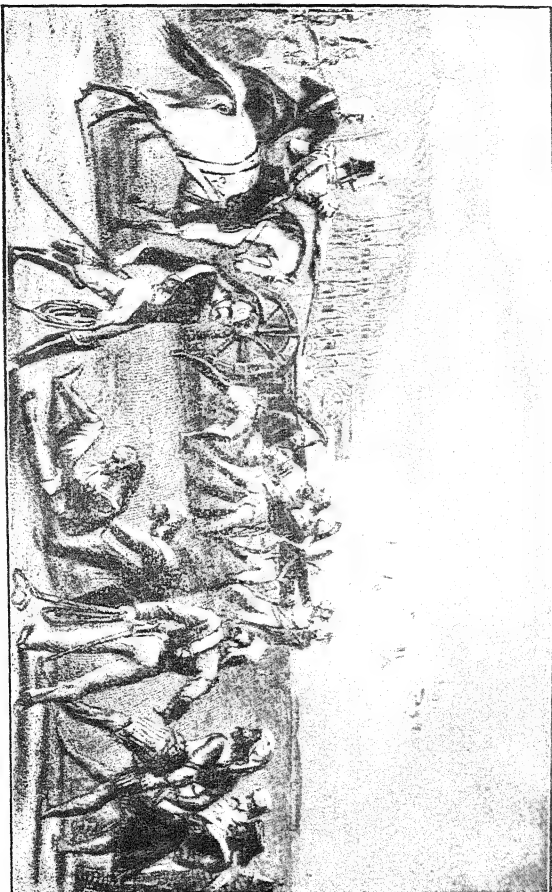
१० जून सन् १८५७ को पेशावरमें हिन्दोस्तानी सिपाहियों का तोपके मुंहसे उड़ाया जाना।
"तोपोंकी आवाजके साथ-साथ धुएंसे ऊपर चारों ओर टांगे, हाथ और सिर उड़ते हुए दिखाई देते थे।"
(From the "History of Indian Mutiny," by Charles Ball) —एक अंगरेज साक्षी

बच्चा सिर्फ ५ ही ६ घण्टे पहले पैदा हुआ था। बेचारी बच्चा पैदा करने के बाद ही इस विपद्में पड़ गयी। मैंने उस तुरन्त पैदा हुए बच्चे को गोदमें ले लिया और उस स्त्रीसे अपने पीछे-पीछे आनेको कहा। उसने उस बच्चेको मेरी गोदमें नहीं रहने दिया—मुझसे मांगकर फिर अपनी गोद में ले लिया। मैंने सब छोटे-बड़े बच्चों और बूढ़े-बूढ़ीको अपने पीछे आने का इशारा किया। बड़ी-बड़ी मुश्किलों से मैं उन लोगों को साफ बचा लाया। मैं उन्हें पास ही के एक खेतमें बैठा कर दूसरी तरफ चला गया। वहाँ पहुंच कर देखा, कि बुढ़िया चौपायोंकी तरह हाथ-पैरों के बल पर रेंगती हुई आगसे बच कर निकल जाना चाहती है। पर उससे चला नहीं जाता। मैंने उसे भी बाहर निकालना चाहा, पर वह मेरी सहायता लेनेको तैयार नहीं हुई। मैंने उसे ज़बर्दस्ती खींच कर बाहर निकाला। वहाँ से मैं एक और तरफ गया, वहां भी मैंने एक स्त्रीको देखा, जो लगभग २२वर्ष की थी। वह एक मरते हुए रोगीके पास बैठी हुई उसे शर्बत पिला रही थी। चारों ओर आगकी लपटें फैल रही थीं। मृत्युशय्या पर पड़े हुए व्यक्तिके पास ही चार और औरतें दिखाई पड़ीं। मैं धीरे-धीरे उनके पास पहुंचा और उनसे कहा, कि इस रोगी और स्त्री की सहायता करो। पर वे सब अपनी ही जान बचाने की फिक्र में थीं। यह देख मैंने अपनी संगीन बाहर निकाली और उनको धमकाते हुए कहा, कि यदि तुम लोग मेरी बात न मानोगी, तो मैं इसी दम तुम्हें मार डालूंगा। अब तो वे सब राजी हो गयीं और मेरी सहायता से उस रोगी और युवती को बाहर निकाल लायीं। मैं उन्हें छोड़ कर फिर आगे

बढ़ा । आग उस समय आसमानसे छूती हुई मालूम पड़ रही थी । मैंने गांव के एक और हिस्से में पहुंच कर १४० स्त्रियों और ६० छोटे-छोटे बच्चों को देखा । सब घबरा कर रो रहे थे । मैंने इसी परिवार मेंसे जिसमेंसे एक बुढ़िया की जान बचायी थी, वह मेरे पास आकर सब के छुटकारे के लिये मुझे धन्यवाद देने लगी । मैंने अपने पास से बिस्कुट निकाल कर उन्हें खानेको दिये; पर उन्होंने उनको नहीं लिया; शायद मेरे बिस्कुट खाने से उनकी जाति चली जाती । इसी समय सबको जमा करने के लिये बिगुल बजी । मैं लौट चला, स्त्रियों ने मुझे दिल खोल कर आशीर्वाद दिये ।...................
हम लोगों ने यहां १० आदमियों को फांसी तथा ६० आदमियों को बेंत मारने की सजा दी । उसी रात को हम लोगों ने एक और गांव जला दिया । हमारे हाथ जो लोग कैद होते, वे जिस दृढ़ता और शान्ति के साथ मौत को गले लगाने के लिये तैयार हो जाते थे, उसे देख कर बड़ा आश्चर्य होता था । एक बार एक आदमी फांसी की रस्सी टूट जाने से नीचे गिर पड़ा । वह तुरत ही धोती झाड़ कर उठ खड़ा हुआ और चारों ओर चुप-चाप देखने लगा । उसे दुबारा फाँसी दी गयी । जब सब लोग फांसीपर लटकाये जा चुके, तब शेष कैदियों को वहां लाकर उनके भाई-बन्धुओं की दुर्दशा का दृश्य दिखला दिया गया ।........
ता० २६ वीं जुलाई को हमें २००० लड़ाकों का सामना करने के लिये जाना पड़ा । हमारे दलमें १८० सिपाही थे । शत्रु तीन दलों में विभक्त हो हमारी राह रोके खड़े थे । पर जब हम लोग प्रबल वेगसे अग्रसर

होने लगे, तब वे सब भाग चले। उन लोगोंने जिस गांवमें जाकर शरण ली, उसमें चारों ओर से आग लगा कर हम लोगों ने उसे पूरी तरह से घेर लिया। वे लोग जब आग से अपनी जान बचाने के लिये बाहर आते, तभी हम लोग उन्हें अपनी गोलियों का शिकार बना लेते। उनमेंसे १८ आदमी हमारे हाथों बन्दी बना लिये गये। सबके मामले का इकट्ठे ही फैसला कर दिया गया।....हम लोगोंने सबको गोली मार कर वहीं ढेर कर दिया। इस तरह इस विभाग में ५०० आदमी हमारे हाथों मारे गये।"

ऊपर के वर्णन से ही पाठक समझ लें, कि बनारस-विभाग में सिपाहियों ने जितनी हानि अँगरेजोंकी की थी, उससे सौगुना अत्याचार अँगरेज-सैनिकों की ओर से यहां हुआ। यहां के सर्वसाधारण ने अँगरेजों की विशेष रूपसे सहायता की थी, अतः यहीं के लोगों पर रोंगटे खड़े कर देनेवाले जुल्म करते हुए भी लज्जा नहीं आयी ! न तो यहां के सिपाहियों ने कैदखाना तोड़ा, न कैदियों को भगाया, न शहर में लूट-पाट और गोलमाल मचाया ; तो भी बेंतबाजी और फाँसियों का बाजार गरम किया गया और कितने ही गांव जलाकर भस्म कर दिये गये। कुत्ते-बिल्ली की तरह निरपराध व्यक्तियों के भी प्राण ले लिये गये। कठोरता और निर्दयता की हद कर दी गयी !

पर इस कठोरता से भी विद्रोह न दबा। जो आग पैदा हो गयी थी, वह लाठी पीटने से थोड़े ही बुझ सकती थी ? सिपाहियों का असन्तोष धीरे-धीरे बढ़ता ही गया और देखते-ही-देखते जौनपुर और इलाहाबाद में बड़ी भयङ्कर घटनाएँ होने लगीं।

———

आठवां अध्याय।

जौनपुर और इलाहाबाद।

बनारस से तीस मील पश्चिमोत्तर की ओर जौनपुर शहर बसा है। इसके पास ही गोमती नदी बह रही है। १७७५ ई० में यह नगर ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के अधिकार में आया था। यहाँ पर पत्थर का बड़ा भारी मजबूत किला है। उसमें कैदी रखे जाते थे। पूरबकी तरफ पलटन की छावनी थी। जिस समय का हाल लिखा जा रहा है, उस समय इस छावनी में लुधियाने के १६९ सिक्ख सिपाही रहते थे। 'मरा' नामका एक अँगरेज अफसर उनका अध्यक्ष था।

४ थी जून को बनारसकी तरह यहांके सिक्ख सैनिक भी अँगरेजों के कोप-भाजन बन गये। उस समय यदि सेनापति धैर्य, विवेक और बुद्धिमानी से काम लेते, तो सिक्खोंमें वैसी उत्तेजना नहीं फैलती। पर उस समय तो विचार-बुद्धि अँगरेजों से विदा ही हो गयी थी। इसीलिये उन्हें कर्त्तव्य नहीं सूझता था और उनके हाथों ऐसी ही कार्रवाइयां हो जाती थीं, जिनसे असन्तोष घटने की जगह और बढ़ता जाता था।

४ थी जूनको जौनपुर में यह अफवाह फैल गयी कि आजमगढ़ के सिपाही सरकार के दुश्मन हो गये हैं। उसके बाद ही यहाँ बना-

रस की घटनाओं का भी संवाद आ पहुंचा। पर इन खबरों से जौनपुर के सिक्ख सिपाहियों में किसी तरह की अधीरता या उत्तेजना नहीं फैली। वे लोग अँगरेजों की ही तरफदारी करनेके लिये तैयार बने रहे।

इतनेमें खबर उड़ी, कि बहुतसे वलवाई सिपाही पासकी कोई कोठी लूट कर लखनऊ की तरफ जा रहे हैं। यह खबर पाकर यहाँ के जो गोरे अफसर वगैरह कचहरी में जाकर छिपे हुए थे, वे बाहर निकले और खाने-पीने की फिक्र करने लगे। पर जौनपुर के सिक्खों ने जब यह सुना, कि बनारस में उनके बहुतसे भाई-बन्धुओंकी हत्या की गयी है, तब तो वे चुप न रह सके। उनके जीमें यह बात बैठ गयी कि ये अँगरेज सभी हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख और पुरुबिये सिपाहियों का सत्यानाश करने पर तुले हुए हैं। फिर क्या था? वे भी अँगरेजों के शत्रु हो गये।

सेनापति 'मरा' कचहरी के बरामदे में खड़े थे। इसी समय उन्हें बन्दूक छूटने की आवाज सुनाई दी। उनके पास ही खड़े हुए एक दूसरे अँगरेज ने जो चौंक कर पीछे देखा, तो 'मरा' साहब गोली खाकर छटपटाते नजर आये। गोली उनकी छातीमें लगी थी। खून-की धारा चल रही थी। यह हाल देख सभी अँगरेज घरके भीतर घुस गये।

इधर जौनपुर के ज्वायंट मजिस्ट्रेट जेलकी ओर जाते समय रास्ते में ही मारे गये। खजाने में उस समय २ लाख ६० हजार रुपये थे। सिक्खों ने सारी रकम लूट ली। जौनपुर से अँगरेजोंकी

सत्ता विदासी हो गयी। चारों ओर अराजकता फैल गयी। जो अँगरेज जान बचानेके लिये कचहरीमें छिपे हुए थे, वे वहाँ भी कुशल न देख, भागने की चेष्टा करने लगे। कोई पैदल, कोई घोड़े पर, कोई गाड़ी पर भाग चला। मरा साहब रास्ते में ही पड़े-पड़े मर गये। उनकी स्त्री भी थोड़ी दूर जाकर मर गयी। भगोड़े अँगरेज गोमती पार कर 'कराकट' नामक स्थान में चले आये। रास्ते में किसी ने उनका कुछ अनिष्ट नहीं किया। उनके हिन्दुस्तानी नौकरों ने भी उन्हें बड़ी सहायता दी। कराकट में लाला हींगनलाल नामके एक बड़े ही इज्जतदार और बूढ़े रईस रहते थे। इन्होंने घरमें सभी अँगरेजों और उनके स्त्री-बच्चों को टिकने की जगह दी। साथ ही उन्होंने इनके आराम और भोजन का भी पूरा-पूरा प्रबन्ध कर दिया। उनके नौकर-चाकर हथियार बांधे इन लोगों की रक्षा पर नियुक्त रहे। बलवाइयों ने तीन बार कराकट में आकर लूट-पाट की; पर लाला हींगनलाल के घर पर किसीने हमला नहीं किया। वे लोग जानते थे कि लाला हींगनलाल बड़े धर्मात्मा मनुष्य हैं, इसीसे उन लोगोंने इनका घर छोड़ दिया। इसके बाद बनारस के कमिश्नर ने बहुतसे गोरे सैनिकों को भेज कर इनके घरसे सब अँगरेजों को बुलवा लिया।

सरकार ने पीछे हींगनलाल को इस उपकार का बदला भी दिया। वे डिप्टी मजिस्ट्रेट बना दिये गये और जन्म भर सौ रुपये वेतन पाते रहे। उनके मरने के बाद उनके पुत्र को भी पेन्शन मिलती रही।

विद्रोह बनारस और जौनपुर तक ही परिमित न रहा। वह आगे बढ़ता हुआ इलाहाबाद तक पहुंचा। यहांके किलेमें उस समय लड़ाई

के सामान वेतरह भरे हुए थे। खजाने में भी प्राय: ३० लाख रुपये जमा थे। इस गोलमाल में यहां कोई गोरी पल्टन नहीं थी, उन दिनों यहांके किले में और किले से ४ मील दूर छावनी में ६ नं० देशी पैदल-सेना, कुछ देशी गोलन्दाज और एक दल सिक्ख सैनिकों का था।

छावनी में जो ६ नं० की देशी पैदल-सेना थी, उसमें अवध और विहार के सिपाही भरे हुए थे। अँगरेजों ने अनेक युद्धों में इस सेना के सिपाहियों की सहायता ली थी। ये बड़े ही प्रभुभक्त थे। इसीलिये खजाने पर इन्हींका पहरा मुकर्रर किया गया। एक वार दो आदमियों ने इन्हें सरकार के विरुद्ध उभाड़ने की चेष्टा की थी। इन लोगों ने उन दोनों को अधिकारियों के हवाले कर दिया। इसलिये सरकार को इन लोगों की राजभक्ति का पूरा भरोसा था। पर होनहार को कौन टाल सकता है? समय के फेर से ये लोग भी अँगरेजों के दुश्मन हो गये और इनकी राजभक्ति काफूर की तरह उड़ गयी। फिर तो इन्होंने कितने ही अँगरेजों को मार डाला; खजाना लूट लिया और सारे शहर में गोलमाल मचा दिया। पीछे ये लोग तितर-बितर होकर जहां-तहां भाग गये।

इस पल्टन के सिवा और भी एक पल्टन थी, जिसमें पञ्जाव के वीर सिक्ख भरे हुए थे। एक समय इन सिक्खोंने अँगरेजों से अपनी स्वाधीनता की रक्षा के निमित्त घोर युद्ध किया था, पर आज ये लोग अँगरेजोंके तरफदार और उनके नमकख्वार नौकर थे!

११ वीं मई को मेरठ में जो दुर्घटना हुई, उसका संवाद तार द्वारा यहां भी आया और हर गली-कूचों में फैल गया। इसी तरह

क्रमशः दिल्ली की घटनाओं के वृत्तान्त भी लोगों ने सुन लिये; पर तब तक यहां के अँगरेज चैन की वंशी बजाते हुए मौज में पड़े थे। इसी तरह मई का महीना बीत गया। जूनके आरम्भ में ही जैसी खबरें आने लगीं, उनसे अँगरेज घबरा उठे। चौथी जून से तो तार आने-जाने भी बन्द हो गये। इसी दिन कई दूतों ने आकर यहांके अँगरेजों को खबर दी, कि बनारस के सिपाहियों ने अपने सेनापति को मार डाला है और इधर को ही चले आ रहे हैं। अब तो ये लोग घबराये। सारे नगर के अँगरेज भाग कर किले में चले आये।

बनारस से इलाहाबाद आनेवालों को दारागञ्ज नामक मोहल्ले के सामने नाव पर सवार होकर गङ्गाको पार करना पड़ता है। इलाहाबाद के मजिस्ट्रेट के अनुरोध से ६ नं० पलटन के कितने ही सैनिक दो तोपें लिये हुए इस पार पहरे पर तैनात कर दिये गये। इस समय अवध के बहुतसे घुड़सवार सिपाही पास ही मौजूद थे। अब तक तो ये लोग बड़े राजभक्त बने हुए थे, पर जब इन्होंने काशी में अपने भाइयों के निहत्थे किये जाने और मारे जाने का हाल सुना, तब इनके भी दिमाग फिर गये। इन्होंने विचार किया कि नील साहब ने जैसी कार्रवाई बनारस के सिपाहियों के साथ की है, वैसी ही हमारे साथ भी करेंगे। इसीलिये ६ ठी जूनको शामको ये लोग भी अँगरेजों पर हथियार उठाने के लिये तैयार हो गये। उन्होंने यह भी सोचा, कि जब हमारे बनारसी भाई यहां हमारी मददके भरोसे पर चले आ रहे हैं, तब हमारा चुप रह जाना ठीक नहीं है।

अकस्मात् ६ ठी जूनकी रातको बिगुल बज उठी। युरोपियनों-के दिल दहल उठे, कि यह क्या माजरा है? सेनापति साहब घर आकर झटपट घोड़ेपर सवार हो छावनी की ओर चले। और-और अँगरेज सैनिक पुरुष भी बिगुलकी आवाज सुनते ही दौड़े हुए छावनी की ओर चल पड़े। जो सिपाही गङ्गा के किनारे बनारस से आने-वाले सिपाहियों की राह रोकने के लिये मुकर्रर थे, पहले उन्होंने हथियार उठाया। उनके पास दो तोपें थीं। उन्हें उन लोगोंने अफ-सरों का हुक्म होने पर भी हाथ से नहीं जाने दिया था। उन्होंने पहले तो उन्हीं अँगरेजों पर हमला किया जो उन तोपों की रखवाली कर रहे थे। उस समय अवध के सिपाहियों ने इच्छा न रहते हुए भी उन अँगरेजों की प्रार्थना सुन उनकी सहायता की। उन्होंने किलेमें खबर भिजवायी। इतनेमें सिपाहियों के भयङ्कर कोलाहल और बन्दूककी दाँय-दाँयकी आवाज छावनी से आने लगी। अब तो अवध के तीन सिपाहियों को छोड़कर और सभी बागी हो गये। उस समय खूब चाँदनी छिटकी हुई थी। उत्तेजित सिपाही उसी रातमें अँगरेजों के खून के प्यासे हो उठे। तोप की रक्षा करने वाले अङ्ग-रेजोंने तोपें छोड़कर भाग जानेमें ही अपनी कुशल समझी। जिन अवधिया सिपाहियों ने उनका पक्ष लिया था उनका सरदार मारा गया। फिर क्या था? विजयी सिपाही तोपें लिये हुए अपने साथियों की सहायता करने के निमित्त छावनी की ओर चल पड़े। जिस समय वे लोग मैदानमें उतर आये, उस समय उनके साथियों के दिल दुगुने उत्साह से भर गये।

उस समय कर्नल सिमसन सिपाहियों के बीच में खड़े थे। उन्होंने आनेवालों से तोपें ले आने का कारण पूछा। इन लोगों ने उनपर गोली छोड़ कर इस प्रश्न का यथोचित उत्तर दे दिया। गोली उनके लगी नहीं, पर वे समझ गये कि इस समय कुछ भी कहना-सुनना बेकार है। इसलिये घोड़ेपर सवार हो एक तरफ चल दिये। सिपाहियों की इच्छा उन्हें मार डालने की नहीं थी। उन्होंने उनसे किले में चले जाने के लिये कहा। वे एक अफसर को साथ लिये हुए खजाने की रक्षा करने चले गये। पर उस ओर जाने का रास्ता ही नहीं था। वे जिधर जाते, उधर ही गोलियां छूटती दिखाई देतीं। उनकी जानोंके लाले पड़ गये। एक गोली उनके टोपके पाससे चली गयी। लाचार वे किले की ओर चल पड़े। उधर भी गोलियों की बौछार कम नहीं थी। उनके घोड़े के शरीर में कितनी ही गोलियां आ लगीं, तो भी उस वीर घोड़े ने उन्हें किलेके फाटकपर पहुंचा ही दिया। सवार को नीचे उतार कर ही घोड़ेने प्राण-त्याग कर दिया।

सेनापति के किले में चले जानेपर भी सिपाहियों का जोर कम न हुआ। वे जहां कहीं किसी अँगरेज को देखते, वहीं उसपर हमला कर देते थे। कितने ही अँगरेज इसी तरह मारे गये। आठ अँगरेज बालक यहां समर-विभाग में काम सीख रहे थे। उनमेंसे सात सिपाहियों के हाथ मारे गये। आठवां घायल होकर पासके एक गढ़े में जा छिपा। उसकी अवस्था सोलह वर्ष से अधिक नहीं थी। वह बेचारा चार दिनों तक उसी गढ़ेमें पड़ा रहा। कोई उसकी रक्षा करने नहीं आया। पांचवें दिन सिपाहियों ने उसे देखा और वहांसे हटाने

के लिये तैयार हुए। बालक कई दिनों की भूख-प्यास से तड़प रहा था, उसके घावोंमें भी बड़ा दर्द हो रहा था। अन्तमें वह इलाहाबाद दुर्ग में पहुंचाया गया और वहीं १६ वीं जून को मर गया।

किले में ६ नं० पलटन के कितने ही सिपाही और कुछ थोड़ेसे सिक्ख सैनिक मौजूद थे। उन लोगों ने जब किले के बाहर बन्दूकों की लगातार आवाजें होती सुनीं, तब सोचा कि शायद बनारस के सिपाही यहां भी आ गये और हमारे साथी उनसे मिल गये हैं। परन्तु जब सेनापति सिमसन घोड़े के शरीर से निकले खून से रंगे हुए कपड़े लिये किले में आ पहुंचे, तब वे हताश हो गये। उन्होंने सोचा कि शायद बनारस वाले यहां नहीं आये। इतने में सेनापति ने इन सबको निरस्त्र कर डालने का हुक्म दिया। हथियार छीनने का भार सिक्ख पलटन के सरदार पर ही छोड़ दिया गया। इस सरदार ने पंजाब की लड़ाइयों में बड़ी वीरता दिखलायी थी। वे अँगरेजों के बड़े लाड़ले थे। उन्होंने इच्छा न होते हुए भी यह काम करना स्वीकार कर लिया। इस समय सिपाही लोग दुर्ग के द्वार की रक्षा कर रहे थे। जिस समय छावनी से लगातार बन्दूक छूटने की आवाज आने लगी, उस समय ये लोग बन्दूकें भरे हुए शत्रुओं को हटाने के लिये तैयार हो गये। यदि सिक्ख सैनिक भी इनसे मिल जाते और विद्रोहियों की सहायता करने के लिये तैयार हो जाते, तो अँगरेजों की आफत आ जाती। फिर तो किले पर बलवाइयों का वह हमला होता, जो इनके रोके न रुकता और यहां जो खजाना ढो-ढोकर लाया गया था, वह भी लुट जाता। सम्भव था इलाहाबाद ही अँगरेज़ों के

हाथ से निकल जाता। परन्तु पंजाबियों ने अन्य सिपाहियों का साथ नहीं दिया। उन्होंने दुर्गकी रक्षा के लिये कमर कस ली। सामने ही चुनार से लायी हुई तोपें खड़ी कर दी गयीं। पास ही बहुत-से स्वेच्छा-सैनिक अँगरेज अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित हो उनकी सहायता करने के लिये आ खड़े हुए। गोलन्दाज अँगरेज सिपाही जलते पलीते लिये हुए तोपों के पास आ डटे। यह सब हाल देख दुर्ग के हिन्दुस्तानी सिपाही भी भीगी बिल्ली बन गये, और चुपचाप खड़े रहे। इसके बाद उनके सरदार ने उनके सब हथियार छीन लिये और उन्हें किले से बाहर कर दिया। वे लोग चुपचाप उदास मुँह बनाये किले से बाहर हो गये और अपने देशवासियों के दल में आ मिले।

कहा जा चुका है, कि इलाहाबाद के किले में बहुतेरी युद्ध-सामग्री भरी हुई थी। यदि किला अँगरेजों के हाथ से निकल जाता, तो यह सारी सामग्री सिपाहियों के हाथ लग जाती। इसीलिये एक गोलन्दाज ने दिल्ली की तरह यहां के बारूदखाने में भी आग लगाने का विचार कर लिया था ; पर जब उसने देखा कि सिपाही चुपचाप हथियार रख कर चले गये तब उसने यह विचार त्याग दिया।

इधर शहर के अन्दर भी जहां-तहां लूट-मार जारी होने लगी। तरह-तरह के उत्पात होने शुरू हुए। कैदखाना तोड़ डाला गया और कैदी भगा दिये गये। जेल से छूटते ही वे लोग भी लूट-पाट में शामिल हो गये। विशेषतः सबका लक्ष्य युरोपियनों पर ही था। वे जहां कहीं किसी अँगरेज को देख पाते ; वहीं उस पर हथियार चला देते थे। ईसाइयों के घर लूटे और जलाये जाने लगे। ईसाइयों की

दूकानें जला कर खाक कर दी गयीं। रेलवे का कारखाना नष्ट कर दिया गया—तार के तार काट दिये गये। दुर्ग के बाहर जो युरोपियन थे, उनमें कोई अछूता न बचा; क्योंकि उत्तेजित लोगोंने सब गोरे चमड़े वालों को लूटने और मार डालने की कसम-सी खा ली थी। वे अपनी इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिये जी-जानसे अड़ गये थे। कल जो लोग कम्पनी के नौकर थे, आज वे ही अँगरेज़ों को जड़ से उखाड़ फेंकने को मुस्तैद थे। कहते हैं कि बहुतसे पेन्शनयाफ्ता सिपाही भी इस लूट-पाट में शामिल हो गये थे। इस प्रकार बूढ़े-नौजवान सभी इस उपद्रवमें शामिल हो गये और इलाहाबाद से कुछ दिनों के लिये राजसत्ता दूसरी हो गयी। कोतवाली पर मुसलमानों का अर्द्ध चन्द्रमा वाला झण्डा फहराने लगा।

उपद्रवियों का उद्देश्य खजाने को लूट लेना था; पर ६ ठी जून तक किसी ने उसको हाथ नहीं लगाया था; क्योंकि वे लोग सोच रहे थे, कि अभी खजाना न लूटा जाये और मुगल-सम्राट् के लिये रहने दिया जाये; पर ७ वीं जून के सवेरे ही ६ नं० पल्टन के सिपाही खज़ाने के पास आ दरवाजा तोड़ भीतर घुस गये और जो जो जितना उठा ले जा सका, उठा ले गया। बाकी जो कुछ बचा वह बदमाशों के हाथ लगा। कहते हैं, कि उस समय इलाहाबाद के खजाने में ३० लाख रुपये थे—एक सिपाही तीन-तीन, चार-चार थैलियां रुपयों की उठा ले गया था। प्रत्येक थैलीमें हजार रुपये थे। सिपाही लोग तो रुपये ले लेकर अपने-अपने घर चले गये, पर यहां अँगरेजों की प्रधानता नष्ट हुई देख, बदमाश लोग लोगों पर बेखटके अत्याचार करने लगे।

छूत शहर से गांवों में जा पहुंची। जमींदार और किसान दोनों ही कम्पनी का राज्य नष्ट करने की धुन में लग गये। मुसलमानों ने तो ठीक समझ लिया कि अब अँगरेज यहां से चले गये और मनमानी लूटपाट करने लग गये।

११ वीं जून को सेनापति नील इलाहावाद आ पहुंचे। वे चारों ओर अराजकता फैली हुई है, यह बात देखते चले आ रहे थे। ऐसी अवस्था में भी इलाहावाद का दुर्ग अब तक अँगरेजों के हाथ में है, यह देख वे बड़े आश्चर्य में पड़े और सुखी भी हुए। उन्होंने दुर्गके भीतर पहुंच कर देखा, कि यहां भी पूरी गड़बड़ मची हुई है। जिसके जो जीमें आता है, वही करता है। शराब का दौर वेतरह जारी है और आपस में मार-पीट, धौल-धप्पे का बाजार गरम है। उन्होंने सबसे पहले इसीका सुधार करना निश्चित किया। उन्होंने सिक्खों को किले के बाहर कर दिया और जगह-जगह पर उनका पहरा मुकर्रर कर दिया। इसके बाद वे स्थान-स्थान पर विद्रोहियों का सामना करने लगे और बहुतों को मार गिराया। इसी बीच शहर में अफवाह उड़ी, कि अँगरेज लोग चारों ओरसे तोपें लगा कर शहर को उड़ा देनेवाले हैं। फिर क्या था ? बात-की-बात में सारा शहर खाली हो गया।

कुछ थोड़ेसे सैनिक शहर की रक्षा के लिये रखकर उन्होंने दरियाबाद, सैदाबाद और रसूलपुर नामक स्थानों का उपद्रव शान्त करने के लिये एक-एक दल सैनिकों का भेजा। नगर उजाड़ ही हो गया था, इसलिये शासन-विभाग के जो कर्मचारी जहाँ-तहाँ लुके-

छिपे थे, वे अब बाहर निकल आये और सब काम फिर पूर्ववत् होने लगे।

इस प्रकार ईश्वर की दया और उपद्रवियों में संगठन के अभाव ने इलाहाबाद में अँगरेजों की प्रधानता बनी रहने दी। इस समय यदि इलाहाबाद अँगरेजों के हाथ से निकल जाता, तो शायद ही फिर अँगरेज इस देश में टिके रहते। फिर तो उनके लिये कहीं का भी उपद्रव शान्त करना कठिन हो जाता।

जो हो, सिर पर आयी हुई विपद जब टल गयी, तब अँगरेजों के दिल में बदले की आग बड़े जोरों से धधक उठी। दो सप्ताह पहले जिस प्रकार विद्रोहियों ने जिसी अँगरेज को पाया, उसीको मार गिराया, उसी प्रकार बेचारे निरपराध और सीधे-सादे आदमियों पर आफत ढायी जाने लगी।

पश्चिमोत्तर-प्रदेश की इस अचिन्तनीय भयङ्कर स्थिति के कारण कलकत्ते की मन्त्रि-सभा ने विद्रोहियों को दण्ड देने के लिये बड़ा कड़ा कानून पास किया था। उसीके बल पर अधिकारी यहां के सर्वसाधारण की जानें लेने को उतारू हो गये। उन्होंने सभी काले आदमियों को अपना शत्रु समझ लिया था और चाहे जिसे फांसी का हुक्म सुना देने को तैयार थे। प्रति दिन बहु संख्यक व्यक्तियों का प्राण-नाश होने लगा। गवाही-साक्षी की जरूरत नहीं थी। जो फँसा, सो मरा—यही नियम-सा हो गया था। एक आदमी के पास बहुतसे पैसे थे—बस उसे इसी अपराध पर फांसी दी गयी! किसी दिन १०, किसी दिन १५, किसी दिन २०, किसी दिन ३०

मनुष्य फांसी पर लटकाये जाते; पर कोई यह पूछनेवाला नहीं था, कि भैया! इनका अपराध क्या था? उन दिनों फांसी तो गोया मामूली सजा हो रही थी! विद्रोह के छः महीने बाद भी जज साहब ने १०० और मजिस्ट्रेट साहबने ५० मनुष्यों को फांसी का हुक्म सुनाया था। केवल इलाहाबाद ही नहीं, और-और नगरों में भी फांसी का बाजार गरम था और एक साथ दल के दल लोगों को फांसी दी जाती थी। इस प्रकार सभ्यताभिमानी अँगरेजों ने अपनी सभ्यताका परिचय देना आरम्भ कर दिया और लोग 'त्राहि-त्राहि' पुकार उठे। बालक, बूढ़ा, जवान—कोई इस सभ्यताके अद्भुत निदर्शन के चक्कर में आये बिना न रहा। फांसी तो फांसी, गांव के गांव जला देने में भी इन्होंने सङ्कोच न किया! कहा जाता है, कि कुल मिला कर ६००० मनुष्यों की प्राण-हानि हुई। इसीको कहते हैं—सूद समेत बदला लेना।

इलाहाबाद का उपद्रव शान्त होने पर सेनापति नील ने लखनऊ और कानपुर की रक्षा के लिये सैनिकों को भेजने का विचार किया; पर एक तो रसद का अभाव था, दूसरे मजदूरों और बैलगाड़ियों का अभाव था। फिर कैसे क्या हो? वे इसी सोच-विचार में थे, कि इन्हीं दिनों उनकी सेना में हैजे का प्रकोप फैला। एक ही दिन २० आदमी मर गये—हैजे के रोगियों से अस्पताल भर गया। लाचार इस महीने के अन्त तक उन्हें यहीं रुका रहना पड़ा। ३० वीं जून को तीसरे पहर ४०० गोरे, ३०० सिक्ख, १०० घुड़सवार और २ तोपें कानपुर भेजने का प्रबन्ध किया गया। इस सैन्यदल के अधिनायक हुए मेजर रेनडे। सेनापति नील ने जो हुक्मनामा लिख कर दिया था,

उसमें लिखा था,—"रास्ते में जहाँ कहीं उपद्रवी टिके हों, वहीं उनपर हमला कर देना होगा; किन्तु और लोगों का कुछ अनिष्ट न हो, ऐसा विचार रखना होगा। निरापद लोगोंको घर लौट जानेमें सहायता देना जिसमें वे अँगरेजी अमलदारी के तरफदार बने रहैं। जिन गांवों में विद्रोही छिपे पड़े हों, उन्हें जला देने का भय दिखाना चाहिये। जरूरी समझो, तो उन गांवों को बरबाद कर देना। जो सिपाही अपनी पूरी सफाई न दिखा सकें, उन्हें फाँसी पर लटका देना। फतेह-पुर के लोग सरकार से बागी हो गये हैं, इसलिये इस नगर पर जरूर हमला करना और यहाँ के पठानों का मुहल्ला नेस्तोनाबूद कर डालना। वहाँ का डिपुटी-कलक्टर मिले, तो उसे फांसी पर लटका देना और उसका सिर काटकर किसी मुसलमान के दरवाजे पर रख देना।" पाठक ही विचार करें, ये कैसी भयानक आज्ञाएँ थीं!

अस्तु; इसी समय मद्रास के प्रधान सेनापति सर पैट्रिक ग्राण्ट मृत प्रधान सेनापति आनसन के पद पर नियुक्त हुए और उनकी जगह पर बम्बई से कर्नल हावेलक मदरास चले आये। वहाँ से ये दोनों वीर कलकत्ते आये और गवर्नर-जेनरल लार्ड केनिंग ने ग्राण्ट साहब को प्रधान सेनापति बना कर्नल हावेलक को इलाहाबाद रवाना कर दिया। ये ३० वीं जून को सदलबल इलाहाबाद आ पहुंचे। नील साहब ने यहाँ से लखनऊ और कानपुर की रक्षा के लिये सैनिक भेजने की खबर इन्हें कह सुनायी। सुनकर इन्होंने भी सन्तोष प्रकट किया। इसके बाद एक और सेनापति के अधीन जहाज द्वारा सैन्य भी भेजा गया।

पर प्रतिहिंसा-परायण सैनिक, सेनापति की दी हुई स्वाधीनताका अनुचित लाभ लेने लगे। वे रास्ते में मिलनेवाले गांवों पर जी खोल-कर अत्याचार करने लगे—इसलिये उन्हें जितनी जल्दी कानपुर पहुं-चना चाहिये था, उतनी जल्दी नहीं पहुंचे। वे बिना जांच-पड़ताल किये लोगों को फांसी देने और गाँवों को जला-जलाकर खाक करने लगे। जगह २ रास्ते में वृक्षों से लटकते हुए निर्जीव मनुष्य दिखाई देने लगे। दो दिन में ४२ आदमी इसी तरह फांसी पर लट-काये गये! वे जहाँ कहीं विश्राम करने के लिये ठहरते, वहीं के दो-चार गांव जला देते थे। इसी समय ३ री जुलाई को लखनऊ से सर हेनरी लारेन्स का भेजा हुआ एक दूत सेनापति के पास आकर बोला:—अब कानपुर की रक्षा होने की कोई आशा नहीं है! नगर शत्रुओं के हाथ चला गया है, सेनापति आत्म-समर्पण कर चुके हैं और उनके साथ-ही-साथ वहाँ के सभी गोरे मारे जा चुके हैं।"

तुरत ही यह खबर इलाहाबाद भी पहुंच गयी; पर नील साहबको इस पर विश्वास न हुआ। उन्होंने सोचा कि यह भी शत्रुओं की कोई चाल है। परन्तु जब और दूतों ने भी आकर यही समाचार सुनाया, तब तो उनके सारे होशोहवास गुम हो गये। वे कर्नल हावेलक के साथ मिलकर विचार करने लगे, कि अब क्या करना चाहिये?

नवाँ अध्याय

कानपुर-काण्ड।

इस विद्रोह के इतिहास में सबसे अधिक विचित्र, कौतूहल-वर्द्धक और मर्मस्पर्शी घटनाएँ कानपुर की ही हैं; इसीलिये हम इस अध्याय में उन घटनाओं पर पूर्ण प्रकाश डालने का प्रयास करते हैं।

इलाहाबाद से १२५ मील पश्चिमोत्तर और लखनऊ से ४५ मील दक्षिण-पश्चिम के कोने पर, गङ्गा के किनारे कानपुर बसा हुआ है। यह एक बहुत बड़ा और व्यापारिक नगर है, यद्यपि न तो हिन्दू-इतिहास में इसका कहीं नाम पाया जाता है, न मुसलमानी राजत्व-काल के इतिहास में। हाँ, जब से यह अँगरेजों के हाथ में आया तब से इसकी लगातार उन्नति और प्रसिद्धि होती गयी।

इस समय यहाँ १, ५३ और ५६ नं० की पैदल सेना और २ नं० की घुड़सवार सेना छावनी में थी। ५९ अँगरेज सैनिक भी थे जिनके अधीन ६ तोपें थीं। सब मिलाकर ३,००० हजार देशी सिपाही यहाँ थे, जिनमें प्रायः ६७ अँगरेज अफसर थे। इन सब सेनाओं के प्रधान अध्यक्ष सर हिउ-ह्वीलर थे जो बूढ़े होते हुए भी बड़े तजुर्बेकार आदमी थे। उन्होंने कितनी ही लड़ाइयों में भाग लिया था और यहाँ के सिपाहियों की रीति-नीति खूब पहचानते थे। उन्होंने एक सिपाही की ही लड़की को अपनी पत्नी बना लिया था, इसलिये इन बातों के अच्छे जानकार होने का दावा करते थे।

मई के आरम्भ में तो कानपुर बड़ा ही शान्त रहा, पर १४ वीं मई से यहाँ के बाजारों में भी मेरठ तथा दिल्ली की घटनाओं की नोन-मिर्च लगी रिपोर्टें फैलने लगीं। सिपाहियों में भी हलचल पैदा होने लगी। यहाँ भी खबर उड़ी कि अँगरेज हमारी जाति और धर्म का नाश करने के लिये खाने की चीजों में मिलावट कर रहे हैं और हमारे लिये गाय और सुअर की चर्बी लगा हुआ टोटा तैयार हुआ है। धीरे-धीरे सिपाहियों को अँगरेजों पर सन्देह होने लगा और वे उन्हें अपने शत्रु समझने लगे। इसी समय शहर के यारों ने और भी कितनी ही तरह की मनगढ़न्त खबरें इधर-उधर फैलानी शुरू कीं। जिनमें एक यह भी थी, कि अँगरेजों ने यहाँ के सब हिन्दू-मुसलमान सिपाहियों को बे-मौत मार डालने के विचार से परेड के मैदान में बारूद जमा कर रखी है।

इसी तरह की अफवाहें उड़-उड़कर सिपाहियों को चंचल करने लगीं। वे अपने सेनापति का पद-पद पर अपमान करने को तैयार हो गये। सेनापति ह्वीलर को जब यह बात मालूम हुई तब वे बड़े हैरान हुए। मेरठ और दिल्ली की खबरें सुन-सुनकर सिपाहियों की चंचलता और भी बढ़ने लगी। यह देख सभी अँगरेज भय से थर्रा उठे। उनका दिन को खाना और रात को सोना हराम होने लगा। बेजड़-बुनियाद की बातें सुन कर भी वे यहाँ तक डर जाते कि शहर छोड़ कर भाग जाने की बात सोचने लगते थे। रात को जहाँ कहीं कुछ खटका हुआ कि इनके दिलोंमें यही खटका पैदा हो जाता, कि कहीं सिपाहियों का दल तो नहीं चला आ रहा है।

कानपुर का अस्त्रागार गंगा के किनारे था और ऊँची ऊँची मजबूत चहारदिवारियों से घिरा हुआ था। कानपुर के वृद्ध सेनापति ने सोचा कि सब अँगरेजों को वहीं पहुंचा दिया जाये, तो अच्छा हो। अस्त्रागार में तोप, बन्दूक और बारूद की कमी नहीं थी। वहां सैनिकों के रहने के बहुतसे घर भी बने हुए थे, इसलिये वहीं रहना उन्हें सबसे अधिक सुरक्षित जान पड़ा। खजाना और जेलखाना भी वहाँ से दूर नहीं थे। पास ही अस्पताल भी था। पर सेनापति को यह विचार बाद को पसन्द नहीं आया। उन्होंने सोचा, कि यहाँसे छावनी छः मील दूर है, इसलिये इस जगह सबके चले आने से बेचारे गोरे सिपाही बहुत दूर पड़ जायेंगे। इसीलिये उन्होंने एक विस्तृत समतल-क्षेत्र में चारों ओर से चार फुट ऊँची दीवारें खिंचवाकर वहीं सबको लाकर रखने का विचार किया और इसी इरादे से वहाँ रसद जमा करनी भी शुरू की। पर २५ दिनों से अधिक की रसद न जमा हो सकी। उन्होंने और भी सोचा कि सम्भव है यहाँ के सिपाही हम पर हमला न कर ठेठ दिल्ली की ओर चले जायें— तब तक हमारे पास कलकत्ते से काफी मदद पहुंच जायेगी। इन्हीं सब बातों को सोच-विचार कर उन्होंने यहीं सब अँगरेजों को बुलवा भेजा और सर हेनरी लारेन्स के नाम एक पत्र लखनऊ भेजकर उनसे कुछ फौज मांगी।

उस समय अवध के इलाके में भी सिपाहियों के रङ्ग बेरङ्ग नजर आ रहे थे और जितनी फौज सर हेनरी लारेन्स के अधीन थी, वह उसी प्रदेश की रक्षा के लिये काफी नहीं थी। तो भी उन्होंने ३२

नम्बर गोरी पल्टनके ८४ सैनिकोंको घोड़ागाड़ियोंपर सवार कराके कानपुर रवाना कर दिया। साथ ही उन्होंने अयोध्याकी गोलन्दाज सेनाके साथ लेफ्टिनेण्ट 'आसे' नामक एक सैनिक पुरुष की अधीनता में दो तोपें भी भेजीं। कानपुर की अवस्था का ठीक-ठीक पता लगाने के लिये उनका सेक्रेटरी भी यहां आया।

कानपुर के अधिकारियों ने जिस समय सर हेनरी लारेन्स के पास सहायता के लिये पत्र लिखा था, उसी समय उन्होंने बिठूर में अन्तिम पेशवा बाजीराव के उत्तराधिकारी धुन्धुपन्त नानासाहब के पास भी सहायता के लिये पत्र लिखा। कानपुर के तत्कालीन कलेक्टर मिस्टर हिलर्सडन साहब से नानासाहब की बड़ी दोस्ती थी। इसलिये उन्हींके अनुरोध से अधिकारियों ने उनकी सहायता लेनी चाही और नाना साहब ने भी झट उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। वे ३०० सिपाही और दो तोपें लिये हुए कानपुर पहुंच गये। खजाने की रक्षा का भार नाना साहब को ही सौंप दिया गया।

जिस दिन नाना साहब को खजाने की रक्षा का भार दिया गया, उसके एक दिन पहले ही लखनऊ से फौज आ गयी थी। इधर सेनापतिकी आज्ञानुसार सब अँगरेज-महिलाएँ और उनके बाल-बच्चे ऊपर लिखे स्थान में, जो सेनापति ने इन लोगोंके रहने के लिये हाल में ही मामूली दीवारों से घेर कर बनवाया था, आ पहुंचे। मारे कोलाहल के वह स्थान भर गया।

इसी समय एक दिन सेनापति को तरह-तरह की भयंकर खबरें मिलीं, पर थोड़ी-थोड़ी देरके बाद ही उनके असत्य होने का प्रमाण

मिलता जाता। इन्हीं अफवाहों के मारे उस दिन चार बार बाजार बन्द हुआ और खुला। उसके बाद भी इन अफवाहों का उड़ना बन्द नहीं हुआ। सब लोग अपनी-अपनी जानके लिये घबरा उठे। सेनापति के मनकी भी शान्ति जाती रही।

इसी बीच यहां के सिपाहियों में बड़ी भारी खलबली मची। सबसे पहले २ नम्बर घुड़सवार पल्टन में ही गोलमाल पैदा हुआ। इन लोगोंने धीरे-धीरे अपने बाल-बच्चों और माल-असबाब को दूसरे स्थानों में भेज दिया। सिवा अपने प्रिय सहचरों और पानी पीने के लोटेके इन्होंने और कुछ भी अपने पास न रहने दिया। इनमें बहुतसे मुसलमान भी थे। ये लोग मसजिद में नमाज पढ़ने जाते और वहीं सलाह-मशवरा किया करते। यह सब लक्षण देख, अँगरेजों के पेटमें चूहे कूदने लगे; लेकिन तब तक किसी ने खुल्लमखुल्ला विरोध नहीं किया। हाँ, सब लोग इस बात को ताड़ने लगे, कि अँगरेजों को हमारे ऊपर विश्वास नहीं है इसी लिये बाहर से फौज और तोपें मँगायी जा रही हैं। साथ ही वे यह भी सोचने लगे, कि कहीं ये नाराज अँगरेज एक ही दिन एक ही समय हम सबको तोप के सामने रख कर उड़ा न दें। जाति और धर्म के नाश की आशंका तो पहले से ही हो रही थी, इस बार प्राण-नाश की शंका भी बुरी तरह सबके दिलों में घर करने लगी। इसके बाद जिस दिन लखनऊ से गोरी पल्टन और तोपें आयीं, उस दिन तो यह आशंका और भी प्रबल हो उठी। फिर क्या था, देखते-देखते सब लोग अपने अपने घोड़े पर सवार हो बारकों से बाहर निकल आये। पर जब फौज और तोपों

ने उनका कुछ अनिष्ट नहीं किया और अपनी-अपनी राह चली गयीं, तब इनका सन्देह दूर हो गया और ये लोग आपस में बातें करने लगे। बातचीत का सारांश यही था कि इन अँगरेजों की नीयत खराब हो गयी है, ये हमारी जाति और धर्म नष्ट करने को तुले हुए हैं। हमारे ऊपर तिल भर भी विश्वास नहीं करते, तभी तो सिलह-खाने और खजाने पर गोरे सैनिकों का पहरा बैठाया गया है। इत्यादि, इत्यादि।

जिस समय सिपाहियों में इस तरह की बातें हो रही थीं, उस समय रसद विभाग का एक अँगरेज कर्मचारी भी वहीं था। वह उन लोगों के सन्देह को दूर करने तथा अँगरेज-सरकार की नेकनीयती साबित करने की बड़ी देर तक चेष्टा करता रहा, पर किसीने उसकी बात न मानी। सब लोग तरह-तरह की बातें कह कर अँगरेजों को बदगुमान और बदनीयत साबित करने लगे। हाल ही में एक दिन अँगरेज-सैनिक अफसर ने नशे की हालत में एक सन्तरी को लक्ष्य कर गोली चला दी थी। सौभाग्य से गोली उसके नहीं लगी, नहीं तो बेचारा मुफ्त में मारा जाता। दूसरे दिन उस सिपाही ने जब उक्त अफसर पर मामला दायर किया, तब जज साहब ने उसे पागल बतला कर साफ छोड़ दिया। सिपाहियों ने इस घटना का उल्लेख करते हुए उस कर्मचारी से कहा,—"देखो, यह कितना बड़ा अन्याय है! अगर किसी हिन्दुस्तानी ने इस तरह किसी अँगरेज पर गोली चलायी होती तो वह जरूर ही फांसी पर लटका दिया जाता।" इस पर बड़ा विवाद होने लगा। चारों ओर से बहुतसे सिपाही

आकर इकट्ठे हो गये। अब तो उस अकेले अँगरेज का कलेजा काँप गया। एक हवलदार ने बीच में पड़कर झगड़ा निपटा दिया और वह अँगरेज धड़कते हुए हृदय के साथ अपने निवास-स्थान पर चला गया।

इसी तरह सिपाहियों और अँगरेजों में मनोमालिन्य बढ़ता चला गया। अँगरेज लोग अपनी रक्षा के लिये जितनी ही सावधानी करने लगे, उतनी ही सिपाहियों की आशंका भी बढ़ने लगी। साथ ही वे यह भी समझने लगे, कि अँगरेज बेतरह डर गये हैं। इसीसे उन्होंने सोचा, कि इन डरे हुए अँगरेजों को हरा देना कोई बड़ी बात नहीं—हम लोग व्यर्थ ही इतने दिनों से इन्हें दृढ़ और साहसी समझे बैठे थे। कहने का मतलब यह, कि इस समय अँगरेज तो सिपाही-मात्र को आततायी समझते थे और सिपाही सब अँगरेजों को डरपोक, विश्वासघातक और गुप्त-शत्रु समझ रहे थे।

इसी तरह सारा मई मास कट गया, कहीं कुछ गड़बड़ न हुई। यह देख, वृद्ध सेनापति ह्वीलर ने सर हेनरीलारेन्स की सहायता के लिये दो सेनापतियों के अधीन ५० सैनिकों को लखनऊ भेज दिया। सिपाहियों ने सोचा,—"इनका इतना बल और घट गया, यह भी अच्छा ही हुआ!"

जून के आरम्भ में ही सिपाहियों के पैंतरे बदलने लगे। घुड़सवारों के साथ ही साथ पैदल सिपाहियों में भी चञ्चलता दिखलाई देने लगी। बाजारों और छावनियों में षड्यन्त्र होने लगा। नवाबगंज में नाना साहब और उनके सिपाही ठहरे हुए थे। कहते हैं, कि षड्य-

न्त्रियोंका दल उनमें भी अपना असर पहुंचानेकी कोशिश करने लगा। यहीं पर अस्त्रागार, कारागार और धनागार भी थे। सिपाहियों ने सोचा, कि यह संयोग बड़ा अच्छा है। अगर एक पर हमारा कब्जा हुआ, तो बाकी दोनों भी शीघ्र ही हाथ आ जायेंगे।

इस समय ज्वालाप्रसाद नामक एक मनुष्य नाना साहब के खास मुसाहिबों में था। मौजूदअली नामक एक मुसलमान जो पहले नाना-साहब के यहाँ नौकर था, इन दिनों घोड़ों की सौदागरी करता था। ये दोनों सिपाहियों से मिल गये। इधर टीकासिंह नामक घुड़सवार-पल्टन का एक सूबेदार भी अँगरेजों का पूरा दुश्मन और सिपाहियों का अतिशय प्रिय हो रहा था। सूबेदार टीकासिंह और ज्वालाप्रसाद की आपस में खूब सलाहें होने लगीं। अजीमुल्लाहखाँ, जो नाना-साहब का दाहिना हाथ और उनके प्रत्येक कार्य का मन्त्रण-दाता था, भीतर-ही-भीतर अँगरेजोंका बड़ा भारी दुश्मन था। वह सदा सिपाहियों की गति-विधि पर ध्यान रखता और उनसे मिलता-जुलता था। इधर अँगरेजों से भी वह मिला हुआ और उधर उनके सत्यानाश का भी अवसर देख रहा था। नाना साहब के मन में अँगरेजों के प्रति वैसा सद्भाव नहीं था। इन सब बातों से सिपाहियों के दिल और भी बढ़ गये। अजीमुल्लाहखाँ के मनोभाव को प्रकट करने के लिये एक दिन की एक छोटीसी घटना ही काफी है।

एक दिन अज़ीमुल्लाहखाँ एक अँगरेज लेफ्टिनेण्टके साथ (जिसका नाम डेनियलथा) घूमता हुआ उस स्थान पर आया जहाँ अँगरेजोंके रहने के लिये चहारदिवारी खींची जा रही थी। उसने उससे पूछा,—

"क्यों भाई ! मैदान में जो चहारदिवारी खींची जा रही है, उस स्थान का क्या नाम पड़ा है ?"

डेनियल ने कहा,—"मुझे ठीक नहीं मालूम ।"

अज़ीमुल्लाह ने हँस कर कहा,—"मुझे तो उसका नाम 'नाउम्मीदी का क़िला' रखना ही अच्छा मालूम होता है ।"

डेनियल ने चटपट उत्तर दिया,—"नहीं नहीं, हम लोग उसका नाम 'विजय दुर्ग' रखेंगे !"

यह सुन, अज़ीमुल्लाह कहकहा मार कर हँसने और डेनियल की इस बात की खिल्ली उड़ाने लगा। यह लेफ्टिनेण्ट नाना साहब का बड़ा प्रेम-पात्र था। एक दिन नाना साहब ने उसे एक बेश-कीमती अँगूठी अपनी उँगली से उतार कर दे दी थी।

इस अज़ीमुल्लाख़ाँ का जिक्र हमने इस ग्रन्थ के आरम्भ में भी किया है। यह लड़कपन में अँगरेज़ों के यहाँ बावर्ची का काम कर चुका था। इसके बाद दस बरस तक कानपुर के स्कूल में पढ़ने के बाद वह उसी स्कूल में मास्टर हो गया और पीछे एक अँगरेज़ सैनिक कर्मचारी का मुंशी हो गया था। अपने खूबसूरत चेहरे और खुशामद-भरी मीठी-मीठी बातों की बदौलत वह मेमों के मन मोह लेता था। यद्यपि वह बहुत कम पढ़ा-लिखा था; तथापि वह धड़ल्ले के साथ अँगरेज़ी, जर्मन और फ्रेंच भाषाओं में बातें कर लेता था। इसीलिये नाना-साहब उसे बहुत मानते थे और उन्होंने उसे ही अपना वकील बना-कर विलायत भी भेजा था; पर वहाँ उसकी बात किसी ने नहीं सुनी और नाना साहब का काम तो खटाई में फूलता रह गया और अज़ी-

मुल्लाह गोरी बीबियों की मण्डली में मौज करने लगा। वह हद दर्जे का खूबसूरत और मिठबोला था, इसलिये मेमें उसे बहुत चाहती थीं। विलायत से लौट कर वह रूम की राजधानी कुस्तुनतुनिया में आया, इस समय क्रीमिया-युद्ध के कारण युरोप में बड़ी खलबली मची हुई थी। उसी युद्ध का हालचाल मालूम करने के लिये वह रूम की राजधानी में चला आया। वहाँ जाकर उसने देखा, कि अँगरेज लोग रूसियों के गोलों के आगे बेतरह हार रहे हैं। यह देख कर उसका जला-भुना हृदय कुछ ठण्डा हुआ; क्योंकि वह अँगरेजों का कट्टर शत्रु हो गया था और उनकी हार उसकी खुशी का बायस थी। इतिहास के पाठकों को मालूम है कि सन् १८५४—५५ में यह युद्ध इङ्गलैण्ड, फ्रांस, रूम और सार्डिनिया ने एक साथ मिल कर रूस के साथ ठाना था। अँगरेजों को हारते देख, अजीमुल्लाह ने सोचा, कि मैं अपने देश में लौटने पर इन्हें और भी छकाने का उपाय करूँगा। उसके बाद जब अपने देश में आया, तब भीतर-ही-भीतर अँगरेजोंके साथ शत्रुता रखता हुआ, ऊपर से उनसे दोस्ती भी रखने लगा।

विलायत से लौट आने पर जब उसने अपने उद्देश्य में विफल होने का समाचार नाना साहबको सुनाया, तब वे बड़े ही दुखी हुए। उन्हें अँगरेजों पर बड़ा क्रोध हुआ। अजीमुल्लाह ने क्रीमिया-युद्ध में अँगरेजों की हार का हाल सुना कर नाना साहब को मौका पाकर अँगरेजों की इस बेईमानी का बदला वसूल करने के लिये खूब ही उभाड़ा। नाना साहब भी अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

इधर उनके विठूरवाले राजभवन में और भी कितने ही अँगरेजों के शत्रु निवास करते थे। उनके भाई बालराव और बाबा भट्ट, और भतीजा रावसाहब और लड़कपन के साथी तांतियाटोपी भी उनको अँगरेजों के विरुद्ध उभाड़ने से बाज नहीं आये। खासकर तांतिया-टोपी तो लड़कपन के साथी होने के कारण नानासाहब के प्रधानमंत्री ही हो रहे थे, इसीलिये यद्यपि नाना साहब इसी आशा से अङ्गरेजों से मिले-जुले रहते थे कि एक-न-एक दिन ये लोग मेरा नष्ट अधिकार दिलवा ही देंगे, तथापि उनका दिल अङ्गरेजों से हिल-मिल नहीं गया था। रात-दिन साथ रहनेवालों ने उन्हें अङ्गरेजों का विश्वासी मित्र नहीं बने रहने दिया। अँगरेजों से नाना साहब इतने मिले-जुले रहते थे, कि कानपुर के कलक्टरने सरकारी खजाना तक उनकी संरक्षकता में सौंप दिया था; पर वे अधिक काल तक इस विश्वास की रक्षा न कर सके—अजीमुल्लाह और तांतियाटोपी आदि ने उन्हें भी बागी बना ही दिया।

कोई-कोई अँगरेज इतिहास-लेखक तो क्षण भर के लिये भी यह बात मानने को तैयार नहीं, कि नानासाहब का चित्त कभी अङ्गरेजों के प्रति शुद्ध था। इसका कारण यही है, कि लार्ड डलहौसी की क्षुद्र नीति ने उनकी बड़ी हानि की थी; इसलिये उनके दिमाग में यह बात आती ही नहीं, कि कभी कोई सताया हुआ आदमी अपने सताने-वाले आदमी के प्रति सद्भाव-पूर्ण हो सकता है। परन्तु उन्हें हिन्दु-स्तानियों—विशेषतः हिन्दुओं की प्रकृति का ज्ञान नहीं, इसीलिये वे नानासाहब की पहली सब खातिरदारियों और मेल-मुहब्बत को धोखे

की टट्टी ही समझते हैं; पर बात यथार्थ में ऐसी नहीं थी। नानासाहव सताये हुए जरूर थे; पर वे अँगरेजों से अच्छेकी आशा रखे हुए थे और इसीलिये अच्छी नीयत से अपने आदमियों के साथ अङ्गरेजों की मदद को आये थे; पर जब जँचानेवालों ने उन्हें अच्छी तरह जँचा दिया, कि अङ्गरेजों से भलाई की आशा करनी व्यर्थ है और उनसे वदला लेने या उन्हें खदेड़ भगाने का यही सबसे अच्छा अवसर है, तब वे खुल्लम-खुल्ला अँगरेजों के शत्रु हो गये।

नानकचन्द नामक एक वकील ने वाजीराव पेशवा के एक भतीजे की ओर से नाना साहव पर नालिश दायर की थी, जिसमें उसने अपने चाचा की सम्पत्ति पर दावा किया था। नानकचन्द नाना-साहव का कट्टर शत्रु था। उसने नानासाहब के विरुद्ध अँगरेज अधि-कारियों के कान भरने शुरू किये। उसने कानपुर के कलक्टर मिस्टर हिल्सँडन से कहा, कि नानासाहव और अज़ीमुल्लाह के साथ बागियों की खूब वातचीत चल रही है—भीषण षड्यन्त्र रचा जा रहा है—आप लोग सावधान हो जाइये; पर हिल्सँडन साहब ने उसकी बातों पर ध्यान ही नहीं दिया। उन्हें नाना साहव की राजभक्ति पर पूर्ण विश्वास था। वेचारा वकील अच्छी सलाह देने जाकर आप ही झिड़-किया खाकर चुपचाप लौट आया।

पर बात किसी अंश में ठीक थी। घुड़सवारों के विरोध हो उठने के ३।४ दिन बाद ही उपर्युक्त सूबेदार टीकासिंह नानासाहव से मिलने आया और बोला,—"आप यहाँ अँगरेजों के सिलहखाने और खजाने की रक्षा करने आये हैं और हम सब—हिन्दू और मुसलमान-

अपने धर्म की रक्षा करने को एकत्र हुए हैं! बंगाल में तो सब सिपाही एक हो गये हैं और धर्मरक्षा के लिये मैदान में डट गये हैं, अब आपका क्या इरादा है, सो साफ कहिये।"

नानासाहब ने कहा,—"मैं सिपाहियों के साथ हूं।"

एक और मनुष्य का कथन है, कि जून महीने में एक दिन सन्ध्या के समय महाराज नानासाहब अपने भाई बालराव और मन्त्री अजीमुल्लाहखाँ के साथ गङ्गा के किनारे गये थे। वहीं उनके गुप्तचर टीकासिंह और उसके साथियों को बुला लाये। सबके सब नाव पर सवार हो दो घंटे तक सलाह करते रहे।

ये सब बातें सोलह आने सच थीं, इसका कोई प्रमाण नहीं। पर इसमें कोई सन्देह नहीं, कि घुड़सवार पल्टन के सिपाही उत्तेजित हो उठे थे और उनमें आपस में खूब सलाहें हो रही थीं। तथा नाना-साहब के अनुचर उनसे मिले हुए थे। हो सकता है, कि इन अनु-चरों की ही जबानी सिपाहियों ने सुना हो, कि नाना साहब उनके पक्ष में हैं और समय पड़ने पर वे सिपाहियों की अवश्य ही तन, मन, धन से सहायता करेंगे।

अन्ततः ४ थी जून को ज्वाला-मुखी-पर्वत फूट ही पड़ा। २ नं० घुड़सवार-सेना के सैनिक कम्पनी के विरुद्ध उठ खड़े हुए। उनके बूढ़े सूबेदार भवानीसिंह ने उन्हें लाख समझाया-बुझाया; पर उन्होंने उस की बात न मानी और बिगड़ कर कहा,—"या तो तुम भी हम लोगों के साथ हो जाओ, अथवा मरने के लिये तैयार हो जाओ।" बूढ़ा अपनी धुन का पक्का था। उसने बागियों की बात का प्रतिवाद किया

और अपने दल के झंडे और छावनी के अन्दर वाले खजाने की रक्षा करने के लिये तैयार हुआ। यह देख, जोश में आकर कितने ही आदमियों ने उस पर तलवार चला दी, जिससे वह घायल हो, अधमरा होकर गिर पड़ा। उसको यों गिरते देख, सिपाही रुपये-पैसे और अस्त्र-शस्त्र लिये हुए चल पड़े। उन्होंने ५ नं० पैदल-सेना में आकर वहां के लोगों को उभाड़ा और उन्हें साथ लेकर नवाबगंज की ओर चल पड़े। यहीं पर ख़जाना, जेलख़ाना और सिलहखाना आदि थे। यहीं से दिल्ली को भी रास्ता गया हुआ है। इसलिये बागी सिपाही सीधे नवाबगंज की ही तरफ चले। रास्ते में जो घर मिले, उनमें आग लगाकर उन्होंने माल असबाब लूट लिये। चारों ओर सर्वनाश की लीला जारी हो गयी। हाँ, अफसरों और अन्यान्य अँगरेजों की हत्या का उन्होंने उस समय तक विचार नहीं किया था।

जब ये दोनों दल नवाबगञ्ज पहुंचे, तब नाना साहब के अनुचरगण उनकी सहायता करने के लिये आगे बढ़े। इस समय ५३ नम्बर पलटन के कुछ सिपाही खजाने के पहरे पर नियुक्त थे, पर इनकी संख्या बागियों से कम थी; इसलिये ये देर तक खजाने की रक्षा न कर सके—खजाना लुट ही गया। इसके बाद कैदखाने का फाटक तोड़कर कैदियों को छुटकारा दे दिया गया और सरकारी कचहरियों के कुल कागज-पत्र जलाकर खाक कर दिये गये। अस्त्रागार की कुल तोपें और बारूद आदि सामान बलवाइयों के हाथ आ गये। सब लूट का धन गाड़ियों और हाथियों पर लादा गया और बलवाई बड़ी खुशी के साथ दिल्ली चलने की तैयारी करने लगे। इधर उनके दूतगण शेष

सैनिक दलों में जाकर उन लोगों को भी भड़काने लगे। कुछ तो इनके वहकाने से और कुछ सेनापति ह्वीलर के बुद्धि-दोष से विद्रोहियों से जा मिले। सेनापति ने अपने अत्यन्त हितैषी सैनिकों को भी अविश्वासी समझ कर छावनी से निकलवा दिया और उन पर तोप छोड़ने का हुक्म जारी कर दिया। इसीलिये ये लोग भी विद्रोही हो गये। जिस समय उनमें से वहुतसे लोग अपने खाने-पीने का प्रबन्ध कर रहे थे, उसी समय उन्हें गोला छूटने की आवाज सुनाई दी। एक वार, दो वार, तीन वार आवाज सुनते ही वे घवरा उठे। वे जानते थे, कि हम तो सच्चे सेवक हैं—हमपर कोई काहे को गोला-गोली छोड़ेगा? पर जव उन्होंने देखा, कि अव तो हम भ्रम-ही-भ्रम में पड़े रहकर मरा चाहते हैं, तव भागने लगे। वहुतेरे इतना होने पर भी कहीं न भागे और जव गोला छूटना वन्द हो गया, तव सेनापति के पास जा, उनसे अपनी राजभक्ति का पूर्ण परिचय दे उन्हें विस्मित करने लगे। अवकी वार उनकी समझ में आया कि अपनी ही कार्रवाई से उन्होंने अपने अनुरागियों को भी वैरी बना लिया।

अस्तु; सिपाहियों ने सुन रखा था कि दिल्लीवालों ने वहाँ से अँगरेजों को निकाल वाहर कर दिया है और बूढ़े वादशाह वहादुर-शाह फिर दिल्ली के तख्त पर विठाये गये हैं। इसीलिये उन्होंने इरादा किया कि शीघ्र ही दिल्ली पहुंच कर अपने भाइयों की मदद करनी चाहिये। यहाँ के खजाने में प्रायः पन्द्रह लाख रुपये थे। वे सब सिपा-हियों के हाथ लग गये थे। अस्त्रागार से युद्ध-सामग्रियाँ भी वहुता-यत से मिल गयी थीं। इसीलिये उन्होंने सोचा, कि हमारे पहुंचने से

मुगल-सम्राट् का बल बहुत बढ़ जायेगा और अँगरेजों का सदा के लिये यहां से देश-निकाला हो जायेगा ।

कहते हैं कि यहाँ से दिल्ली के लिये प्रस्थान करने से पहले कुछ सिपाही नाना साहब के पास आये और बोले,—"आप हमारी मदद के लिये हमारे साथ दिल्ली चलिये, नहीं तो आपकी जान भी खतरे से खाली नहीं है ।"

यह सुन, नाना साहब ने उनसे उनकी सहायता करने की प्रतिज्ञा की । फिर तो वे आनन्द से हाथी पर विजय का झण्डा लिये, लूट के रुपये लिये हुए रवाना हो गये । अगल-बगल में जो युरोपियनों के बंगले थे, वे जलाकर खाक कर दिये गये । इसके बाद अपने स्त्री-बच्चों को बैलगाड़ियों पर चढ़ा, वे ऊँचे स्वर से जय-ध्वनि करते हुए कल्याणपुर नामक स्थान में आ पहुंचे ।

इसी समय अजीमुल्लाहखाँ ने नाना साहब को यह जँचाना शुरू किया कि "आपका दिल्ली जाना उचित नहीं है ; क्योंकि वहाँ जाने से मुगल-सम्राट् के सामने आपकी कोई प्रधानता न रहेगी । इसलिये आप यहीं रहकर अँगरेजों का प्रभुत्व नष्ट करने की चेष्टा कीजिये और इस जिले तथा आस-पास के प्रदेशों के स्वामी बन, इन काफिर अँगरेजों को स्त्री-बच्चों समेत मार कर यहां के राजा बन जाइये ; यहीं रहकर अपना सैनिक और आर्थिक बल बढ़ाते हुए आप किसी दिन सारे भारतवर्ष के अधिपति हो जायेंगे । सौ वर्ष पहले अँगरेजों ने जिस तरह महज़ बङ्गाल में ही अपनी सारी शक्ति लगा दी थी और पीछे उसीका यह नतीजा हुआ कि वे सारे देश

में छा गये, और इसी तरह आप भी कानपुर को अपना केन्द्र बनाइये और पीछे एक अखिल-भारतीय साम्राज्य की स्थापना कर डालिये।

अज़ीमुल्लाहखां की चिकनी-चुपड़ी बातें नाना साहब को भी पसन्द आ गयीं। उन्होंने सोचा,—"यहां के अँगरेज निकम्मे हो रहे हैं। काशी, प्रयाग, आगरा या लखनऊ से जल्दी फौजी मदद आने की भी कोई आशा नहीं है। इधर सभी देशी अँगरेजों के शत्रु हो रहे हैं और लाखों रुपये तथा युद्ध-सामग्री अपने हाथ आ गयी है। अतएव यदि मैं चाहूं, तो अपनी पेशवाई फिर से पा लूंगा और इन अँगरेजों को इस देश से निकाल बाहर कर दूँगा।"

अज़ीमुल्लाहखाँ ने क्रीमिया-युद्ध में अँगरेजों की हार का हाल उन्हें सुनाया ही था और इस देश में इस समय सिपाहियों के करते उनका जो हाल हो रहा था उसे वे देख ही रहे थे, इसीलिये उनकी आशा बढ़ गयी और वे सामने ही अपने सौभाग्य की उज्ज्वल किरणें देखने लगे। लार्ड डलहौसी की निन्दनीय नीति ने उन्हें अँगरेजों का दुश्मन बना ही रखा था; पर कुछ दिन बीत जाने से और साहबों से मिलने-जुलने से उनकी वह शत्रुता सोयी हुई थी। अज़ीमुल्लाहखां के दिखाये हुए सब्ज बाग ने उस शत्रुता की सूखती हुई लता को फिर से पानी सींच कर मानों हरा कर दिया। प्रायः बहुत-से इतिहास-लेखकों ने अपने-अपने इतिहास में नाना साहब के बारे में इसी तरह की बात लिखी है; पर उनके बाल्य-बन्धु तांतियाटोपी का कहना है, कि सिपाहियों ने नानासाहब को पकड़ कर कैद कर लिया था और उन्हें जबरदस्ती अँगरेजों के खिलाफ उठ खड़े होने

को लाचार किया था। चाहे जैसा हो, पर वे अँगरेजों के शत्रु हो गये। लार्ड डलहौसी का किया हुआ उनका सर्वस्वहरण, अज़ीमुल्लाह की मन्त्रणा और सिपाहियों की उत्तेजना— ये तीनों बातें उनकी इस अँगरेज-विद्वेषिता का कारण हुईं।

जब नाना साहब उनका साथ देने को राजी हो गये, तब सिपाहियों ने उन्हें अपना राजा मान लिया और उनका नाम ले-लेकर सैन्य-संगठन आदि अनेक कार्यों का अनुष्ठान किया जाने लगा। पूर्वोक्त सूबेदार टीकासिंह बलवाई सिपाहियों के प्रधान सेनापति बनाये गये और जमादार दलरञ्जनसिंह तथा सूबेदार गङ्गादीन क्रमशः ५३ वीं और ५६ वीं पल्टन के सेनानायक नियत हुए। यद्यपि ये तीनों सेनापति हिन्दू ही थे, तथापि इस समय हिन्दू और मुसलमान अपना पारस्परिक भेद-भाव भूल कर एक-दिल होकर काम कर रहे थे, इसीलिये किसी ने चूं-चरा नहीं की।

छठी जून, शनिवार के दिन नाना साहब का भेजा हुआ एक पत्र सेनापति ह्वीलर के पास आया, जिसमें उन्होंने लिखा था, कि हम लोग अब बिना विलम्ब के आप लोगों पर हमला करेंगे— होशियार हो जाइये।

बलवाई सिपाही जब कानपुर से दिल्ली जाने लगे, तब यहां के अँगरेजों ने चैन की साँस ली और सोचा, कि अब हम लोग यहां से इलाहाबाद भाग जायेंगे। पर नाना साहब का विचार बदल जाने से सिपाही दिल्ली न जाकर कल्याणपुर से ही कानपुर लौटने लगे। उपर्युक्त तीनों सेनापतियों ने सब के दिलों में अँगरेजों के प्रति घोर

घृणा के भाव उत्पन्न कर दिये। सब लोग अँगरेजों के खून के प्यासे हो उठे। सिपाहियों के कानपुर लौट आने का समाचार सुन, सेनापति ह्वीलर के होश उड़ गये। उन्होंने सभी सिविल और मिलिटरी कर्मचारियों को उसी नये रक्षा-स्थान में बुलवा लिया; पर वह मिट्टी की दीवार चाहे जब गोलों से उड़ा दी जा सकती थी, इसलिये सेनापति की यह तरकीब कितनी भद्दी थी, यह बात सहज ही अनुमान में आ जाती है।

अबकी बार सिपाहियों ने अँगरेजों के उसी आत्म-रक्षा-स्थान पर आक्रमण करने का विचार किया और रास्ते में ईसाइयों को मारते-कूटते और लूटते हुए वहां आ पहुंचे। ठीक दोपहर के समय आक्रमण आरम्भ हो गया। उस समय उस स्थान पर ४६५ मर्द थे, जिनमें अनेक सैनिक आफिसर, सिविल आफिसर, गोरे सिपाही, व्यापारी और क्लर्क थे। उनकी स्त्रियों की संख्या २८० थी और प्रायः इतने ही छोटे-छोटे बच्चे भी थे। इस तरह वहां प्रायः एक हजार गोरे जीव आत्म-रक्षा के लिये छिपे हुए थे। ईंटों के मकान, खर-पात की छावनी—जो धूप रोकने में भी असमर्थ थी—मिट्टी की चहारदिवारी और सामने उत्तेजित सिपाहियों की भीड़! इसीसे पाठक वृद्ध सेनापति की अदूरदर्शिता का अनुमान कर लें। इसीलिये हेनरी गिल्बर्ट ने अपनी The story of Indian mutiny में लिखा है:—

(What madness of in capacity had chosen this place as a harborer of refuge for a thousand precious souls in a weltering sea of murderous rebels).

अर्थात्—यह कोरी उन्मत्तता और बड़ी भारी मूर्खता थी, जो यह स्थान रक्तपिपासु विद्रोहियों के समुद्र-समान विस्तार के सामने सहस्रों अमूल्य प्राणों की रक्षा के योग्य आश्रय-स्थल समझा गया—अन्त में ठीक दोपहर के समय तोप की आवाज सुन पड़ी, सुनते ही सब अँगरेज एक वार घबरा उठे। जो लोग सिपाही थे अथवा सिपाही न होते हुए भी हथियार चलाना जानते थे, उनके हाथ में बन्दूक दे दी गयी और वे सेनापति की आज्ञानुसार जगह-जगह पर बन्दूक लिये खड़े हो गये। इधर विद्रोही उस स्थान पर लगातार गोले बरसाने लगे। स्त्रियां और बच्चे कातर-स्वर से चिल्लाने लगे ! लाचार, उन्हें अस्पताल में पहुंचा कर सभी मर्द आत्म-रक्षा के लिये दृढ़ता-पूर्वक प्रस्तुत हो गये।

महाराज नाना साहब का नाम ले-लेकर उत्तेजित सिपाहियों ने छठी जून से लेकर छब्बीसवीं जून तक खूब गोले बरसाये। अँगरेजों की दुर्दशा सीमा को पहुंच गयी। इस समय अँगरेजों के सामने जैसी विपद् दिखलाई दी, वैसी किसी इतिहास के किसी युद्ध में नहीं दिखाई दी होगी। सर्द मुल्कके रहनेवाले अँगरेज जेठ की कड़ी धूप में गोलों के सामने डटे रहने को लाचार हुए, इससे बढ़कर और आफत क्या हो सकती थी ? स्त्रियों और बच्चों का तो और भी बुरा हाल हो रहा था। रात-दिन ऐशोआराम और मौज की गोद में पलनेवाली गोरी बीवियाँ और उनके लाड़ले बच्चे इस भयङ्कर विपत्तिमें पड़ कर भय और कष्ट से सूख गये। उनके प्राण छटपटाने लगे।

सेनापति के हुक्म के मुताबिक सभी अस्त्र धारण करने योग्य अँगरेजों को हथियार पकड़ा दिये गये; प्रत्येक मनुष्य को तीन-तीन सङ्गीनदार बन्दूकें दे दी गयीं। शिक्षित सैनिकों को आठ-आठ बन्दूकें तक दी गयीं। 'मरता क्या न करता ?' इस कहावत के अनुसार वे लोग सामने मृत्यु की नदी लहराती देख, आत्मरक्षाके लिये प्रस्तुत हो गये।

इधर बलवाई भी चुप नहीं थे। सूबेदार टीकासिंह ने शनिवार के दिन अस्त्रागार से तोपें ला-लाकर जगह-जगह रखवा दीं। रविवार के दिन सवेरे से हिन्दी और उर्दू में लिखे हुए घोषणा-पत्र सर्वत्र बाँटे जाने लगे। इन घोषणा-पत्रों में हिन्दुओं और मुसलमानों को अपने-अपने धर्मों की रक्षा के लिये एक हो जाने की सलाह और उत्तेजना दी गयी थी। इससे साधारण श्रेणी के हिन्दुओं और मुसलमानों में बड़ी उत्तेजना फैली। सर्वसाधारण बड़े उत्साह से सिपाहियों की सहायता के लिये आगे बढ़ आये। जिन सब जमींदारों को अपना सनातन अधिकार नष्ट हो जाने के कारण अँगरेजों पर दिली नफरत हो गयी थी, वे लोग भी सिपाहियों से मिल गये। यदि केवल सिपाही बिगड़े होते, तो झटपट दबा दिये जाते; पर यहाँ तो बहुतेरे लोग, जिन्हें अँगरेजों की स्वार्थ-पूर्ण नीति ने पहले से ही बैरी बना रखा था, उनसे आ मिले थे; शान्ति-स्थापन करना कठिन हो गया था। इसीलिये अँगरेजों के धन-जन की भयङ्कर हानि हुई।

सोमवार तारीख ८ वीं जून से विद्रोहियों का बड़ा भीषण आक्रमण होने लगा। रक्षा-स्थान में छिपे हुए वीर अँगरेज बड़ी बहादुरी

और दिलेरीके साथ अपनी और अपने बाल-बच्चों की रक्षा करने लगे। विद्रोहियों के गोले प्रति दिन उनकी जान लेने लगे। प्रति दिन बहुतसे गोरे मरने या घायल होने लगे। जो लोग आजसे पहले कभी लड़ने-भिड़ने के पास नहीं गये थे, वे भी वीरता के साथ अग्नि-शिखा के सामने डटे रहे। क्या इञ्जीनियर, क्या पादरी, क्या व्यापारी—सभी श्रेणी के अँगरेज लाचार सिपाही बन गये। प्रति दिन अपनी आँखों के सामने भयङ्कर काण्ड संघटित होते देख, गोरी बीबियों में भी साहस का सञ्चार हो गया। वे भी यथासाध्य मर्दों की मदद करने लगीं, तो भी बहुतसी स्त्रियाँ ऐसी थीं, जिनकी दुर्दशा का अन्त नहीं था। उनमें कितनी ही आसन्न-प्रसवा हो रही थीं और कितनी ही के वहीं बच्चे भी पैदा हुए। प्रसव-यातना के कष्ट के सिवा उन बेचारियों को और भी कितनी ही तरह के कष्ट उठाने पड़े।

एक स्त्री अपने दो छोटे-छोटे बच्चों को गोद में लिये अपने स्वामी के पीछे-पीछे फिर रही थी। इसी समय एक गोली आकर उसके स्वामी के लगी। वह वहीं ढेर हो गया। उस स्त्रीके दुःख की सीमा न रही। वह रोती हुई अपने स्वामी के ऊपर गिर पड़ी। उसके एक बच्चे को भी गोली लगी और उसके भी दोनों हाथों में घाव लगा। बच्चे को गोद में लिये रहना भी उसके लिये असम्भव हो गया। और लोग उसे वहाँ से उठाकर घर के अन्दर ले गये। इस तरह की अनेक शोचनीय घटनाएं प्रति दिन देखने में आती थीं। कितने ही स्त्री-पुरुष और बच्चे गोली खा-खाकर मरने लगे।

इधर सेनापति ह्वीलर प्रतिक्षण दूसरे स्थानों से सैनिकों के आने की राह देख रहे थे। उन्हें आशा थी, कि पञ्जाब से सर जान लारेन्स अवश्य ही कुछ सैनिक भेजेंगे और इलाहाबाद से नील साहब भी आते ही होंगे। लखनऊ से सर हेनरी लारेन्स भी कुछ कुमुक अवश्य भेजेंगे, इसकी भी उन्हें पूरी उम्मेद थी। परन्तु दुर्भाग्यवश उन्हें कहीं से सहायता नहीं मिली पञ्जाब से सर जान लारेन्स ने लिखा कि हमें तो स्वयं सहायता की आवश्यकता है, हम कहां से आपकी सहायता करें ? लाचार सेनापति ह्वीलर ने जब कहीं से सहायता आती नहीं देखी, तब १४ वीं जून की शाम को उन्होंने एक पत्र लखनऊ के जज गेबिन्स साहब को लिखा, जिसमें अपनी दुरवस्था और सहायता की आवश्यकता के विषय में उन्होंने बड़े अधीरता-भरे शब्द लिखे थे। पर इसका भी कोई फल न हुआ। लाचार हो, उन्हें अपने ही साहस, दृढ़ता और आत्म-त्याग के बल पर टिकना पड़ा। उन्होंने आत्मरक्षा करते हुए जीवन विसर्जन करने का सङ्कल्प कर लिया।

एक सप्ताह इसी तरह बीत गया। आठवें दिन जिन दो घरों पर फूस की छावनी थी और जिनमें रोगी, असमर्थ, बूढ़े, स्त्रियाँ और बच्चे भरे हुए थे, उनके छप्पर में आग लग गयी। यह देख, सब लोग बहुत घबराये और आग बुझाने की चेष्टा करने लगे। इधर बलवाइयों के हमले का जोर भी बहुत बढ़ गया। बचाते-बचाते भी दो सैनिक उसी आग में जल मरे। उक्त दोनों मकान जलकर भस्म हो जाने से

दिन की धूप और रात की ओस से बचाव की कोई सूरत न रही। और तो और, हमला करनेवालों की गोलियों से वहां की तमाम चीजें नष्ट-भ्रष्ट हो गयीं। डाक्टरी के यन्त्र और दवाइयों के केस और आलमारियाँ भी नष्ट होने से न बचीं। इसलिये बीमारों और घायलों की चिकित्सा होनी भी कठिन हो गयी। घोर कष्ट और आर्त्तनाद के साथ लोग अकाल मृत्यु के शिकार होने लगे।

हम ऊपर भवानीसिंह नामक एक प्रभुभक्त सूबेदार का हाल लिख चुके हैं। अपने स्वदेशियों और स्वधर्मियों का पक्ष छोड़ अँगरेजों का तरफदार हो गया था, इसीलिये सिपाहियों ने उसे बेतरह घायल कर दिया था। उसे इसी आश्रय-स्थान में लाकर अँगरेज उसकी उचित सेवा-शुश्रूषा कर रहे थे। इसी समय बाहर से एक गोली उसके और लगी, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। उसीकेसे सरकार के प्रायः १०० नमकहलाल नौकर इसी जगह पड़े हुए थे। उन्होंने अँगरेजों की बड़ी सहायता की; पर जब रसद-पानी चुकने लगा, तब उन्हें थोड़ा-बहुत रुपया देकर वहाँ से बाहर चले जाने के लिये कहा गया। लाचार, वे इच्छा न रहते हुए भी वहाँ से चले गये। कितने तो रास्ते में मारे गये और कितने ही सकुशल अपने-अपने घर पहुंच गये। क्यों अँगरेजों ने ऐसे वीरों, नमकहलालों और प्रभुभक्तों को अपने पास न रहने दिया, इसका कारण कुछ समझ में नहीं आता; शायद सब काले चमड़ेवालों पर उन्हें यही सन्देह हो रहा था, कि कहीं मौका पा ये भी न बदल जायें, इसीलिये उन लोगों ने इन्हें भी बला की तरह टाल दिया। अथवा रसद के अभाव से इन्हें दूर कर

दिया गया; क्योंकि जितनी रसद थी, उससे अँगरेजों की ही उदर-पूर्त्ति होनी कठिन थी, फिर इन्हें कोई कहां से और कबतक खिलाता ?

क्रमशः बहुतसे अँगरेज मरने लगे। कानपुर के कलक्टर हिलर्स-डन(Hillrsdun) साहब अपने घर के बरामदे में खड़े हो, नानासाहब से सन्धि कर लेने की चेष्टा कर रहे थे, इसी समय एक गोली आ लगी और वे पास ही खड़ी अपनी प्यारी पत्नी के पैरों के पास गिर कर परलोक सिधार गये। इसके कई दिन बाद गोले की चोट से दीवार का कुछ हिस्सा टूट कर मिसेस हिलर्सडन के सिर पर फट पड़ा, जिससे वह बेचारी भी वैधव्य के दुःख से छुटकारा पा गयी। बूढ़े सेनापति ह्वीलर के पुत्र लेफ्टिनेण्ट ह्वीलर, घायल हो, एक कमरे में सोये हुए थे। उनके पिता, माता और बहनें पास ही बैठी हुई थीं—एक बहन उनके पैरों के पास बैठी हुई उन्हें हवा कर रही थी। एकाएक एक गोला आकर सेनापति के घायल पुत्र का सिर उड़ा ले गया ! यह शोचनीय दुर्घटना देख, माँ, बाप और बहनों की छाती फट गयी और वे जोर-जोर से रो उठे। लिण्डसे नामक एक सैनिक के मुंह पर ही गोला आ लगा, जिससे उसका चेहरा बिगड़ गया और आंखें फूट गयीं—बेचारे की जान न बची, कुछ ही समय बाद वह भी मर गया। इसी तरह कितने ही सैनिकों और उनके स्त्री-बच्चों को गोले-गोलियों के आघात से प्राण-त्याग करना पड़ा।

यद्यपि अँगरेजों की 'ओर से भी गोले-गोलियां छूट रही थीं; तथापि विद्रोहियों का जोर घटना तो घटना, और भी बढ़ता चला गया। कुछ लोग मरते तो जरूर ही थे, पर शीघ्र ही बहुतसे लोग

इधर-उधर से आकर उनमें मिल जाते थे । आजमगढ़, बनारस, लख-नऊ और इलाहाबाद के बहुतसे विद्रोही सिपाही उनसे आ मिले थे। मीर नवाब नामके एक मुसलमान ताल्लुकेदार, जो लार्ड डलहौसी के सताये हुए थे, अपने बहुतसे हथियारबन्द सिपाहियों के साथ विद्रोहियों की सहायता करने को चले आये थे । कहने का मतलब यह, कि इधर एक बन्द जगह में पड़े हुए अँगरेजों की संख्या दिन-दिन छीजती जाती और उधर उत्तेजित जनता के अधि-काधिक लोग आ-आकर विद्रोहियों की संख्या बढ़ाते चले जाते थे। स्थान और समय के अभाव से जो अँगरेज उस रक्षास्थान में मर जाते, वे एक कुएं में डाल दिये जाते थे। इस तरह बेचारे मुर्दों की मरने पर भी दुर्गति ही होती थी !

हमला करनेवालों ने नव-निर्मित प्राचीर के उत्तर की तरफ अँगरेजों के क्रीड़ा-गृह के पास, तोप भिड़ा रखी थी। नन्हें नवाब नामक एक धनी मुसलमान यहां के अध्यक्ष बनाये गये थे। पहले हिन्दू-सिपाहियों ने इनका और बाकरअली नामक एक अन्य मुसल-मान का घर लूट लिया था और दोनों को कैद कर लिया था ; पर पीछे मुसलमान-सिपाही जब इस बात पर अड़ उठे तब उन्हें भी नाना साहब के समान सम्मान प्रदान किया गया और वे भी छुटकारा पाकर सिपाहियों की मदद करने लगे। अजीज़न नामकी एक रण्डी सिपाहियों की बड़ी प्यारी थी। इसी स्थान पर तोप के पास खड़ी-खड़ी वह सिपाहियों को उत्साहित कर रही थी। इस रमणी के साहस और उत्तेजना ने सिपाहियों के दिल दूने कर दिये थे। दक्षिण

की तरफ मीर नवाब अपनी तोप लिये गोले बरसा रहे थे। पूर्व की तरफ बाकरअली अपना जौहर दिखला रहे थे। दक्षिण-पश्चिम के कोने पर एक बड़ासी अट्टालिका थी। उसे अँगरेज लोग "सावेडार हाउस" कहा करते थे और सर्वसाधारण में वह "सवेदा कोठी" के नाम से मशहूर थी। यहां पर हिन्दुओं का दल डटा हुआ था—इसी कोठी में नानासाहब अपने परिवार सहित विराज रहे थे। यहीं पर सूबेदार टीकासिंह का भी तम्बू गड़ा हुआ था। तांतियाटोपी आदि नाना साहब के चतुर मन्त्री भी यहीं से अँगरेजों की सर्वस्व हानि करने का जाल फैला रहे थे। इस प्रकार हिन्दू-मुसलमानों ने मिलकर चारों ओर से अँगरेजों के इस आश्रय-स्थान को घेर लिया था।

शान्ति-रक्षा और विचार-कार्य करने के लिये नाना साहब की ओर से कितने ही अधिकारी नियुक्त कर दिये गये थे। हुलास सिंह नामक एक व्यक्ति प्रधान शान्तिरक्षक बनाया गया था। बाबा भट्ट प्रधान विचारक बने हुए थे। अजीमुल्लाहखाँ और ज्वालाप्रसाद भी शान्तिरक्षा के कार्य में लगे हुए थे। इन लोगों की बातों का नाना साहब पर बड़ा प्रभाव पड़ता था, इसलिये वे खूब मनमानी घरजानी कर रहे थे।

२१ वीं जून को अयोध्या के उत्तेजित अधिवासी इन लोगों से आ मिले। २३ वीं जून को आक्रमणकारियों ने युद्ध की बड़ी प्रबल तैयारी की। आज से सौ वर्ष पहले लार्ड क्लाइव ने ठीक इसी दिन पलासी के मैदान में अँगरेजों की विजय-लक्ष्मी को इस देश में ला बिठाया था। नाना साहब के मन्त्रियों ने कहा, कि बस आज ही

अँगरेजों की सत्ता का अन्तिम दिन है और आप ही इस देश के राजा होंगे। इसीलिये आज के दिन सिपाहियों के उत्साह की मात्रा बहुत ही बढ़ी-चढ़ी थी। उस समय खासी लड़ाई हुई।

इधर दिन-दिन अँगरेजों के आदमी कम होते चले जाते थे, रसद चुकती चली जाती थी। प्रायः २५० अँगरेजों के मुर्दे एक कुएँ में डाल दिये गये। तीन सप्ताहों तक उनके कष्टों की कोई सीमा न रही। उनकी तोपें भी प्रायः सब बेकार हो गयीं। बहुतेरे भूख-प्यास और घाव के मारे तड़प-तड़प कर दिन बिताने लगे। उन लोगों ने कितनी बार बाहर से मदद मँगाने के लिये गुप्त-दूत भी भेजे; कोई-कोई तो सिपाहियों द्वारा मार डाले गये; और जो लोग किसी तरह बचकर निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचे भी, उनका लौटना असम्भव हो गया। इसी समय एक दिन एक अँगरेज महिला नाना साहब के खीमे से एक पत्र लेकर आयी, जिसमें अजीमुल्लाहखाँ के हाथ के लिखे हुए ये ही कई एक वाक्य लिखे थे :—"महारानी विक्टोरिया की प्रजा के नाम—लार्ड डलहौसी की कार्रवाइयों से जिनका किसी तरह का लगाव नहीं है, अथवा जो लोग हथियार नीचे रख देने के लिये तैयार हैं, वे चुपचाप इलाहाबाद चले जा सकते हैं।" परन्तु सेनापति को इस पत्रपर विश्वास नहीं हुआ। वे किसी प्रकार औरत-बच्चों को बलवाइयों के भरोसे पर छोड़ने को राजी नहीं हुए। नये छोकरों ने भी हथियार छोड़कर नामर्दों की तरह भाग जाने की अपेक्षा अन्त तक लड़ना ही पसन्द किया। हीलर साहब, मूर और ह्विटिंग नामक अपने दो सहयोगियों के साथ इस बारे में सलाह

करने लगे। अन्त में यही तय पाया कि स्त्रियों, बच्चों और रोगियों-को यहां से भेज देना ही ठीक है। इसके बाद उपर्युक्त अँगरेज महिला ने नाना साहब के पास आकर कहा, कि सेनापतिगण आपके पत्र पर विचार कर रहे हैं, दो दिन के बाद वे उसका उत्तर देंगे। यह सुनकर सिपाहियों ने गोला बरसाना बन्द कर दिया।

२६ वीं तारीख के सवेरे ही अजीमुल्लाह और ज्वालाप्रसाद नाना साहब के दूत बनकर अँगरेजों के उस प्राचीर-वेष्ठित रक्षा-स्थान के पास आये। कप्तान मूर, ह्विटिंग और डाकघर के कर्मचारी रोडे साहब उन लोगों से मिलने आये। बड़ी देर की बातचीत के बाद दोनों पक्षों की ओर से यह बात तै पायी, कि अँगरेज लोग यह स्थान छोड़ दें, अपनी तोपें और रुपया-पैसा हमारे हवाले कर यहां से चले जायें। हां, उन्हें अपनी बन्दूकें और छोटे-मोटे हथियार ले जाने दिया जायगा। घाट पर उनके लिये नावें तैयार रहेंगी। नाना-साहब स्वयं जाकर उन्हें नावों पर सवार करा देंगे। खाने-पीने के लिये काफी आटा-मैदा और भेड़-बकरे भी दिये जायेंगे। यह सब शर्तें एक कागज पर लिखी गयीं और वह कागज अजीमुल्लाह के हवाले किया गया।

तीसरे पहर एक आदमी अँगरेजों के पास आकर बोला,—"महाराज नानासाहब को सब शर्तें स्वीकार हैं; पर उनका हुक्म है, कि आप लोग आज ही रात को यहां से चले जायं।" इस पर ह्वीलर साहब ने आपत्ति की। उन्होंने कहा,—आज रात को सबका यहां से जाना नहीं हो सकता, इसलिये कल सवेरे तक समय देना ही

पड़ेगा। यह सुन, वह दूत बोला,—"महाराज को आप लोगों की वर्त्तमान स्थिति भली भांति मालूम है। यदि फिर गोले बरसने आरम्भ हुए, तो आप लोगों में से एक भी जीता न बचेगा, इसलिये आप लोग सीधे मन से उनकी बातें मान लीजिये।" पर सेनापति इस धमकी से जरा भी न डरे, उन्होंने झटपट कहा,—"हम लोग भले ही सब-के-सब मारे जायं; पर इस रात को तो यहां से नहीं टल सकते।" यह सुन दूत लौट गया। शाम को वह फिर लौटा और बोला,—"अच्छी बात है, आप लोग कल सवेरे ही यहां से जाइयेगा।" इसी समय तीन आदमी अँगरेजों की कार्रवाइयों पर नजर रखने के लिये नाना साहब के भेजे हुए यहां आये, जिनमें एक ज्वालाप्रसाद भी था। ज्वालाप्रसाद ने उस समय बूढ़े सेनापति से खूब मीठी-मीठी बातें कीं और उन लोगों को जो कष्ट उठाने पड़े थे, उनके लिये सहानुभूति प्रकट की।

सूर्यास्त होते-न-होते अँगरेजों ने अपनी तोपें शत्रुओं को सौंप दीं। इसके बाद तीन अँगरेज गङ्गा के किनारे जाकर देख आये, कि ४० नावें उन्हें ले जाने के लिये घाटपर बँधी हुई हैं। टाड नामक एक अँगरेज ने कुछ दिनों तक नानासाहब को अँगरेजी पढ़ायी थी। वही, नाना साहब से सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कराने के लिये 'सवेदा' कोठी पर गये। नानासाहब उनसे बड़ी सज्जनता से पेश आये और वे हस्ताक्षर कराकर सन्तुष्ट-चित्त से लौट आये।

२७ वीं जून के सवेरे ही सब लोग इलाहाबाद जाने के लिये तैयार हुए। उन्हें ले जाने के लिये कितने ही हाथी, पालकियां और

बैलगाड़ियां खड़ी थीं। महिलाओं और वालक-वालिकाओं को हाथियों तथा बैलगाड़ियों पर सवार कराके, रोगियों और घायलों को पालकियों पर चढ़ा दिया गया। जो लोग चल-फिर सकते थे, वे कमर में पिस्तौल और कन्धे पर बन्दूक लिये धीरे-धीरे पद-निक्षेप करते हुए वाहर निकले। इस तरह सव मिलाकर ४५० युरोपियन घाट की ओर चले। दल-के-दल नगर-निवासी आकर यह तमाशा देखने लगे। इन लोगों के सूखे हुए चेहरे, मलिन वेश और कातर नयन देख, वहुतों की आंखें भर आयीं। कितने ही विस्मय से भर गये और कितने ही पहिले से भी अधिक भयंकर भाव का परिचय देने के लिये मौका ढूँढ़ते रहे।

गङ्गा के सती-चौरा-घाट पर नौकाएँ बँधी हुई थीं। यह स्थान अँगरेजों के उक्त रक्षास्थान से १ मील दूर था। घाट पर जाने का जो रास्ता था, उसमें एक जगह एक सफेद रंग का लकड़ियों का बना हुआ पुल था। अँगरेज लोग इसी पुल की राह घाट की तरफ जाने लगे। सिपाही सव बीच-बीच में उन लोगों के पास आकर तरह-तरह की वातें पूछते थे। अनेक अँगरेज अफसरों के मरने का हाल सुनकर उन्होंने दुःख भी प्रकट किया।

कहते हैं जिस समय सव लोग सवारियों पर चढ़ चुके थे, उस समय केवल ३४ वीं पल्टन के कर्नल इवर्ट ही वाकी रह गये थे। वे घायल थे और सव के अन्त में पालकी पर सवार हुए थे। उनकी सहधर्मिणी भी उनकी पालकी की बगल से चली जा रही थी। जव सव पालकियां आगे बढ़ गयीं, और वह पालकी सव के पीछे रह गयी,

तब एकाएक उन्हीं की पल्टन के ७।८ सिपाही वहां चले आये और कड़क कर कहारों से बोले, कि पालकी नीचे रख दो ! कहारों ने उनकी आज्ञा का पालन किया। कर्नल चकित होकर सिपाहियों की ओर देखते हुए बोले,—"क्यों भाइयो ! क्या इरादा है ?" सिपाहियों ने उनकी नक़ल करते हुए कहा,—"कहिये ! कैसी बढ़िया क़वायद हो रही है ?" यह कह, वे बड़े जोर से हँस पड़े और एक साथ कितनी ही तलवारें उनके ऊपर बरस पड़ीं। इसके बाद उन हत्यारों ने उनकी पत्नी को भी मार डाला।

अस्तु; किसी-न-किसी तरह और सब लोग गङ्गा के किनारे आ पहुंचे। उस समय गङ्गा में पानी बहुत ही कम था, तीर के पास बहुत बड़ी रेती पड़ गयी थी। इसलिये नावें तीर से दूर थीं। अफसर लोग घुटने भर पानी में खड़े होकर नावों पर रोगियों तथा स्त्री-बच्चों को सवार कराने लगे।

इसी समय अकस्मात् कहीं से बिगुल बज उठी, जिसकी आवाज सुनते ही नावों के माँझी—मल्लाह कूद-कूदकर तीर की ओर दौड़ पड़े। पहले से जो संकेत उन्हें किया गया था, तदनुसार उनमेंसे कितनों ने नावों के छप्पर में आग भी लगा दी। तुरत ही वह फूस की छावनी जलने लगी !

कहा जाता है, कि ताँतियाटोपी के हुक्म से कितनी ही तोपें तीर पर भिड़ा रखी गयी थीं। तुरत ही उनसे गोले छूटने शुरू हुए। कितने ही घायल अँगरेज तथा उनके स्त्री-बच्चे गोलियों के शिकार हुए। गंगा का पवित्र जल निर्दोष, निरपराध जीवों के रक्त से रञ्जित हो

उठा। जो लोग वहाँ से भाग कर किनारे आये, वे यहाँ सिपाहियों की सङ्गीनों के शिकार हुए। बहुतेरे कैद कर लिये गये। उस समय सिपाहियों ने किसी पर दया नहीं दिखायी। बूढ़े सेनापति को भी उन्होंने नहीं छोड़ा। कोमलांगी कामिनियाँ और अबोध बच्चे भी न बचने पाये। एक हिन्दुस्तानी औरत एक अँगरेज बच्चे को गोद में लिये भागी चली जा रही थी। उसके साथ उसका १५ वर्ष का एक नौजवान लड़का भी था। उस अँगरेज बालक के मां-बाप पूर्वोक्त प्राचीर के अन्दर ही मर चुके थे, इसीलिये वह दासी उस बच्चे को प्राण के समान पाल रही थी। सिपाहियों ने उसकी गोद में एक अँगरेज बच्चे को देख कर कहा,—"तुम उस बच्चे को हमारे हवाले कर दो और चुपचाप घर चली जाओ।" पर बुढ़िया ने उनकी बात नहीं मानी। लाचार, सिपाहियों ने उसे मार कर उसकी गोद से ज़बर्दस्ती वह लड़का छीन लिया और उसे भी मौत के हवाले कर दिया! केवल उसका अपना पुत्र जीता बचा। उसे सिपाहियों ने छूआ तक नहीं। इसी प्रकार हत्यारे सिपाहियों ने कितने ही लड़कों और लड़कियों को बुरी तरह मार डाला। इतने में कुछ अँगरेजों ने देखा, कि एक नाव आगे चली जा रही है; इसलिये वे झट पानी में कूद गये और तैरते हुए उस नाव के पास पहुंच गये। इनमें कप्तान मात्रे टामसन, प्राइवेट मर्फी और लेफ्टिनेण्ट हैरिसन भी थे। ईश्वर की दया से ये गोलों की बाढ़ से बचते हुए साफ़ निकल भागे।

सबको मार गिराकर बलवाइयों ने प्रायः १२५ पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को कैद कर लिया और उनके शरीर पर से बहुतसे कीमती

गहने उतार लिये। इसके बाद वे सब लोग नाना साहब के सामने लाये गये। उन्होंने उन्हें एक कमरेमें बन्द कर रखनेका हुक्म दे दिया और इलाहाबाद से आये हुए कुछ सिपाही उनके पहरे पर नियुक्त कर दिये गये।

ऊपर कहा जा चुका है कि एक नाव पानी में बहती हुई चली जा रही थी, जिसकी सीध पर टामसन आदि कई जने तैरते हुए गये थे। उस नाव पर कितने ही वीर और साहसी अँगरेज सवार थे और बिना डांड़ के ही नाव धारा के बहाव पर चली जा रही थी। तीर पर-से सिपाहियों ने उस पर निशाना बांधकर गोले छोड़े और कितनों को मारकर जल-समाधि दे दी। तो भी वे लोग आगे बढ़ते चले गये। पर खाने-पीने के नाम कुछ भी न रहने के कारण सब लोगों के प्राण होठों पर आ रहे थे। स्थान-स्थान पर पानी सूख जाने से रेती पड़ रही थी, इसलिये उन्हें नाव को ठेल-ठालकर ले जाना पड़ता था। दूसरे दिन अर्थात् २८वीं जून को यह नाव कानपुर के पास ही नजफ-गढ़ नामक स्थान में फिर रेती में आ पड़ी। इसी समय पुनः उन पर गोलियाँ बरसने लगीं। एकाएक बड़े जोर की वर्षा होने लगी और शत्रुओं ने गोले बरसाने बन्द कर दिये। सूर्यास्त होते न होते ५०।६० हथियारबन्द सिपाही इन पर हमला करने के लिये एक नाव द्वारा कानपुर से यहाँ आ पहुंचे। इत्तिफाक से उनकी नाव भी रेती में पड़ गयी। यह मौका देख १८।१९ अँगरेजों ने उन पर गोली छोड़नी शुरू की। इससे शत्रुओं में से बहुत ही कम आदमी बच सके और वे भी वहाँ न ठहर कर भाग गये। यह देख उन लोगोंने इस नावपर अधिकार

प्रयाग पर विद्रोहियों की नावों पर बैठ कर चढ़ाई।
मेजर आयर द्वारा तोपोंकी भीषण गोलाबारी।

कर लिया । यद्यपि उन्हें बारूद और टोटे मिले, तथापि कुछ खाने का सामान न मिलने से उन्हें इस विजय से कुछ भी खुशी न हुई। लाचार ये लोग भूख से तड़फते हुए सो रहे । रातको एकाएक तूफ़ान-सा जारी हो गया । नाव डगमगाने लगी । नाव आगे बढ़ी; पर अँधेरे में सिपाहियों को यह न मालूम हुआ, कि वह किस ओर जा रही है । सवेरा होने पर उन्होंने देखा कि नाव फिर तीर के किनारे आ लगी है ।

इस समय बदमाशों की भी खूब बन आयी थी । ये लोग भी सिपाहियों की देखा-देखी अँगरेजों के खून के प्यासे हो रहे थे। इन्हें पूर्णरूप से विश्वास हो गया था, कि अँगरेजों का राज्य यहाँ से उठ गया, इसीलिये ये मनमानी करने के लिये सदा तैयार रहते थे। ये लोग सिपाहियों से मिलकर अपनी जेबें गरमाने की धुन में थे। इन भगोड़े अँगरेजों की नाव जब तीर पर आ लगी, तब ये बदमाश उन पर हमला करने के लिये दौड़े । यह देख, कप्तान टामसन कई सिपाहियों के साथ तीर पर चले आये और बलवाइयों से लड़ने लगे। बाकी लोग उसी नाव पर रहे ।

कुछ ही देर बाद वह नाव उनकी नजर से गायब हो गयी। लगातार गोलियाँ खाकर सिपाहियों के पैर उखड़ गये ! टामसन ने तीर पर आकर देखा कि नाव तो नदारद है। यह देख, वे बेतरह घबराये ।

इधर उस नाव पर सवार लोग धारा में बहते हुए एक ऐसे स्थान पर पहुंचे जहाँ के जमींदार बाबू रामबख्श अँगरेजों के कट्टर दुश्मन थे ।

वे उन्हें वहाँ आया देख बहुतसे हथियारबन्द आदमियों सहित वहां पहुंच कर उन पर हमला करने लगे। वे लोग यह रङ्ग बेरङ्ग देख, घबरा गये हुए इधर-उधर भागने लगे। भागते-भागते वे तीन मील तक चले गये। वहाँ उन्हें एक मन्दिर दिखाई दिया। अभागों ने वहीं जाकर शरण ली। वहाँ उन्हें अच्छा और ठण्डा जल पीने को मिला। उनका पीछा करते हुए उनके शत्रु भी वहाँ आ पहुंचे और उन्होंने उस मन्दिर को चारों ओर से घेर लिया। यह देख कुछ अँगरेज दरवाजे पर डट गये और संगीनें ताने हुए उनकी राह रोकने लगे। साथ ही कुछ लोगों ने गोलियाँ भी छोड़ीं, जिनसे कई बलवाई मारे गये। इससे नाराज हो बलवाइयों ने बहुतसी सूखी लकड़ियां मन्दिर के दरवाजे पर ला रखीं और उनमें आग लगा दी। उन्होंने सोचा कि उसके धुएँ से मंदिर में छिपे हुए अँगरेजों का दम घुटकर प्राण निकल जायेंगे; पर तुरत ही बड़े जोर की आंधी चलने लगी; इससे उनकी सोची हुई बात न होने पायी—धूआं दूसरी ओर जाने लगा। यह देख, बलवाइयों ने दूर ही से उस आग में बारूद की पोटलियां फेंकनी शुरू कीं। अब तो अँगरेजों ने देखा कि इस भयंकर मन्दिर में रहना खतरे से खाली नहीं है। वे वहां से दौड़े हुए फिर नदीके किनारे आये और १४ आदमियों में से ७ जने अपने हथियार वगैरह फेंक कर पानी में कूद पड़े। तीर पर खड़े हुए बलवाइयों ने उन पर गोलियां छोड़कर तीन आदमियों के प्राण ले लिये, शेष चार जने तैरते हुए आगे बढ़ते चले गये। कुछ दूर जाने पर उन्हें तीर पर खड़े हुए कुछ लोग मिले, जिन्होंने उन्हें पुकार कर अपने निकट बुलाया। ये लोग 'मोरारमऊ' नामक

स्थान के जमींदार राजा दिग्विजयसिंह *की प्रजा थे । दिग्विजयसिंह बूढ़े, इज्जतदार, दयालु और अँगरेजों के मित्र थे । इसीलिये उन्होंने इन चारों तैरनेवालों को बचाया । इन चारों में एक कप्तान टामसन भी थे ।

तीन सप्ताह तक ये लोग राजा दिग्विजयसिंह के यहां अतिथि बन कर रहे । सिपाहियों को जब उनके वहां छिपे रहने का पता लगा तब उन्होंने राजा दिग्विजयसिंह से उन्हें अपने हाथ में सौंप देने का अनुरोध किया, पर इन्होंने उनकी बात नहीं मानी । कुछ दिनों के बाद राजा साहब ने उन लोगों को अपने एक मित्र के यहां भेज दिया । उन्होंने भी उन लोगों को बड़ी खातिर के साथ रखा ।

इसी तरह अन्य कई भारतीयों ने भी अँगरेजों की इस विपद् के समय प्राणरक्षा की थी । मयूर तिवारी नामक एक ब्राह्मण ने एक अँगरेज को, जिसका नाम डंकन था, अपने घर रखा था । कई आदमियों ने दो कुमारी बालिकाओं को बड़ी भारी विपद् से बचाया था, जिसमें उन्हें अपने प्राणों की बाजी लगा देनी पड़ी थी । इसी तरह एक ओर इस देश के कुछ लोग तो अँगरेजों के प्राण के गाहक बन बैठे थे और दूसरी ओर परोपकारी भारतीय उन्हें बचाने के लिये अपने परोपकारी हाथ फैलाये हुए थे । कहने का मतलब यह कि यदि भारतवर्ष के लोग उस समय अँगरेजों के सहायक न होते तो उनका इस विपद् से उद्धार न होता ।

---

* कुछ पुस्तकों में इनका नाम दुर्गविजयसिंह भी लिखा हुआ है, पर हमें 'दिग्विजयसिंह' नाम ही सम्भवनीय प्रतीत होता है ।

नौका से जो कई सिपाही नीचे उतरे थे, उनमेंसे सिर्फ चार ही बचे, शेष मारे गये। यह बात हम पहले ही लिख चुके हैं। अब देखिये, जो लोग उस नाव पर सवार रह गये थे, उनका क्या हुआ? उस पर सब मिलाकर कोई ८० आदमी थे। वे सबके सब कैद कर लिये गये। ३० वीं जून को वे बैलगाड़ियों पर सवार हो कानपुर पहुंचे। वहाँ लाकर स्त्रियों को पुरुषों से अलग किया गया। इसके बाद सब पुरुषों को जान से मार डालने का हुक्म जारी किया गया। क्रमशः सबको गोली मार दी गयी। एक पतिपरायणा महिला जिनका नाम मिसेज़ बोआईज़ (Mrs. Boyes) था, अपने पति डाक्टर बोआईज़ को छोड़कर अलग रहने को किसी प्रकार राजी नहीं हुई थीं। वे अब तक वृक्ष से लिपटी रहनेवाली लता की भांति अपने प्राणपति के शरीर से चिपटी हुई थीं। उन्होंने कहा कि यदि मरना ही है तो मैं अपने स्वामी के साथ ही मरूंगी। इसीलिये जब गोली चली तब एक साथ ही दोनों स्वामी-स्त्री उसके शिकार हो गये! इस प्रकार गोली मारने पर भी जो लोग नहीं मरे, उनको सिपाहियों ने तलवार से दो टुकड़े कर डाला!

इस प्रकार अपनी पैशाचिक वासना परितृप्त कर उन लोगों ने स्त्रियों और बच्चों को कैद कर लिया। उनके साथ ही वे कैदी भी रखे गये जो गंगा किनारे पहले ही गिरफ्तार कर लिये गये थे।

इसके बाद नानासाहब बिठूर चले गये और १ ली जुलाई को 'पेशवा' की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठे। इस उपलक्ष्य में बड़ी धूमधामी हुई और तोपें छूट-छूट कर संसार को उनके राज्यारोहण की

कथा प्रसिद्ध करने लगीं। पर स्वयं उनके मनमें सुख नहीं था क्योंकि वे औरों के हाथ की कठपुतली बन रहे थे। अजीमुल्लाहखां वगैरह उनके सलाहकार उन्हें जिस राह से चलाते थे उसी राह से वे जाते थे। इसीलिये उन्होंने गद्दी पाकर भी अपने को पराधीन ही समझा। इधर मुसलमानों के मन में कुछ और ही भाव पैदा होने लगे थे। वे एक हिन्दूको यों बढ़ते देख भीतर-ही-भीतर कुछ जले और अपनी भी शान ऊँची करने की धुन में लगे। बिठूरमें नानासाहब के गद्दीपर बैठते ही पूर्वोक्त नन्हें नवाब कानपुर के शासक बन गये और वहाँ मुसलमानों की ही तूती बोलने लगी। हिन्दू-मुसलमानों में फूट न पैदा हो जाये—ऐसा होता तो अँगरेजों का बल और बढ़ जाने की सम्भावना थी। पर इतना होते हुए भी नानासाहब को मुसलमानों की प्रधानता अच्छी नहीं लगती थी; किन्तु चूंकि उनका प्रधान मन्त्री अज़ीमुल्लाहखां भी मुसलमान ही था, इसलिये वे खुल्लमखुल्ला यह बात किसी से कह नहीं सकते थे। इधर उनका नाम ले-लेकर उनके भाई भतीजे भी खूब मनमानी घरजानी कर रहे थे। मतलब यह कि वे कानपुर के अधीश्वर होते हुए भी काठके उल्लू बन रहे थे और मतलबी दुनिया उन्हें मनमानी तौरसे नचा रही थी।

इधर अङ्गरेजों की नयी पलटन के आने की खबर सुन, लोगों में भय पैदा होने लगा और बहुतेरे डरके मारे घर छोड़ भागने लगे थे। लोगों को धैर्य देनेके लिये पेशवाकी ओरसे कितने ही घोषणापत्र जारी हुए। साथ ही सिपाहियों को इनाम देनेकी भी व्यवस्था की गयी—नहीं तो सम्भव था, कि ये भी पीछे अपने ही घरके दुश्मन बन जाते।

कानपुर के एक अमीर मुसलमान ने एक होटल बनवाया था। नाना साहब यहां आकर उसी में रहने लगे। दरवाजे पर दो तोपें रख दी गयीं और दिन-रात हथियारबन्द सन्तरियों का पहरा पड़ने लगा। पहले तो नानासाहब अजीमुल्लाहखां वगैरह के बहकावे में आकर अङ्गरेजों के विरोधी बन गये, अब उन्हें चिन्ता व्यापी, कि यदि नयी गोरी पल्टन आयी, अपनी रक्षा का क्या उपाय किया जायगा? दिन-रात सलाह-मशविरा होने लगा।

नानासाहब के महल से थोड़ी दूर पर एक छोटासा बंगला था, जिसे किसी अङ्गरेज ने अपनी रखनी के लिये बनवाया था। इसीलिये सब लोग उसे 'बीबी-घर' कहा करते थे। घर बहुत ही छोटा था, उसमें २० फुट लम्बाई और १० फुट चौड़ाई वाले सिर्फ दो घर थे। आँगन १५ हाथ से अधिक चौड़ा न था। जो अँगरेज महिलाएँ और बालक-बालिकाएँ सवेदा कोठी में कैद थीं, वे अबके यहीं लाकर रखी गयीं। इनकी संख्या २०० से अधिक थी। इधर इस संख्या में और भी वृद्धि हो गयी। कुछ अँगरेज फतेहगढ़ से भाग कर नाव से कानपुर चले आ रहे थे। बेचारों को कानपुर के भीषण काण्डों का कुछ भी पता न था। सहसा नवाबगञ्जके निकट आते ही उनकी नाव रोक ली गयी। सबके सब कैद होकर नानासाहब के पास लाये गये। औरतों और बच्चों के सिवा सबको मार डाला गया। केवल ३ जने बच गये। औरतों और लड़के-लड़कियों को बीबीघर की दुर्दशा-वृद्धि करने के लिये वहीं भेज दिया गया।

अभागे कैदी हद दर्जे की तकलीफ पाने और खाने-पीने के लिये तरसते हुए प्राण-त्याग करने लगे। जो जीते बचे, उनका जीवन मृत्यु से भी बुरा था। नानासाहब के कानों तक इनके दुःख-दर्द की कहानी नहीं पहुंची। अधिकार के मद में आकर लोग इसी तरह निरपराध मनुष्यों को कैद करते हैं और उनके दुःख-दर्दों की ओर से कान बहरे कर लेते हैं; पर जो सर्वनियन्ता है, उस तक वह दर्द-भरी आवाज जरूर पहुंचती है और किसी को आज, तो किसी को कल, अपने किये का फल मिल ही जाता है। इसी नियमके अनुसार शीघ्र ही नानासाहब के कुल कारनामों पर पानी फेर देने के लिये नील साहब की सवारी कानपुर में आ पहुंची।

दशवाँ अध्याय।

अँगरेजों ने बुरी तरह बदला लिया।

कानपुर-काण्ड की कथा सर्वत्र शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गयी। उस समय सेनापति नील इलाहाबाद में विश्राम कर रहे थे। यहीं ३० वीं जून को सेनापति हेनरी हावेलाक कानपुर तथा लखनऊ की यात्रा के इरादे से आये थे। उन्होंने ७ वीं जुलाई को बड़ी भारी बरसात के होते रहने पर भी कानपुर की ओर यात्रा कर ही दी। उनके अधीन प्रायः १५०० सैनिक थे, जिनमें १००० अङ्गरेज, १३० सिक्ख और कितने ही देशी घुड़सवार थे। कप्तान माड के अधीन ६ बड़ी बड़ी तोपें भी उनके साथ थीं।

इसके पहले सेनापति हावेलाक ने मेजर रेनड (Renaud) की अधीनता में २ तोपों के साथ ८०० आदमियों को पहले ही रवाना कर दिया था। वे लोग सेनापति हावेलाक की राह देखते हुए इलाहाबाद से चलकर 'लोहंग' नामक स्थान में पड़े हुए थे। घोर वर्षा के कारण रास्ते में कहीं कीचड़, कहीं पानी का सामना करते हुए सेनापति हावेलाक लगातार आगे बढ़ते गये।

इधर अपने अनुचरों से अङ्गरेजी सेना के आगमन का वृत्तान्त सुन, नानासाहब ने भी उनका मुकाबला करने की तैयारी करनी शुरू की। टीकासिंह और बाबा भट्ट उनकी कुल आज्ञाओं का पालन करने

के लिये प्रस्तुत हो गये। सारी तैयारी हो चुकने पर नानासाहब का अत्यन्त प्रिय अनुचर ज्वालाप्रसाद ९ वीं जुलाई को १५०० पैदल सैनिक और तोपची, ५०० घुड़सवार और १५०० साधारण मनुष्यों के साथ इलाहाबाद की ओर रवाना हुआ। इसके साथ १२ तोपें थीं। टीकासिंह भी इन लोगों के साथ ही सेना के सञ्चालन का भार लेकर चला। शीघ्र ही ये सब लोग फतेहपुर पहुंच गये। वहीं पड़ाव डाला गया।

११ वीं जुलाई को सेनापति हावेलाक मेजर रेनड की सेना से जा मिले। १२ वीं जुलाई को यह सम्मिलित सैन्यदल फतेहपुर से ४ मील की दूरी पर 'बेलिन्दा' नामक स्थान में पहुंच गया। यदि जेनरल हावेलाक ठीक समय पर मेजर रेनड के सैन्यदल से न जा मिलते, तो नानासाहब की फौज इनका सत्यानाश कर डालती। जो हो, दोनों दलोंके मिल जाने से यह भयङ्कर विपत्ति सिर से टल गयी और ये लोग सानन्द अपने खाने-पीने और विश्राम का प्रबन्ध करने लगे।

इसी समय एकाएक तोपका एक गोला आकर सेनापति के सामने गिरा। गुप्तचरों ने भी आकर खबर दी, कि शत्रु-सेना फतेहपुर में ही ठहरी हुई है। बस, खाना-पीना भूल गया और युद्ध की तैयारी होने लगी। थोड़ी ही देर में उभयपक्ष के सैनिकों की भिड़न्त हो गयी। कानपुर के सिपाहियों ने सोचा था, कि उन्हें केवल रेनड की सेनाका ही सामना करना पड़ेगा इसलिये वे अपनी विजय निश्चित समझे हुए थे। पर यहां तो दो-दो सेनाओंसे मुकाबला करना पड़ गया, इसलिये वे बेतरह चकराये ; पर पीछे पैर देना तो वीरों का धर्म नहीं

है, यही सोचकर वे मैदान में ही डटे रह गये और लगे लगातार गोले बरसाने। बन्दूकों से भी फायरें दगने लगीं। पर अङ्गरेजों की बन्दूकें ३०० गज की दूरी से निशाना मारती थीं। ज्वालाप्रसाद के सैनिकोंके पास ऐसी अच्छी बन्दूकें नहीं थीं। इसलिये उन्हें अधिकतर अपनी तोपों का ही सहारा लेना पड़ता था। इधर अङ्गरेजों की तोपें भी चुप नहीं थीं—वे भी अग्नि-वृष्टि कर रही थीं। इस समय कप्तान माड की चतुराई और फुर्ती तारीफ के लायक थी। कुछ ही देर के युद्ध में विद्रोही दल के पैर उखड़ गये, वे लोग अपनी तोप-बन्दूकें छोड़कर बेतहाशा भाग चले। अङ्गरेजों ने प्रायः १५० विद्रोहियों को रण-भूमि में गिरा दिया। इस युद्ध में बहुतसे देशी सिपाही भी अँगरेजों की ओर से लड़े थे; पर पीछे उन पर सन्देह होनेके कारण उनके हथियार और घोड़े छीन लिये गये।

इधर कई सप्ताहों से फतेहपुर में अँगरेजों की प्रधानता नष्ट हो गयी थी। जनता में विशेष उत्तेजना फैली हुई थी; क्योंकि यहाँ के कुछ आदमी ईसाई बना लिये गये थे। मेरठके समाचार सुनकर ये लोग और भी उत्तेजित हो रहे थे। इसी समय कानपुर में गोलमाल होने का समाचार मिला। इलाहाबाद के कुछ विद्रोही सिपाही कानपुर जाते समय यहाँ भी आये और उन्होंने यहां का सरकारी खजाना लूट लेना चाहा; पर खजाने के पहरेदारों ने उनके कार्य में बाधा डाली, इसलिये वे विफल-मनोरथ हो कानपुर चले गये; परन्तु पीछे जब इन पहरेदारों ने सुना, कि उनके दल के सभी लोगों ने इलाहाबाद में कम्पनी से युद्ध किया है, तब वे भी खजाने पर पहरा देना छोड़ कर

कानपुर की तरफ चल दिये। हां, उन्होंने किसी अँगरेज का कुछ अनिष्ट नहीं किया।

इसके अनन्तर ९ वीं जून को एकाएक फतेहपुर पर तूफान बरपा हो गया। इधर इलाहाबाद और उधर कानपुर से बहुतसे विद्रोही सिपाही यहाँ आ पहुंचे। उन लोगोंने यहांके सर्वसाधारण हिन्दू-मुसलमानों को खूब उभाड़ा। मुसलमान तो पहले ही ईसाइयों पर जले बैठे थे—वे इस बार बेतरह बिगड़ खड़े हुए। उत्तेजित जनता ने कैदखाना तोड़ डाला, कैदियों को रिहा कर दिया, खजाना लूट लिया, कचहरियों के कुल कागज-पत्र जला दिये और अँगरेजों को यहां से जान लेकर भाग जाने को विवश किया। और तो सब भाग गये; पर वहाँ के जज राबर्ट टुकर साहब नहीं भागे। वे कुछ पुलिसवालों को साथ ले, घोड़े पर सवार हो, उत्तेजित जनता को समझाने-बुझाने और समय पड़ने पर विद्रोहियों से युद्ध भी करने लगे। अन्त में उन्हें विद्रोहियों के हाथ अपने प्राण गँवाने पड़े। टुकर साहब बड़े भलेमानस, परोपकारी और दयालु पुरुष थे। उनका इसीलिये वहाँ बड़ा मान था। इसी कारण उनके मारे जाने का बहुतों को बड़ा दुःख हुआ।

पाँच सप्ताहों तक फतेहपुर में घोर अराजकता छायी रही। लोग मनमानी लूटमार करने में लगे हुए थे। जिस समय हावेलाक साहब यहां पहुंचे, उस समय यहाँ के रहनेवाले सभी भाग गये। सारा नगर सूना हो गया। हाट-बाजार सब बन्द हो गये।

फतेहपुर में गड़बड़ी शुरू होते ही वहां के मैजिस्ट्रेट शेरर साहब इलाहाबाद चले गये थे। जब वहां से जेनरल हावेलाक आने लगे, तब ये

भी उनके संग यहां तक आये । उस समय स्थान-स्थान पर किये गये विद्रोहियों के अत्याचारों का संवाद पाकर अँगरेज इस देशवालों पर इतने बिगड़े हुए थे, कि इस सेना ने रास्ते में लोगों को खूब ही तबाह किया । उनकी [illegible] ने सर्वसाधारण हिन्दुस्तानियों को कैसी विपत्ति में डाल दिया था, उसका हाल उक्त शेरर साहब की ही ज़बानी सुन लीजिये । वे लिखते हैं :—

"हमारे रास्ते के बहुतसे गांव जला दिये गये थे—कहीं कोई आदमी नहीं दिखाई देता था । * * * मकानों और झोंपड़ों के स्थानों पर राख के ऊँचे-ऊँचे ढेर ही दिखाई देते थे ! * * * समय समय पर हवा, वृक्षों से लटकती हुई लाशों की बदबू ले आती थी ! ऐसे भीषण दृश्यों तथा भयानक विध्वंस-लीलाओं को जिन्होंने देखा है, वे उन्हें कभी न भूलेंगी ।"

कहने का तात्पर्य यह, कि जिस प्रकार विद्रोहीगण अँगरेज मात्र के दुश्मन बन बैठे थे, उसी प्रकार सभी हिन्दुस्तानियोंको दण्ड देनेके लिये अँगरेजों ने भी कसमसी खा ली थ । इन लोगों ने भी बिना दोषी निर्दोषी का विचार किये गांव के गांव जला दिये, सैकड़ों आदमियों को मुफ्त में ही फांसी पर लटका दिया, किसी का सिर काट लिया और किसी के गोली मार दी ।

अस्तु; फतेहपुर की लड़ाई का समाचार कानपुर पहुंचा । नानासाहब के भाई बालराव अँगरेजों का सामना करने के लिये भेजे गये। उन्होंने कानपुर से २२ मील दूर औंग नामक एक स्थान में पड़ाव डाला । उनके वहाँ रहने की खबर पाते ही सेनापति हावेलाक वहाँ

आ पहुंचे और १५ वीं जुलाई को दिन के नौ बजे दोनों दलों में युद्ध छिड़ गया । दो घण्टे की घनघोर लड़ाई के बाद विद्रोही भाग चले।

औंग से कई मीलों के फासले पर पाण्डु नामकी एक नदी है। उसके पार पहुंच कर बालराव ने वहाँ दो तोपें लगा दीं। अँगरेज लोग जब उस पुल के पास पहुंचे, तब उन्होंने तोपें दागनी शुरू कर दीं; पर कुछ ही देर बाद तोपें बेकार हो गयीं और गोले बरसने बन्द हो गये। यह देख हावेलाक साहब ने बड़े जोर का हमला किया और उन्हें बुरी तरह खदेड़ दिया। इसी लड़ाई में पूर्वोक्त मेजर रेनड भी घायल हुए और दो दिन बाद मर गये। बालराव के भी कन्धे में गोली लगी और उन्हें रण-भूमि छोड़ देनी पड़ी। इस युद्ध में सिपाहियों ने बड़ी वीरता दिखायी थी और बहुतों का ऐसा ख्याल है, कि यदि उस समय उनके दल में कोई चतुर सेनापति होता, तो वे कभी न हारते और अँगरेजों को निश्चय ही हरा देते। इस विद्रोह में प्रायः हर जगह सुचतुर सेनापतियों का अभाव ही देखने में आता था और यही विद्रोहियों के विफल होने का सबसे प्रबल कारण था।

खैर, बालराव के घायल हो, हारकर लौटने का समाचार पा—नाना साहब के दल में शोक छा गया। अब यह सलाह होने लगी, कि इस समय करना क्या चाहिये ? जितने आदमी थे उतनी रायें पेश होने लगीं। किसी ने कहा, कि यहां से बिठूर जाकर अपनी रक्षा का उपाय करना चाहिये, तो किसी ने कहा, कि फतेहगढ़ के सिपाहियों से मिल जाना चाहिये और किसी-किसी की सम्मति हुई, कि विद्रोहियों के कानपुर आने की राह में खड़े होकर उनका सामना

करना चाहिये । आखिरकार. यही अन्तिम बात सर्वसम्मत हुई । युद्ध की तैयारी होने लगी ।

इसी समय अजीमुल्लाखां ने नाना साहब से कहा,—"अँगरेज अपनी औरतों और बच्चों को छुड़ाने आ रहे हैं; इसलिये अगर उन सबको कत्ल कर दिया जाये, तो वे अपनासा मुंह लिये आप ही लौट जायेंगे।" नाना साहब को अजीमुल्लाखाँ की बात काटने की हिम्मत न पड़ी । यही सलाह पक्की हो रही ।

१५ वीं जुलाई के तीसरे पहर पहले वे ही पांचों पुरुष, जो औरतों और बच्चों के साथ ही कैद थे, कैदखाने से बाहर लाये गये और गोलियों के शिकार बने । इसके बाद सिपाहियों को. औरतों और बच्चों को मार डालने का हुक्म दिया गया । उनमें से अधिकांश ने अस्वीकार कर दिया—केवल छः आदमी आगे बढ़े और खिड़कियों की राह गोलियां छोड़ने लगे । अन्त में इन्होंने भी ऐसी निर्दयतापूर्ण हत्या से हाथ खींच लिया । उन्हें कत्ल कर डालने की धमकी दी गयी; तो भी वे राजी न हुए । अन्त में कई कसाई और जल्लाद कैदखाने के भीतर घुसे और तलवारों से सब के सिर धड़ से अलग करने लगे । रोने-चिल्लाने के सिवा उन अभागे जीवों के हाथ में और कोई उपाय नहीं था, इसलिये मारे चिल्लाहट के कुहरामसा मच गया । इस तरह उस सन्ध्या के समय निरपराध और निरीह नारियों और उनके प्यारे बच्चों की बुरी तरह हत्या की गयी ! १६वीं जुलाई के सवेरे ही सब की लाशें पासवाले कुएँ में डाल दी गयीं । कितने ही अधमरे और कितने ही जीते-जी उस कुएँ में डाल दिये गये—किसी पर दया नहीं की गयी !

इस सम्बन्ध में एक बात विशेष उल्लेख योग्य है। इतने उत्तेजित होने पर भी किसी विद्रोही ने किसी स्त्री की इज्ज़त नहीं बिगाड़ी और न किसी का कान-नाक काटा। वे उनके खून के प्यासे थे—उनका प्राण नाश करके ही वे सन्तुष्ट हो रहे।

इसी दिन अर्थात् १६ वीं जुलाई को ही घुड़सवार, पैदल और गोलन्दाज़ सब मिलाकर प्रायः ५००० सैनिकों के साथ नाना साहब अँगरेज़ों का मुकाबला करने के लिये चल पड़े। कानपुर से ४ मील दक्खिन 'अहरवा' नामक गांव में पड़ाव डाला गया, यहां से दाहिनी ओर को कानपुर की छावनी का रास्ता था और बायीं ओर दिल्ली जानेवाली राह थी, बायीं तरफ गंगा बह रही थी और दाहिनी तरफ ऊँची-ऊँची दीवारों से घिरा हुआ एक गांव और आम का बड़ा भारी बाग था। गंगा की तरफ जो ढालवीं जगह थी, वहीं बड़ी-बड़ी तोपें रखी गयीं। आम-बाग और उक्त गांव की तरफ भी तोपें लगा दी गयीं। जहां दोनों राहें मिली थीं, वहां और उसके दोनों तरफ पैदल सैनिक खड़े किये गये, जिनके पीछे घुड़सवार पल्टन भी डटी हुई थी।

अँगरेज अब भी बहुत दूर थे। १५ वीं जुलाई को उन्होंने यात्रा की और रात-दिन चल कर १४ मील का सफर तै कर डाला। इसके बाद खाने-पीने और आराम करने के अनन्तर वे फिर चल पड़े। जब पास पहुंचे, तब नाना साहब की वह विशाल सेना देख, बड़े चकराये। उनके पास सिर्फ १००० गोरे और ३०० सिक्ख थे। इस-लिये उन्होंने सोचा, कि इस समय ठेठ सामने चले जाने से शत्रुओं

के हाथ मारे जाने के सिवा और कुछ लाभ न होगा। उन्होंने बड़ी चतुराई से अपने सैनिकों के कई विभाग किये और कितने ही रास्तों से शत्रुओं पर हमला करने का उन्हें हुक्म दिया। पैदल, घुड़सवार और गोलन्दाज सभी एक साथ युद्ध के लिये तैयार हो गये। उनकी सेना को आगे बढ़ते देख, नानासाहब की तोपें दगने लगीं। यह देख, अँगरेज सेनापति ने अपने सैनिकों को आगे बढ़ने से रोक दिया।

विद्रोहियों की तोपें बराबर गोले बरसाती रहीं। लाचार, सेनापति ने अपनी स्काटलैण्डवासिनी सेना को आगे बढ़ कर तोपें छीन लेने का हुक्म दिया। वे बन्दूकें छोड़ते हुए आगे बढ़े, मारते-मरते हुए वे विद्रोहियों के बिलकुल पास पहुंच गये। फिर तो बन्दूकों की जगह सङ्गीनों की लड़ाई होने लगी। अन्त में इन लोगों ने शत्रुओं का व्यूह भेद कर उनकी तोपें छीन लीं। सिपाही पीछे हटने लगे। यह देख, उनके साथी घुड़सवार आगे बढ़ आये; अन्त में ये भी भागने के ही लक्षण दिखाने लगे। इधर अङ्गरेजी सेना के एक दल के पीछे हटते ही दूसरा दल उसका स्थान ग्रहण कर लेता और बड़े उत्साह से युद्ध करने लगता। सिक्खों ने भी इस युद्ध में अङ्गरेजों को बड़ी सहायता की।

उधर सिपाहियों में सुयोग्य सेनापति न होने के कारण एक बार जहाँ हटने की नौबत आती; वहां पूरी भगदड़ मच जाती थी। 'इण्डियन एम्पायर' (Indian Empire) नामक पुस्तक के लेखक मार्टिन साहब का कहना है, कि यदि इस समय सिपाहियों के साथ कोई रण-नीति-निपुण सेनापति होता, तो अङ्गरेजों की पूरी तबाही

आ जाती। पर ऐसा न होने के कारण जरासा दबते ही वे लोग भागने लग जाते थे। इसीलिये उनकी एक के बाद दूसरी तोप छिन जाने लगी। सेनापति हावेलाक की चतुराई से सिपाहियों की संख्या अधिक होने पर भी उनकी सब तोपें छिन गयीं—उनके टिकने का स्थान न रहा—सबके सब भाग चले। इन्हें भागते देख, कप्तान माड की तोपें उन पर गोले बरसाने लगीं। अब तो किसी ने पीछे फिरकर देखने का भी साहस न किया—लड़ना तो बड़ी दूर की बात है।

इस युद्ध में हावेलाक साहब की पैदल सेना की सङ्गीनें ही अधिक-तर काम आयीं— उनकी तोपों और घुड़सवार सेना को इस विजय का श्रेय नहीं दिया जा सकता। सिपाही हारकर भागे सही; पर अयोग्य सेनापतियों के होते हुए भी, उन्होंने जिस वीरता और पराक्रम के साथ युद्ध किया, वह अवश्य ही प्रशंसा के योग्य है। यदि वे तितर-बितर न हो जाते और दृढ़ता के साथ मैदान में डटे रहते, तो निश्चय ही अङ्गरेजों को नेस्तोनाबूद कर डालते। जो हो, इस हारके कारण अथवा अङ्गरेजों के साथ विद्रोह करने के कारण, कोई उनकी निन्दा भले ही करे; पर उनके साहस, वीरत्व और रण-कौशल की प्रशंसा किये बिना कोई नहीं रह सकता।

कुल अढ़ाई घण्टे के युद्ध ने ही अङ्गरेजों के हाथ विजय-लक्ष्मी सौंप दी। नानासाहब निरुत्साह हो, अपने घोड़े पर चढ़े हुए युद्ध-स्थल से चल पड़े। उनके सिपाही भी इधर-उधर भाग चले।

१७ वीं जुलाई के प्रातःकाल जेनरल हावेलाक कानपुर का उद्धार करने चले। रास्ते में ही उन्होंने मेमों और बच्चों की हत्या का हाल

सुना। सुनते ही जीत की खुशी रञ्ज में बदल गयी। वे लोग टूटे हुए दिल से कानपुर की ओर अग्रसर होने लगे।

उनकी अग्रगामी सेना जिस समय कानपुर की छावनी के पास पहुंची उसी समय उन्हें दूर ही से धुएँ का पहाड़सा दिखाई दिया। इसके क्षण ही भर बाद इतना बड़ा धड़ाका हुआ कि कानोंके पर्दे फटने लगे—जमीन हिलती हुई मालूम पड़ी! वे यह देख समझ गये कि शत्रुओं ने अस्त्रागार में आग लगा दी है। सचमुच बात भी यही थी। विद्रोहियों ने अस्त्रागार में आग लगा दी थी और उसे भस्मीभूत कर भाग गये थे। इस तरह बिना परिश्रम के ही कानपुर फिर अङ्गरेजों के हाथ आ गया। इसी समय जेनरल हावेलाक ने सुना कि नानासाहब बिठूर में बड़ी भारी फौज जमा कर रहे हैं। सुनकर उन्हें बड़ी चिन्ता हुई; पर पीछे यह खबर गलत निकली।

नानासाहब के युद्ध-भूमि से बिठूर पहुंचते ही उनके अनुचरगण उनका साथ छोड़कर भागने लगे। उनके प्रधान मुसलमान मन्त्री भी नौ दो ग्यारह हो गये। तब तो नानासाहब बड़े ही घबराये और औरतों के साथ गंगा पार हो भाग जाने की चेष्टा करने लगे। उन्होंने इसी इरादे से घाटपर आकर नाव किराये की और सब लोगों से कहा कि मैं बीच धारा में पहुंच कर गङ्गा में कूद, प्राण त्याग कर दूंगा! पर रातों-रात गङ्गा पार हो, वे प्राण लेकर भाग गये। लोगों ने सोचा कि सचमुच उन्होंने गङ्गा में कूदकर प्राण दे दिये। बिठूर का राज-प्रासाद खाली हो गया। अङ्गरेजों का उसपर भी अधिकार हो गया।

अब अङ्गरेजों को हिन्दुस्तानियों से वैर भँजाने का पूरा मौका मिला। अँगरेज सैनिक बड़े विचित्र जीव होते हैं। शराब के नशे में चूर होकर वे चाहे जो कर डालें। कोई किसी कारण से उनका विरोध न करे, ये उसे दण्ड देने के लिये झट तैयार हो जाते और उस समय दया-मायाको हृदय से निकाल वाहर कर देते थे। कोई ऐसा पाप नहीं जो वे झोंक में आकर न कर डालें। उस समय औरत हो या मर्द—कोई उनके हाथ से छुटकारा नहीं पा सकता। कानपुर और बिठूर हाथ में आने पर अपने सामने का मैदान शत्रुओं से शून्य देख सेनापति हावेलाक के सैनिकों ने भी अपनी इस उद्दण्ड-प्रकृति का परिचय दिया। कानपुर में गोरों, गोरी बीबियों और गोरे बच्चों पर जो जुल्म हुआ था, उसकी याद कर वे एक बार ही सब कालों को नेस्तोनाबूद कर देने के लिये तुल गये। फिर तो उन्होंने ऐसे भीषण अत्याचार किये, जिनकी तुलना किसी इतिहास में नहीं।

उस समय कानपुर नगर या छावनी में उनका कोई शत्रु नहीं रह गया था। नानासाहब और उनके सिपाही लापता हो गये थे। इसलिये उन्हें चुप हो रहना ही चाहिये था; पर उनके दिमाग-शरीफ में यह बात घुस पड़ी कि जितने काले आदमी हैं, वे सभी नानासाहब के दल के हैं। इसीलिये वे बिना अपराध के ही जिसे देख पाते, उसीका खून कर डालने को तैयार हो जाते। उस समय कोई स्त्री, पुरुष या बालक उनकी हत्यारी-प्रवृत्ति से जान न बचा सका। उन्होंने कानपुर के दस हजार आदमियों की बेकुसूर ही हत्या कर डाली! डर के मारे दल के दल लोग कानपुर छोड़कर भाग चले।

यद्यपि अँगरेज सैनिकों ने जो कुछ किया वह अपनी प्रकृति के अनुकूल ही किया और उनके ऐसा करने का यथेष्ट कारण तथा प्रबल उत्तेजना भी वर्त्तमान थी, तथापि जेनरल हावेलाक जो चुपचाप यह हत्यारी-लीला देख रहे थे, उनके लिये यह बड़ी लज्जा की बात थी। उनके सामने ही ये सैनिक लोगों के धन-प्राण नष्ट करते रहे और वे कुछ न बोले, यह उनके नाम पर घोर कलङ्क लगानेवाली बात हुई। अन्त में जब यह संहार-लीला सीमा पार गयी, तब उन्हें भी चेत हुआ और वे रोक-थाम करने लगे ; पर यदि यही सुबुद्धि पहले ही उत्पन्न होती, तो इतना लोक-संहार न होने पाता।

जो हो, इतना सब हो जाने पर कानपुर में शान्ति हुई और शेरर साहब फिर वहां के मजिस्ट्रेट बनाये गये। १८ वीं जुलाई को उन्होंने एक घोषणा निकाली जिसमें यह प्रकट किया गया, कि अब से कानपुर में फिर अङ्गरेजों की अमलदारी हो गयी और हमारे ही आईन-कानून जारी हो गये। इसके बाद और भी बहुतसे हाकिम मुकर्रर होकर अपना अपना काम करने लगे।

इसके बाद जेनरल हावेलाक ने दिल्ली के रास्ते में कुछ सैनिकों को भेजा क्योंकि उन्हें उधर से विद्रोहियों के आने का डर था; पर पीछे वह डर बेजड़ मालूम हुआ। उधर एक दल बिठूर में भी आया और नानासाहब के छोड़े हुए धनका मालिक बन बैठा। उनकी सम्पत्ति का बहुत बड़ा हिस्सा सिपाहियों के हाथ लगा। सिक्खों ने बाजीराव पेशवा की तीन लाख की हीरे-मोतियों से जड़ी हुई तलवार अपने कब्जे में कर ली। बहुतसे सोने-चांदी के बर्तन-बासन भी उनके हाथ लगे।

इसी समय कानपुरकी रङ्ग-भूमि में सर्व-संहारक मूर्त्ति लिये हुए सेनापति 'नील' भी उतर आये। हावेलाक साहब के सैनिकोंने बेचारे कानपुरवालों का सत्यानाश करने में जो कुछ कसर रख छोड़ी थी, उसे पूरा करने के ही लिये मानों आपका शुभागमन हुआ। वे २० वीं जुलाई को कानपुर आ पहुंचे।

उस समय लखनऊ में विद्रोहियों ने बड़ा उपद्रव मचा रखा था। आगरे पर भी उन्हीं लोगों का अधिकार हो रहा था और दिल्ली तो उनका प्रधान अड्डा ही हो रही थी। इसलिये नील साहब को कानपुर की रक्षा और प्रबन्ध का भार सौंप सेनापति हावेलाक लखनऊ के लिये रवाना हो गये।

कानपुर का 'चार्ज' अपने हाथ में लेते ही नील साहब वहां के हत्याकाण्ड के अपराधियों की खोज-ढूंढ़ कराने लगे। उन्होंने इलाहाबाद में तो केवल लोगों को फाँसी ही दी थी, यहां उन्होंने एक नये ढङ्ग की सज़ा भी तजवीज़ की। उन्होंने हुक्म जारी किया कि जो लोग अपराधी प्रमाणित हों, उन्हींसे मेमों और बच्चों के खून से रंगा हुआ 'बीबी-घर' साफ कराया जाये; इसके बाद उन्हें फांसी दी जाये! जिस कुएँ में मृत स्त्रियों और बच्चों की लाशें डाली गयी थीं उसे मिट्टी से भरवा कर उन्होंने कब्रसी बना डाली। इसके बाद अपराधियों से बीबीघर साफ कराया जाने लगा। जो लोग इनकार करते थे उनकी पीठ मारे बेतोंसे फोड़ दी जाती थी। इस प्रकार नीच कर्म कराने के बाद उन बेचारों को फांसी भी दे दी जाती थी। अपनी इस भीषण प्रतिहिंसा के विषय में नील साहब स्वयं लिखते हैं :—

"मेरा उद्देश्य कापुरुष, बर्बर और विद्रोही पुरुषों को उनके कुकर्म के लिये भयङ्कर दण्ड देना ही है। इस तरह मैं उनके मन में आतङ्क उत्पन्न करना चाहता हूं। सबसे पहले मैंने एक सूबेदार को पकड़ा, जो उच्च श्रेणी का ब्राह्मण था। उसने पहले तो मेरी, बीबीघर की रक्त-परिष्कार करने की आज्ञा नहीं मानी—वही रक्त, जिसके बहाने में उसने भी सहायता दी थी—पर पीछे जब मेरे हुक्म से उस पर बेंतों की मार पड़ने लगी, तब वह दुराचारी झट उस काम को पूरा करने के लिये तैयार हो गया। जब सब काम खतम हो गया, तब उसे बाहर लाकर फांसी दे दी गयी और उसकी लाश सड़क के किनारे एक गड्ढे में गाड़ दी गयी। कानपुर में जो भयानक अत्याचार और हत्या-काण्ड इन लोगों ने मचाया था, उसे देखकर कौन इन राक्षसों के प्रति दया दिखलाने की बात सुनने को तैयार होगा?"

इस तरह सेनापति नील ने ३ री नवम्बर १८५७ तक कानपुर-वालोंको अपनी प्रतिहिंसा के कड़वे फल खूब चखाये। अन्त में इसके लिये इनकीबड़ी बदनामी हुई और इनके हाथ से यहां का अधिकार छीन कर सर कालिन कैम्पबेल को यहाँ का सर्वप्रधान नियन्ता बनाया गया! उन्होंने यही कहकर पूर्वोक्त प्रकार की हत्यारी-लीलाएँ बन्द करवा दीं, कि ऐसे भीषण कार्य अँगरेजों के नाम पर धब्बा लगानेवाले और किसी ईसाई-मत को माननेवाली सरकार के लिये लज्जा के विषय हैं।

अस्तु; अब हम नानासाहब के विषय में दो-चार बातें लिख कर इस अध्याय को समाप्त कर देना चाहते हैं। कहते हैं कि उस दिन बिठूर से रवाना हो, वे अवध के जङ्गलों में जाकर छिप

रहे। वहां भी उन्होंने कुछ दिनों तक पूरा दल बांध रखा और राजसी ठाट से रहने में समर्थ हुए। नवम्बर महीने में जब तांतियाटोपी ने कानपुर पर दूसरा हमला किया, तब वे भी उसमें शामिल हुए; पर सर कालिन कैम्पबेल के हाथ से बुरी तरह हार खाकर जब सब विद्रोही भाग खड़े हुए, तब नानासाहब भी हिमालय की तराई वाले जङ्गलों में चले गये। वहां भी उनको चैन न मिली। अँगरेज़ों की धाक उस समय चारों ओर फैल गयी थी और जङ्गलों में भी उनके अनुचरों ने नाना साहब का पिण्ड नहीं छोड़ा। इस प्रकार वे नित्य-शङ्कित, नित्य-दुःखित, नष्ट-गौरव, नष्ट-प्रभाव और नष्ट-स्वास्थ्य हो, दो वर्ष तक नेपाल के जङ्गलों में इधर-उधर भटकते फिरे और इसी अवस्था में परलोक-वासी भी हुए।* उनके सभी साथी जहाँ-तहाँ भाग गये थे। उनका इस प्रकार मरना भी उनके बहुतसे साथियों ने नहीं जाना। उनके अनुचरों में से बहुतसे लोग अँगरेज़ों के हाथ में पड़कर फांसी पर लटका दिये गये। इन फांसी पड़नेवालों में पाठकों के पूर्व परिचित ज्वालाप्रसाद भी एक थे।

यही इस संसार की परिवर्तन-शीलता है। जो एक दिन सारे भारतवर्ष का सम्राट् होने का स्वप्न देख रहे थे, उनके मर जाने पर उनकी प्रेत-क्रिया भी ठिकाने से नहीं हुई! पृथ्वी के इतिहास में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं। जगद्विजयी नैपोलियन की कथा तो

---

* एक बंगाली पर्यटक-लेखकका कहना है कि श्रीमन्त नानासाहब अभी भी नेपाल के जंगलों में तपस्या कर रहे हैं। यह सम्भव भी हो सकता है, क्योंकि यह ६० ही वर्ष की बात है।—लेखक।

सैकड़ों वर्षों की पुरानी हो गयी है, इसलिये हम पाठकों को हाल के जर्मन-सम्राट् विलियम कैसर और सम्राट् ज़ार निकोलस के ही विचित्र भाग्य-परिवर्त्तन की ओर देखने का अनुरोध करते हैं।

अँगरेज़ इतिहास-लेखकों ने नाना साहब को मनुष्य के रूप में महाराक्षस तक कह डाला है। इसी तरह की उपाधि एक दिन वीर नेपोलियन को भी मिली थी। गत युरोपियन-महाभारतके अधिनायक कैसर विलियम को भी इस सम्माननीय उपाधि से विभूषित किया गया था। रूस के वर्त्तमान भाग्यविधाता, बोल्शेविज्म के आचार्य, लेनिन भी नर-प्रेत कहे जानेका सौभाग्य अर्जन कर चुके हैं। पर यह सब एक पक्षीय बातें हैं। दूसरा पक्ष क्या कहता है, यह देखना भी आवश्यक है। अपने शत्रु को सभी लोग ऐसी उपाधियोंसे सम्मानित करते हैं, जैसा उनके शत्रु करते हैं। इतिहास तो इतिहास, रोज़मर्राह की घटनाएँ भी हमें यह सत्य-सिद्धान्त बतलाया करती हैं।

नाना साहब के साथ लार्ड डलहौसी ने पूरी विश्वासघातकता की—उनकी पेन्शन बन्द कराकर उन्हें अँगरेजों का वैरी बना दिया, पर तो भी वे अँगरेज़ों के साथ सज्जनता से पेश आते रहे। यदि अज़ीमुल्लाहखाँ के से दो-चार आदमी उनके सलाहकार न होते, तो वे कभी अँगरेज़ों से विरोध न करते; पर मनुष्य को घटना-चक्र का दास बनना पड़ता है। इस प्रकार के उदाहरण प्रत्येक इतिहास में वर्त्तमान हैं। फिर नानासाहब ही इतने बुरे क्यों? दूसरे नानासाहबको अपने किये का दण्ड भी तो मिल गया। उन्हींको नहीं, उनके साथियोंको ही नहीं; उनके अभागे देशवासियों तक को इस प्रायश्चित्त

का भागी बनना पड़ा और उनके जीवन के अन्तिम दिन बड़े कष्ट में व्यतीत हुए। क्या इतने पर भी इतिहास-लेखकों की कठोर लेखनी उनपर दया न करेगी ?

चाहे जो हो, अँगरेज नाना का नाम और कानपुर का काण्ड कभी नहीं भूलते। सिपाही-विद्रोह में यह काण्ड अतिशय प्रसिद्ध है और इसीलिये कानपुर की याद आते ही अँगरेजों के हृदय में भय, क्रोध और अनुत्ताप के भाव भर जाते हैं। परन्तु हम पहले भी कह चुके हैं और फिर भी कहते हैं कि पृथ्वी में केवल कानपुर में ही ऐसी लीला नहीं हुई। पृथ्वी के इतिहास में ऐसी अनेक घटनाओं के उदाहरण मिलते हैं और उनके नायक हिन्दुस्तान के काले आदमी ही नहीं, विलायत के साफ और गोरे चाम वाले भी हैं !

[illegible] अध्याय ।

पंजाब-प्रकरण ।

उस समय अँगरेज़ों को इस देश से नेस्तोनाबूद कर देने के लिये मानों सभी के दिल उछल रहे थे। खोयी हुई स्वाधीनता फिर से पाने के लिये सबके हृदय में उमंग भर रही थी। जहां-तहां इस देशके लोगों में अँगरेज़ों के विरुद्ध उठ खड़े होने का भाव जागृत हो रहा था और विद्रोह का हाल सुन-सुनकर प्रायः सभी स्थानों के लोग उत्तेजित और कुछ कर दिखाने के लिये चंचल हो रहे थे। पर पंजाब के सिक्ख बड़े बहादुर, स्वाधीनता-प्रिय और स्वधर्म-निष्ठ होते हुए भी चुपचाप थे; क्योंकि वे ऐसी हलचल में शामिल होना नहीं चाहते थे, जिसके फल से दिल्ली के मुगल-सम्राट् का प्रभाव बढ़ने की सम्भावना थी। मुग़लों से इनका बैर था। इसीलिये वे अँगरेज़ों का ही साथ देने को तैयार थे। यदि उस समय सिक्ख लोग भी विद्रोहियों से मिल जाते, तो क़यामत ही बरपा हो जाती। दूसरे पंजाब के उत्तर में रहनेवाले स्वाधीन अफ़गानों से भी उनकी बनती नहीं थी—यदि उस समय अफ़गान और सिक्ख एक होकर अँगरेज़ों के खिलाफ़ खड़े हो जाते, तो भी आफ़त आ जाती। पर आपस की अनबन ने पंजाब के लोगों को एक होने का अवसर नहीं दिया। सिक्खों में से बहुतसे लोग, जिनके हथियार छीन लिये गये थे, हथियार की जगह

हल चलाने में ही मस्त थे। और जगहों में क्या हो रहा है, इसकी वे परवा ही नहीं करते थे।

उस समय लाहौर के किले में एक गोरी और एक काली पल्टन थी। लाहौर से छः मील दूर मियांमीर नामक स्थान में सेना की छावनी थी। वहां देशी पैदल-सैनिकों के तीन दल, घुड़सवारों का एक दल, गोरी पैदल-सेना का एक दल और कुछ गोलन्दाज रहते थे। मतलब यह, कि यदि एक गोरा था, तो ४ हिन्दुस्तानी थे। उन दिनों पंजाब के चीफ-कमिश्नर सर जान-लारेन्स रावलपिण्डी में थे और उनकी जगह पर रावर्ट माण्टुगोमेरी काम कर रहे थे।

११ वीं मई को ही मेरठ का समाचार यहां आ पहुंचा। उसके बाद ही दिल्ली में युरोपियनों के मारे जाने और वहाँ से खदेड़े जाने का समाचार मिला। यह सब सुनते ही सर जान लारेन्स का चित्त चंचल हो गया और वे अनारकली में आकर अन्यान्य अफसरों के साथ कर्त्तव्याकर्त्तव्यके विषय में विचार करने लगे। उन्होंने प्रस्ताव किया कि सिपाहियों से गोली, बारूद और बन्दूक की टोपी ले ली जाये तथा किले में और भी गोरे सैनिक रखे जायें। यह बात सबको पसन्द आयी और रावर्ट माण्टगोमेरी एक फौजी अफसर के साथ मियांमीर में ब्रिगेडियर कर्वेट के पास आये। इसी समय उन्हें एक भयंकर षड्यन्त्र की बात मालूम हुई।

कहते हैं, किले में जिन सिपाहियों का पहरा था, उनकी बारी १५ वीं मई को खतम होनेवाली थी और उनके स्थान में दूसरी पल्टन आनेवाली थी। सिपाहियों ने साजिश की, कि जब पहरा

बदलने का समय आवे तभी ये दोनों सैन्य-दल मिलकर अँगरेजों पर हमला कर दें और खजाना तथा सिलह-खाना लूट लें। इसके बाद कारागार के दो हजार कैदियों को छुटकारा दे दिया जाये, जिसमें वे सब भी मिल-जुलकर अङ्गरेजों का सत्यानाश करें। षड्यन्त्र-कारियों ने भीतर ही भीतर यह आग फिरोजपुर, फिलौर, जालन्धर और अमृतसर तक पहुंचा दी थी। पहले दो अङ्गरेजों ने इस षड्-यन्त्र का भण्डाफोड़ किया; पर अधिकारियों को विश्वास नहीं हुआ कि सभी सिपाही इसमें सम्मिलित होंगे। जो हो, यह बात गवर्ट माण्टुगोमरी के कानों तक भी पहुंची और ब्रिगेडियर से बड़ी देर तक सलाह करने के बाद उन्होंने यही निश्चय किया कि सिपाहियों को एकबारगी निरस्त्र कर दिया जाये। १३ वीं मई को सब सिपा-हियों को परेड के मैदान में जमा होने का हुक्म दिया गया।

१२ वीं की रात में छावनी के अन्दर साहबों का बड़ा भारी जलसा हुआ। साहबों और मेमों का नाच रात भर बड़े ठाट से होता रहा। यदि सिपाहियों ने यथार्थ में षड्यन्त्र-रचना की होती तो उन्हें इस तरह नाच तमाशे में पड़ा देख वे कभी बाज न आते और उसी समय उन पर टूट पड़ते। इसीसे मालूम होता है कि स्वार्थी और खुशामदी टट्टुओं ने झूठ-मूठ यह खबर अँगरेज अधिकारियों को दी थी।

अस्तु; १३ वीं मई के प्रातःकाल सब सैनिक परेड के मैदान में हाजिर हुए। उनके आगे बन्दूक, पीछे तोप लगा दी गयीं और अस्त्र-शस्त्र रख देने का हुक्म दिया गया। केवल ६०० गोरे सैनिकों ने

इस तरह २५०० देशी सिपाहियों को चुपचाप निरस्त्र कर डाला। उदास मुंह बनाये सब निरस्त्र सिपाही अपने-अपने घर लौट गये।

उस समय किले में २६ वीं पल्टन का पहरा था। उनका पहरा १५ वीं मई तक के लिये था। १४ वीं मई के बड़े सवेरे ८१ वीं गोरी पल्टन के कितने ही सैनिक एकाएक किले में घुस आये। उनके अध्यक्ष कर्नल स्मिथ ने सबको हथियार रख देने का हुक्म दिया। लाचार बेचारों को यह आज्ञा माननी पड़ी। क्यों ऐसा किया गया, यह उन्हें नहीं मालूम होने पाया।

इस तरह लाहौर को निरापद बना राबर्ट मन्टुगोमरी ने अमृतसर के गोविन्दगढ़ दुर्ग की रक्षा का प्रबन्ध करना विचारा। उन्होंने वहां के डिपटी कमिश्नर कूपर साहब को शान्ति और धीरता के साथ वहां के सिक्खों पर कड़ी नजर रखने का उपदेश लिख भेजा। वे उनके उपदेशानुसार कार्य करने लगे।

अकस्मात् अमृतसर में अफवाह उड़ी कि लाहौर के जिन सिपाहियों के हथियार छीन लिये गये हैं वे बड़ा भारी दल बाँधे गोविन्दगढ़ दुर्ग पर आक्रमण करने के लिये चले आ रहे हैं। यह सुन कूपर साहब कुछ विश्वासी सिक्खों के साथ किले के फाटक पर पहरा देने लगे। इधर उनके सहकारी कमिश्नर मैकनटन साहब ने आस-पास के गांववालों को समझा-बुझाकर अपने अपने गांवों की रक्षा के लिये तैयार कर दिया। वे लोग लाठी, सोंटा, बर्छा, भाला आदि साधारण हथियार लिये हुए सहकारी कमिश्नर मि० मैकनटन के साथ लाहौर के रास्ते में जा डटे। पर पीछे यह भय मिथ्या ही

हुआ। शत्रु सिपाहियों के स्थान में लाहौर से कुछ अँगरेज सैनिक इन लोगों की सहायता के लिये आ पहुंचे।

इन दोनों स्थानों के सिवा और-और स्थानों में भी गड़बड़ होने का भय था। खासकर फिरोजपुर और फिलौर के अधिकारियों को तो अपने यहां के सिपाहियों पर बड़ा सन्देह हो रहा था।

११ वीं मई की रात को ही एक दूत मेरठ और दिल्ली का समाचार लिये हुए लाहौर से फिरोजपुर आ पहुंचा। यहां की छावनी के प्रधान अफसर ब्रिगेडियर इंनस ने इसके साथ ही साथ जब लाहौर के निरस्त्र हो जाने का हाल सुना, तब उन्होंने भी अपने सिपाहियों को परेड के मैदान में जमा होने का हुक्म दिया। उनका मतलब यह था कि वहां जमा करके वे सिपाहियों के चेहरे-मोहरे और चेष्टा से उनके मन की थाह लगायेंगे। उनकी इस परीक्षा का परिणाम सन्तोषजनक नहीं निकला। उन्हें किसी पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सैनिक विभाग के कर्मचारियों के साथ सिपाहियों को निरस्त्र कर डालनेके विषय में परामर्श करना आरम्भ किया। पर यह प्रस्ताव बहुतों को नापसन्द हुआ। अन्तमें यही तय पाया कि कल सबेरे दोनों सैनिक दलों को (जो यहां थे) अलग अलग कर दिया जाये।

फिरोजपुर के अस्त्रागार में बारूद और गोले-गोलियों का ढेर-सा था। इसीलिये ५७ वीं पलटन के बहुतसे सैनिक उसकी रक्षा के लिये नियुक्त किये गये थे। अबके देशी सिपाहियों पर से विश्वास उठ जाने के कारण एक सौ गोरे वहाँ भेजे गये। साथ ही विपद् आ पड़ने पर सब गोरी बीबियों और बच्चों को भी यहीं आकर रहने का

गुप्त उपदेश दिया गया। इस प्रकार का प्रबन्ध करने के अनन्तर दूसरे दिन अलग-अलग स्थानों में ले जाकर सिपाहियों को निरस्त्र कर देने का निश्चय किया गया, पर ऐसा न होने पाया। ५ बजे के करीब उक्त दोनों दलों के सिपाही पृथक् भाव से परेड के मैदान में पहुंचे। ५७ वीं पल्टन के लोग तो पहले पहुंचे, पर ४५ वीं पल्टनवाले सदर बाजार होकर जाने लगे। बाजार में पहुंचते ही उनकी नियत बिगड़ गयी। उन्होंने जहाँ-तहाँ लोगों के मुंह से तरह-तरह की बातें सुनीं। बस, उनके मिजाज में फितूर पैदा हो गया। वे समझ गये, कि अँगरेजों को हमारे ऊपर विश्वास नहीं रहा। कितने ही स्पष्ट रूप से चिल्ला उठे कि हमारे ऊपर अविश्वास किया जा रहा है, यह अच्छा नहीं और झट अपनी-अपनी बन्दूकें भरकर अस्त्रागार की ओर दौड़े। कुछ लोग इनके साथ न जाकर हुक्म के मुताबिक परेड के मैदान में चले आये।

अस्त्रागार का बाहरी हिस्सा सुरक्षित नहीं था; इसलिये बिगड़े हुए सिपाही आसानी से उसकी दीवार पर चढ़कर नीचे कूद पड़े, किन्तु जिस घर में अस्त्रादि रखे थे उसकी चहारदीवारी की ऊँचाई छः फुट से कम न थी। दूसरे उसके दरवाजे पर बहुतसे गोरे सैनिक पहरा दे रहे थे। विद्रोही सिपाहियों ने झटपट उन सैनिकों पर हमला कर दिया और उनके अफसर को मार गिराया; पर अन्त में उन्हें बुरी तरह हार कर भागना पड़ा। इसके बाद फिर अस्त्रागार के अन्दरवाले देशी सिपाही भी निरस्त्र कर दिये गये और वह सम्पूर्ण रूप से सुरक्षित रह गया।

इधर छावनी और बाजारों में गड़बड़ होने लगी। सर्वसाधारण बिगड़ उठे और लूट-पाट करने लगे। छावनी में अङ्गरेजों के बँगले, खर्चीखाने, होटल और गिरजे जलाये जाने लगे। हाहाकार मच गया; पर यहाँ के विद्रोहियों ने अफसरों के औरत-बच्चों पर हाथ नहीं उठाया। जो हो, यहां के बहुतसे सिपाही भी बागी होकर दिल्ली चले गये और प्रधान बलवाइयों से जा मिले। हाँ, यहां लाहौर की तरह शान्ति नहीं बनी रही। कुछ-न-कुछ उपद्रव हो ही गया। सिपाहियों का बल क्षीण करने के लिये अङ्गरेजों ने देशी सैनिकों के अस्त्रागार स्वयं नष्ट कर डाले थे।

मेरठ की घटनाओं का समाचार पाकर ही फिलौर के किले में अङ्गरेज सिपाहियों का रखना निश्चय किया गया और युरोपियन स्त्रियों तथा बच्चों को निरापद स्थानों में पहुंचा दिया गया। तोपें भी उचित स्थानों पर चढ़ायी गयीं। छावनी का हरएक अफसर आनेवाली विपद् के लिये हर घड़ी तैयार रहने लगा। यहां के अस्त्रागार की रक्षा के लिये जालन्धर से डेढ़ सौ गोरे मंगाये गये।

जालन्धर के आस-पास बहुतसी छावनियां थीं। जालन्धर के सिपाहियों को भी यदि निरस्त्र करने की चेष्टा की जाती, तो इसमें शक नहीं, कि होशियारपुर, काँगड़ा, नूरपुर और फिलौर के सिपाही उन लोगों की मदद करने के लिये अँगरेजों के विरुद्ध उठ खड़े होते। सच पूछिये, तो इसी डर के मारे अधिकारियों ने ऐसा नहीं किया। साथ ही कपूरथला के युवा महाराज रणधीरसिंह की सहायता भी जालन्धर की रक्षा करने में बड़ी अमूल्य सिद्ध हुई।

यद्यपि अँगरेज़ों ने इन्हें भी लूटा था और इनके राज्य का कुछ अंश हड़प कर लिया था, तथापि ये परोपकारी नरेश उनकी सहायता करने से बाज़ नहीं आये !

इधर पञ्जाब के अधिकारियों को सबसे बड़ा डर पेशावर का था। वहाँ बहुतसे अफ़ग़ान, अफ़रीदी आदि रहते थे, जो बिगड़ खड़े होने पर आफत ढा देते। दूसरे घाटियों के उधर काबुल और कन्धार में उनके बहुतसे सजातीय बन्धु रहते थे, मौका पड़ने पर वे भी उनकी मदद को चले आ सकते थे। यद्यपि काबुल के अमीर दोस्त मुहम्मदख़ाँ अँगरेज़ों के दोस्त थे और इस दोस्ती को कायम रखने के लिये अँगरेज़ों से हर साल काफी रुपया भी पाते थे, तथापि उन्हें पेशावर के अपने हाथ से चले जाने का बड़ा दुःख था। यह नगर एक समय उन्हीं के अधिकार में था। इसलिये अँगरेज़ डरते थे, कि कहीं इधर भी आग न लग जाये, नहीं तो पूरी तबाही आ जायेगी। इसका कारण यह था, कि यहां ७६०० देशी और केवल २००० के लगभग गोरे सैनिक थे।

११ वीं मई को दिल्ली से ख़बर आयी, कि मेरठ में सिपाही बलवाई हो गये हैं, दिल्ली अङ्गरेज़ों के हाथ से निकल गयी है और बूढ़े बहादुरशाह फिर सम्राट् बनाये गये हैं। यह ख़बर पा, पेशावर के शासनकर्त्ता कर्नल निकोलसन और एडवर्डिस बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने निविली चेम्बरलेन नामक एक सुचतुर सैनिक अफसर को बुलाकर उनसे परामर्श करना आरम्भ किया। १३ वीं मई को सेनापति रीड के बंगले पर सभा बैठी। निश्चय हुआ, कि इस गड़बड़ी

के जमाने में पञ्जाब के सब शासक और सैनिक पुरुष एक साथ रहें। जेनरल रीड को सब सैन्यदलों का अध्यक्ष बना दिया गया। साथ ही एक स्थायी सैनिक-दल भी सङ्गठित हुआ और चेम्बरलेन साहब चीफ कमिश्नर साहब से सलाह करने के लिये रावलपिण्डी भेजे गये। १६ वीं मई को वे वहाँ जा पहुंचे। इसी दिन प्रधान कमिश्नरकी आज्ञानुसार हर्बर्ट एडवर्डिस भी रावलपिण्डी की ओर रवाना हो गये।

सबसे मिल और सबकी बातें सुनकर चीफ कमिश्नर सर-जान लारेन्स ने बहुतसे सिक्खों और अफगानों को अपनी सेना में भर्त्ती किया और पुलिस की संख्या और शक्ति बढ़ा दी। स्थान-स्थान पर पुलिस का कड़ा पहरा रख दिया गया। खजाने की रक्षा का पूरा प्रबन्ध किया गया। प्रत्येक स्थान के शासक को सन्देहा-स्पद व्यक्तियों को फांसी पर लटका देने का अधिकार दे दिया गया।

कहते हैं, कि मुसल्मानों की ओर से पञ्जाब के सिपाहियों को भड़काने के लिये कितने ही पत्र भेजे गये थे। वे सब अधिकारियों के हाथ पड़ गये। तो भी जनता में यह सन्देह घर कर रहा था, कि ये अँगरेज हमारी जाति और धर्म के घोर शत्रु हैं। साथ ही गवर्नमेण्ट के कुविचार से जिन लोगों की सम्पत्ति छिन गयी थी, राज्य छिन गया था, अधिकार नष्ट हो गया था, वे लोग भी सर्वसाधारण को उत्तेजित करने से न चूके। पर उनके दुर्भाग्यवश सारा हिन्दुस्तान एक न हो सका। यदि होता—तो सम्भव था, कि हिन्दुस्तान के नक्शे से लाल रंग मिट जाता!

अस्तु; लोगों की बुद्धिहीनता तथा अपरिणामदर्शिता तो आग पैदा कर ही रही थी, अधिकारियों की अधीरता ने उसमें बराबर घी की आहुति दी। इसीसे आग ऐसी भयङ्कर हो उठी। वे जो यह धारणा कर बैठे, कि सारे हिन्दुस्तानी उनके वैरी हैं, वही उनके लिये विशेष विपत्ति का कारण हुई।

इसी समय कर्नल निकोलसन ने पहाड़ी जातियों के सरदार से सहायता मांगी; पर उसने साफ इनकार कर दिया। २१ वीं मई को कर्नल एडवर्डिस रावलपिण्डी से लौट आये। उन्होंने देखा, कि अवस्था क्रमशः बिगड़ी जा रही है। अस्तु; उस दिन रात को कर्नल निकोल्सन और एडवर्डिस एक ही घर में सोये, पर उन्हें नींद न आयी। हर घड़ी उन्हें सिपाहियों के हमले का डर हो रहा था। बड़ी रात को उनके पास खबर आयी, कि नौशहरा के सिपाही बागी हो गये हैं। यह स्थान पेशावर से २४ मील पर है। खबर पाते ही ये दोनों आदमी ब्रिगेडियर सिडनी काटन (Sydney cotton) के घर पहुंचे। वहां पहुंच, नौशहरा का समाचार सुनाकर उन्होंने कहा, कि बस अब देर करने का काम नहीं है—यहां के ५ सैन्यदलों में से ४ दलों को तो अभी निरस्त्र कर देना चाहिये। सबेरे ही यह काम करना निश्चय हुआ। बड़े तड़के उन दलों के अधिनायकों की तलबी हुई। जब उन लोगों ने अपने दलों के निरस्त्र किये जाने की बात सुनी, तब बड़ी दृढ़ता के साथ इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा कि इसका परिणाम यही होगा, कि ये सब सिपाही भी परेड के मैदान में ही उत्तेजित हो उठेंगे और खून-खराबी करने को तैयार हो

जायेंगे। पर उन लोगों की कोई बात नहीं सुनी गयी। सिपाहियोंको निरस्त्र करना ही निश्चय रहा।

यथा समय सिपाही मैदान में कतार बांध कर खड़े हुए। गोरे-सैनिक, हथियार बांधे, मौका पड़ते ही उन पर गोली छोड़ने के लिये तैयार हो, खड़े हो गये। सिपाहियों ने चुपचाप अपने अफसरों की बात मान ली और एक स्थान पर अपने हथियार जमा कर दिये। उनके अफसरों को उनकी यह बेइज्जती बहुत बुरी लगी। यहां तक कि कई अफसरों ने तो अपने हथियार भी उन्हीं के हथियारों के साथ रख दिये।

हथियार छिन जाने पर सब सिपाही चुपचाप छावनीमें चले आये। पर इस घटना का उनपर ऐसा शोकजनक प्रभाव पड़ा कि उनमें से कितने ही पहाड़ की तराइयों में भाग कर चले गये। कहीं ये पहाड़ी जातियों से मिलकर नयी आफत न ढा दें, इस डर से उनकी गिरफ्तारीका हुक्म जारी हुआ। बेचारे बहुत से भगोड़े पकड़े गये। जिन गांवों में वे छिपे हुए थे, वहीं के लोगों ने उनको गिरफ्तार करवा दिया! बिना आज्ञा के छावनी छोड़ कर चले जाने के लिये उन पर मामला चलाया गया। फैसले में एक सूबेदार को फांसी तथा एक हवलदार और दूसरे सिपाही को कैद का हुक्म सुनाया गया; बेचारा सूबेदार सबके सामने ही फांसी पर लटका दिया गया!

इस घटना के बाद ५५ वीं पलटन को निरस्त्र करने का विचार हुआ। कर्नल हेनरी स्पाटिसउड इस सैन्यदल के अध्यक्ष थे। उन्होंने इस प्रस्तावका घोर विरोध किया; पर उनकी बात न रही। इधर

सिपाही-दल को निरस्त्र करने के लिये गोरे सैनिक भी चले आये। अपने अधीनस्थ विश्वासी सिपाहियों का यह अपमान कर्नल स्पाटिशउड को असह्य हो उठा। उन्होंने अपने अकेले कमरे में जा, आप से आप अपनी जान दे दी।

कर्नल स्पाटिशउड के मरने से सिपाहियों को वड़ी चिन्ता हुई। अब उनका कोई हिमायती न रहा। इसके बाद ही जब उन्होंने देखा, कि उनका अपमान करने के लिये गोरे सैनिक बुलाये गये हैं, तब तो वे एकबार ही अधीर हो उठे और उनमें से कितने ही गोला-गोली, हथियार-बन्दूक, रुपया-पैसा—जो कुछ सामने मिला, वही ले-देकर वहां से 'सोवाट' की ओर भाग चले। सिर्फ १२० जने नहीं भागे। कर्नल निकोलसन घुड़सवार पुलिस के साथ उन्हें पकड़ने चले। रास्ता दुर्गम और जंगल-पहाड़ों के बीच से होकर गया था। इसलिये बेचारे भागने वालों को बड़ी दिक्कतें होने लगीं। लाचार, जिसको जिस गाँव में जगह मिली, वह वहीं टिक गया—दल बँधा न रहा। उनका पीछा करनेवाले भी उन्हीं गाँवों में से होकर गये और कितनों ही को मार कर, कितनों को गिरफ्तार कर ले चले। बहुतों ने वहाँ के पहाड़ी राजाओं से अपने धर्म के नाम पर सहायता माँगी और न मिलने पर वीरों की भांति डट कर युद्ध किया; पर इस युद्ध में उन्हें जय न मिली। १२० आदमी मारे गये, १५० गिरफ्तार हुए तथा ३०० से ४०० तक मनुष्य घायल हो गये। जो स्वस्थ शरीर लिये भाग सके, वे सोवाट के प्रसिद्ध धर्मात्मा राजा आखुन्द के पास पहुंचे और उनको धर्म-नाशक अँगरेजों के विरुद्ध

उभाड़ने लगे; पर उन्होंने इनकी बात नहीं मानी—हाँ, इन्हें सिन्धु नदी के उस पार काश्मीर की ओर भेज दिया। काश्मीर के रास्ते में ही हजारा जिले के डिपटी कमिश्नर मेजर बिचर ने उनका रास्ता रोक दिया। लाचार, वे काश्मीर न जाकर कोहिस्तानकी ओर मुड़े; पर यहाँ भी मेजर बिचर के तैनात किये लोग उनकी राह रोके खड़े थे। राह की रुकावट, भोजन-वस्त्र का अभाव, वर्फिस्तान की ठण्ड की तकलीफें बर्दाश्त करते हुए भी वे दिलके कच्चे नहीं थे, इसलिये जब उन्होंने अपनी सब राहें बन्द देखीं और शत्रु उन पर हमला करने को भी तैयार हो गये, तब जहां तक बन पड़ा, वहां तक उन्होंने उनका मुकाबला किया, पर पीछे उन्हें भाग्य के सामने सिर झुका ही देना पड़ा और आत्म-समर्पण करने पर भी किसीको फांसी और किसी को गोली नसीब हुई! यह तो हिन्दुस्तानी वीरों का ही धर्म है, कि शरणार्थी की जान नहीं लेते; नहीं तो दुनिया में और कौन ऐसा करता है?

जो १२० सिपाही गिरफ्तार हुए थे, उनमें से किसी को मृत्यु और किसी को कारावास का दण्ड दिया गया। बेचारों का अपराध इतना ही था, कि वे डरकर छावनी से भाग गये थे। नहीं तो उन्होंने न किसी अफसर को मारा था, और न किसी का घर जलाया था। पर उस समय जैसी अन्धेर-नगरी थी, उसको देखते हुए तो यही गनीमत मालूम होता है, कि सब लोग तोप से नहीं उड़ा दिये गये। सर जान लारेन्स का हुक्म था, कि कम-से-कम इन कैदियों में से एक तृतीयांश अवश्य फांसी पर लटका दिये जायें, नहीं तो सभी हिन्दुस्तानी बागी हो जायेंगे।

इसके बाद ५१ वीं पल्टन के जो १२ सिपाही पल्टन से निकल भागे थे, उन्हें भी फांसी दी गयी। यह ३ री जून की बात है। १० वीं जून को ८७ वीं गोरी पल्टन के परेड के मैदान में एक और भी भयङ्कर कार्य हुआ। 'मर्दान' नामक स्थान के १२० सिपाही अपनी इच्छा से पल्टन के बाहर हो गये थे, चीफ कमिश्नर सर जान लारेन्स की आज्ञानुसार इनमें से ४० आदमियों को फांसी का हुक्म सुनाया गया। १० वीं जून को ही उन्हें फांसी दी जानेवाली थी, इसलिये वे उस दिन परेड के मैदान में लाये गये। सारे पेशावर के सिपाही इस भयङ्कर कार्य को देखने के लिये बुलाये गये। इधर-उधर से और भी हजारों आदमी इस रक्तम्नी-लीला का तमाशा देखने आये।

नियत समय पर ब्रिगेडियर वहाँ पहुंचे और उनकी आज्ञा से वे चालीसों वीर तोपों से उड़ा दिये गये। किसी ने चूँ तक नहीं की—उन गरीबों की मदद को किसी का हाथ आगे न बढ़ा! बहुतसे हथियारबन्द और बेहथियार सिपाही वहाँ खड़े थे; पर किसी का किया कुछ न हो सका—सब महज तमाशाई की तरह वह भयानक काण्ड देखते रह गये। इससे लोगों के दिल पर अँगरेजों का पूरा रोब छा गया और सब के सब डर गये। अँगरेजों का उद्देश्य सिद्ध हुआ। पर यदि वे उन बेचारों का खूने-नाहक न करके उन्हें सैनिक नियम को तोड़ डालने के अपराधों में ही कैद कर देते, तो भी वह उद्देश्य पूरा हो सकता था; पर उस समय तो अँगरेजों के सिर पर सिपाहियों की ही तरह खून सवार था। वे भला इस यज्ञ में सिपाही पशुओं की बलि दिये बिना कैसे मानते ?

सोवाक-नदी के तीर पर आबजाई नामक स्थान के दुर्ग में ६४ वीं पल्टन के सिपाही मौजूद थे। निकोलसन साहब जिस दिन भागे हुए सिपाहियों का पीछा करने निकले थे, उसी दिन उन्हें पता लगा, कि आजुनखाँ नामक एक प्रसिद्ध साहसी अफ़गान यहाँ आया हुआ है और उक्त पलटन के सिपाहियों को उभाड़ रहा है। यह खबर पाते ही उन्होंने उक्त पल्टन के भी हथियार छीन लेने का हुक्म दिया।

अवध पर अँगरेजों का अधिकार हो जाने से सभी मुसलमान बिगड़े हुए थे। उन्हें भय हो रहा था, कि कल हैदराबाद का भी यही हाल होगा। फिर तो मुसलमानों की अमलदारी कहीं न रह जायेगी। इसीसे बहुतसे पहाड़ी मुल्कों में रहनेवाले मुसलमान अँगरेजों पर आफत ढाने की धुन में थे। उक्त आजुनखाँ भी उनमें एक था। सिडनीकाटन की कुशलता ने उसकी एक न चलने दी और उसे अपने स्थान को लौट जाने को विवश किया। इधर आबजाई-दुर्ग के सैनिकों के हथियार भी छीन लिये गये।

जालन्धर-विभाग के कमिश्नर मेजर लेक मेरठ और दिल्ली की दुर्घटनाओं के समय जालन्धर में नहीं थे। वे जब लौटे, तब उन्होंने सिपाहियों को बहुत ही असन्तुष्ट देखा, इसलिये उन्होंने चाहा, कि इनके हथियार छीन लिये जायें; परन्तु अफसरों ने उनकी यह राय पसन्द नहीं की। इसलिये उनके हथियार नहीं छिने; पर साथ ही उन्हें सन्तुष्ट करने का भी कोई उपाय नहीं किया गया। इसका जो परिणाम होना था, वही हुआ। ७ वीं जून को गोरे सैनिकों के अध्यक्ष के घर में आग लगी। उसी समय देशी सिपाहियों के दल

इधर-उधर दौड़ते हुए दिखाई दिये। इधर-उधर से भी बहुतसे उत्तेजित मनुष्य आ जुटे। अफसर लोग झटपट अस्त्र-शस्त्र लिये हुए परेड के मैदान की ओर चले। मेमें अपनी और अपने बाल-बच्चों की जान के लिये घबरा उठीं। भारी गड़बड़ मची; पर सिपाहियों की ओर से किसी तरह का भयानक अत्याचार न हुआ। शायद वे केवल इतना ही चाहते थे, कि किसी तरह यहाँ से भाग कर दिल्ली चले जायें और अपने देशवासियों की सहायता करें। उनका अभिप्राय अफसरों की हत्या करने का नहीं था। वे अँगरेजी सलतनत की जड़ काटना भी नहीं चाहते थे। वे केवल यही चाहते थे, कि उनके जो देशवासी अपने धर्म और जाति की रक्षा के लिये जान लड़ा रहे हैं, उनसे जा मिलें। साथ ही उनका इरादा यह भी हुआ, कि होशियारपुर में जो ३३ वीं पलटन है, उसके सिपाहियों को भी अपने साथ लिये चलें। इसी मतलब से उन्होंने पहले फिलोर के सिपाहियों को भी खबर भिजवायी। इसके बाद वे रात के एक बजे जालन्धर से चल दिये। ब्रिगेडियर जान्स्टन तुरत उनका पीछा करने के लिये गोरे सैनिकों को न भेज सका। दूसरे दिन सात बजे सुबह में उनके आदमी भागे हुए सिपाहियों की खोज में चले; पर कहीं पता न पा, अपनासा मुंह लिये लौट आये।

इसी समय खबर उड़ी, कि फिलोर का रंग भी बेरंग हो रहा है; बस, एक अँगरेज सेनाध्यक्ष दो तोपों और कुछ गोरे सैनिकों को साथ लिये हुए फिलोर की ओर चल पड़े। उनके साथ पंजाब का २ नं० का घुड़सवार दल भी था। वहां पहुंच कर उन्होंने सुना, कि

यहाँ के अफसर तो किले में हैं और सिपाही शायद सतलज पार कर गये होंगे। कुछ ही देर बाद जालन्धर के सिपाही भी आ पहुंचे। अँगरेज सेनापति समझ न सके, कि इस समय क्या करना ठीक है? वे इसी सोच-विचार में रह गये और भागनेवाले आसानी से निकल भागे। इधर जालन्धर के सिपाही यहाँ आकर सतलज के उस पार पहुंचने की चेष्टा करने लगे।

उस समय लुधियाने के सहकारी कमिश्नर थर्नटन साहब सिपाहियों का वेतन देने के लिये वहाँ आये हुए थे। उन्होंने जब उनके भाग जाने का हाल सुना, तब झटपट एक घोड़े पर सवार हो, सतलज के किनारे पहुंचे और उसका पुल तोड़ डाला। पुल टूट जाने से सिपाहियों को और कई मील दूर जाकर पार पहुंचने की कोशिश करनी पड़ी। इसके बाद उन्होंने लुधियाने पहुंच कर देखा कि वहांके डिपटी कमिश्नर मि० रिकेट्स जालन्धर की खबर पाकर लुधियाने की रक्षा का उपाय कर रहे हैं। उन्हें भय था कि कहीं दिल्ली जाते जाते ये सिपाही लुधियाने में लङ्का-दहन-लीला न दिखा दें। इधर खुद लुधियाने की सेना में ही भीतर ही भीतर आग सुलग रही थी। इसलिये डिपटी कमिश्नर घबरा रहे थे कि जालन्धर के सिपाही सतलज न पार करें तो अच्छा है। इसी समय डिपटी कमिश्नर की प्रार्थना के अनुसार नाभा के राजा ने उनके पास दो तोपें और कितने ही घुड़सवार तथा पैदल सिपाही भेज दिये। उन्हें लिये हुए वे जालन्धर के सिपाहियों के विरुद्ध युद्ध करने के लिये चल पड़े।

उन्हें पता लगा कि थर्नटन साहब ने पुल तुड़वा दिया है इसलिये सिपाही और चार मील पीछे हट गये तथा जहां नदी की धार पतली और पाट कम है वहीं से पार उतरने की चेष्टा कर रहे हैं। यह समाचार पा वे लौट आये और लेफ्टिनेण्ट विलियम्स भी सिपाहियों को लिये हुए सिपाहियों के आने की राह देखने लगे। प्रायः १६०० सिपाही सतलज के इस पार आये। आते ही उन्हें अँगरेज सैनिकों से युद्ध करना पड़ा। अँगरेजों की तरफ से सिक्ख भी अपने भाई-बन्धुओं को मारने लगे! भारतवासियों की ही सहायता से अँगरेजी राज्य की यहां जड़ जमी; अबके वह जड़ हिलने लगी, तब भी हिन्दुस्तानी ही उनके काम आये और तनख्वाह के बदले में अपने भाइयों की हत्या करते हुए न शर्माये। अँगरेजों के पास तोपें थीं—वे उनसे निरन्तर गोले बरसाते रहे और सिपाही केवल बन्दूकों के ही बल पर उनके हमले को रोकते हुए उनके ऊपर गोलियों की बौछार करने लगे। दो घण्टों तक खूब जम कर युद्ध हुआ। अँगरेजों के छक्के छूट गये, सिक्ख छिन्न-भिन्न हो गये, नाभा के सिपाही नौ दो ग्यारह हो गये। डिपटी कमिश्नर रिकेट्स और सेनापति विलियम्स भी टूटे हुए दिल से लौट कर छावनी में चले आये।

इस प्रकार शत्रुओं को हराकर उत्तेजित सिपाही और भी जोश में आ गये और बड़ी तेजी के साथ लुधियाना-नगर में पिल पड़े। किले के सिपाहियों के भी जीमें जोश भर आया। शहर के गुण्डे-बदमाश, यह मौका देख, लूट-पाट करने के लिये घर से बाहर निकल आये। देखते-ही-देखते सारे शहर में उत्पात मच गया। बहुत से

ऐरे-गैरे और अवारा लोग लुधियाने को आबाद किये हुए थे, अबके उनकी बन आयी । सब-के-सब अँगरेजों को मटियामेट करने के लिये कमर कस कर मैदान में आये । बहुतसे काबुली भी लूट-तराज करने लगे । सरकारी गोदाम तथा अमेरिकन पादरियों के घर-द्वार लूटने के बाद ये लोग गिरजों में आग लगाने लगे । छापा-खाना नष्ट कर दिया गया । कैदखाना तोड़ कर कैदी भगा दिये गये । व्यवसायी लोग सिपाहियों के डर के मारे उन्हें रसद-पानी पहुंचाने लगे । दूकानदारों ने दूकानें बन्द कर दीं । महाजनों ने अपने रुपये जमीन में गाड़ दिये । सारे शहर में अराजकता छा गयी । सर्वसाधारण सिपाहियों की पूरी सहायता करने लगे । सारा दिन लूट-पाट जारी रही । युरोपियन लोग पद-पद पर प्राण-भय से कम्पित होते रहे, पर कुशल हुई, जो किसी की जान नहीं गयी । शाम होते-न-होते बलवाई लुधियाना से बाहर हो गये और दिल्ली की ओर रवाना हो गये ।

यद्यपि अँगरेजों की कम हानि नहीं हुई, तथापि सिपाहियों के शीघ्र चले जाने से उनको चैन की सांस लेने का मौका मिल गया । उस समय लुधियाने में गोरे सैनिकों का पता भी नहीं था । इस-लिये यदि सिपाही यहां के किले पर कब्जा कर लेते तो आसानी से उनका काम बन जाता और अँगरेजों की भविष्य में और भी हानि होती । पर उस समय सिपाहियों ने इन सब दूर की बातों का विचार नहीं किया । यदि उनका कोई चतुर सेनापति होता तो इस स्थान को कभी न छोड़ता और किले को अपने हाथ में किये बिना न रहता ।

अस्तु; अब सांप मर जाने पर लाठी पीटने की तैयारी होने लगी। सिपाहियों के चले जाने पर गोरी पलटन यहां के अँगरेजों की मदद करने आयी; पर शत्रुओं को लापता देख दिल मसोस कर रह गयी। परन्तु दिल का बुखार तो किसी-न-किसी तरह निकालना ही पड़ेगा! इसलिये लुधियाने वालों पर ही चक्र चलाया गया। २० जनों से अधिक काश्मीरी शाल के विक्रेता अन्य लोगों के साथ ही साथ फांसी पर लटका दिये गये। जिन जिन लोगों पर उत्ते-जना में सम्मिलित होने का सन्देह हुआ, उन सबों की यही दशा हुई। गिरफ्तारी के साथ ही मुकदमे का फैसला हो जाता था। कितने ही अभागे इस प्रकार अँगरेजों की प्रतिहिंसा की चक्की में पिस गये।

इसके बाद लुधियाने के सिपाहियों के हथियार छीन लेने का हुक्म जारी हुआ। जालन्धर के गोरे सिपाहियों की सहायता से डिपटी कमिश्नर ने यह काम सहज में ही पूरा कर डाला। जो लोग इधर-उधर छिपे पड़े थे, उन्हें पास-पड़ोसके राजा-रजवाड़ों और जमीन्दारों ने अँगरेजों के हाथ में सौंप दिया। जो लोग घरों में हथियार रखे हुए थे, उनके हथियार छीने जाने लगे। सरकार की तरफ से घोषणा कर दी गयी, कि कोई अपने पास हथियार न रखे। जिसके पास हथियार पाये जायेंगे, उसे सजा दी जायेगी। इस हुक्म के जारी होने से लोगों में और भी जोश फैला।

इस प्रकार लोगों को बेहथियार कर, अँगरेजोंकी तरफ से दिल्ली की छावनी के अँगरेजों के लिये युद्ध-सामग्रियां भेजी जाने

लगीं। पटियाला, झीन्द और नाभा के राजाओं ने इस काम में अँगरेज़ों की पूरी सहायता की।

इसी समय अँगरेज़ों ने सीमान्त-प्रदेश के युद्ध-कुशल और हट्टे-कट्टे जवानों को अपनी सेना में भर्ती करना शुरू किया। कप्तान डेली इन नये सैनिकों के अध्यक्ष बनाये गये। १३ वीं मई को ये लोग नौशहरा पहुंचे और सेनापति काटन के हुक्म से फिर अटक चले आये। वहां का किला इन्हीं के करते सुरक्षित रहा। १६ वीं मई को उन्हें फिर वहांसे चलकर १८ वीं को रावलपिण्डी पहुंचना पड़ा। यहीं पर कप्तान डेली को आज्ञा मिली, कि झट अपने सैनिकों के साथ दिल्ली चले जाओ। लाचार, वे तुरन्त रवाना हो गये। रास्ते में उन्हें लुधियाने में ठहरना पड़ा। ४ थी जून को अम्बाले और ६ ठी जून को करनाल में उनका डेरा पड़ा। वहां पर दिल्ली से भागे हुए बहुतसे अँगरेज छिपे हुए थे। उन्होंने कप्तान डेली से मिल कर कहा, कि यहां के आस-पास के गांवों में बहुतसे विद्रोही छिपे हुए हैं। सम्भव है, कि ये लोग किसी दिन हम लोगों को लूट-मार कर खदेड़ दें : यह सुन, कप्तान डेली ने पास-पड़ौस के गांवों को चौपट करने का इरादा कर लिया। हो सकता है, कि उन गांवों में कुछ उत्तेजित मनुष्य रहे हों ; पर उन थोड़े से लोगों के अपराध के लिये सारे गांव के गांव को तबाह करना, कितना बड़ा अन्याय था, यह साफ़ समझ में आ जाता है ; पर उस समय अँगरेजों के सिर ऐसे फिरे हुए थे, कि उन्हें न्यायान्याय की ओर देखने का अवसर ही नहीं मिलता था। इसीसे कप्तान डेली ने बिना आबोताब देखे, झट

अपने सैनिकों को गांवों पर हमला करने का हुक्म दे दिया। इस प्रकार एकाएक बेचारे गांववालों पर आफत का पहाड़ टूट पड़ा। लोग भाग चले। पर भाग कर कहाँ जाते ? चारों ओर सैनिकों का पहरा था। कितने ही कैद हुए, कितनों को गोली मार दी गयी। इसके बाद गांवों में आग लगा दी गयी और उनके घर-द्वार जला कर खाक कर दिये गये। इस तरह उनके धन-जन का नाश कर अँगरेजों ने अपनी बदले की प्यास बुझायी ! निर्दयता और क्रूरता की सीमा हो गयी। कानपुर में तो भला मेमों और गोरे बच्चों की हत्या हुई थी, पर यहां क्या हुआ था जिसके लिये इतने लोगों का सर्वनाश किया गया, यह या तो सर्वान्तर्यामी जानें या कप्तान डेली की अन्तरात्मा !

इस प्रकार ग्रामों को जलाने के पुण्य में सम्मिलित हो रहने के कारण कप्तान डेली ठीक समय पर दिल्ली न पहुंच सके। वे ९ वीं जून को वहां पहुंचे और उसी दिन उन्हें बलवाइयों से युद्ध करना पड़ा। उनके सैनिकों ने बलवाइयों को पीछे हटा दिया। इस युद्ध में उनके सहकारी सेनापति की मृत्यु हुई। उसे जिसने मारा था, उसे मेहरबानसिंह नामक एक गुर्खे ने तलवार से मार डाला।

कप्तान डेली की कार्रवाइयों को देख यही मालूम होता है, कि उस समय अँगरेज सारे हिन्दुस्तान को खाली देखकर ही शायद सन्तुष्ट होते। भारतवासियों की जान का कोई मूल्य ही नहीं रह गया था। उन्हें कुत्ते-बिल्लियों की तरह मार डालने में ही उन्हें मजासा मालूम होता था और एक के अपराध पर सौ दो सौ को दण्ड

देना ही उस समय उनका दैनिक कार्य हो रहा था। उस समय वे न किसी का रोना सुनकर पसीजते न किसी का गिड़गिड़ाना सुन कर दया दिखलाते—उलटे प्रार्थना करने वालों की जान मारकर उन्हें संसार के सब झंझटों से सदा के लिये छुटकारा दे देते थे।

हां कुछ स्त्रियों और बच्चों को उन्होंने बचाया था; पर यह बचाना सिर मुंड़ाकर वालों की रक्षा करने के समान ही था; क्योंकि जिन घरों के सिरपरस्त ही न रहे, उनकी स्त्रियां और बालक बालिकाओं की रक्षा हुई, तो क्या हुआ ?

बारहवां अध्याय ।

दिल्ली और बहादुरशाह ।

हम पहले किसी अध्याय में लिख आये हैं, कि दिल्ली से कुछ दूर एक स्थान पर दिल्ली के उद्धार के लिये आयी हुई अँगरेजी सेना की छावनी थी। उस स्थान पर ग्वालियर के दौलतराव सिन्धिया की पत्नी का एक मकान था, जो हिन्दू-राव का बँगला कहलाता था। उसीमें उनके भाई श्रीजोराव भी रहते थे। वे बिलकुल साहबी ठाट-बाट वाले आदमी थे। इसलिये उन्होंने बँगले को साहबी ढङ्ग से सजा रखा था। उस दिन मकान बिलकुल खाली था। अँगरेजी सेनापति ने उसी में अपना डेरा डाला। सेना के बहुतसे अफसर उसी में रहने लगे।

पास ही गोलघर, मानमन्दिर और एक टूटी हुई मसजिद में सिपाहियों के डेरे पड़े। सेनापति सर हेनरी बर्नार्ड यहीं बैठे बैठे शत्रुओं की गति-विधि देख रहे थे। सैनिकों की रक्षा के लिये हर तरफ तोपें लगा दी गयीं। यहां से चारों ओर रास्ते गये थे। एक रास्ता सीधा करनाल तक गया था। यह इन लोगों के लिये बड़ी सुविधा की बात हुई क्योंकि इन्हें इस समय पञ्जाब का ही पूरा भरोसा था।

उस समय सेनापति हेनरी बर्नार्ड के पास तीन हजार गोरे सिपाही और २२ तोपें थीं। इनके सिवाय पञ्जाब से आये हुए

सिपाही और गुर्खा फौज भी थी। इधर बलवाइयों की संख्या इनसे कहीं अधिक थी। उनके पास हथियारों की भी कमी नहीं थी। इसी लिये सिपाहियों ने वार-वार अँगरेजों को यहाँ से भगा देने की चेष्टा की। १२ वीं जून को उन्होंने एक वड़ा भयानक हमला अँगरेजों पर किया, पर हरा दिये गये।

इसके वाद १७ वीं जून को दूतों ने आकर खवर दी कि सिपाही किशनगञ्ज नामक गांव में "वैटरी" लगा रहे हैं और वहीं से अँगरेजों की छावनी उड़ा देने की चेष्टा में हैं। यह समाचार पाते ही लेफ्टिनेण्ट टूम्स और मेजर रोड थोड़े से सैनिकों को लिये हुए वहां जा पहुंचे और "वैटरी" को नष्ट कर सिपाहियों को मार भगाया। ३०० सिपाही हताहत हुए। अँगरेजों की ओर केवल ३ मरे और १२ घायल हुए।

क्रमशः दिल्ली में वलवाइयों की संख्या बढ़ने लगी। रोज ही इधर-उधर के उत्तेजित सिपाही आ आकर दिल्ली में जमा होने लगे। १९वीं जून को उन्होंने फिर बड़ा भयङ्कर आक्रमण अँगरेजी छावनी पर किया। उनकी तोपों ने अँगरेजों के छक्के छुड़ा दिये। सारा दिन युद्ध होना रहा—क्रमशः अँधेरी रात हो आयी। पंजाब से आये हुए कमान डेली घायल हुए। कितने ही मरे तथा आहत हुए। अँगरेजों की चिन्ता का वारापार न रहा।

२२ वीं जून को ८५० सैनिक तथा ५ तोपें और पञ्जाव से आ पहुंचीं। इस कुमुक के आने से अँगरेजों का बल बढ़ा सही; पर उधर जालन्धर और फिलौर के सिपाहियों के दिल्ली आ जाने से बलवाइयों की भी बलवृद्धि हो गयी।

२३ वीं जून को सिपाहियों ने अपना पूर्ण पराक्रम दिखाने का निश्चय कर लिया था। सौ वर्ष पहले आज के ही दिन अँगरेजों ने पलासी के मैदान में सिराजुद्दौला को पराजित कर अँगरेजी सल्तनत की नींव डाली थी। कुछ पत्रा-पण्डितों ने सिपाहियों से कह रखा था कि बस आज के ही दिन अँगरेजी राज्य का अन्त हो जायेगा। इसीलिये सिपाहियों के दिल खूब वढ़े हुए थे। उन्होंने सब्जीमण्डी के पास आकर अँगरेजों पर पीछे की ओरसे हमला किया। पहले तो अँगरेज कुछ दवे, पर जब ऊपर लिखे ८५० सैनिक उनकी सहायता को आ गये तब मैदान आसानी से उनके हाथ आ गया और सिपाही भाग चले। इस तरह पत्रा-पण्डितों की भविष्यद्वाणी व्यर्थ हुई। अँगरेज हारने की जगह जीत गये। तो भी सिपाहियों ने हिम्मत नहीं छोड़ी और वाहर से आनेवाले सिपाहियों का आना भी बराबर जारी रहा। कहते हैं, इस युद्ध के बाद ही वरेली से बहुतसे सिपाही आ पहुंचे। उधर पञ्जाव में सब ओर शान्ति स्थापित कर सर जान-लारेन्स बराबर दिल्ली को कुमुक रवाना करते रहे। इसी समय निविल चेम्बरलेन एडजुटेंट-जेनरल का कार्यभार ग्रहण करने के लिये दिल्ली चले आये। इनके आने से अँगरेजों के दिल दूने हो गये। रुड़की के इञ्जिनियरिङ्ग कालेज के अध्यक्ष कर्नल बेयर्डस्मिथ भी आ पहुंचे। सब लोग आये, कुमुकें भी लगातार कई बार आयीं; पर सेनापति बर्नार्ड इतने पर भी दिल्ली पर धावा बोलने के लिये प्रस्तुत न हुए। वे अपनी शक्ति को बलवाइयों के सामने अत्यन्त क्षीण समझ कर चुप रहे। केवल छोटी-मोटी लड़ाइयाँ होती रहीं।—दिल्ली पर अधिकार

करने की चेष्टा नहीं हुई। इस प्रकार समस्त जून महीने में सिपाहियों के कोई ३० आक्रमण हुए।

५ वीं जुलाई को सर हेनरी वर्नार्ड को हैजा हो गया और वें उसी दिन मृत्यु को प्राप्त हो गये। उनके मरने पर सेनापति का कार्य-भार जनरल रीड को सौंपा गया, पर वे भी तुरन्त ही बीमार होकर अस्पताल चले गये और ब्रिगेडियर विल्सन सेनापति बनाये गये। इसी समय ६०० सैनिकों की सहायता और भी आ पहुंची, पर इधर बरेली के प्रसिद्ध बलवाई बख्तखां के अधीन ४००० चार हजार नये बल-वाई दिल्ली आ पहुंचे। यहां आते ही बख्तखां दिल्लीके बादशाह की ओर से सिपहसालार मुकर्रर कर दिया गया। इसी समय झांसी, राज-पूताना, पञ्जाब और पश्चिमोत्तर प्रदेश के भिन्न-भिन्न स्थानों से और भी बहुतसे बलवाई दिल्ली में आ पहुंचे। बलवाइयों की इस बलवृद्धि का वृत्तान्त सुन-सुनकर सेनापति विल्सन बड़े व्याकुल हो उठे।

अबकी बारके सिपाहियों ने दिल्ली और पंजाब के बीच अँगरेजों के लिये सिपाहियों और रसद-पानी का आना-जाना रोक देने की चेष्टा की; पर यह चेष्टा विफल हुई। इसके बाद उन्होंने लगातार कई और हमले अँगरेजी छावनी पर किये; पर कुछ नतीजा न निकला। इधर अँगरेज भी दिल्ली को हाथ में करने का कोई प्रयत्न न कर सके।

इन्हें इस तरह एक प्रकार से अकर्मण्य की भांति दिल्ली के पड़ोस में बैठे देख कर सर जान लारेन्स उकता उठे। उन्होंने बड़े लाट लार्ड केनिंग से पूछा, कि यदि आप की राय हो, तो मैं पेशावर से कुछ सैनिक लिये हुए दिल्ली पहुंच जाऊँ और नगर पर झटपट अधिकार

कर लूं ; पर लार्ड कैनिंग ने उनकी बात नहीं मानी ! यही ठीक भी हुआ; क्योंकि यदि वे पेशावर से चल देते, तो अफगान और अफरीदी बलवाई हो उठते और कर्नल निकोलसन के कड़े हाथों ने पंजाब में जो शान्ति स्थापित कर दी थी, वह फिर भङ्ग हो जाती।

३१ वीं जुलाई के दूसरे दिन सवेरे ही रावी-नदी के किनारे 'बालघा' नामक स्थान के खेतों में कुछ ग्रामवासियों ने लाहौर से बागी होकर भागे हुए २६ वीं पैदल-सेना के कुछ सिपाहियों को आते देख, अफसरों को इसकी सूचना दी। एक देशी अफसर ने कुछ पुलिसवालों और देहातियों की सहायता से उनमें से १५० आदमियों को कत्ल कर डाला। शेष भाग गये।

उन्हें ही खोजते ढूंढ़ते हुए लाहौर के डिपटी कमिश्नर फ्रेडरिक-कूपर सन्ध्या होते न होते वहाँ आ पहुंचे और कुछ पंजाबी सैनिकों की सहायता से उन्होंने उनमें से २८२ आदमियों को पकड़ कर गोलियों से मरवा दिया, इनमें से ३६ तो एक छोटीसी काल-कोठरी में बन्द होने के कारण दम घुट जाने से ही मर चुके थे। पीछे इन लोगों की लाशें एक कुएँ में डाल दी गयीं। अपनी रिपोर्ट में कूपर साहब ने बड़े जले दिल से लिखा है:—"यदि कानपुर में लाशें कुएँ में डाली गयीं, तो यहां अजनाले में भी कुछ लोग कुएँ में डाल दिये गये।" अजनाला उस शहर का नाम है, जहाँ उन्होंने यह प्रतिहिंसा-प्रेरित कार्य किया था। कूपर साहब का यह कार्य उनके ऊपर के अफसरों को बहुत उचित प्रतीत हुआ !

पेशावर में भी इसी तरह सात सौ आदमी मार डाले गये थे। इन्हीं सब बातों को याद कर सर लारेन्स को पंजाब पर निगाह रखते हुए वहीं डटे रहने का अनुरोध किया गया।

इधर वर्षा आरम्भ हो जाने तथा प्रति सप्ताह दो-दो तीन-तीन युद्धों में प्रवृत्त होने से गोरे सिपाही झल्ला उठे। उनके मन में काले आदमियों के प्रति घोर घृणा और विजातीय क्रोध उत्पन्न होने लगा। सौ दो सौ कालोंको एक साथ मार डालनेके लिये उनके हाथ खुजलाने लगे। जब हमला शुरू नहीं हुआ—उसमें देर होने लगी—तब ये अपने दिलका बुखार अपने हिन्दुस्तानी नौकरों पर ही निकालने लगे। जिन गरीबों ने ईमानदारी के साथ इस विपत्ति के समय उनकी बहुमूल्य सेवा की थी, उन्हीं पर मार पड़ने लगी। धोबी से पार न पाया तो गधे के कान उमेठने लगे। सच पूछिये, तो यदि उस समय काले आदमी अँगरेजों की मदद न करते, तो उनका किया कुछ भी न होता; परन्तु इन लोगों की इस सहायता के बदले कृतज्ञ होना तो दूर की बात है, उल्टे इन पर जूते-लात और गालियों की ही वर्षा हुई। अस्तु; जब अवस्था विषम हो उठी, तब सेनापति विल्सन ने गोरे सिपाहियों को बहुत डाँटा और सज़ा देने की धमकी दी, तब कहीं अत्याचार बन्द हुए।

इधर दिल्ली के शाही महल में बूढ़े मुगल-बादशाह विद्रोहियों के सरपरस्त बने बैठे थे। प्रति दिन उनके नाम से फर्मान जारी होते, फतवे निकलते और दरबारी तथा अमीर-उमरा आपस में सलाह-मशवरा कर उन्हीं के नाम से सिपाहियों और उनके सेनानायकों पर

हुक्म जारी करते थे। पर सच पूछिये, तो वे निरी कठपुतली थे। कोई उनकी कुछ कद्र नहीं करता था। शहर के सिर फिरे मुसलमान और सिपाही जो चाहते, वही होता था। शाही महलों में सिपाहियों के डेरे पड़ गये थे।

इधर शहर के हिन्दू-मुसलमानों में भी गोहत्या के मामले में मत-भेद हो गया। सिपाही यदा-कदा बाजारों में लूट-पाट जारी कर देते थे, इसलिये दूकानें प्रायः बन्द ही रहतीं। उन्होंने बादशाह के पास फर्याद की; पर कुछ फल न निकला। आगरे का कैदखाना टूट जाने से वहाँ के बहुतसे कैदी दिल्ली चले आये थे। उनके आने से शहर में और भी गड़बड़ मच गयी। जो लोग लड़ाइयों में घायल हो जाते, उनकी मरहमपट्टी भी भली भांति नहीं होती थी।

हम ऊपर कह आये हैं, कि बख्तखां सिपाहियों के सिपहसालार बनाये गये थे; पर सब सिपाही उनकी प्रधानता स्वीकार नहीं करते थे। नीमच की छावनी से आये हुए सिपाही उनके विरोधी थे। गाऊसखां नामक एक और सेनापति उनका सदा विरोध करते थे। इस तरह तबेले में ही अकसर दुलत्ती चला करती थीं।

इसी समय सिपाहियों में हैजे की बीमारी फैली। रोगियों की अच्छी तरह सेवा-शुश्रूषा होनी भी मुश्किल हो गयी। सिपाहियों में इससे बड़ा असन्तोष फैला।

इस तरह नाम-मात्र के सम्राट् बहादुरशाह अँगरेजों के भी दुश्मन बने और सर्वसाधारण तथा सिपाहियों के भी विरक्तिभाजन हो गये। उनके परिवार के ही कितने आदमियों ने अपने यहाँ अँगरेजों को

छिपा रखा और इस तरह उनके साथ एक दिल न हुए। इन सब बातों से बूढ़े बादशाह एकदम घबरा उठे। जब उन्होंने देखा, कि उनकी प्यारी ज़ीनत-महल बेगम भी युरोपियनों की प्राण-रक्षा की चेष्टा कर रही हैं, तब ये अधीर हो गये और उन्होंने अँगरेज़ों के पास सन्धिका प्रस्ताव लिख भेजा; पर वह कार्य में परिणत न हुआ और बेचारे बूढ़े बादशाह की मुसीबतें बढ़ने लगीं।

अस्तु; ७ वीं अगस्त को कर्नल निकोलसन दिल्ली पहुंचे और सेनापति विलसन से सलाह करने लगे। कर्नल निकोलसन ३६ वर्ष के जवान, तेजस्वी और दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति थे। उन्होंने आते ही सब बातों की अच्छी तरह देख-भाल करनी शुरू की। १४ वीं अगस्तको उनकी खास सेना दिल्ली आ पहुंची।

झिन्द के राजा अँगरेज़ों के साथ बड़ी दोस्ती दिखला रहे थे, इसलिये सिपाहियों ने उनके राज्य पर हमला करने के विचार से यात्रा करने का विचार किया। यह बात मालूम होते ही जेनरल हडसन उनकी राह रोकने चले। कई बार उनके सैनिकों के साथ सिपाहियों की लड़ाइयां हुईं; पर किसी युद्ध में सिपाही जयी न हुए; उन्हें भगाकर वे २२ वीं अगस्त को छावनी में चले आये।

फ़ीरोज़पुर से कई तोपें अँगरेज़ों की मदद के लिये दिल्ली आ रही थीं। यह खबर पा, सिपाही उन्हें रास्ते में ही छीन लेने के विचार से चले। दूसरे दिन सवेरे ही कर्नल निकोलसन १००० गोरों और २००० देशी सैनिकों के साथ उनका मुकाबला करने के लिये बहादुरगढ़ की ओर रवाना हो गये। रास्ते में घोर वर्षा के कारण उन्हें

बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी। किसी-किसी तरह उन्होंने ९ मीलों का सफर ते किया। इसी समय पता चला, कि सिपाही बहादुरगढ़ की तरफ न जाकर नजफगढ़ की ओर जा रहे हैं। लाचार उन्होंने भी नजफगढ़ जाने का ही इरादा कर लिया।

दो घण्टे बाद ही वे लोग नजफगढ़ पहुंचे। वहाँ दुश्मनों ने एक छोटीसी नदी के उस पार डेरा डाल रखा था। उन्होंने जगह बड़ी बढ़िया चुनी थी; क्योंकि वहाँ नदी में अथाह जल था और धारा बड़ी तेज थी। उनके पड़ाव के बीच में एक सराय थी। दाहिनी ओर नजफगढ़ की नहर का एक हिस्सा पड़ता था और बायीं ओर ग्राम था, जो उन्हीं के अधिकार में था।

शाम के पांच बजने न बजने अँगरेजों के सिपाही नदी पार कर गये। कर्नल निकोलसन ने सबसे पहले सराय पर ही हमला करने का विचार किया। क्रमशः तोपों से गोले बरसाते हुए वे शत्रुओं से कुल २० गज के फासले पर आ पहुंचे। संगीनों की मार होने लगी। कुछ ही देर के युद्ध के बाद शत्रुओं की तोपें छिन गयीं और वे सराय से हट जाने को लाचार हुए। यद्यपि उन्होंने बड़ी वीरता से जी होम कर युद्ध किया, तथापि उन्हें जीत नसीब न हुई। वर्षा के कारण रास्ता खराब हो रहा था। इसलिये हटते समय अपनी तोपें साथ न ले जा सके। रास्ते की खराबी की ही वजह से अँगरेजी सेना ने भी उनका पीछा नहीं किया। वे क्रमशः भागते चले गये और अँगरेजी सेना ने नजफगढ़ पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध में १३ तोपें अँगरेजों के हाथ लगीं और २०० सिपाही हताहत हुए—शेष सब दिल्ली की ओर भाग चले।

चौथी सितम्बर को काफी तादाद में कुमुक आ पहुंची । सब लोग सेनापति विलसन को शीघ्र दिल्ली पर धावा बोल देने के लिये उकसाने लगे । परन्तु अब भी उन्हें अपनी शक्ति पर पूरा भरोसा नहीं था , इसलिये टालमटोल करने लगे । इसके कई दिन बाद ही कुछ और कुमुक आयी और अब अँगरेजों के पास नौ हजार सैनिक हो गये । इनमें आधे से अधिक पञ्जाबी सिक्ख और गुर्खे थे । इस तरह देशी सिपाहियों के विरुद्ध उन्हींके देशवासी खड़े किये गये; पर ये लोग बड़े ही कट्टर राजभक्त और अँगरेजों के नमकहलाल नौकर थे, इसीलिये अँगरेजों ने इन पर भरोसा किया और इन्होंने भी उनकी आशा सोल्हो आने पूरी की । यदि कहीं इनके दिलों में भी उस समय अपने देशी भाइयों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो जाती, तो इस विद्रोह का इतिहास कुछ और ही तरह का लिखा जाता ।

अस्तु; बड़े उत्साह से दिल्ली पर हमला करने की तैयारी होने लगी । प्रधान इञ्जिनियर बेअर्डस्मिथ को इसका भार सौंपा गया । राय हुई कि पहले दिल्ली की शहरपनाहों के भिन्न भिन्न दरवाजों पर तोपें लगा दी जायें । ७ वीं सितम्बर की रात को यह काम बड़ी आसानी से कर दिया गया । शत्रुओं को कानोंकान खबर भी न होने पायी । फिर तो उस दिनसे लेकर १३ वीं सितम्बर तक वह गोलाबारी हुई कि शहरपनाह की दीवार दो स्थानों पर से टूट गयी । रास्ते पैदा हो गये—उन्हीं राहों से भीतर घुसने की तैयारी होने लगी ।

१४ वीं की रात को ३ बजे अँगरेजों की सेना तैयार हो गयी और दिल्ली के भिन्न भिन्न दरवाजों की ओर बढ़ने लगी । गोरे सैनिकों

की बगल में तेजस्वी सिक्ख, साहसी सिपाही और कट्टर लड़ाके गुर्खे भी खड़े दिखाई देने लगे। इस तरह पुराने वैर को बिसार कर सिक्खों ने अँगरेजों की इस समय बड़ी भारी मदद की। इस तरह उनकी सहायता न पाने से अँगरेजों को कैसे सङ्कट का सामना करना पड़ता, वह सहज ही अनुमान में आ सकता है।

सेनापति निकोल्सन के हुक्म के मुताबिक बहुतसे सैनिक नगर की ओर दौड़ पड़े। सिपाहियों ने बड़ी भीषण गोलाबारी की। इससे पहले तो अँगरेज-पक्ष के सैनिकों की बड़ी हानि हुई; पर पीछे वे अपने उद्देश्य में सफल हो गये। काबुली दरवाजा उनके हाथ में आ गया। तब कर्नल निकोलसन का ध्यान लाहौरी दरवाजे की ओर आकृष्ट हुआ। इस दरवाजे की दोनों तरफ सिपाहियों के डेरे थे। इसलिये यहां अँगरेज सैनिकों को घोर युद्ध करना पड़ा। कर्नल निकोल्सन स्वयं घायल हुए और फौजी अस्पताल में भेज दिये गये।

इधर एक दल ने काश्मीरी दरवाजे को बारूद से उड़ा देने की तैयारी की। इसी उद्योग में कितने ही मनुष्य आप ही जल मरे। पर मरते मरते भी इन्होंने बारूद के ढेर में आग लगा ही दी। पल भर में दरवाजा उड़ गया और बहुतसे सिपाही जान से हाथ धो बैठे। अँगरेजों की तरफ के भी कितने ही गोरे और काले मारे गये।

पर चौथा दल कुछ कारगुजारी न दिखला सका। ये लोग नगर के पास ही कृष्णगञ्ज नामक बस्ती से विद्रोहियों को खदेड़ कर लाहौरी दरवाजे पर कब्जा कर लेना चाहते थे; पर इन्हें सफलता नहीं हुई। पहले जम्बू के सिपाही भी इस कार्य में पड़ कर विफल हो

चुके थे। मेजर रीड भी अपने गुर्खों और तोपों को लिये हुए यहां आये, पर पराजित और आहत हो लौट चले। इसी समय उनकी सहायता को होप-ग्रैण्ट साहब सेनापति विल्सन की आज्ञानुसार यहां आ पहुंचे। तो भी विद्रोहियों ने गोलावारी बन्द नहीं की और अँगरेजों के खूब छक्के छुड़ाये। पर अन्त में जब अँगरेजी फौज ने अपना साहस और उद्यम नहीं त्यागा, तब इन्हें तोपें छोड़नी बन्द कर देनी पड़ीं।

इस तरह अँगरेजी सेना का उद्योग बहुत कुछ सफल हो गया और वे शहरपनाह तोड़कर नगर में घुस पड़े। सेनापति और मि० ब्रेअर्ड स्मिथ खुशी-खुशी नगर में चले आये। उन्होंने शहर के अन्दर 'स्किनर भवन' में डेरा डाला। यह मकान स्किनर नामक एक गोरे ने बनाया था; पर जब लार्ड लेक ने अधिकार कर लिया तब वह ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के फौजी मुहकमे में नौकर हो गया था।

दूसरे दिन कोई लड़ाई भिड़ाई न हुई—गोला गोली नहीं चली। राजधानी की बहुमूल्य सम्पत्ति को लूट लेने पर ही गोरे और देशी सैनिकों का ध्यान लगा हुआ था। बहुत दिनों से ये लोग सुनते आते थे कि दिल्ली के अन्दर बेशुमार दौलत है। इसीलिये सबके मुंह से लार टपकने लगी। फिर क्या था? दिल्ली के थोड़े से हिस्से पर अधिकार होते ही ये लोग लूट-पाट करने लगे और जहाँ-तहाँ बहुत-सी शराब की बोतलें पी-पी कर और भी उन्मत्त होने लगे। गोरों की देखादेखी बहुतसे सिक्ख सिपाही भी शराब पीने लगे। फिर तो वह गड़बड़ी मची कि जिसका नाम! सैनिक गण अफसरों की कही एक

भी न सुनने लगे। यह हाल देख, सेनापति विल्सन ने तमाम शराब सड़कों पर फिकवा दी। सभी रास्ते गीले और बदबूदार हो उठे।

जिस समय अङ्गरेजपक्ष के सिपाही इस तरह शराब के नशे में चूर हो उठे थे उस समय यदि बलवाई सिपाहियों में कोई कार्य-दक्ष और निपुण सेनापति होता तो अपना बहुत कुछ काम बना लेता—शायद सभी अँगरेजों को वे वहां से खदेड़ भगा देते, पर अँगरेजों के सौभाग्य से उन पर कोई विपद् न आयी। जो हो, अब तक लाहौरी दरवाजा और दिल्ली नगर का अधिकांश भाग उन्हीं के हाथ में था।

१५ वीं सितम्बर का दिन निर्विघ्न कट गया। १६ वीं को सिपाहियों ने न जाने क्यों आपसे आप कृष्णगंज परित्याग कर दिया। यह देख अँगरेजी सेना ने उस स्थान पर जाकर अधिकार कर लिया। वहां अङ्गरेजों को बहुतसी युद्ध-सामग्रियां भी मिलीं।

१७ वीं सितम्बर को दिल्ली भर में अँगरेजी सेना चक्कर लगाने लगी। अनेक छोटे-मोटे युद्ध भी हुए। अन्त में वे लोग शाही महलों की तरफ चले। सिपाही उन्हें पद-पद पर बाधा पहुंचाने लगे। प्रत्येक मकान की छतों, खिड़कियों और दरवाजों से गोलियों की बौछार होने लगी। १८ वीं सितम्बर को लाहौरी दरवाजे पर अधिकार करने की चेष्टा की गयी, पर सिपाही घरों में छिपे-छिपे गोलियां छोड़ रहे थे, इसलिये उनका आगे बढ़ना रुक गया। इससे सेनापति विल्सन बड़े चिन्तित हुए। दो दिन बाद अर्थात् २० वीं सितम्बर को उनकी सारी चिन्ता मिट गयी—अँगरेजी सेना ने उस दिन लाहौरी-

दरवाजा, जुमा मसजिद और अजमेरी दरवाजा ले लिया । शाही महल पर अँगरेजी झण्डा फहराने लगा । इस जीत की खुशी में उन्होंने "दीवान-ई-खास" में मौज से जलसा किया ! इस तरह दिल्ली का पतन हो गया—सिपाहियों का सारा श्रम व्यर्थ गया । नगरनिवासी अपने-अपने माल-असबाब लेकर भागने को तैयार हुए ।

अबकी बार अँगरेजों को अपनी प्रतिहिंसा-चरितार्थ करने का अच्छा अवसर मिला । गोरे सैनिक जिसी को सामने पाते, उसी को बेरोक-टोक मार डालने के लिये तैयार हो जाते । सिक्खों ने भी इस पुण्य-कार्य में उनका अच्छा साथ दिया: क्योंकि मुसलमानों द्वारा इसी दिल्ली में किये गये उन अत्याचारों की बात वे नहीं भूले थे, जो उनके गुरु तेगबहादुर या गोविन्दसिंह पर किये गये थे । मतलब यह, कि उस समय गोरे और सिक्ख दोनों ही अपना पुराना वैर दिल्ली के निवासियों से भँजाने लगे । जिन लोगों ने अँगरेजों को मारा-कूटा या उनके स्त्री-बच्चों की हत्या की थी, वे भले ही दण्ड के पात्र हों; पर सर्वसाधारण प्रजाजनों का कोई अपराध नहीं था । उन पर दया करना अँगरेजों के लिये अवश्य ही उचित था । पर इस नीति की ओर उस समय किसी ने ध्यान नहीं दिया । जिन्होंने कभी किसी पर स्वप्न में भी हाथ नहीं उठाया था, वे भी गोरी सेना की संगीनों और बन्दूकों के शिकार होने लगे । शान्त, अशान्त और अतिशान्त, सरल और उद्दण्ड, अपराधी और निरपराध—सबका सफाया होने लगा । लड़ाई में जिनके हाथ-पैर कट गये थे, उन पर भी दया नहीं की गयी । दल-के-दल लोग इसी तरह मार डाले गये । हां, यही बहुत सम-

लिये, कि इन्होंने किसी औरत या बच्चे पर हथियार नहीं उठाया। भूल से भले ही किसी स्त्री को गोली लग गयी हो ; पर जानबूझकर किसी ने ऐसा नहीं किया। इधर बहुतसे मुसलमान एक मसजिद में छिपे हुए अँगरेजी फौज पर गोलियां छोड़ रहे थे। वह मसजिद तोड़ दी गयी और सब-के-सब पकड़ कर मार डाले गये। इस घटना से दिल्ली वाले ऐसे डरे, कि फिर किसी ने अँगरेजों पर हथियार उठाने का नाम नहीं लिया।

दिल्ली के महल पर अँगरेजों का अधिकार हो गया, पर बूढ़े बहादुरशाह अब तक उनके हाथ नहीं आये थे। १४ वीं को उनकी राजधानी पर आक्रमण हुआ था। १० वीं को जब अँगरेजों ने चांदनी-चौक वगैरह स्थानों पर अधिकार कर लिया, तब पूर्वोक्त सेनापति बख्तखाँ ने और कोई चारा न देख, भागने की ही ठहरायी। उन्होंने बादशाह के पास पहुंच कर कहा, कि यद्यपि राजधानी पर शत्रुओं का अधिकार हो गया है, तथापि अब भी बहुतेरे लोग आपकी ओर से लड़ने को तैयार हैं। इसलिये यदि आप दृढ़तापूर्वक डटे रहें, तो आपका प्रभाव पुनः स्थापित हो सकता है ; पर बहादुरशाह उस समय बेतरह घबरा गये थे, इसलिये उन्होंने बख्तखां की बात न मानी। लाचार बख्तखाँ चला गया। उसके जाने पर बादशाह के समधी मिर्जा इलाहीबख्श, जिनकी लड़की की शादी बादशाह के बड़े बेटे दाराबख्त के साथ हुई थी, बादशाह को अपने घर ले आये। मिर्जा साहब ने उन्हें सिपाहियों का साथ देने से रोका। इसके बाद वे मिर्जासाहब के घर से अपनी बेगम ज़ीनतमहल और उनके १५

वर्ष के बालक पुत्र के साथ ही साथ हुमायूं के समाधि-भवन में चले आये।

इस समय हडसन साहब फौज के जासूसी विभाग के अध्यक्ष थे। रज्जबअली नामका एक मुसलमान उनका दाहिना हाथ था। वह दिल्ली में कहां क्या हो रहा है, इसकी खबर हडसन साहब को हर घड़ी पहुंचाया करता था। इस समय दिल्ली के बहुतसे धनी-मानी सज्जन अँगरेज़ों के खैर-ख्वाह और तरफ़दार हो गये थे। इनमें मुन्शी जीवनलाल भी एक थे। ये भी खबर देने में किसी से पीछे नहीं थे। जो हो, रज्जबअली को बादशाह के हुमायूं के समाधि-स्थान में जा रहने का पता लग गया। यह सुनते ही वह मिर्ज़ा इलाहीबख्श के पास पहुंचा और बोला,—"आप किसी तरह बादशाह को वहां २४ घण्टे तक अटकाये रहिये।" मिर्ज़ा साहब ने देखा, कि इस वक्त अँगरेज़ों का ही बोल बाला है, अगर मैं बादशाह को गिरफ्तार करवा दूँ, तो मुझे भी कुछ हाथ लग ही जायेगा। यही सोच कर वे रज्जबअली से मिल गये और बादशाह को २४ घण्टे तक वहीं रोके रखने को राजी हो गये। वहाँ से आकर रज्जबअली ने हडसन साहब से यह समाचार कह सुनाया। सुनकर साहब बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने सेनापति विलसन से बादशाह को गिरफ्तार कर लाने की आज्ञा मांगी। पहले तो वे राजी न हुए, पर पीछे नेविल चेम्बरलेन के कहने पर राजी हो गये। हडसन साहब ५० सैनिकों को साथ लिये हुए हुमायूं के कब्रिस्तान पर पहुंचे।
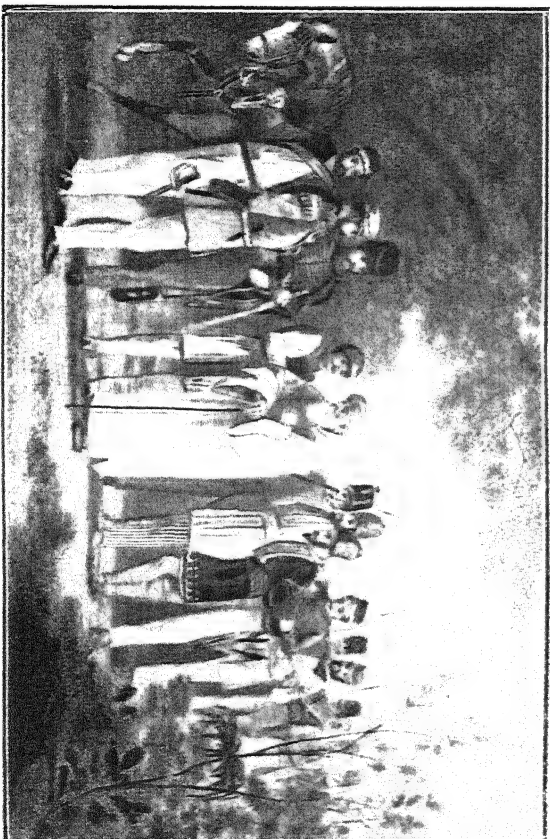
मुग़लसम्राट्-बहादुरशाह और शाहज़ादोंकी गिरफ्तारी ।

वहाँ हज़ारों बल्वाई सिपाही और बादशाह के दरबारी खड़े थे ; पर इस समय अँगरेज़ी फौज और अँगरेज़ों की ऐसी धाक सबके दिलों पर बैठ गयी थी, कि कोई कुछ न बोला। अन्त में हडसन ने बादशाह के पास यह खबर भिजवायी, कि यदि वे चुपचाप आत्म-समर्पण कर दें, तो उनकी प्राण-रक्षा अवश्य की जायगी ; पर और किसी तरह की शर्त्त नहीं की जा सकती।

घण्टों इसी तरह समाचार आते-जाते रहे। अन्त में बादशाह ने इसी शर्त्त पर आत्म-समर्पण करना स्वीकार किया, कि साहब खुद अपनी ज़बान से कसम खाकर कहें, कि वे मेरी जान न लेंगे। हडसन ने वैसा ही किया और थोड़ी देर में एक पालकी पर सवार बेगम ज़ीनतमहल और उनका पुत्र तथा एक दूसरी सवारी पर, जिसमें दो बैल जुते हुए थे, बादशाह भी बाहर निकले।

उनके बाहर आते ही हडसन ने उनसे हथियार मांगा। यह सुन, उन्होंने पूछा,—"क्या आप ही हडसन साहब हैं ?" हडसन ने कहा,—"हां !" इस पर बादशाह ने उनसे फिर वही प्रतिज्ञा करवायी। प्रतिज्ञा को दुहराते हुए हडसन साहब ने कहा,—"हां, मैं प्रतिज्ञा करता हूं, कि आपकी जान नहीं ली जायेगी ; पर अगर आप भागने की कोशिश करेंगे, तो निर्दयता-पूर्वक मारे जायेंगे।"

यह सुन, बादशाह ने अपने हथियार उन्हें सौंप दिये। एक साथ ही हज़ारों के मुँह से सर्द आहें निकल पड़ीं ! दिल्ली के सम्राट् की दुर्दशा देख, लोगों के हृदय कांप उठे। अस्तु ; सम्राट् दिल्ली के एक महल में ही नज़रबन्द कर दिये गये।

इसके बाद हडसन का ध्यान बादशाह के लड़कों की ओर गया। हडसन की नाक का बाल काना रज्जबअली उनका भी पता लगा ही लाया। मिर्जा इलाहीबख्श ने अबकी बार भी इस काने का पूरा साथ दिया। सच है, घर का भेदी हुए बिना सोलहों आने सत्यानाश नहीं होता। हिन्दुस्तान की उपजाऊ भूमि ऐसे सपूतों से सदा अपनी कोख उज्ज्वल करती आयी है और आज तक इनकी पैदावार कम नहीं हुई है। फसल को तो किसी साल अतिवृष्टि या अनावृष्टि के कारण हानि भी पहुँचती है; पर ये गृह-शत्रु यहाँ नित्य फलते-फूलते रहते हैं। आखिरकार, देश-देश के हवा-पानी का भी तो कुछ असर होता ही है!

खैर, तीनों शाहजादे भी गिरफ्तार कर लिये गये। वे भी बैलगाड़ी पर सवार हो, हडसन साहब के साथ चले। रास्ते में कहीं कोई कुछ न बोला; सब अँगरेज़ों से खौफ खाये बैठे थे। नहीं तो यदि वहां के एकत्रित हजारों मनुष्य उसी समय हडसन साहब पर टूट पड़ते, तो उनके सारे औसान खता हो जाते! पर जो होना था, वही हुआ। कुछ इने-गिने सैनिकों के हुक्म से उन हजारों मनुष्यों ने अपने हथियार नीचे डाल दिये और चुपचाप शाहजादों की गिरफ्तारी देखते रहे। उस समय हडसन को प्रतिक्षण अपना सिर धड़से अलग होता हुआ मालूम होता था, पर जब सबने नामर्दों की तरह हथियार डाल दिये, तब उनके जी में जी आया। वे समझ गये, कि अब हिन्दुस्तानियों पर मेरा रोब पूरी तरह छा गया है और हम चाहे जो कुछ कर डालें, ये कुछ न बोलेंगे।

जब शाहजादों की गाड़ी शहर के पास पहुंची, तब कप्तान हडसन ने सबको सुना-सुना कर कहा,—"इन शाहजादों ने बहुतसे अँगरेज़ों और उनके स्त्री-बच्चों को कत्ल करवाया है, इसलिये इन्हें अवश्य ही मरना पड़ेगा।" यह कह, उन्होंने शाहजादों को नीचे उतरकर अपनी पोशाक उतार डालने का हुक्म दिया। उन्होंने काँपते हाथों से उनकी इस आज्ञा का पालन किया और फिर रथ पर सवार होने लगे। इसी समय कप्तान हडसन ने अपने एक सैनिक के हाथ से पिस्तौल छीन, बारी-बारी से मिर्ज़ामुग़ल, मिर्ज़ाख़िज़र सुलतान और अब्बुलबकर—इन तीनों शाहज़ादों को अपनी गोली का निशाना बनाया! दर्शकगण यह भयानक काण्ड देख, भय से काँप गये। हडसन को ऐसा दानवीय कृत्य करके भी हर्ष ही हुआ!

इसके बाद वे उन लाशों को लिये हुए कोतवाली में आये। वहीं राह-चलतों के देखने के लिये वे लाशें लटका दी गयीं। इस प्रकार अपनी पैशाचिक प्रतिहिंसा चरितार्थ कर हडसन को जैसा आनन्द हुआ, वैसा ही सिक्खों को भी हुआ, क्योंकि उनके गुरु तेगबहादुर की लाश भी दो सौ वर्ष पहले औरङ्गज़ेब के हुक्म से वहीं और उसी तरह लटका रखी गयी थी। अस्तु; जब शाहज़ादों की लाशें एकदम सड़ने लगीं और बदबू के मारे लोगों की नाक फटने लगी, तब वे वहाँ से हटाकर कब्र में गाड़ दी गयीं।

यद्यपि उस समय के दिलजले अधिकारियों ने हडसन के इस हत्याकाण्ड की प्रशंसा की थी, तथापि धीर और विवेकी अँगरेज़ भी उनकी निन्दा किये बिना नहीं रहे। कारण, राजकुमारों के अपराध

का किसी अदालत में विचार नहीं हुआ, उनके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं इकठ्ठा किया जा सका। यदि विचार से वे दोषी ठहरते, तो उन्हें चाहे जैसा दण्ड मिलता; पर हडसन को इस तरह सड़क के किनारे उनकी हत्या कर डालने का कोई अधिकार नहीं था। बड़े बड़े अँगरेज ऐतिहासिकों ने इसके लिये हडसन को धिक्कार दिया है। वास्तव में, उनका यह कार्य कापुरुषता की पराकाष्ठा मात्र है।

जो हो, मामला यहीं तक खतम न हुआ। दिल्ली में गोरे और उनके हिमायती देशी सैनिक बेतरह उत्पात मचाने लगे। डर के मारे बहुतसे आदमियों ने अपनी स्त्रियों और अन्यान्य महिलाओं को स्वयं ही मार डाला, जिसमें किसी दिन इनपर भी अत्याचार न होने लगे। कितनों ने आत्महत्या कर ली। दल-के-दल लोगों पर बलवे के अपराध में मामला चलाया जाने लगा और प्रतिदिन लोग फांसी पर लटकाये जाने लगे।

इस तरह दिल्ली पर अँगरेजों का पूर्ण प्रभुत्व पुनः प्रतिष्ठित हुआ। बूढ़े बादशाह उनके हाथ कैदी हो रहे। उनकी राजधानी का बहुत बड़ा हिस्सा ढा दिया गया। सैनिकों ने लोगों को मन-माना लूटा-खसोटा। दिल्ली के पतन और बादशाह के कैद हो जाने से विद्रोह की मानों कमर ही टूट गयी। इस कार्य की सिद्धि के लिये अँगरेजों को ६१ लाख रुपये खर्च करने पड़े। उनके ३,८३७ सैनिक हताहत और लापता हुए। उनके प्यारे सेनानायक कर्नल निकलोसन को भी इसी युद्ध में मृत्यु प्राप्त हुई। १४ वीं सितम्बर को वे घायल हुए थे और २३ वीं को उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी। इस विजय में अँगरेजों के लिये यह विषाद रङ्ग में भङ्ग डालनेवाला ही हुआ।

तेरहवां अध्याय ।

लार्ड केनिंग क्या कर रहे थे ?

सारे देश में इस प्रकार उथलपुथल मची हुई थी—कहीं युरोपियनों की हत्या हो रही थी, कहीं प्रतिहिंसा-प्रवृत्त अँगरेज काले लोगों से गिन-गिनकर बदला वसूल कर रहे थे; पर भारतवर्ष के एकछत्र सम्राट्—स्वरूप गवर्नर-जेनरल लार्ड केनिङ्ग इस समय क्या कर रहे थे, अब हम यह दिखलाना चाहते हैं।

हम पहले भी कह आये हैं, कि लार्ड केनिंग बड़ी ही शान्त प्रकृति के जीव थे । यह जो दावाग्नि देश में धधक उठी थी वह कुछ उनकी करनी का फल नहीं थी। यह लार्ड डलहौसी की सर्व-भक्षिणी नीति का कड़वा फल थी। दुर्भाग्य से उनके आते ही यह आग भड़क उठी, नहीं तो उनका इसमें कुछ अपराध नहीं था।

अस्तु; कलकत्ते में बैठे हुए लार्ड केनिंग के दिन इस समय बुरी तरह कट रहे थे। पश्चिम के नगरों से चिन्ता-जनक तार आ-आकर उन्हें रात-दिन बेचैन किये डालते थे। इधर अँगरेज—विशेषतः कलकत्ते के अँगरेज उन्हें कर्त्तव्यविमुख और कायर कह-कहकर और भी तंग कर रहे थे; परन्तु सब कुछ होते हुए भी उन्होंने अपनी शान्त प्रकृति का उल्लङ्घन नहीं किया। साथ ही विद्रोह-दमन की भी वे यथा-साध्य चेष्टा करते रहे। अँगरेजी सेना की संख्या बहुत कम होने के

कारण वे भले ही समय पर लखनऊ और अयोध्या में गोरे सैनिक न भेज सके; पर इलाहाबाद और बनारस में उनके भेजे हुए सैनिकों ने ही शान्ति स्थापित की। कानपुर के लिये भी उन्होंने दिल्ली के सेनापति बर्नार्ड को पत्र लिखा था; पर वहां तो उन्हें दिल्लीरक्षा की फिक्र पड़ी हुई थी, वे क्यों कानपुर की रक्षा के लिये सैन्य भेजने लगे? दूसरे डाक और तार से समाचार भी उन दिनों बड़ी मुश्किलों से कलकत्ते पहुंच पाते थे। जो समाचार आते, उनमें बहुतसे मिथ्या ही निकल जाते थे। इसलिये कलकत्ते में बैठे हुए लार्ड केनिंग पश्चिम की घटनाओं से एक प्रकार से पूर्णतया अवगत भी नहीं हो पाते थे। ऐसी अवस्था में वे बेचारे कितनी विकट स्थिति में पड़ गये थे, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है। तो भी बहुतसे अँगरेज इतिहास-लेखक उन पर दीर्घ-सूत्रता का दोषारोपण करते हैं। उस समय के बहुतसे अँगरेज भी उन्हें कोसने से बाज नहीं आये और उन्हें बराबर सारे देश में अत्याचार की आंधी चला देने के लिये उकसाते रहे। कहीं वे इन लोगों के बहकावे में आ जाते तो विप्लव और कितना भयङ्कर रूप धारण कर लेता, यह बात स्पष्ट ही अनुमान में आ सकती है. तो भी उन्हें जहाँ-तहाँ लोगों को विशेष अधिकार देने ही पड़े, जिनके बल पर अधिकारियों ने दल-के-दल मनुष्यों को फाँसी पर लटका दिया!

पर कलकत्ते के अँगरेज इतने से सन्तुष्ट नहीं थे—वे कालों को अच्छी सीख सिखा देने की ठाने हुए थे। इसीलिये उन्होंने बार-बार स्वयं बड़ा सैन्यदल संगठन करने की आज्ञा गवर्नर-जेनरल से मांगी।

अन्तमें उन्हें अँगरेजों की यह प्रार्थना पूरी करनी ही पड़ी। शीघ्र ही उनकी एक पैदल और एक घुड़सवार फौज तैयार हो गयी ; इससे एक श्रेणी के अँगरेज तो बड़े सन्तुष्ट हुए ; पर दूसरी श्रेणीवाले लाट-साहब की एक दूसरी कार्रवाई से बेतरह बिगड़ उठे।

उन दिनों जो अखबार देशी या अँगरेजी भाषा में निकल रहे थे, उनमें बहुतसी झूठी खबरें और गरमागरम टीका-टिप्पणियां निकल रही थीं। अँगरेजी अखबार इस देशवालों पर बुरी तरह विष बरसा रहे थे; इसलिये बड़े लाट ने झटपट एक कानून बना डाला, जिसके अनुसार बिना लाइसेन्स लिये कोई प्रेस नहीं रख सकता था। यह कानून देशी विदेशी दोनों तरह के अखबारों पर लागू हो सकता था। इसीलिये गोरे सम्पादक बहुत नाराज हुए; क्योंकि वे झूठी-सच्ची खबरें छाप-छाप कर और नोन-मिर्च लगी हुई टिप्पणियां लिख-लिखकर गवर्नमेण्ट को इस देश के लोगों के विरुद्ध उभाड़ रहे थे। उनके इस कार्य में इस कानून से बाधा पड़ी, यह देखकर वे हद से अधिक क्रोधित हुए। परन्तु उस समय जैसी अवस्था थी, उसे देखते हुए लार्ड केनिंग इस कानून को केवल देशी पत्रों के लिये ही लागू न कर सके। खैर, गोरे सम्पादकों को भी अन्त में चुप्पी साध लेनी पड़ी। असंतोष दबसा गया।

इसी समय बारकपुर के सिपाहियों ने दिल्ली के सिपाहियों के विरुद्ध यात्रा करने की इच्छा प्रकट की और इन्फील्ड नामक नयी रायफलें मांगों और कहा कि इन बंदूकों को हम उत्तेजित सिपाहियों को दिखला कर कहेंगे कि इनके व्यवहार से किसी प्रकार की बुराई नहीं

है। परन्तु उनकी इस राजभक्तिपूर्ण बात पर भी सन्देह किया जाने लगा। अब यह समस्या आ पड़ी कि यदि इन्हें इनकी प्रार्थना के अनुसार बन्दूकें न दी जायेंगी, तो ये जरूर नाराज हो जायेंगे और कहीं बन्दूकें दी गयीं और इन्होंने विश्वासघात किया तो 'मियां की जूती और मियां का सिर' वाली कहावत चरितार्थ हो जायेगी, ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिये ? सौभाग्य से जितने सिपाही थे उतनी बन्दूकें मौजूद न होने के कारण सरकार इस सङ्कट से साफ निकल भागी।

पर इसके बाद ही जेनरल हियरसे ने बड़े लाट को लिखा कि बारकपुर के सिपाही षड्यन्त्र कर रहे हैं इसलिये इनके हथियार छीन लेने चाहियें। लार्ड केनिंग को उनकी यह राय माननी ही पड़ी। साथ ही कुछ गोरे सैनिक यह कार्य सम्पन्न कराने के लिये बारकपुर भेजे गये। चूंचड़े से भी एक दल गोरे सैनिकों का वहां भेजा गया।

१४ वीं जून को सन्ध्या के समय इनके हथियार छीन लिये गये। किसी तरह की गड़बड़ नहीं हुई। इसके बाद कलकत्ते के किले और दमदम में जो बारकपुर के सिपाही पहरे पर थे उनके भी हथियार छीन लिये गये।

१४ वीं जून को बारकपुर में तो कुछ गोलमाल न हुआ, पर कलकत्ते में अफवाह उड़ी कि बारकपुर के सिपाही विद्रोही हो गये और कलकत्ते के अँगरेजों पर हमला करने के लिये चले आ रहे हैं। साथ ही यह गप्प भी उड़ी कि अवध के निर्वासित नवाब के नौकर-चाकर भी इन लोगों की मदद के लिये चले आ रहे हैं। अब तो कलकत्ते के क्या युरोपियन और क्या युरेशियन—सभी घबरा उठे। बड़े

बड़े बहादुर भी विचलित हो गये, दल-के-दल लोग किले में छिपने के लिये आग्रह दिखाने लगे। चारों ओर भगदड़सी मच गयी। बहुतेरे जहाजों पर जा छिपने के लिये दौड़े। इस तरह के भयभीत गोरों, मेमों और बच्चों से किले, मैदान के फाटक और गङ्गा के घाटों पर भीड़ लग गयी। इण्टाली और सरकुलर रोड में अँगरेजों की खासी बस्ती थी। वह मुहल्ले तो एकदम सूनसान हो गये। कोई द्वार खुला छोड़ गया, कोई बहुतसा सामान पीछे डाल गया। कोई घर पर न रहा। अँगरेजों की यह भागाभागी देख और-और लोगों में भी त्रास फैल गया। वे लोग भी भागने लगे। सब को भय होने लगा कि दिल्ली के ही विद्रोही आ रहे हैं। सारा दिन यही हलचल रही। जब रात निर्विघ्न कट गयी और शेर या भेड़िया नहीं आया, तब सब लोग अपने अपने घर आये।

दो ही तीन दिन बाद फिर खबर उड़ी कि नवाब वाजिदअली शाह के अनुचर किले के पहरेदारों के पास आकर सलाहें किया करते हैं और अयोध्या के प्रधान ताल्लुकेदार राजा मानसिंह कलकत्ते आकर नवाब के मन्त्रियों से बात-चीत कर रहे हैं। खबर गलत हो या नहीं—पर अँगरेजों के पेट में चूहे कूदने लगे। उन्होंने सोचा कि कहीं किसी दिन नवाब की तरफ से कोई कार्रवाई न हो जाये इसलिये उन्हें कैद कर लेना ही ठीक है। इस काम को पूरा करने का भार एडमनस्टन साहब पर दिया गया।

वे बहुतसे गोरे सिपाहियों, पुलिसवालों और गवर्नर-जेनरल के कई कर्मचारियों के साथ बड़े तड़के नवाब के निवास-स्थान पर आ

पहुंचे। चारों ओर सैनिकों के पहरे बिठाने के बाद वे कुछ चुने हुए सैनिकों को लिये हुए भीतर घुसे। किसी ने उनकी राह नहीं रोकी—हां, सब के सब बड़े विस्मय में पड़ गये। एडमनस्टन साहब सबसे पहले नवाब के वज़ीर, अलीनकीखाँ के कमरे में आये। पल भर में वे अन्य कई प्रधान कर्मचारियों के साथ कैद कर लिये गये और तुरत ही जहाज पर भेज दिये गये।

इसके बाद वे नवाब के कमरे में पहुंचे। उन्होंने साहब के सेक्रेटरी से स्नान और सवेरे की नमाज़ के लिये थोड़ीसी मुहलत मांगी। जब वे नमाज़ पढ़ चुके, तब अपने विश्राम-भवन में आकर आराम-कुर्सी पर बैठ गये। इसी समय एडमनस्टन साहब भीतर आये। आते ही उन्होंने नवाब से कहा,—"गवर्नर-जेनरल साहब को खबर मिली है, कि आपके नौकर आपका नाम ले-लेकर सिपाहियों को भड़का रहे हैं, इसलिये उनकी आज्ञा है, कि आप मेरे साथ-साथ कलकत्ते चलें।"

यह सुन, नवाब साहब अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करने लगे, पर साहब ने एक न सुनी। लाचार, वे चुपचाप साहब के साथ कमरे से बाहर चले आये, बाहर गाड़ी खड़ी थी। उसी पर सवार हो, वे साहब के साथ ही चल पड़े। पहले तो उन्हें वैसा कुछ दुःख न हुआ; पर गाड़ी जब किले की तरफ आने लगी, तब उनको अपनी इस बेइज्जती पर बड़ा दुःख हुआ। उनकी आँखों से लगातार आँसू बहने लगे। उन्होंने बड़े दुःख से एडमनस्टन साहब से कहा,—"जिस वक्त मेरे कब्जे में २० लाख आदमी थे, उस वक्त मैं अँगरेजों

के खिलाफ न खड़ा हुआ, तो अब क्या खाक हूंगा ! आप जेनरल आउटरम से ही पूछ देखें, मैंने किस तरह चुपचाप उनके हाथ अपनी सारी सल्तनत सौंप दी थी ?" यह कह, वे चुप हो रहे। उनकी सुध-बुध लोपसी हो गयी। इसके बाद उन्होंने कुरान की कसम खा-कर भी अपनी निर्दोषिता प्रकट की। इस पर साहब ने कहा,—"आप घबराइये नहीं, आपका यथोचित प्रबन्ध किया जायगा।" नबाब चुप हो रहे और कुछ न बोले। ८ बजे वे किले में दाखिल कर दिये गये। पर सभी ऐतिहासिक इस बात को मानते हैं, कि नबाब पर यह नवीन अत्याचार अकारण ही किया गया।

अस्तु; कुछ दिन शान्ति से बीते। इसके बाद लार्ड केनिङ्ग जगह-जगह से गोरे सैनिकों को इकट्ठा कर पश्चिमोत्तर-प्रान्त की ओर रवाना करने लगे। इधर वहां से भागे हुए गोरे कलकत्ते पहुंच कर यहां के अँगरेजों के मन में भय तथा प्रतिहिंसा उत्पन्न करने लगे ; इन लोगों ने लार्ड केनिंग को समस्त भारत में रक्त की नदियाँ बहा देने के लिये उत्तेजित करना आरम्भ किया; पर लाट साहब ने अपनी धीरता नहीं खोयी। इसलिये अँगरेजों ने इन्हें यहां से हटा देने के लिये विलायत में अधिकारियों के पास खबर भेजने का विचार स्थिर किया। पर इनकी इतनी चिल्ल-पुकार पर लार्ड केनिङ्ग अपने सिद्धांतों से विचलित न हुए। यदि लार्ड केनिङ्ग न होकर उस समय कोई लार्ड चेम्सफोर्ड या सर माईकेल ओडायर हिन्दुस्तान के बड़े लाट होते, तो राम जाने क्या कयामत न बरपा हो जाती ! कलकत्ते के अँगरेजों ने बड़े लाट को सारे देश में फौजी कानून जारी करने के

लिये कितना उभाड़ा; पर लार्ड केनिंग इस बात पर तुले हुए थे, कि कोई निर्दोष मनुष्य दण्ड न पाये, इसीलिये यह कानून नहीं जारी हुआ। जब इस बात में उन्होंने मुँहकी खायी, तब यह कहने लगे, कि इधर-उधर से बहुतसे हथियार चले आ रहे हैं—इसकी रोक-थाम होनी चाहिये। इसीलिये हथियारों का कानून बनाया गया और हथियार रखने के लिये लाइसेन्स लेने का नियम जारी हुआ। इस कानून के दायरे में सभी हिन्दू, मुसलमान और क्रिस्तान आ जाते थे। यह देख, अँगरेज फिर लार्ड केनिंग पर बिगड़ उठे; क्योंकि काले गोरे का इस कानून में कुछ भेद न रहने से उन्होंने अपना बड़ा भारी अपमान समझा, परन्तु लार्ड केनिंग ने उस समय सम-दर्शिता से काम लेना ही उचित समझा और इसीलिये कुछ भेदभाव न रखा। इससे उन लोगों की उम्मीदों और हौसलों पर पाला पड़ गया, जो अपने हाथों हिन्दुस्तानियों का खून करने के लिये मनसूबे गांठ रहे थे। इन लोगों ने लार्ड केनिङ्ग के ऊपर बड़ी बौछारें कीं—विलायत तक इनकी शिकायत हो गयी। लोग मजाक के तौर पर इन्हें "दयालु केनिंग" कहने लगे !

पर 'दयालु' कहलाना यदि उपहास हो, तो वह सौ-सौ बार वाञ्छनीय है और यदि 'नर-पिशाच' 'रक्त-पिपासु' आदि आदि उपाधियां वीर-समाज में वरणीय हैं, तो हम इन उपाधियों को लाख बार फिटकार भेजते हैं। सच पूछिये तो लार्ड केनिंग ने उस समय यह आईन सब पर लागू करके बड़ी भारी बुद्धिमानी का काम किया था—नहीं तो हथियार की रोक-थाम करने के लिये हल्ला मचानेवाले ये

अंगरेज इसीलिये कानून वनवाने की धुन में थे, कि उसके अनुसार हिन्दुस्तानी तो बिलकुल वेहथियार हो जायें और हम उन पर शेर-भेड़ियों की तरह टूट पड़ें। गवर्नर-जेनरल उनका यह मतलव ताड़ गये थे और इसीलिये उन्होंने इस कानून में काले-गोरे का कुछ भेद न रखा। अपनी किसी कार्रवाई से वे इस देशवालों को और भी उत्तेजित करना नहीं चाहते थे। लोगों के लाख मना करने पर भी उन्होंने अपने देशी अङ्ग-रक्षकों के हथियार नहीं छीने। इस तरह भारतवासियों को अपने विश्वास में ले आने की चेष्टा करते हुए उन्होंने अपनी जान तक की परवा नहीं की। इस बारे में उन्होंने किसी का अनुरोध न माना। अन्त में जव बङ्गाल के लाट हैलिडे साहब ने उन्हें इस वात के लिये वहुत तङ्ग किया, तव उन्होंने अपनी कोठी और देह के देशी रक्षकों को हटाना स्वीकार किया; पर यह काम भी उन्होंने तुरत ही नहीं कर डाला। धीरे-धीरे कई महीने वे काट ले गये। सितम्बर महीने में यह कार्य सम्पन्न हुआ।

इस तरह अपने सजातीय वन्धुओं के कोप और निन्दा के भाजन बनते हुए भी सहृदय लार्ड केनिंग अपनी स्वाभाविक शान्ति के साथ सव काम ठीक-ठिकाने से करते रहे। उनकी ओर से कोई ऐसा कार्य नहीं हुआ, जो विद्रोह को उत्तेजना देनेवाला कहा जा सकता हो। इन्हीं सङ्कट के दिनों में १ ली अगस्त को सर जेम्स आउटरम फारिस के युद्ध में विजयी होकर कलकत्ते लौट आये। इसके ७ दिन वाद नौ-सेना-विभाग के अध्यक्ष कप्तान पील अपने सहयोगियों के साथ आ पहुंचे। १३ वीं अगस्त को

सर कालिन कम्पबेल ने यहां आकर प्रधान-सेनापति का कार्य-भार ग्रहण कर लिया। लार्ड एलगिन चीन जा रहे थे—वे भी पील के साथ ही उसी जहाज से कलकत्ते उतर पड़े। लार्ड केनिङ्ग उनके सहपाठी थे। इसलिये उनके आने से लार्ड केनिङ्ग को बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद वे लार्ड केनिङ्ग को सहायता देने के लिये दो लड़ाई के जहाज यहां छोड़ कर सिर्फ एक ही जहाज लिये हुए चीन चले गये। उपर्युक्त वीरों और इन दो जहाजों को पाकर लार्ड केनिङ्ग के हाथ और भी मजबूत हो गये। इस समय लार्ड केनिङ्ग की क्या अवस्था थी, इस विषय में लार्ड एलगिन ने लिखा है :—

"सिवा गवर्नर-जेनरल के कलकत्ते में और कोई निडर नहीं नज़र आया। ये सवेरे से शाम तक सारा दिन काम करते रहते थे। इससे उन्हें किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक कष्ट नहीं होता था। उस गड़बड़ के जमाने में भी वे और उनकी पत्नी सदा प्रसन्न रहती थीं।"

पर बेचारे लार्ड केनिङ्ग की चिन्ता दिनों-दिन बढ़ती ही चली गयी। मामला पश्चिमोत्तर प्रदेश ही तक न रहा—विद्रोह क्रमशः मध्यप्रदेश, बङ्गाल, विहार और उड़ीसे में भी आ पहुंचा। चारों ओर चिन्ताओं से घिरे हुए लार्ड केनिङ्ग पर उस समय कैसी बीत रही थी, यह कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है।

———o———

चौदहवाँ अध्याय ।

पश्चिमोत्तर-प्रान्तमें क्या हुआ ?

उस समय जान कालविन पश्चिमोत्तर-प्रदेश के छोटे लाट थे। वे बड़े बुद्धिमान और दूरदर्शी थे, इसमें सन्देह नहीं ; पर मई महीने में जब मेरठ की घटनाओं का समाचार उनके पास पहुंचा, तब वे यह न समझ सके, कि आगे चलकर इनका परिणाम कैसा भयङ्कर होनेवाला है। जब उन्होंने दिल्ली के सिपाहियों के हाथ में चले जाने तथा अँगरेजों के मारे जाने और भागने का हाल सुना, तब वे समझे, कि अँगरेजी-साम्राज्य पर कितनी बड़ी विपत्ति आ घहरायी है। अब तो वे प्रधान-प्रधान स्थानों की रक्षा के लिये चिन्तित हो उठे और उचित उपाय करने लगे। जहाँ-जहाँ फौज नहीं थी, वहाँ-वहाँ केवल मुट्ठी-भर अँगरेज अफसरों और पुलिस-वालों पर ही सारी रक्षा का भार था। इसके सिवा जो थोड़ेसे देशी सिपाही उन स्थानों में थे, उन पर भरोसा करने के सिवा और कोई चारा नहीं था ; परन्तु उस भरोसे का कितना मूल्य था, वह काशी और प्रयाग की घटनाओं ने ही प्रमाणित किया। अब और-और स्थानों में क्या हुआ, वही हम यहाँ लिखना चाहते हैं।

इस प्रान्त में आगरा भी एक बड़ा प्रसिद्ध नगर है। किसी समय यहाँ मुग़ल-बादशाहों की राजधानी थी। यहाँ का अनुपम समाधि-

मन्दिर, ताजमहल जगत् में अपना सानी नहीं रखता। आगरे की सैर करनेवालों के हृदय-पट पर एक वार भारतीय-इतिहास के सैकड़ों बहुमूल्य एवम् उज्ज्वल चित्र खिंच जाते हैं। उन दिनों ताजमहल की ही तरफ़ अँगरेजों की छावनी थी, जिसमें गोरे और काले दोनों तरह के सिपाही रहते थे। पास ही अँगरेज सैनिक अफ़सरों के बङ्गले और ईसाइयों का एक गिरजा भी था। शहर के बाहर ही छोटे लाट की कोठी, गवर्नमेण्ट आफिस, कारागार, कालेज, रोमन-कैथोलिक, सम्प्रदायवालोंका गिरजाघर और प्रधान-प्रधान शासकों तथा विचारकों के बँगले थे। उस समय आगरा ही इस प्रान्त की राजधानी था और छोटे लाट यहीं रहते थे। गवर्नमेण्ट के आफिस एक तरफ़ और सिपाहियों के रहने का स्थान दूसरी तरफ़ था। क़िले और शहर के बीच यमुना वहती थी। उस पर पुल बँधा हुआ था। पुल पार करके ही कानपुर और अलीगढ़ जाया जा सकता था।

उस समय आगरे की छावनी में गोरे और काले दोनों तरह के सिपाही थे। गोरों में ३ री पैदल सेना और एक दल गोलन्दाजों का तथा काले सिपाहियों में ४४ वीं और ६७ वीं पलटनें थीं। ब्रिगेडियर पोलहावेल सारी छावनी के अध्यक्ष थे।

१२ वीं और १३ वीं मई को मेरठ तथा दिल्ली के समाचार आगरे पहुंचे। एक दिन पहले से ही गोरों ने अपनी रक्षा का बन्दोबस्त कर लिया था। क़िले में गोरों का एक दल भेज दिया गया था। अँगरेज अपने-अपने हथियार पैनाने लगे थे।

यदि केवल आगरे के ही सिपाही बिगड़ खड़े होते, तो अँगरेज़ों को उन्हें दबा देने में कोई कठिनाई न होती; परन्तु यदि [illegible] उठ खड़े हों और आसपास नगरों के सिपाही भी इनसे आ मिलें, तो बड़ी भारी मुसीबत आ पड़ेगी—सब लोग यही सोच-सोचकर घबरा रहे थे। क्योंकि जब सिपाहियों ने मेरठ से चलकर दिल्ली पर धावा बोल दिया है, तब अपने प्रान्त की राजधानी को वे यों ही अछूती छोड़ देंगे, यह तो कुछ अनहोनीसी बात मालूम पड़ती थी।

यही सोचकर कालविन साहब ने आगरे की रक्षा का प्रबन्ध किस तरह किया जाय, इस विषय में सलाह करने के लिये आगरे के सभी प्रधान-प्रधान अँगरेज हाकिमों, पादरियों तथा अन्यान्य युरोपियनोंको अपने पास बुलाया और उनसे किले में चले आने का अनुरोध किया। उपस्थित साहबों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि इस तरह की घबराहट जाहिर करना अच्छा नहीं होगा। इसके बाद तरह-तरह की बातें कही-सुनी जाने लगीं। अन्त में यही तय पाया कि शीघ्र ही सब सैनिकों को परेड के मैदान में बुलवाकर समयानुसार उपदेश दिये जायें और सभी अँगरेजों की एक सेना संगठित कर ली जाये।

तदनुसार दूसरे दिन सवेरे ही सब सैनिक परेड के मैदान में बुलाये गये। सभी प्रधान-प्रधान सिविल कर्मचारी भी वहाँ आ पहुंचे। सबके पीछे छोटे लाट कालविन साहब भी आये। उनके सम्मान के लिये तोप की सलामी दगी। इस तोप की ध्वनि सुनकर अपने-अपने घरों में बैठी हुई मेमें घबरा उठीं। उन्हें शङ्का होने लगी

कि कहीं यहां भी तो अँगरेजों और हिन्दुस्तानी सिपाहियों में लड़ाई नहीं छिड़ गयी ? अस्तु; लाट साहब ने अपनी गाड़ी पर बैठे ही बैठे पहले गोरे सैनिकों को सम्बोधन कर कहा—"देखो तुम लोग अपने साथी हिन्दुस्तानी सिपाहियों पर पूरा विश्वास रखो; पर दिल्ली में जिन दुष्टात्माओं ने पादरी की कन्या की हत्या कर डाली है, उनके आने पर अपने कर्त्तव्यपालन से भी पीछे न हटो।" यह सुनते ही गोरे सैनिक बड़े जोश में आकर अपनी अपनी बन्दूकें सम्हालने लगे। इसके बाद उन्होंने देशी सिपाहियों से कहा—"हम लोग तुम्हारे ऊपर पूरा विश्वास रखे हुए हैं। यदि तुम्हें किसी बात की शिकायत हो तो हमारे सामने कह डालो और यदि तुममें से कोई कम्पनी का दिया हुआ हथियार अपने पास न रखना चाहता हो, तो उसे चाहिये कि चुपचाप हथियार नीचे डाल दे" परन्तु कोई आगे न आया। हां, भीतर ही भीतर सबके दिलों में सन्देह और जलन पैदा हुई। गोरों के बदले हुए तौर देख सिपाही बड़े ही चिन्तित हुए।

इसके बाद लाट साहब ने दिल्ली और आगरे के बीचका रास्ता सुरक्षित करने का प्रबन्ध किया। यदि कदाचित् दिल्ली से आकर सिपाही आगरे पर चढ़ाई करना चाहें तो उनका रास्ता कैसे रोका जायेगा, इस विषय में बड़े ही उत्तम प्रबन्ध किये गये।

अबकी बार कालविन साहब ने उन मित्र-राज्यों से सहायता लेने का विचार किया, जिनके यहां सन्धि के नियमानुसार अँगरेजों की सहायता के लिये एक-एक सुशिक्षित पलटन रहती थी। ऐसी

पल्टनें ग्वालियर और कोटा-राज्यों में भी थीं। इनके सिवा आगरे के पड़ोसी राज्य भरतपुर में भी ऐसी एक पल्टन थी। यदि ग्वालियर और भरतपुर के राजा इस समय बिगड़ खड़े होते, तो अँगरेजों की बड़ी तबाही आ जाती। इसीलिये कालविन साहब ने इन दोनों राजाओं से मदद मांगी। दोनों ने बिना विलम्ब सहायता करनी स्वीकार की। भरतपुर की एक सेना कप्तान निक्सन के अधीन चलकर १५ वीं मई को मथुरा पहुंची। दूसरे ही दिन ग्वालियर की घुड़सवार पल्टन तोपखाने के साथ आगरे पहुंच गयी। ग्वालियरनरेश ने अपनी शरीर-रक्षिणी सेना को भी [illegible] की सेवा में भेज दिया। इसके बाद यहां के गोरों ने अपनी एक स्वयं-सेवक सेना तैयार कर ली। इनका काम नगर और आसपास के स्थानों में रहनेवालों को अभय दान करना और दुष्टों को डराना-धमकाना ही था।

२१ वीं मई तक यहां कुछ भी गोलमाल न हुआ। सहसा उसी दिन संवाद आया, कि अलीगढ़ के सिपाही विद्रोही हो गये हैं। अलीगढ़ आगरे से ५० मील दूर है। वहां की छावनी में ९ वीं पल्टनके कुछ सिपाही रहते थे, जिनके बहुतसे सहयोगी मैनपुरी, बुलन्दशहर और इटावे में भी थे। मई महीने के मध्यभाग में ही यहां गड़बड़ होनी शुरू हुई। आस-पास के स्थानों से तरह-तरह के भयानक संवाद सुनकर एक अँगरेज, जो फौजी अफसर था, अपने कुछ सनिकों को साथ लिये हुए, इस संवाद की सत्यता की जाँच करने निकला। जब ये लोग शहर के कसाईखाने के पास पहुंचे,

तब इन्हें बहुतसे लोग जोश में भरे दिखाई दिये। ये लोग देखते-सुनते हुए आगे बढ़ते चले गये, किसी ने छेड़छाड़ नहीं की।

शहर में कहीं कुछ गोलमाल नजर नहीं आया; हां, पास ही के एक गांव में एक चिनगारी धीरे-धीरे सुलग रही थी—वही भभक उठने की सूचना दे रही थी।

इस गांव में एक इज्जतदार ब्राह्मण रहते थे। कहते हैं, कि कैद-खाने के एक पहरेदार से इनकी पूरी जान-पहचान थी। वह इनका काम करने के लिये सदा तैयार रहता था। इस समय अलीगढ़ के खजाने में ७ लाख रुपये थे। यह बात उक्त ब्राह्मण को मालूम हो गयी थी। ब्राह्मण ने सोचा, कि यदि इस समय यहां के सिपाही और गवँई-गांव के लोग भी सरकार के खिलाफ उठ खड़े हों, तो खजाना लूट लिया जाये और सिपाहियों के साथ साथ हम लोग भी कुछ लूट की रकम पायें, यही सोचकर उन्होंने दो सिपाहियों से यह प्रस्ताव किया और उनको इस बात का वचन दिया, कि यदि तुम लोग बागी हो जाओ तो मैं भी २००० आदमी तुम्हें दूँगा। यह सुन-सन्वगा एक देशी अफसर को मालूम हो गयी। उन्होंने ब्राह्मण को धोखा देकर एक जगह सलाह करने के लिये बुलाया और वे ज्यों ही आये त्यों ही उन्हें गिरफ्तार करवा दिया। इसके बाद उनपर मामला चला और उसी दिन उनको फांसी का हुक्म सुनाया गया! शाम को वे सूली पर लटका दिये गये। उस दिन तो कहीं कुछ गड़बड़ न हुई; पर एक ब्राह्मण का इस तरह बेमौत मारा जाना हिन्दू सिपाहियों को बेतरह खटका। बारूद तैयार थी, इस

घटना ने पलीते का काम किया—सिपाहियों की शान्ति जाता रही। गड़बड़ मचनी आरम्भ हो गयी, गोरों में भागाभाग मच गयी। कुछ ही देर में सारा अलीगढ़ गोरों से खाली हो गया। कितने ही गोरे आगरे की ओर भाग चले और कितनों ही ने मेरठ की राह नापी। आगरे जानेवाले तो निर्विघ्न वहां पहुंच गये; पर मेरठ के यात्रियों की बड़ी दुर्गति हुई। हां, अलीगढ़ में किसी पर हथियार नहीं चलाया गया।

सब गोरों के चले जाने पर अलीगढ़ के सिपाही और पास-पड़ोस के देहाती मनमानी करने लगे। खजाने के ७ लाख रुपये लूट लिये गये। कैदखाना तोड़ डाला गया। गोरों के तमाम बंगले जलाकर खाक कर दिये गये। जिन-जिन चीजों से अंगरेजों का कुछ भी सरोकार था, वे सब लूट ली गयीं या नष्ट-भ्रष्ट कर दी गयीं। अँगरेजी सत्ता का थोड़ासा भी चिन्ह न रहने दिया गया। सिपाही रुपये लिये हुए दिल्ली की ओर चल पड़े। गांव और शहर के उपद्रवी लूट के रुपये लिये हुए अपने-अपने घरों में ही चैन की बंशी बजाने लगे।

पहले ही कह चुके हैं, कि अलीगढ़ में जो पलटन थी, उसीके कुछ सिपाही मैनपुरी, बुलन्दशहर और इटावे में भी थे। क्रमशः अलीगढ़ की घटना का समाचार इन स्थानों में भी पहुंचा। बुलन्द-शहर में तो एक प्रकार से शान्ति रही, क्योंकि यहां के सिपाही केवल खजाना ही लूट कर चल दिये। लेकिन मैनपुरी और इटावे में कुछ और ही दृश्य दिखाई दिया।

मेरठ और दिल्ली की घटनाओं का समाचार पाते ही यहां के मजिस्ट्रेट ह्यूम साहब ने * विद्रोही सिपाहियों को कैद कर लेने का इरादा किया। इसके लिये प्रत्येक रास्ते में सन्तरी खड़े किये गये। १६ वीं मई की रात को इन्होंने मेरठ के ७ सवारों को गिरफ्तार किया। इनके पास पिस्तौल और तलवार थी। ये लोग जब इटावे की छावनी में लाये गये, तब इनमें से एक ने एक अँगरेज सेनापति को गोली मार दी और दूसरे की जान लेने को भी उतारू हो गया। इस पर ९ वीं पल्टन के सिपाही और शहर के कोतवाल ने उसे मार कर नीचे गिरा दिया। इसके बाद शेष ६ कैदी सवारों को दण्ड देने का विचार हुआ। दो तलवार के घाट उतार दिये गये। एक को गोली मार दी गयी। दो किसी तरह निकल भागे। एक को पुलिस ने पकड़ रखा। ये सब फतेहपुर के रहनेवाले पठान थे।

इसी दल के कुछ सिपाही इटावे से १० मील दूर जसवन्तनगर में पकड़े गये। वहां भी इन लोगों ने खासी खून-खराबी की। गिरफ्तार करनेवाले ही मारे गये। सबको मार कर वे देव-मन्दिर में जा छिपे।

यह खबर पाते ही मजिस्ट्रेट साहब अपनी बग्घी पर सवार हो, जसवन्तनगर की ओर चले। वहाँ पहुंच कर देखा, कि वह स्थान

---

* इनका पूरा नाम ऐलनअक्टोवीयन ह्यूम था। पीछे चलकर ये भारत-वासियों के परम हितचिन्तक प्रमाणित हुए। इन्हीं के उद्योग से इण्डियन-नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई, ये जन्म भर भारतवर्ष के निवासियों की भलाई के लिये उद्योग करते रहे। ये बड़े ही सदाशय, सहृदय और भारतीयों की उन्नति के सच्चे दिल से अभिलाषी थे।

सहज ही हाथ में आनेवाला नहीं; क्योंकि चारों ओर दल-के-दल मुसलमान खड़े हैं। खैर एक सिपाही, जो साहब के साथ आया था, देव-मन्दिर के द्वार पर आया; पर वह तुरत ही मार डाला गया। मैजिस्ट्रेट साहब के सहकारी को भी गोली लगी। लाचार, वे अपनासा मुंह लिये लौट आये। सवारों ने रात को ही देव-मन्दिर खाली कर दिया और जिधर सींग समाया, उधर ही भाग चले।

इसके दूसरे ही दिन अलीगढ़ में गड़बड़ फैली। यह खबर यहाँ तीसरे दिन पहुंची। मैजिस्ट्रेट ने यहाँ के फौजी अफसरों से सलाहकर सिपाहियों को दूसरी जगह भेजने का इरादा किया, जिसमें इन्हें अलीगढ़ के सिपाहियों के विद्रोही हो जाने का हाल न मालूम हो। इसी निश्चय के अनुसार उन्हें 'बरपुरा' की पुलिस चौकी में भेज देना स्थिर हुआ। सिपाही यहाँ से चले तो बड़ी खुशी से, लेकिन दो ही मील जाते-न-जाते कितनों के रङ्ग बदले हुए नजर आने लगे। ये लोग अपने अफसरका हुक्म न मान, इटावे दौड़ आये। कुछ दिन तो और उनके देशी अफसर शान्तभाव से ही रहे और उन्होंने गोरे अफसरों और उनके बालबच्चों को बरपुरा पहुंचा दिया। इधर जो बिगड़ेदिल सिपाही इटावे लौट आये, उन्होंने इटावे के सर्वसाधारण को साथ लेकर खजाना लूट लिया, कैदखाना तोड़ दिया, सब सरकारी कचहरियों और मैजिस्ट्रेट के सिवा सब साहबों के बँगले जला दिये गये। मैजिस्ट्रेट साहब औरत के वेश में निकल भागे। तमाम लूट-पाट होने लगी। अँगरेजी राज्य का अन्तसा हो गया। खजाने का बहुतसा रुपया आगरे भेज दिया गया था, इसलिये बलवाइयों के बहुत कम रुपये हाथ लगे।

उस समय प्रतापनेर के चौहान-वंशीय कई राजपूत-कुमारों ने ह्यूम साहब को बड़ी सहायता दी थी । जिस समय चारों ओर उपद्रव-उत्पात जागे थे, उसी समय इनमें से एक, जिनका नाम कुमार लक्ष्मणसिंह * था, उन्होंने अपने साथ बहुतसी मेमोंको उनके बाल-बच्चों सहित आगरे पहुंचा दिया । जुलाई महीने तक ह्यूम साहब अपने विभाग में लौट कर न आ सके । इसलिये इटावा-विभाग के शासन का भार पांच तहसीलदारों में बाँट दिया गया । इन पाँचों तहसीलदारों में एक उपर्युक्त राजा लक्ष्मणसिंह के भाई जहरसिंह, दूसरे राजा [illegible] (ये जाति के ब्राह्मण) थे । तीसरे चौधरी गङ्गाप्रसाद (कायस्थ), चौथे लाला लायकसिंह और पांचवें मथुरा के एक बूढ़े वैश्य थे । इन लोगों ने इस खूबी के साथ उस सङ्कट-काल में इटावे का शासन किया, कि ह्यूम साहब मुग्ध हो गये । उन्होंने इनकी कार्य-निपुणता, निर्भीकता और विश्वसनीयता की खुले दिल से प्रशंसा की ।

ऊपर जिन बूढ़े वैश्य तहसीलदार का जिक्र आया है, उन्होंने मरते दम तक अँगरेजों की भलाई ही की । विद्रोहियों के हाथ पकड़े जाने और तरह तरह से पीड़ित होने पर भी उन्होंने भेद की बातें

---

* पीछे ये राजा बना दिये गये । ये हिन्दी के बड़े नामी कवियों में गिने जाते हैं । इनके लिखे हुए कालिदास के काव्यों के अनुवाद हिन्दी-साहित्य में बड़े प्रसिद्ध हैं । इनके 'शकुन्तला' और 'मेघदूत' के अनुवाद बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं । ये आगरा प्रान्त में बड़े ही प्रसिद्ध पुरुष हो गये हैं ।

विद्रोहियों को नहीं बतलायीं। राजा [illegible]-सिंह ने संन्यासी का वेष धारण कर विद्रोहियों के दलों में जा-जा कर भेद मालूम किया और अँगरेजों को उसकी सूचना समय समय पर दी थी। इससे अंगरेजों को बड़ा लाभ पहुंचा। यही नहीं, और भी बहुमूल्य सहायता की थी, जिसके लिये स्वयं ह्यूम साहब ने भारतीयों की भूयसी प्रशंसा की है। उन्होंने एक जगह लिखा है :—

"मानवोचित गुणों में भारतीयों और अँगरेजों में कोई भेद नहीं है। कार्यक्षेत्र में दोनों ही एक सी दक्षता और योग्यता दिखला सकते हैं। गुणों की प्रचुरता से गौरवान्वित और सुशिक्षा के अभाव से पापी हो जाने की दोनों की ही सम्भावना बनी रहती है। यदि पक्षपात छोड़कर विचार किया जाये तो दोनों जातियों में ही गुण और दोष दिखलाई देंगे। यदि सुशिक्षित और सद्गुण-सम्पन्न भारत-वासी के साथ सामान्य अँगरेज की तुलना की जाये, तो वह सामान्य अँगरेज महान् व्यक्तियों के बीच प्रायः बन्दर ही मालूम पड़ेगा। और यदि कार्यक्षेत्र में दीर्घकाल तक डटे रहनेवाले दूरदर्शी अथवा प्रगाढ़ [illegible] के कारण प्रशान्तचित्त बने हुए [illegible] अँगरेज के साथ किसी अदूरदर्शी भारतवासी की तुलना की जाये तो पूर्वोक्त मनुष्य साधारण मनुष्यों के बीच देवतासा खड़ा दिखाई देगा। परन्तु यदि दोनों ही जातियों के अत्युत्कृष्ट गुणयुक्त व्यक्तियों की परस्पर तुलना की जाये तो दोनों ही एकसे ऊंचे मालूम पड़ेंगे। ×× भारत-प्रवासी अँगरेज सदा हिन्दुस्तानियों के दोष ही देखा करते हैं। इसके विपरीत उन्हें अपने सजातियों में गुण ही गुण दिखाई

देते हैं। इसीलिये उनके जी में यह भ्रान्तिपूर्ण धारणा बैठ गयी है कि भारतवासी एकदम निन्दनीय चरित्रवाले तथा अँगरेज बड़े ही ऊँचे दर्जे के जीव हैं!"

सच पूछिये तो यही भ्रान्त धारणा आजतक अँगरेजों में बनी हुई है। ह्यूम साहब के से निष्पक्षपात अँगरेज बहुत ही कम दिखाई देते हैं। यह बलवा जो इतना जोर पकड़ गया, उसका कारण भी यही था कि अँगरेज दिल ही दिल में भारतवासियों को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे और उनके भावों, अभावों तथा विचारों की तह तक पहुंचने की कोई परवा नहीं करते थे। यदि स्थान स्थान पर ह्यूम साहब के से उदार हृदय, पक्षपातहीन और सदाशय अँगरेज न होते तो जो आग धधकी थी, वह जल्दी बुझने का नाम न लेती।

२४ वीं मई की रात को ग्वालियर की पलटन बनपुरे पहुंच गयी। उसी ने दूसरे दिन इटावे पहुंच कर फिर उस नगर को अंगरेजों के हाथ में ला दिया। पर इसके लिये उन लोगों से अवश्य ही युद्ध करना पड़ा जो अपने अधिकार से वञ्चित किये जाने के कारण अँगरेजों के बैरी बन गये थे और उनसे लोहा लेने को तैयार थे। इनमें से एक का किला ढा दिया गया, उनके घर-द्वार जला दिये गये और बहुतसे आदमी मारे गये। इस तरह बड़ी खूनखराबी के बाद इटावा पुनः अँगरेजों के अधिकार में आ गया।

२२ वीं मई को अलीगढ़ का समाचार मैनपुरीवालों को मालूम हुआ। मैजिस्ट्रेट और कमिश्नर ने तुरत ही गोरी स्त्रियों और बच्चों को आगरे तथा सिपाहियों को भावगांव नामक स्थान में भेज देने

का निश्चय किया। मेमों और बच्चों को एक मुसलमान पहरेदार के साथ आगरे भेज दिया गया।

इस समय लेफ्टिनेण्ट क्रैफोर्ड और डिकैन्टज़ मैनपुरी के सिपाहियों के अधिनायक थे। इन लोगों ने सिपाहियों से मावगांव जाने को कहा; पर उन्होंने अस्वीकार करते हुए कहा कि आप ही लोग यहाँ से जान लेकर भाग जाइये। सिपाहियों की उत्तेजना देख ये लोग बड़े घबराये। उस समय लेफ्टिनेण्ट क्रैफोर्ड वहाँ नहीं थे और सिपाही लोग परेड के मैदान तक चले आये थे। अपने सहयोगी को न देख डिकैण्टज़ ने सोचा कि सिपाहियों ने उन्हें मार डाला। इसीलिये उन्होंने झट मजिस्ट्रेट के पास खबर देने के लिये वहां से यात्रा की। वहाँ पहुंच कर उन्होंने अपने साथी के गायब होने तथा सिपाहियों के बलवाई हो जाने का समाचार मैजिस्ट्रेट तथा कमिश्नर को सुनाया और उसी क्षण आगरे जाने की अनुमति मांगी। कमिश्नर को भी मैनपुरी में ठहरने की हिम्मत न पड़ी। वे भी पादरी के साथ आगरे को रवाना हो गये। रह गये मजिस्ट्रेट, उनके छोटे भाई और तीन अन्य अँगरेज़। इन लोगों ने यहीं रहकर कर्त्तव्य-पालन करने का निश्चय किया।

मैनपुरी के राजा के रिश्तेदार राव भवानीसिंह ने मजिस्ट्रेट के कहने पर कुछ घुड़सवार और पैदल सिपाही सहायता के लिये भेजे। इससे उन्हें बहुत कुछ ढांढ़स हुआ।

इधर क्रैफोर्ड साहब को सिपाहियों ने चारों ओर से घेर रखा था। वे एकदम लाचार थे। सिपाहियों ने इस तरह उन्हें भींगी बिल्ली

बनाकर शहर के अन्दर लूट-पाट मचानी शुरू की। दनादन गोलियाँ चलने लगीं। अस्त्रागार लूट लिया गया। अब खजाने की बारी आयी। उस समय भी क्रेफोर्ड साहब उनके साथ थे और हथेली पर जान लिये हुए उन्हें समझा रहे थे। इन्हीं के कहने से खजाने के पहरेदारों ने सिपाहियों पर गोलियां नहीं चलायीं। सिपाहियों ने भी किसी को न मारा और चुपचाप खजाना लूट लेना चाहा। इसी समय राव भवानीसिंह यहाँ आ पहुंचे और सिपाहियों को शान्त करने लगे। उन्होंने कहा—"यदि रावसाहब हमारे साथ हो जायें, तो हम लौट जाने को राजी हैं।" वे झट राजी हो गये और सिपाही उनके साथ साथ चले गये। खजाना लुटने से बच गया। इसके बाद वे लोग सेनापति क्रैफोर्ड को छोड़कर मैनपुरी से बाहर हो गये।

यथासमय इन सब घटनाओं का समाचार आगरे पहुंचा। सुनते ही सारे गोरे समाज में त्रास फैल गया। सब लोग भाग-भागकर किले में आने लगे। अब तो किले की रक्षा की बड़ी भारी तैयारी होने लगी। किले में गोरे सिपाहियों का पहरा बैठा। ६ महीने तक चलने लायक रसद रख ली गयी। चारों ओर पहरे-दारों और सैनिकों की संख्या बढ़ायी जाने लगी। इसी समय एक बूढ़े राजकर्मचारी ने छोटे लाट को सलाह दी, कि आप ऐसी घोषणा कर दें कि लोगों के अभाव-अभियोग सुनकर हम उनको दूर करेंगे, उन सब सिपाहियों को जो चुपचाप अपने हथियार सरकार को लौटा देंगे, माफ कर दिया जायेगा; पर दुष्टों को अवश्य दण्ड दिया जायेगा। इससे बड़ा लाभ होगा। कालविन साहब को यह राय

पसन्द आयी और उन्होंने ऐसी एक घोषणा प्रचारित भी कर दी। पर लार्ड केनिंग को यह बात पसन्द नहीं आयी। इसलिये उन्होंने एक दूसरी घोषणा प्रचारित की, जिसका आशय यह था कि जो लोग किसी की हत्या के अपराधी न होंगे, वे ही छोड़ दिये जायेंगे। केवल उनके हथियार छीन लिये जायँगे; परन्तु जिन लोगों ने किसी अफसर या अन्य मनुष्य की हत्या की होगी, उन्हें कदापि छुटकारा न दिया जायेगा।

इन दोनों घोषणाओं में यही भेद था, कि छोटे लाट की घोषणा के अनुसार खास-खास लोग ही दण्डित होते; पर बड़े लाट की घोषणा के अनुसार पल्टन की पल्टन सजावार हो सकती थी। जो हो, बड़े लाट की घोषणा प्रकाशित होते ही अँगरेजों ने उनकी प्रशंसा और छोटे लाट कालविन साहब की निन्दा करनी आरम्भ की। उनके मन्त्रियों में भी कुछ लोग उनके विरोधी हो गये। इसी समय उनकी तन्दुरुस्ती भी बिगड़ गयी। उनके शरीर और मन की अवस्था बड़ी ही शोचनीय हो गयी।

इस तरह ३ सप्ताह बीत गये—आगरे में पूरी शान्ति बनी रही। सब काम ठीक-ठिकाने से होते रहे। मई महीने के अन्त में मथुरा में गड़बड़ मची। आगरे की ४४ वीं पल्टन के कुछ सिपाही मथुरा में भी थे। इस दल के और भी कुछ सिपाहियों को आगरे से मथुरा भेजने का विचार हुआ। उनके साथ-ही-साथ ६७ वीं पल्टन के कुछ सिपाहियों को भेजना भी निश्चित हुआ। इन्हें भेजने का मतलब यह था, कि ये मथुरा के सिपाहियों से चार्ज ले लें और वहाँ के

खजाने में ६ लाख से जो ऊपर रुपये जमा थे, उनकी रक्षा करें। परन्तु इस समय मथुरा के सिपाहियों और सर्वसाधारण में खलबली पैदा हो गयी थी। वहां खबर उड़ रही थी, कि दिल्ली के बलवाई सिपाही शीघ्र ही आगरे पर चढ़ाई करने आ रहे हैं। दिल्ली से आगरे आने के रास्ते में ही मथुरा पड़ती है। इसीलिये यहां के अँगरेजों ने अपने औरत बच्चों को आगरे भेज दिया था। मई महीने के मध्य में जब भरतपुर के कप्तान निक्सन यहां आये, तब यहां के अँगरेजों के चित्त में कुछ शान्ति हुई और सिपाही भी डरे।

इधर मथुरा के हाकिमों ने यहां के खजाने का रुपया आगरे भेज देने का इरादा किया। ३० वीं मई को आगरे से सैनिकों के दो दल मथुरा के लिये रवाना हुए थे और यहां खजाना आगरे भेज देने की तैयारी हो रही थी। जब खजाना ढो ले जाने के लिये बैल-गाड़ियां रवाना होने को तैयार हुईं, तब लेफ्टिनेण्ट बोल्टन उसके रक्षकों के अध्यक्ष होकर आगे आये। इसी समय एक देशी फौजी अफसर ने उनके सामने आकर पूछा,—"खजाना कहां जायेगा?"

बोल्टन ने कहा,—"आगरे भेजा जा रहा है।"

अफसर ने कहा,—"नहीं, यह तो दिल्ली जायेगा।"

यह सुनते ही बोल्टन ने घुड़ककर कहा,—"तू विश्वास-घातक है।"

उनकी बात पूरी भी न हुई थी, कि उनके पीछे खड़े एक सिपाही ने दून से फायर की और गोली उनकी छाती छेद कर पार हो गयी। वे तुरत ही घोड़े से गिर कर मर गये।

अब तो सिपाहियों ने खुल्लम-खुल्ला बलवा मचाना शुरू कर दिया। खजाना सिपाहियों के हाथ आ गया। सब गोरे भाग चले। उनके खाली किये हुए मकान जलाये जाने लगे। मथुरा के बड़े आदमी भी डर कर जहाँ-तहां भागने लग गये। उन्मत्त सिपाहियों ने कचहरियों की तमाम कुरसी-मेजें एक जगह लाकर जमा कीं और उनके ऊपर पुआल रख कर आग लगा दी। इसके बाद वे दिल्ली की ओर बढ़े और रास्ते में गरीबों को पैसे लुटाते चले। मथुरा का जेल-खाना भी खोल दिया गया और सब कैदी छोड़ दिये गये।

इस समय भरतपुर की पल्टन 'हुदुल' नामक स्थान में थी। पहले तो अधिकारियों को इस पर सन्देह नहीं हुआ; क्योंकि भरतपुर राज्य अँगरेजों का मित्र था और ये सिपाही उनकी सहायता के लिये ही आये थे। पर पीछे ये लोग भी बागी ही निकले। कमिश्नर हारवी साहब इन सिपाहियोंके साथ थे। उन्हें ३१ वीं मई के सवेरे ही खबर मिली, कि मथुरा के सिपाही बागी हो गये हैं और मथुरा में लूट-पाट मचा कर दिल्ली की ओर बढ़ रहे हैं। यह समाचार पाते ही उन्होंने भरतपुर के सिपाहियों को बलवाइयों की राह रोकने का हुक्म दिया। पर ये लोग एकदम अस्वीकार कर गये। उलटे इन्होंने अँगरेजों के ही विरुद्ध तोपें तैयार कर लीं। यह देख, गोरों ने यहां से प्राण लेकर भागने की ठहरायी। उनके चले जाने पर ये लोग परम स्वतन्त्र हो गये और लगे उनके खाली किये हुए तम्बुओं में आग लगाने। इसके बाद अँगरेजों के बङ्गलों पर निशाने दगने लगे। अँगरेजों के छोड़े हुए माल-असबाब सिपाहियों के हाथ लगे।

रात को यह समाचार छोटे लाट को आगरे पहुंचा। सवेरे ही उठ कर उन्होंने आगरे के दोनों देशी सैन्यों को निरस्त्र कर डाला। कुछ लोग तो छावनी में लौट आये, कुछ छुट्टी लेकर घर चले गये और कुछ दिल्ली की ओर रवाना हुए।

जो सिपाही अपने-अपने घर चले गये, वे भी रास्ते भर विष के बीज बोते गये। उन्होंने तरह-तरह की झूठी-सच्ची बातें सुनाकर लोगों के कान खूब भर दिये। सबके जीमें यह बात बैठ गयी, कि इन अँगरेजों के आखिरी दिन आ गये हैं। दिल्ली और आगरे के आस-पास के प्रायः सभी स्थानों में उपद्रव उठ खड़ा हुआ। सिपाहियोंके सिवा सर्वसाधारण ने भी बड़े-बड़े उत्पात किये।

मेरठ की जिस २० वीं पल्टन ने बलवा किया था, उसी के कुछ सिपाही मुजफ्फरनगर में खजाने के पहरे पर रखे गये थे। उन्होंने अपने साथियों के बलवाई हो जाने का हाल सुनकर भी किसी तरह की गड़बड़ नहीं मचायी; पर सहसा यहां के मैजिस्ट्रेट की कमजोरी ने सारा गुड़गोबर कर दिया। उन्होंने मेरठ की खबर पाते ही सब सरकारी कचहरियां बन्दकर दीं और शहर के बाहर जा छिपे। जो सैनिक खजाने पर पहरा दे रहे थे, उनको उन्होंने अपनी रक्षा पर नियुक्त कर लिया। मैजिस्ट्रेट बारफोर्ड साहब की यह बुजदिली देख, उन लोगों के हौसले बढ़ गये, जो किसी कारण से अँगरेजों से जले बैठे थे। वे कचहरियों को बन्द तथा मैजिस्ट्रेट को भागा हुआ देख, समझ गये, कि अब इन अँगरेजों के बुरे दिन आ गये हैं। इसीलिये उन्होंने खजाने को लूट लेने की दिल में ठानी। उधर जङ्गल में छिपे हुए

वारफोर्ड साहब को इतनी रक्षा से भी सन्तोष न हुआ। अबके उन्होंने जेलखाने के पहरेदारों को भी अपने पास पहरा देने के लिये बुलवा लिया। इस प्रकार कैदखाना भी अरक्षित दशा में पड़ गया। सब कैदी निकल भागे। इसके बाद सब सरकारी आफिसों और अफसरों के मकानों में आग लगा दी गयी। कुल सरकारी कागजात जल कर खाक हो गये। जिले भरमें खबर फैल गयी, कि अँगरेज भाग गये— अब जिसके जो दिल में आये, कर गुजरे। चारों ओर धांधली मच गयी। अब तो खजाने के इने-गिने पहरेदारों की नियत भी डिग गयी। उनसे जब खजाना दूसरी जगह हटा ले जाने को कहा गया, तब वे भी मुकर गये और लगे सन्दूक तोड़-तोड़ कर अपनी मुट्ठी गरम करने। जिससे जहां तक ले जाते बना, वह उतना ही लेकर मुरादाबाद की ओर चल पड़ा। इस तरह कम्पनी के ८५०००) पचासी हज़ार रुपये का एक तिहाई हिस्सा सिपाही ले भागे। वाकी के रुपये शहर के लोगों और मैजिस्ट्रेट साहब के नौकरों ने आपस में बांट लिये। सारे शहर में अराजकता फैल गयी।

क्रमशः सहारनपुर में गड़बड़ मची। उस समय यहां कुल ६।७ अँगरेज थे। फिरंगी बहुत थे। मुरादाबाद की २९ वीं पलटन के ७०-८० सिपाही खजाने की रक्षा कर रहे थे। उनका अफसर भी देशी ही था। प्रायः १०० अस्त्रधारी रक्षक जेलखाने और कुमेटियों के मकानों पर पहरा दे रहे थे। उस समय स्पेंकि साहब यहां के मेजिस्ट्रेट थे। ये मुजफ्फरनगरवाले वारफोर्ड साहब की तरह निकम्मे नहीं थे। यहां के अधिवासियों में मुसलमानों की ही संख्या अधिक थी।

यद्यपि यहां सिपाहियों और पहरेदारों ने पहले किसी प्रकार की चञ्चलता प्रकट नहीं की, तथापि सर्वसाधारण शान्ति भङ्ग किये विना न रहे। जबरदस्तों की लाठी कमजोरों के सिर पर पड़ने लगी और लोग आईनकानून की परवा किये बिना मनमानी करने लगे। आपस की लूट-खसोट और मार-पीट से बढ़ते-बढ़ते युरोपियनों के विरुद्ध हथियार उठाये जाने लगे। शहर भर की दूकानें बन्द हो गयीं। लोग इधर-उधर भागने लगे। कचहरियोंके द्वार बन्द हो गये। हां, सिपाही अब तक नहीं बिगड़े—वे शान्त ही बने रहे। युरोपियन महिलाएँ और उनके बालबच्चे पहले ही मन्सूरी भेज दिये गये थे, इसलिये उनकी तरफ से निश्चिन्त हो, यहां के ज्वायेण्ट-मैजिस्ट्रेट मि० राबर्टसन कुछ सैनिकों के साथ आस-पास के उपद्रवी लोगों को दंड देने के लिये गांवों की सैर करने निकले। इस कार्य में उन्हें बहुत कुछ सफलता हुई। जो सिपाही उनके साथ थे, वे भी पीछे बागी हो गये सही; पर उस समय तो उन लोगों ने इनकी मदद की।

इधर रुहेलखण्ड-विभाग में अशान्ति के लक्षण स्पष्ट हो रहे थे। यहां मुसलमानों की ही अधिकतर बस्ती है। रुहेल-खण्डी कट्टर लड़ाके और स्वाधीनचेता जीव हैं। रुहेलखण्ड में बरेली एक बड़ा ही प्रसिद्ध स्थान है। बरेली से ४८ मील उत्तर-पश्चिम की ओर मुरादाबाद बसा हुआ है। यहां २९ वीं पैदल-सेना तथा देशी गोल-न्दाज-सेना के कुछ सैनिक उस समय मौजूद थे। बहुत दिनों से क्राकरफ्त विलसन साहब मुरादाबाद के मैजिस्ट्रेट थे। लोग उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे और वे बहुत दिन वहां रह जाने से सब लोगों

को अच्छी तरह जान गये थे। उनका काम केवल विचार करना था। इस बार उन्होंने छोटे लाट से प्रार्थना कर शान्ति-स्थापन का कार्य भी अपने हाथ में ले लिया। १६ वीं मई को मेरठ का समाचार मुरादाबाद में पहुंचा था। सुनते ही वे छावनी में चले गये और वहां उन्होंने सिपाहियों को उचित उपदेश दिये। शहर के मुसलमानों में बड़ी खलबली पैदा हो गयी थी; पर उनकी उत्तेजना से भी यहां के सिपाही नहीं बिगड़े। कुछ दिन पहले नवाब [illegible] नामक एक मुसलमान सज्जन मुंसिफ थे। वे आजकल पेनशन पा रहे थे। उन्होंने अपने को दिल्ली के सम्राट् का प्रतिनिधि बतलाते हुए सिपाहियों को खूब उभाड़ा—उन्हें मिलाने के लिये उन्हें खूब रोटियां भी खिलायीं; सिपाही उनके चकमे में न आये। लाचार, वे दिल्ली चले आये। फिर यहीं वे शत्रु की गोली खाकर 'शहीद' हो गये।

इस समय तक रुहेल-खंडके स्थान-स्थान में बलवाई [illegible] लगा रहे थे। तमाम प्रधान-प्रधान रास्तों में लुटेरे गूजर, गश्त लगा रहे थे। पहले तो मुरादाबाद के सिपाही इन सब उपद्रवियों की रोक-थाम में जी-जान से लगे रहे; पर पीछे इनके डिगने की भी नौबत आ पहुंची।

१८ वीं मई को मुरादाबाद के हाकिमों को पता लगा, कि मेरठ की २० वीं पल्टन के कुछ सिपाही बहुतसी लूट की रकम लिये मुरादाबाद से पांच मील दूर गङ्गा तीर पर पड़े हुए हैं। इन्हीं के कुछ साथी मुज़फ्फरनगर से आकर भी इनसे मिल गये थे। यह खबर पा, विलसन साहब, अपने कुछ संगी-साथियों तथा थोड़ेसे घुड़सवार और

बहुतसे पैदल सैनिक लिये हुए, उनपर धावा बोलने के इरादे से चल पड़े। जिस समय ये लोग वहां पहुंचे, उस समय रात हो आयी थी—चारों ओर भयङ्कर अँधेरा था। बलवाई गाढ़ी नींद में पड़े हुए थे। इसी समय इन सैनिकों ने उनके कई पहरेदारों को गिरफ्तार कर लिया। गड़बड़ सुन, सिपाही जग पड़े। इस तरह चुपचाप अपने ऊपर आक्रमण हुआ देख, सिपाही घबरा उठे। अँधेरे में अपना-पराया सूझना भी मुश्किल हो रहा था। इसलिये उनमें से बहुतों ने लुक-छिपकर जान बचायी; एक बलवाई एक सवार की गोली खाकर मर गया और ८।१० बलवाई गिरफ्तार हुए। इस आकस्मिक आक्रमण से अँगरेजों को ८०००) रुपये और बलवाइयों के सब हथियार तथा गाड़ियाँ हाथ लगीं। इस चढ़ाई में मुरादाबाद की २९ वीं पल्टन के सिपाहियों ने बड़ा भाग लिया था।

दूसरे दिन भागे हुए बलवाइयों में से कुछ लोग मुरादाबाद की छावनी में आ पहुंचे और २९ वीं पल्टन के सिपाहियों के कान भरने लगे। इसपर एक कट्टर राजभक्त सिक्ख ने उनमें से एक सिपाही को गोली मार दी और शेष सब को पकड़वा दिया। वे कैदखाने में भेज दिये गये। पर होनहार को कौन टाल सकता है? जो सिपाही मारा गया था, उसका एक रिश्तेदार भी २९ वीं पल्टन में ही था। उसने अपने रिश्तेदार के खून का बदला लेने के लिये अपने दल के तेज-मिजाज सिपाहियों को उभाड़ना शुरू किया और जब वे उसके मेल में आ गये, तब उन्हें लिये हुए कैदखाने के

द्वारपर पहुंच गया। २० वीं पल्टन के कैदियों के अतिरिक्त ६०० और कैदी भी छुटकारा पा गये।

यह खबर मिलते ही विलसन साहब घोड़े पर सवार हो कैद-खाने की ओर चले। पर उस समय जाने से ही क्या हो सकता था ? कैदी तो बाहर निकल कर नाचते-कूदते हुए शोर मचा रहे थे। ऐसी अवस्था में उनके सामने जाना खतरे से खाली नहीं था, इसी-लिये विलसन साहब लौट आये और रामपुर के नवाब के कुछ सवार, जो इस समय मुरादाबाद के पास ही पड़े हुए थे, उनको उन्होंने सहायता के लिये बुलाया। पर वे आने को राजी न हुए। यद्यपि २९ वीं पल्टन के कुछ सिपाही बागी हो गये थे, तथापि सारा दल अब तक नमकअदाई के लिये जी-जान से तैयार था। इन्हें साथ लेकर इनके अफसरों ने भागे हुए सिपाहियों की खोज-हूँढ़ करनी शुरू की। स्वयं विलसन भी इस काम के लिये बाहर निकले। इन लोगों की चेष्टा से कोई १५० सिपाही गिरफ्तार हुए। इसके बाद विलसन साहब ने मुरादाबाद आकर शहर के बड़े आदमियों को बुलाया और उनसे नगर में शान्ति स्थापित करने के लिये चेष्टा करने का अनुरोध किया। तदनन्तर उन्होंने सिपाहियों के पास आकर उन्हें समझाया-बुझाया और बाइबिल छूकर कसम खायी, कि यदि तुम लोग आगे से राजभक्त बने रहने की प्रतिज्ञा कर लो, तो मैं सब के अपराध क्षमा कर देने के लिये बड़े लाट से अनुरोध करूँगा। इस पर सब लोग राजी हो गये। शहर और छावनी में शान्ति हो गयी—दूकानें खुल गयीं। छिपे हुए अँगरेज और मेम-बच्चे

बाहर आये। पर मुरादाबाद-डिवीजन अशान्ति से परे न रहा। गूजरों के उत्पात खूब धड़ल्ले से जारी रहे। २० वीं मई को ८० गूजर गिरफ्तार हुए। इसके बाद ही विलसन साहब को खबर मिली, कि एक मौलवी रामपुर के बदमाश मुसलमानों का दल बाँध रहा है। यह खबर पाते ही वे कुछ सैनिकों को साथ लिये चल पड़े और बरेली के घाटपर रामगङ्गा के पार हो, मुसलमानों की गति रोकने लगे। उक्त मौलवी मारा गया। उसके कितने ही प्रधान-प्रधान अनुचर पकड़ लिये गये। बाकी सब भाग गये। इस काम में भी २९ वीं पलटन ने पूरी मुस्तैदी और सच्चाई दिखलायी।

इसके दो दिन बाद खबर आयी, कि जो सब सैनिक चढ़ाई के लिये रास्ता साफ करने के काम में लगे रहते हैं, उनके दो दलों ने मेरठ की खबर पाते ही बलवा करना शुरू कर दिया और लूट-पाट मचाते रूड़की से भाग कर मुरादाबाद चले आ रहे हैं। यह समाचार पाते ही कप्तान ह्विस २९ वीं पलटन के कुछ सिपाही और दो तोपें लिये हुए उनकी राह रोकने चले। दुश्मनों को इस बात का पता लग गया और वे मुरादाबाद का रास्ता छोड़, तराई की तरफ चल पड़े। उधर से भी उनकी राह रोकने का प्रबन्ध कर लिया गया था। इसलिये वे गिरफ्तार हो गये और कप्तान ह्विस के पहुंचने पर उनके कुल अस्त्र-शस्त्र और भोजन-वस्त्र छीन लिये गये। वे भीख मांगते हुए बरेली की ओर चले गये।

२९ वीं पलटन की ये कार्रवाइयां देख अधिकारी उनकी तरफ से निश्चिन्त हो रहे। पर थोड़े ही दिनों में उनका भ्रम दूर हो गया।

मुरादाबाद में दुष्टों की कोई कमी नहीं थी। ये लोग सदा इसी ताक में रहते थे कि कब मौका पायें और मनमानी लूट-पाट शुरू कर दें। सिपाही इन लोगों के कार्य में बड़ी बाधा डालते थे, इसलिये इन लोगों ने उन्हें मेल में ले आने के इरादे से अँगरेजों के हिन्दू तथा मुसलमान धर्मों को चौपट करने की छिपी नीति की ओर इशारा करना शुरू किया। इस बात का ठीक जैसा चाहिये वैसा ही असर हुआ—सिपाहियों के मन में घोर सन्देह उत्पन्न हो गया। सब लोग आपस में पूछने लगे कि यह क्या मामला है? लेकिन बरेलीवाले क्या करते हैं यही देखने के लिये वे चुपचाप हो रहे।

बरेली रुहेलखण्ड का सदर स्थान था, इसीलिये सब लोगों का ध्यान उसी पर था। मुरादाबाद के अधिकारी भी उत्सुकता के साथ बरेली की ही तरफ ध्यान लगाये हुए थे। उनका यह पूरा विश्वास था, कि यदि बरेली में शान्ति बनी रहेगी, तो यहां भी कुछ गोलमाल न होगा। इसी तरह मई का महीना बीत गया। एकाएक पहली जून को बरेली की डाक नहीं आई—वहां से कोई चिट्ठी पत्री मुरादाबाद नहीं पहुंची। इस पर चारों ओर शोर हो गया कि बरेली में बलवा हो गया। आधीरात के बाद रामपुर के नवाब का भेजा हुआ एक दूत बरेली की खबर लेकर मुरादाबाद आया। उसने विलसन साहब के पास आकर कहा कि बरेली के सिपाही बलवाई हो गये हैं। उन्होंने कितने ही अंगरेजों को मार डाला है। इसलिये आप लोग शीघ्र ही यहां से भाग जाइये। यह सुन साहब उसी रात को फौजी अफसरों से सलाह करने चले। २ री जून के सबेरे ही

सब अफसरों की यह सलाह हुई, कि शाही झण्डा, तोप बन्दूक और खजाना लेकर मेरठ चला जाना ही इस समय उचित है। सब लोग तो राजी हो गये ; पर छावनी के सिपाही राजी न हुए। उन्होंने कहा,—"हम हरगिज मुरादाबाद छोड़कर मेरठ न जायेंगे ; क्योंकि सम्भव है, वहां जाने पर हमें या तो फांसी पड़ना पड़े, या कैदखाने की हवा खानी पड़े।"

दूसरे दिन सवेरे सिपाहियों में बड़ी उत्तेजना फैली। यह देख, लाचार हो, अधिकारियों ने खजाने के पहरेदारों के हाथ में ही वहां की सारी जमा-पूँजी सौंप देने का इरादा किया ; खुद विलसन साहब और मुरादाबाद के कलक्टर सैण्डर्स साहब सिपाहियों के हाथ में खजाना सौंपने को आये। जिस समय विलसन साहब खजाने से थैलियाँ निकाल-निकाल कर गाड़ी पर रख रहे थे, उसी समय सैण्डर्स साहब ने सब की आँखें बचाकर बहुतसे स्टाम्प के कागज नष्ट कर डाले। कुल ७५०००) रुपये इस प्रकार सिपाहियों के सुपुर्द किये गये। यह देख, वे बड़े नाराज हुए और खजाञ्ची को पकड़ कर तोप के पास ले जाकर बोले,—"जल्द बोलो, कि और रुपया कहां रखा है ? नहीं तो तोप के मुंह पर रखकर उड़ा दिये जाओगे !" कप्तान फैड़ी नामक फौजी अफसर ने आगे बढ़कर बेचारे खजाञ्ची की जान बचायी। इसी समय जज और मजिस्ट्रेट साहब घोड़ोंपर सवार हो जाने लगे। यह देख, चार उत्तेजित सिपाही उन पर गोली छोड़ने के लिये तैयार हुए ; पर सूबेदार भवानीसिंह और हवलदार बलदेवसिंह के कहने पर, कि तुमने

प्रतिज्ञा की है, कि किसी अंगरेज को न मारेंगे, इन्होंने उन्हें अछूता छोड़ दिया ।

इस प्रकार यहां के गोरे हाकिम मेरठ चले गये । सभी फौजी अफसर नैनीताल चले गये । रह गये बेचारे फिरंगी । इन्होंने भागकर जान बचा ली होती, तो अच्छा होता ; पर ये न भागे ; इसलिये सब की कसर इन्हीं पर निकाली गयी । कितने ही मारे गये ; कितने ही मुसल्मान बनाकर दिल्ली भेज दिये गये ।

अब बरेली में क्या-क्या हुआ, सो भी सुन लीजिये । उस समय बरेली में गोरी फौज नहीं थी । देशी सिपाहियों में १८ वीं और ३८ वीं पैदल-सेना, ८ वीं अनियमित घुड़सवार-पल्टन और एक गोलन्दाज-सेना थी । ब्रिगेडियर शिबोल्ड इन सबके अध्यक्ष थे । जज, कमिश्नर, कलक्टर आदि हाकिमों के सिवा बहुतसे युरोपियन और फिरङ्गी यहाँ बनज-ब्योपार के बहाने से रहते थे । सब मिला कर प्रायः १०० क्रस्तान इन विदेशी प्रवासियों के ही अन्त-र्गत थे । इनके अतिरिक्त बहुतसी मेमें और उनके बाल-बच्चे भी वहां थे ।

यहां के देशी सिपाहियों में रुहेलखण्ड और विलायती पठा-नोंकी संख्या अधिक थी । पहले-पहल तो मेरठ और दिल्ली की घटनाओं का हाल सुनकर ये लोग चुपचाप रहे ; पर पीछे रोज-रोज नयी-नयी बाजारू गप्पें उड़-उड़ कर इनमें भी चञ्चलता उत्पन्न करने लगीं । यह देख, गोरे अफसरों के कान खड़े हो गये, २१ वीं मई को उन्हें परेड के मैदान में इकट्ठा कर तरह-तरह

से समझाया-बुझाया गया। ऊपर जिस ८ वीं अनियमित घुड़-सवार-सेना का जिक्र आया है, उसकी ओर से राजभक्ति का पूर्ण विश्वास दिलाया गया और शेष सबने भी सेनापति की नसीहतों पर सन्तोष प्रकट किया। इसलिये ८ वीं घुड़सवार पल्टन की संख्या दूनी कर दी गयी और रोज उसमें २०।२५ आदमी नये-नये भर्ती होने लगे। चारों ओर शान्ति दिखाई देने लगी।

एकाएक कहीं से एक चिनगारी उड़ती हुई आयी और आग लग गयी। २९ वीं मई को एक देशी अफसर ने बरेली के अन्यतम सेनापति कर्नल ट्रूपसे आकर कहा, कि आज मैंने नदी में स्नान करते समय १८ वीं और ६८ वीं पैदल सेना के लोगों को शपथ करके कहते हुए सुना है, कि वे आज दोपहरमें युरोपियनोंके नामो-निशान भी मिटा देंगे। कर्नल ने यह बात सुनते ही कप्तान मेकेञ्जी को इस बात की खबर दी। उनके अधीन सिपाहियों ने विपत्ति के समय उनके पास खड़े रहने का वचन दिया।

पर उस दिन कहीं कुछ गड़बड़ न मची। इधर फिरोजपुर के बहुतसे सिपाही बरेली आ पहुंचे और लगे तरह-तरह की बातें सुना-कर लोगों के मन में भय उत्पन्न करने। फिरोजपुरवालों ने यह खबर उड़ायी, कि इस देश के सिपाहियों को मार कर नेस्तोनाबूद कर देने के लिये बहुतसे गोरे बुलाये गये और तोपें तैयार रखी गयी हैं। यह सुनते ही बारूद में मानों पलीता लग गया और सभी सिपाही गोरों को शत्रु समझ, उनकी जान लेने को उतारू हो गये। एक मुसलमान सज्जन ने कमिश्नर ऐलेकजेण्डर साहब को सिपाहियों-

के इस बदले हुए तौर की सूचना दे उन्हें सावधान हो जाने के लिये कहा। पर उन्होंने इधर ध्यान न दिया।

३० वीं मई का दिन भी शान्ति से कट गया। ३१ वीं मई का दिन आ पहुंचा। बहुतों को यह विश्वास हो गया था, कि इसी तारीख को सारे हिन्दुस्तान के सिपाही एक साथ गोरों पर हमला करेंगे। पर इस दिन भी सवेरे के १० बजे तक यहां कुछ गोलमाल न मचा। उस समय तक यहां अफसरों का यही विश्वास था, कि यहां के सिपाही हमारे साथ दगाबाजी न करेंगे। एकाएक ११ बजे के करीब गोलन्दाज सैनिकों की छावनी से गोला दगने की आवाज सुनाई पड़ी। यह सुन युरोपियन बड़े चकराये। सब लोग समझ गये, कि यह इशारा सिपाहियों को इकट्ठा करके युरोपियनों पर हमला करने के लिये किया गया है। मारे डर के गोरों के प्राण सूख गये।

तोप दगने के पहले ही बहुतसे युरोपियन विपद् के भय से [illegible] की छावनी के पीछेवाले आम के बगीचे में जा पहुंचे थे—घुड़सवार पल्टन इनके करीब ही थी। इधर देखते-ही-देखते बड़े भयङ्कर कार्यों का अनुष्ठान आरम्भ हुआ। ६९ वीं पल्टन के कितने ही सिपाही अँगरेजों के बँगलों पर गोलियां चलाने के लिये दौड़ पड़े। आग का संयोग होते ही बँगलों के छप्पर जलने लगे। जेठ की आंधी ने आग को और भी मदद पहुंचायी। सब बँगले बात-की-बात में खाक में मिल गये। अब के वे लोग गोरों की जानें लेने के लिये तैयार हुए। ज्यों ही अँगरेज सामने पड़ जाता,

उसी पर गोली छोड़ दी जाती। ब्रिगेडियर शिवोल्ड की भी छाती में गोली लगी और अपने घोड़े पर ही सवार रहते हुए स्वर्गवासी हो गये। उनके मरने पर कर्नल ट्रूप ही सेनापति हुए। इस समय तक केवल गोलन्दाज और ६८ वीं पैदल सेना ही विद्रोही हुई थी, और लोग किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो चुपचाप खड़े हुए थे। पर उन्हें शीघ्र ही अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लेना पड़ा।

पूर्वोक्त वाग में छिपे हुए अफसरों ने विपद् आयी देख, वहां से नैनीताल भाग जाना ही निश्चय किया और अपने घोड़े उसी तरफ दौड़ा दिये। घुड़सवार-सैनिक कुछ दूर तक तो उनके साथ गये; पर पीछे २२।२३ आदमियों को छोड़ कर और सब लोग लौट आये। इन लोगों ने आकर १८ वीं पल्टन के सिपाहियों को भी भड़-काना शुरू किया। ये लोग भी उनकी राय में आ गये और अँग-रेजों के विरुद्ध उठ खड़े हुए। उन्हीं लोगों के भरोसे पर इनके अफसर अव तक नैनीताल नहीं भागे थे। इसी से इन पर आफत आ गयी। यद्यपि ये लोग आखिरी वक्त में भागने को तैयार हुए, पर रास्ते में कितने ही दुष्टों ने उन्हें बुरी तरह मार डाला। कुछ थोड़े से लोग वड़े-बड़े कष्टों से मुरादाबाद के जज विल्सन साहव की चेष्टा से अपनी प्राण-रक्षा कर सके।

इसके वाद बरेली के अन्यान्य युरोपियनों की अग्नि-परीक्षा का समय आ पहुंचा। इनमें से कुछ लोगों ने तो बड़ी-बड़ी मुसीबतें झेल कर अपने प्राण बचाये और कुछ विद्रोहियों के हाथ बुरी तरह मारे गये। सब युरोपियनों के घर-बार जला दिये गये, खजाना

लुट गया, कैदखाने के दरवाजे खोल दिये गये और शहर भर के बदमाशों ने बल्वाइयों के साथ मिल कर युरोपियनों के जानोमाल की खूब छिछालेदर की। मतलब यह, कि अँगरेजों की सत्ता एकबारगी उठ गयी। अब यह विचार होने लगा, कि यहां का शासन-कर्त्ता कौन बनाया जाये। दो मुसलमान सम्भ्रान्त पुरुष यहां वंश-गौरव के कारण बड़े प्रसिद्ध थे, जिनमें एक का नाम खाँ बहादुर खाँ और दूसरे का मुबारकशाह था। खाँ बहादुरखाँ रुहेलखण्ड के प्रथम और प्रधान शासनकर्त्ता हाफिज रहमतखाँ के खानदान में से थे। हाफिज साहब ने जिस तरह वीरता के साथ अँगरेजों से युद्ध किया था, और अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिये हँसते-हँसते प्राण-विसर्जन किया था, वह बात रुहेले भूले नहीं थे। उन्हीं के वंशधर होने के कारण खाँ बहादुरखाँ पर सबकी बड़ी श्रद्धा थी। इसलिये सब लोग उन्हें ही बरेली का सूबेदार बनाना चाहते थे। यह देख मुबा-रकशाह भी पीछे उनसे मिल गये, पर अपनी दाल गलती न देख, भीतर-ही-भीतर डाह और बैर से भरे रहे।

खाँ बहादुरखाँ हाफिज रहमतखाँ के वंशधर होने के कारण तो सरकार से पेन्शन पाते ही थे, बहुत दिनों तक अँगरेजों के अधीन सदर-अमीन का काम करने के कारण भी इस बुढ़ापे में उन्हें पेन्शन मिलती थी। इसीलिये अँगरेजों ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था, कि ये भी किसी दिन उनके खिलाफ हो जायेंगे। अस्तु, इन्होंने बरेली की सूबेदारी पाते ही खोज-खोज कर कृस्तानों को मरवाने का निश्चय कर लिया। जहाँ-तहाँ से पकड़-पकड़ कर अँगरेज और

ईसाई उनके सामने लाये जाते और तुरत ही फाँसी पर लटका दिये जाते थे। खाँ साहब ने किसी पर दया नहीं दिखायी।

यह लीला समाप्त होते ही उन्होंने सूबे भर में अपने कर्मचारी नियुक्त किये, नगर भर में छत्र-चँवर आदि राज-चिन्हों से युक्त उनकी सवारी निकली, उनके नाम से सर्वत्र घोषणा-पत्र जारी हुआ और दिल्ली के बादशाह के नाम पर मालगुजारी वसूल होने लगी। पर प्रजा सुखी नहीं हुई। कमजोर आदमी हर जगह पीसे जाने लगे, खाँ साहब इसका प्रतिकार न कर सके। इसलिये सारे बरेली-प्रान्त में गड़बड़ मच गयी। जिन जमीन्दारों और ताल्लुकेदारों के अधिकार अँगरेजों की बदौलत छिन गये थे, वे लोग भी बलवाइयों के दल में मिलकर सर्वत्र अन्धेर मचाने लगे।

इस समय बरेली में एक पल्टन ऐसी थी जो खाँ बहादुर खाँ की वैसी शुभचिन्तक नहीं थी। उनकी तरफ से खाँ साहब को सदा खटका बना रहता था। गोलन्दाजों के सूबेदार बख्त खाँ भी, खाँ बहादुर के मुखालिफ मुबारकशाह के पक्षपाती थे। वे शाह साहब की सम्मति के अनुसार दिल्ली चले गये और अपने एक मित्र के द्वारा शाह साहब ने बादशाह के पास सूबेदारी पाने के लिये प्रार्थना-पत्र लिख भेजा। बख्तखाँ ने दिल्ली पहुंच कर बलवाइयों की कैसी मदद की, यह हम दिल्लीवाले प्रकरण में लिख आये हैं।

इधर शाहजहाँपुर में भी बरेली की ही भांति भयङ्कर घटनाओं का सूत्र-पात हुआ। यहां उस समय २८ वीं पल्टन के कुछ सिपाही रहते थे, जिनके अध्यक्ष कप्तान जेम्स थे। १५ वीं मई को मेरठ का

संवाद शाहजहांपुर पहुंचा। इससे शहरवालों में बड़ी उत्तेजना फैली, पर सिपाहियों की ओर से [illegible] निश्चिन्त रहे। उन्हें इस बात का पूर्ण-रूप से विश्वास था, कि यदि यहां के सर्व-साधारण कुछ गड़बड़ मचायेंगे भी, तो सिपाही हमारी सहायता करेंगे।

३१ वीं मई को रविवार था। उस दिन सभी गोरे गिरजे में उपासना करने गये हुए थे। उसी समय एकाएक सिपाही बिगड़ खड़े हुए। सब स्थानों की तरह यहां भी गोरों की कोठियां जलायी और लूटी गयीं। कैदी रिहा कर दिये गये। खजाना लूट लिया गया, शहर भरके बदमाश बलवे में शामिल हो गये. आस-पास के गांवों के लोग भी बलवाई हो गये और रात ही भरमें अँगरेजों की प्रधानता बिलकुल नष्ट हो गयी। यहां के अँगरेजों पर आफत का पहाड़ टूट पड़ा। लूट-पाट मचाने के बाद बलवाइयों ने उनकी जान लेने का सङ्कल्प कर लिया। जिस समय वे लोग गिरजा-घर में उपासना कर रहे थे, उसी समय सिपाही उन पर टूट पड़े। कितने ही मारे गये और कितने ही स्त्री-पुरुष गिरजे के किवाड़ बन्द कर भीतर ही छिप रहे।

इसी समय छावनी में भी गड़बड़ मची। कप्तान जोन्स सिपाहियों को समझाने जाकर जान से हाथ धो बैठे। एक अँगरेज डाक्टर अस्पताल से लौट कर चले आ रहे थे। इसी समय सिपाहियों ने उन पर हथियार चलाना चाहा ; किसी तरह बच-बचा कर वे अपनी कोठी पर आये और एक गाड़ी में अपनी स्त्री और बच्चे

को रख कर आप उसके कोचवक्स पर बैठे हुए गिरजे की ओर चल पड़े। गाड़ीके अन्दर उनकी एक युरोपियन नर्स भी थी। कुछ सिपाहियों ने उस गाड़ी पर निशाना ताना और क्षण भर में डाक्टर को मार कर नीचे गिरा दिया गया। उनकी स्त्री भी घायल हुई, पर किसी तरह गिरजे में पहुंच कर अपने और बच्चे के प्राण बचा सकी।

इसी समय १०० सिपाहियों ने अपने देशवासियों का साथ छोड़ कर अँगरेजों का साथ दिया और बचे-बचाये लोगों को "पौहाई" नामक स्थान में ले जाने का इरादा किया; पर जब वहां के लोगों ने इनकी रक्षा करने में अपने को असमर्थ बतलाया, तब ये लोग अयोध्या के प्रान्तवर्त्ती "मुहम्मदी" नामक स्थान में चले आये। वहां उन पर कैसी बीती, सो आगे चल कर दिखलाया जायेगा।

बदाऊँ-शहर बरेली से ३० मील दूर पर बसा हुआ है। एडवर्ड्स साहब यहां के मैजिस्ट्रेट और कलक्टर थे। ये पहले भारत-सरकार के पर-राष्ट्र विभाग में काम कर चुके थे, इसलिये ये भलीभांति समझ गये थे, कि दीवानी अदालतों की व्यवस्था से इस देश के आदमियों की जैसी शोचनीय अवस्था हो गयी है, उससे ये अवश्य ही किसी-न-किसी दिन अँगरेजों के विरोधी हो जायँगे। इसीलिये जिस दिन इन्होंने मेरठ का समाचार सुना, उसी दिन अपने बाल-बच्चों को नैनीताल भेज दिया। इसके बाद वे अकेले ही कर्त्तव्य-क्षेत्र में डटे रहे, क्योंकि उस समय और कोई अँगरेज वहां नहीं था।

२५ वीं मई को उन्हें समाचार मिला, कि आज ही किसी-न-किसी समय यहां के मुसलमान विद्रोह मचा देंगे। उस दिन 'ईद'

का पर्व था। मुसलमान खुशियाँ मना रहे थे। इसी समय मैजि-स्ट्रेट ने कुछ प्रधान-प्रधान मुसलमानों को बुला भेजा। उन्होंने जिस समय तक बलवा शुरू होने का समाचार सुना था, तब तक के लिये उन्हें रोक रखना चाहा और उनसे शान्ति-रक्षा के सम्बन्ध में बातचीत करने लगे। आमन्त्रित मुसलमानों में कितने ही बिगड़े-दिल नजर आये और उनसे बड़ी देर तक खासी बमचख होती रही। आखिर, निर्द्धारित समय बीत जाने पर उन्हें छुट्टी दे दी गयी। दो दिन तक कहीं कुछ गोलमाल न हुआ। अकेले एडवर्ड्स साहब बड़ी चिन्ता में पड़े-पड़े दिन काटने लगे।

तीसरे दिन जब वे भोजन करने बैठे, उसी समय एटा के मैजि-स्ट्रेट फिलिप्स साहब, जो उनके रिश्तेदार थे, कुछ सवारों को साथ लिये हुए उनके पास आ पहुंचे। एटा जिले में भी तमाम में बलवा मच गया था—नर-हत्या, गृह-दाह, सम्पत्ति-नाश आदि सभी काण्ड वहाँ भी हो रहे थे। इसीसे फिलिप्स बड़ी-बड़ी मुसीबतों से जान बचाते हुए इनके पास चले आये थे। ऐसी विपद में पड़ कर भी फिलिप्स साहब उनके पास सशरीर चले आये, यह देख, एडवर्डस साहब को सुख तो अवश्य हुआ, पर वे उनकी सहायता का कोई प्रबन्ध न कर सके। उस समय सभी को अपने-अपने विभाग की रक्षा की ही पड़ी हुई थी,—कौन किसको और क्या मदद करे ?

इसी समय एडवर्ड्स साहब ने सुना कि बलवाई लोग मिलसा नामक एक प्रसिद्ध वाणिज्य-स्थान पर हमला करने की तैयारी कर रहे हैं। यह सुनते ही उन्होंने बरेली के कमिश्नर के पास खबर भेज-

कर सहायता मंगवायी। ३१ वीं मई की रात के नौ बजे कमिश्नर का उत्तर आया कि एक युरोपियन अफसर की अधीनता में एक पल्टन आपकी सहायता के लिये जा रही है। यह उत्तर पाकर बदाऊँ और एटे के मैजिस्ट्रेटों को बड़ा आनन्द हुआ। एडवर्ड्स साहब ने उसी समय एक सवार को आनेवाली फौज के अफसर की अगवानी के लिये भेजा। फिलिप्स साहब ने रात के ३ बजे ही एटे की ओर जाने का विचार किया। इसके बाद दोनों जने सोने चले गये।

ठीक २॥ बजे रात को एडवर्ड्स साहब का एक अर्दली दौड़ा हुआ उनके पास आया और उन्हें सोते से उठा कर बोला—"आपने जिस सवार को भेजा था वह लौट आया है। उसका कहना है कि बरेली के सिपाही नहीं आये; क्योंकि वहाँ के सब सिपाही विद्रोही हो गये हैं। वहाँ के गोरों की धड़ल्ले से हत्या हो रही है। खजाना लुट गया है। ४००० कैदी छुटकारा पा गये हैं जो यहाँ तक लूट-पाट मचाते हुए चले आ रहे हैं। वह यह भी कहता है कि बरेली के सिपाही यहाँ भी लूटमार मचाने के इरादे से चले आ रहे हैं।"

यह खबर पाते ही एडवर्ड्स साहब के देवता कूच कर गये। उन्होंने फिलिप्स साहब को जगा कर उन्हें भी यह समाचार सुनाया। उन्होंने देर करना मुनासिब न समझ उसी समय घोड़ा कसवाया और चल पड़े। फिलिप्स साहब के चले जाने पर दो निलहे गोरे और एक अन्य युरोपियन कर्मचारी एडवर्ड्स साहब से आ मिले। अब तक एडवर्ड्स साहब ने बदाऊँ छोड़ कर कहीं जाने का इरादा नहीं

किया था, क्योंकि बदाऊँ में जो पल्टन थी उसके देशी अफसरों ने उन्हें इस बात का पूरा वचन दिया था कि यहाँ के सिपाही हरगिज़ बरेलीवालों का साथ न देंगे। पर जिस दिन यह बात एडवर्ड्स साहब से कही गयी उसी दिन घटनाचक्र का रुख बदल गया। बरेली के सिपाही यहाँ भी आ पहुंचे और रूगे सिपाहियों को अपनी तरफ़ मिलाने। लाचार मैजिस्ट्रेट साहब को भागना पड़ा। वे अपने तीनों गोरे साथियों के साथ घोड़े पर सवार हो घर से बाहर निकले। वे कुछ ही दूर गये होंगे कि इतने में एक मुसलमान रईस ने उनके पास पहुंचकर कहा कि कैदखाने के कैदी छोड़ दिये गये हैं—वे लोग तमाम रास्ते बन्द किये हुए हैं, इसलिये आप लोग कहीं जाने का इरादा न कर घर में ही छिपे रहें। ये रईस बदाऊँ के पासवाले शेखपुरा गांव के रहनेवाले थे। मैजिस्ट्रेट साहब ने इन्हीं के घर छिप रहना चाहा। उस समय चारों ओर लूट-खसोट मची हुई थी। खुद मैजिस्ट्रेट के अर्दली और चपरासी इस लूट में शामिल थे। यह सब अपनी आँखों देख एडवर्ड्स साहब को क्रोध तो बहुत आया; पर उस समय क्रोध करके ही वे क्या कर सकते थे। इसलिये यह सब चुपचाप मन मार कर रह गये। जब वे लोग शेखपुरा पहुंचे, तब उपर्युक्त रईस के भाई ने आकर उनसे कहा कि इतने आदमियों के यहाँ रहने से सिपाहियों को इस बात का पता लग जायेगा, इसलिये आप लोग यहाँ से १८ मील दूर चले जाइये और वहाँ एक गाँव में जाकर छिप रहिये। इस पर एडवर्ड्स साहब को बड़ी नाराजी हुई, पर शेख साहब अपनी बात पर अड़े रहे। उन्होंने

कहा,—"आप अकेले यहाँ रह सकते हैं; पर औरों को मैं यहाँ नहीं रहने दूँगा। मुझे सिपाहियों के हाथ बेइज्जत होने का भी तो डर है!" इधर साहब के साथी उनका पिण्ड छोड़ने को तैयार नहीं थे। लाचार हिन्दुस्तानी वेश में वहाँ से जाकर उसी गाँव में आश्रय ग्रहण करना पड़ा। वहाँ इन पर क्या-क्या मुसीबतें गुजरीं या इनकी क्या अवस्था हुई यह हम आगे चलकर बतलायेंगे।

मैजिस्ट्रेट साहब के चले जाने पर उपद्रवियों की और भी बन आयी। लूट-पाट का बाजार बेतरह गरम हो उठा। जो जिसे पाता उसे ही लूट लेता। सब लोग अपने राजा आप ही हो गये। सिपाहियों के दिल्ली चले जाने पर शहर के गुण्डे, बदमाशों ने उनकी कसर मिटायी। खाँ बहादुरखाँ के नाम की चारों ओर दुहाई फिर गयी। नये नये राजकर्मचारी उनकी ओर से मुकर्रर किये जाने लगे। अँगरेजों की सत्ता सर्वथा नष्ट हो गयी।

अब के खाँ बहादुरखाँ ने अपनी जड़ मजबूत करने की चेष्टा करनी आरम्भ की। रुहेलखण्ड में हिन्दू बहुत बसते थे। उन्होंने हिन्दुओं को अँगरेजों के विरुद्ध उभाड़ना और अपनी ओर मिलाना शुरू किया। इसके लिये उन्होंने ढौण्डी पिटवायी कि यदि हिन्दू लोग इन ईसाई गोरों को जड़मूल से उखाड़ फेंकने में हमारी मदद करें तो गोकुशी का रिवाज हमेशा के लिये बन्द कर दिया जायेगा। इसके विपरीत जो लोग हमारा साथ न देंगे वे छः महीने जेल और जुर्माने की सजा भोगेंगे तथा गोकुशी जोरों पर होने लगेगी। कहीं अँगरेज लोग भी इसी तरह की बातें कहकर हिन्दुओं को अपनी

और मिलाने की चेष्टा न करें, इसलिये उन्होंने फिर भी घोषणा जारी की कि कोई इन अँगरेज़ों की बात न मानें, ये बड़े भारी दग़ाबाज़ और बेईमान हैं; और हरगिज़ अपना वादा पूरा न करेंगे। इन्होंने हमेशा इसी तरह के चकमे दे देकर इस देश के लोगों को अपनाकर अपना मतलब निकाला है। इसी तरह नाना प्रकार के झूटे-सच्चे आक्षेप अँगरेज़ों के ऊपर लाये जाने लगे। लोगों से परलोक के नाम पर पैसे भी वसूल किये जाने लगे। कुछ दिनों के लिये अँगरेज़ यहाँ से नेस्तोनाबूद हो गये।

इसी बीच में फ़र्रुख़ाबाद में भयानक घटना घटी। यह ज़िला यों तो आगरा डिवीज़न में था, किन्तु भौगोलिक सीमा के अनुसार रुहेलखण्ड का पड़ोसी और सामाजिक विषयों में ठीक रुहेलखण्ड के समान था। यहाँ भी मुसलमानों की प्रधानता थी। अँगरेज़ों की अमलदारी के पहले यहाँ सदा लूट-पाट, चोरी-डकैती और हत्याएँ हुआ करती थीं। इनकी सल्तनत में ये सब उपद्रव दूर हो गये। हाँ, यहाँ के रहनेवालों की प्रकृति ज्यों-की-त्यों बनी रही। मुसलमानों के जी में अँगरेज़ों पर बेतरह डाह भरा हुआ था। वे हमेशा अँगरेज़ों को यहाँ से निकाल बाहर करने का मौक़ा ढूँढ़ते रहते थे। अब के इस बलवे ने उन्हें पूरा मौक़ा दे दिया। मई महीना बीतते न बीतते सारे ज़िले में आगसी लग गयी।

यहाँ पर पुराने नवाब खानदान के बहुतसे लोग थे, जिनकी हालत इस समय बड़ी ही ख़राब थी। ये लोग भी यह मौक़ा देख उठ खड़े हुए। इनकी साज़िश से गाँव गाँव में लूट-पाट, ख़ून-ख़राबी होने

लगी। उस समय तक यहाँ के सिपाही बलवाई नहीं हुए थे। लूटपाट होने के एक महीने बाद इन्होंने अँगरेजों के विरुद्ध हथियार उठाया था।

सन् १८५७ के आरम्भ से ही बदमाशों ने हर गाँव में यह अफवाह फैला रखी थी कि अँगरेज हम लोगों की जाति और धर्म का नाश करने की धुनि में लगे हुए हैं। यद्यपि यह अफवाह देशके कोने-कोने में फैल चुकी थी तथापि यहाँ इसने बड़े गजब का असर दिखलाया। साथ ही एक और विचित्र किम्बदन्ती यहाँ फैली हुई थी। लोगों से कहा जा रहा था, कि अँगरेज हमारे घर से सब चांदी निकाल लेना चाहते हैं। इसलिये वे हमारे रुपये ले-लेकर चमड़े के रुपये जारी कर रहे हैं। इस अफवाह से व्यापार को बड़ा धक्का पहुंचा और लोगों के मन में अँगरेजों के प्रति और भी विद्वेष बढ़ गया।

फर्रुखाबाद के पठानों ने पास ही के फतेहगढ़ जिले में भी विष फैलाना आरम्भ किया। १० वीं मई को मेरठ में जो घटना हुई, उसकी खबर फतेहगढ़ के सिपाहियों को लग गयी थी और इससे वे उत्तेजित भी हुए, पर उन्होंने अपनी उत्तेजना जाहिर न होने दी। मई का महीना लगते ही ३ री जून को बरेली और शाहजहांपुर के समाचार यहाँ पहुंचे। इससे सिपाहियों की चंचलता बढ़ने लगी। यहां की पैदल सेना के अध्यक्ष कर्नल स्मिथ ने सारे अवध और रुहेलखण्ड में बलवा मचा देख चटपट सब मेमों-बच्चों और बीमार लोगों को कानपुर भेज देने का इरादा किया। उस समय कानपुर के निरापद होने तथा बहुतसे गोरे सैनिकों के वहां पहुंच जाने का समाचार आ चुका

था। इसीलिये उन्होंने ऐसा इरादा किया। शीघ्र ही १२—१३ नावें तैयार की गयीं और ४थी जून की रात के १बजे १७० गोरे, मेमें और बच्चे उनपर सवार हो कानपुर चले। उसी दिन कर्नल स्मिथ ने सरकारी खजाने के रुपये भी किले में पहुंचा देने चाहे थे, पर सिपाहियों के बाधा देने से यह काम रुक गया।

१६ वीं जून को एक पत्र कर्नल स्मिथ को दिखलाया गया जो अवध इलाके के सीतापुर नामक स्थान की ४१ वीं पल्टन के सूबेदार का भेजा हुआ था। इसमें सूबेदार ने लिखा था कि हमलोग अँगरेजों के खिलाफ हो गये हैं, अब तुम लोगों का धर्म है कि हमारा साथ दो, खजाना लूट लो और गोरे अफसरों की गर्दनें उतार डालो। अफसर ने कर्नल को यह पत्र दिखाया, उसने उन्हें इस बात का भी पक्का वचन दिया कि हम लोग इतने दिन कम्पनी की गुलामी करके अन्त में नमकहरामी न करेंगे। यह सुन कर्नल प्रसन्न हो गये और लगे गङ्गा का वह पुल तुड़वाने, जिसे पारकर सिपाही फतेहगढ़ पहुंच सकते थे। इस काम में यहां के सिपाहियों ने उनकी खूब सहायता की।

लेकिन जून के तीसरे ही सप्ताह में विप्लव की जो तरंग यहाँ उठी, वह यहां की १० वीं पल्टन के सिपाहियों को भी वहा ले गयी। उन्होंने कर्नल स्मिथ को साफ-साफ कह दिया, कि बस अब हम आपका साथ नहीं दे सकते—आप लोग किले में जाकर छिप रहें। लाचार, वे लोग किले में चले गये। पर वह किला मजबूत न था। वहां अस्त्र-शस्त्र और खाद्य-सामग्री की भी कमी ही थी। बड़ी मुश्किल से वे ४०-५० भेड़ें वहां ले जा सके। १२० आदमियों ने दुर्ग

में आश्रय लिया था, जिनमें केवल ३० ही हथियार चला सकते थे। शेष सब औरत-बच्चे थे।

इधर सिपाहियों ने खुल्लम-खुल्ला बलवा मचाना शुरू कर दिया। उन्होंने फर्रुखाबाद के नवाब तफज्जुलहुसैनखां को अपना सरपरस्त मान कर कैदखाने के कैदियों को रिहा कर दिया, खजाना लूट लिया गया। पंजाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह के पुत्र महाराज दिलीपसिंह के हीरे-मोती और अन्यान्य बहुमूल्य द्रव्य यहीं थे। वे सब उनके हाथ लगे। इन सब लूट की रकमों में से उन्होंने एक फूटी कौड़ी भी नवाब को नहीं दी। इधर सीतापुर के सिपाही पुल टूटा देख, नावों द्वारा गङ्गा पार कर फर्रुखाबाद चले आये। पर १० वीं पलटनवालों ने अपना लूटा हुआ धन इन लोगों को देना मंजूर नहीं किया। इस पर दोनों दलों में खासी ले-दे हो गयी। १० वीं पलटनवालों ने अपने अफसरों को न तो मारा, न उनके घर-बार जलाये और न उनके माल-असबाब लूटे। खजाने की लूट से जो कुछ रकम हाथ लगी, वही लेकर वे सन्तुष्ट हो गये और अपने-अपने घर चले गये। जो रह गये, उनके साथ ४१ वीं पलटनवालों की लड़ाई छिड़ गयी, दोनों ओर के बहुतसे लोग मारे गये। जो बाकी बचे, उन्होंने आपस में समझौता कर लिया और मिल-जुलकर किले में छिपे हुए अँगरेजों पर हमला करने के लिये २५ वीं जून का दिन निश्चित किया।

फर्रुखाबाद के नवाब ने इन बलवाइयों को रसद की मदद दी और अस्त्र-शस्त्रों की भी सहायता पहुंचायी। पर ये लोग २५ वीं

जून के ही इन्तजार में पड़े रहे। मौका देख, अँगरेज़ों ने भी अपनी रक्षा का उपाय आरम्भ किया।

२५ वीं जून को उन लोगों ने उन कुलियों पर गोलियां चलायीं जो किले की सफाई कर रहे थे। दूसरे दिन सबेरे ही उनकी दो तोपें किले पर गोले बरसाने लगीं। पर जब इस गोलाबारी का कोई नतीजा न हुआ, तब उन्होंने गोले बरसाने से हाथ खींच लिया। इसके दूसरे दिन वे सीढ़ियां लगाकर किले की दीवारों पर चढ़ने की चेष्टा करने लगे, पर वे ठीक जगह पर सीढ़ी न लगा सके। दूसरे दिन फिर यही चेष्टा जारी हुई; किन्तु उस दिन दुर्ग के भीतर से अँगरेजों ने गोलियां छोड़कर इन्हें बहुत नुकसान पहुंचाया। पांचवें दिन उन लोगों ने एक नयी तरकीब की। वे किले के पासवाले एक गांव में घुस गये और वहां के मकानों की छत पर से किलेमें गोलियां छोड़ने लगे। कुछ लोगों ने दुर्ग-द्वार के पासवाले मकान पर अधिकार कर लिया और किले की दीवार में छेदकर उसी की राह किले के गोल-न्दाजों पर गोलियां बरसाने लगे। इससे गोलन्दाज बड़े ही घबराये और तोपें छोड़ कर हट गये। इसके बाद सिपाहियों ने बैटरी लगा कर किले की बाहरी दिवार का कुछ अंश उड़ा दिया और दुर्ग पर अधिकार कर लेना चाहा; पर उनकी चेष्टा विफल हुई। भीतर से अँग-रेजों ने लगातार गोलियां बरसानी शुरू कीं। सिपाहियों का सेनापति मुलतानखां मारा गया; पर सिपाही भी हिम्मत हारे बिना दुबारा बैटरी लगाने की चेष्टा करने लगे।

इधर अँगरेजों ने संख्या में अत्यन्त थोड़े होने पर भी बड़ी बहादुरी से दुश्मनों का सामना किया और जब तक युद्ध-सामग्री

सारी खत्म न हो गयी, तब तक लड़ते ही रहे। अन्त में जब उनके हाथ कोई उपाय न रह गयी, तब उन्होंने भागने की ठहरायी।

सौभाग्य से वर्षा का जल बहुत बढ़ आया, इसलिये कर्नल ने गंगा की राह कानपुर चले जाने का इरादा किया। तीन बड़ी-बड़ी नावें मंगवायी गया। ३ री जुलाई की आधी रात को अँधेरे में ही वे लोग किले से निकल कर नावों पर आ सवार हुए। फतेहगढ़ से कुछ गोरे पहले ही भाग चुके थे। यह दूसरा दल था। पहला दल कानपुर की हलचल के समय विद्रोहियों के हाथ पड़कर एकदम यमपुरी भेज दिया गया था। इस दूसरे दल की भी बड़ी दुर्गति हुई। रात के २ बजे उनकी नावें चल पड़ीं। कर्नल स्मिथ, कर्नल गोल्डी और मेजर राबर्टसन एक-एक नाव के अध्यक्ष होकर चले। लेकिन कुछ ही दूर जाने के बाद कर्नल गोल्डी की नाव भाठे में पड़ गयी और उसका हाल नष्ट हो गया। नाव के सवारों पर सुन्दरपुर नामक एक गाँव के रहनेवालों ने आक्रमण कर दिया। अँगरेजों ने उन्हें खदेड़ भगाया और कर्नल स्मिथ की ही नाव पर चले आये।

इधर सिपाहियों को इन लोगों के भागने का पता चल गया और वे झटपट नावों पर सवार हो, उनके पीछे दौड़े। गङ्गा के दक्खिन किनारे पर तोप लगा दी गयी। नदी के दोनों तरफ के गांवों के लोग विशेष उत्तेजित हो रहे थे। खास करके मुसलमानों में तो बड़ा ही जोश फैला हुआ था। इसलिये बेचारे भगोड़ों की जानें आफत में पड़ गयीं। गांववालों ने इन पर हमला कर दिया। बेचारों को जान छुड़ानी मुश्किल हो गयी। इसी बीच मेजर राबर्टसन की नाव भी भाठे में

पड़ गयी। इतने में पीछा करनेवाले भी आ धमके। उस समय यह नाव सिंहरामपुर नामक गांव के पास पहुंची हुई थी। और कोई उपाय न देख मेमें बच्चों के साथ-साथ गंगा में कूद पड़ीं। कोई डूबा, कोई गोली खाकर मरा और कोई तलवार के घाट उतार दिया गया! मिस्टर राबर्टसन और उनके दोनों साथी किसी तरह बच गये। उनके भी चोट आयी थी और उनकी स्त्री तथा छोटेसे बच्चे की मृत्यु हो गयी थी। उनके साथ एक निलहे साहब थे। इन्होंने उन्हें बचाया, और एक डांड के सहारे उन्हें किनारे तक ले गये। वहां वे लोग 'कोल्हर' नामक एक गांव में जा छिपे। दोनों आदमी वहीं महीनों पड़े रहे। दो महीने बाद वहीं राबर्टसन साहब की मृत्यु हो गयी। नीलहे साहब उन्हें कब्र में दफना कर कानपुर चले आये।

इधर जो लोग सिपाहियों के हाथ कैद हुए थे, वे सब नवाब साहब के हुक्म से तोप से उड़ा दिये गये। हां, कर्नल स्मिथ की नाव सीधी कानपुर की ओर बढ़ती चली गयी। रास्ते में ये किसी गांव में खाने-पीने के लिये ठहर जाते और जो कुछ मिलता, उसीसे सन्तोष कर लेते थे पीछे कानपुर पहुंचने पर इनकी क्या गति हुई, इसका किसी इतिहास में पता नहीं चलता। बहुत सम्भव है, कि ये भी वहीं मार डाले गये हों। कहते हैं, कि जून महीने के आरम्भ में फतेहगढ़ और उसके आसपास के स्थानों में २०० से भी अधिक ईसाई थे। ये सबके सब किसी-न-किसी स्थान में मार डाले गये थे।

इस तरह फर्रुखाबाद प्रान्त अँगरेजों से खाली हो गया और नवाब तफज्जलहुसैनखाँ यहां के सर्वे-सर्वा हो रहे। इस तरह अक-

ण्टक होकर वे मनमानी मौजें उड़ाने लगे। उनके नाम से फर्मान जारी होने लगे, उनकी तरफ से राजकर वसूल होने लगा। परन्तु जिन-जिन लोगों ने बड़े-बड़े ओहदे पाने के लोभ से नवाब की सहायता की थी, उन सभी की आशा पूरी न हुई—कितनों को तो उलटा दण्ड भी मिला, इसलिये भीतर ही भीतर ईर्ष्या-द्वेष भी काम करता रहा। ये लोग पुनः अँगरेजों की प्रधानता हो जाने की राह देखने लगे। आगे चल कर इन्हीं लोगों से अँगरेजों को सहायता मिली।

अब हम यहां बदाऊँ के मैजिस्ट्रेट का कुछ हाल लिखना जरूरी समझते हैं। वे हिन्दुस्तानी के वेश में एक गांव से दूसरे गांव में जाकर दिन काट रहे थे। उस समय गांववालों ने उनकी और उनके साथियों की बड़ी सहायता की। इसी तरह घूमते-घामते वे लोग अवध के इलाके में आ पहुंचे और 'धर्मपुर' के हरदेवबख्श नामक एक बड़े इज्जतदार जमीन्दार के घर पर आ टिके। उन लोगों ने इन्हें कुछ दिनों तक बड़ी खातिर से रखा, पर जब फर्रुखाबाद के नवाब को इस बात का पता लग गया, तब उन्होंने हरदेवबख्श से इन भगोड़ों को अपने पास भेज देने के लिये कहला भेजा। हरदेवबख्श ने इन्हें चुपचाप अपने यहां से हटाकर एक गुप्त-स्थान में भेज दिया। इस तरह एक हिन्दुस्तानी की मदद से उनके प्राण बचे। हरदेवबख्श ने नवाब को सच्ची बात नहीं बतलायी।

इस प्रकार जहां पश्चिमोत्तर-प्रान्त में हर जगह अँगरेजों के विरुद्ध घोर विद्रोहाग्नि प्रज्वलित हो रही थी, वहां ऐसे भी उदार

और सदाशय मनुष्यों की कमी नहीं थी, जिनकी सहानुभूति अर्जन करने में ये लोग समर्थ हुए। तात्पर्य यह, कि भारत-वासी मात्र अँगरेज़ों के शत्रु नहीं हुए थे। यदि होते, तो और कैसा सर्वनाश उपस्थित होता, यह सोचने से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

———*———

पन्द्रहवां अध्याय ।

रियासतों की रियासत ।

पश्चिमोत्तर-प्रान्त के भिन्न-भिन्न स्थानों की यह दशा देख, छोटे लाट कालविन साहब बड़े ही बेचैन थे। इसीलिये उनका ध्यान देशी रियासतों की ओर आकृष्ट हुआ। उन्होंने सोचा, कि इस विप्लव-विद्रोह के जमाने में कहीं देशी रजवाड़े भी बिगड़ खड़े हुए, तो बड़ा बुरा होगा। अतएव उन्होंने एक-एक करके सबकी थाह लेनी शुरू की।

ग्वालियर आगरे से केवल ६५ मील पर है। वहां के महाराज जयाजीराव सिन्धिया उस समय केवल २३ वर्ष के नवयुवक थे। उनके यहां ८००० हजार से भी अधिक सिपाही और २६ तोपें अँगरेजों की देखभाल में रहती थीं। इनके सिवा हिन्दुस्तानी अफसरों के अधीन १० हजार और सिपाही थे। महाराज की अँगरेजों पर बड़ी भक्ति थी। इसलिये कालविन साहब ने जब इनसे सहायता मांगी, तब इन्होंने अपने शरीर-रक्षक सिपाहियों को ही आगरे रवाना कर दिया, क्योंकि अन्य सिपाहियों पर रेजिडेण्ट साहब का विश्वास नहीं था। कहते हैं, कि ये लोग दिल-ही-दिल में बलवाई सिपाहियों से सहानुभूति रखते थे और रात को दिल्ली या कलकत्ते से आये हुए दूतों से गुपचुप सलाहें किया करते तथा गङ्गाजल हाथ

में लेकर अँगरेजों का सत्यानाश कर डालने की कसम खाते थे। रेजिडेण्ट मैकफर्सन साहब इसीलिये उन पर सन्देह करते थे और महाराज का भी इसी कारण उन पर विश्वास नहीं था। उनकी ओर से हमेशा खटका बना रहने के कारण रेजिडेण्ट ने तमाम अँगरेज़-महिलाओं और बच्चों को अपने निवास-गृह में बुलाने और वहां ग्वालियर के खास सिपाहियों का पहरा बैठाने का प्रस्ताव किया; पर यह प्रस्ताव सैनिक अफसरों को पसन्द नहीं आया।

महाराज का किला लश्कर में है और छावनी मुरार में है। लश्कर से मुरार छः मील दूर है। महाराज सदा छावनी के अँगरेजों की रक्षा का ध्यान रखते थे।

एकाएक २८ वीं मई को झूठमूठ का शोर उठ खड़ा हुआ, कि ग्वालियर के सिपाही आज युरोपियनों पर धावा बोलनेवाले हैं। चारों ओर भगदड़ मच गयी। अन्त में अफवाह झूठी निकली और अँगरेजों को अपनी इस बुज़दिली पर शर्मा जाना पड़ा। जब महाराज को यह बात मालूम हुई, तब वे स्वयं घोड़े पर सवार हो, रेज़िडेण्ट के पास पहुंचे और वहां खूब कड़े पहरे का प्रबन्ध कर सब मेमों और बच्चों को अपने महलों के पासवाले एक मकान में रखने का रेजिडेण्ट से अनुरोध किया। दूसरे ही दिन महाराज की इच्छानुसार ये लोग उसी मकान में पहुंचा दिये गये। इसपर सिपाही लोगों ने आपत्ति करते हुए कहा, कि इस प्रकार हमारे विश्वासपात्र होने में सन्देह किया गया, यह अच्छा नहीं हुआ। उनके बहुत कहने-सुनने से अफसरों ने अपने स्त्री-बच्चों को फिर छावनी में ही

बुलवा लिया। महाराज ने ग्वालियर में रहनेवाले सभी अँगरेजों की रक्षा के लिये खूब अच्छा बन्दोबस्त कर दिया। मतलब यह, कि महाराज के दिल में अँगरेजों की तरफ से किसी प्रकार की खुटाई नहीं थी।

यहां के सिपाहियों के एक अफसर का नाम ब्रिगेडियर 'रामसे' था। उन्हें अपने सिपाहियों पर सोलहोआने विश्वास था। इसी-लिये जब रेजिडेण्ट ने छोटे लाट को तार भेजा, कि आप महाराज के शरीर-रक्षकों को लौटा दीजिये, तब इन्होंने उनके पास लिख भेजा, कि यहां कुछ गोलमाल नहीं है—आप उन सैनिकों को न लौटायें। पर यहां मामला ही कुछ औरका और हो गया। देशी रियासतों में जो अँगरेजों की फौजें थीं—एक-एक करके वे भी बागी होने लगीं। ४ थी जून को नीमच की छावनी के कुछ सिपाही विद्रोही हो गये। ७ वीं जून को झांसी की एक पल्टन बिगड़ उठी। सीपरी और जब्बलपुर के सिपाहियों के रङ्ग भी बेरङ्ग नजर आने लगे। इधर अँगरेजों की अमलदारी में हर जगह गोलमाल मचा ही हुआ था। कहीं से शान्तिदायक समाचार नहीं आते थे—चारों ओर मानो घोर अशान्ति राज्य कर रही थी।

ग्वालियर में भी षड्यन्त्र होना आरम्भ हुआ। महाराज के कान भरे जाने लगे—अंगरेजों को निकाल बाहर कर देने से उनकी शक्ति बहुत बढ़ जायेगी, यह बात आईने की तरह झलकने लगी। महाराज सब की सुन लेते, पर उनके चकमे में नहीं आते थे। इसी लिये खास दरबार के सिपाही उनके इन्तजार में ही लगे रह गये।

इधर अंगरेजों की अधीनस्थ सेना में चञ्चलता पराकाष्ठा को पहुंच गयी और वह खुल्लमखुल्ला विद्रोह मचाने के लिये अधीर हो उठी।

१४ वीं जून को रविवार था। उस दिन ग्वालियर के एक अंगरेज फौजी अफसर का बच्चा मर गया था। इसलिये बहुतसे ईसाई उसे कब्र में गाड़ने के लिये कब्रस्तान में गये हुए थे। सिपाहियों ने इन लोगों को जाते देखा और इन लोगों के दुःख से दुखित भी हुए। दिन किसी तरह कट गया। शाम को बड़ी गड़बड़ मची। झूठमूठ का हल्ला हुआ कि अंगरेज उनपर हमला करने आ रहे हैं। इसपर सब लोग हथियार बन्दूक सम्हालने लगे। चारों ओर होहल्ला मच गया। अफसर लोग चुपचाप आराम कर रहे थे। शोरगुल और बन्दूकों की आवाज सुन सन्नग-सज्जा से सज्जित हो छावनी की ओर दौड़े। पर उनमें से बहुतसे मारे गये। मेमें अपनी और बच्चों की जान बचाने के लिये निरापद स्थानों की ओर भाग चलीं। मेजर ब्लेक दूसरी पैदल सेना के अध्यक्ष थे। उन्हें एक अन्य पलटन के सिपाहियों ने मार डाला। ब्लेक साहब के दलवाले उन्हें बहुत मानते थे, इसीलिये उनकी हत्या से दूसरी पैदल सेनावालों पर बेतरह बिगड़ उठे। उन लोगों ने स्वयं उनके कफन-दफन का प्रबन्ध कर दिया। इसी प्रकार जहां कुछ लोग युरोपियनों को मारने-कूटने में लगे हुए थे, वहां कितने ही सिपाही उनकी रक्षा करने में भी प्रवृत्त हो जाते थे। कितने ही अंगरेज सिपाहियों की पीठ पर गट्ठर की तरह लदकर निरापद स्थानों में पहुंचा दिये गये। कितने ही रेजिडेन्सी या खास महाराज के महलों में जा छिपे।

इन सब घटनाओं से महाराज को बड़ा दुःख हुआ। रेजिडेण्ट मैकफर्सन साहब यह सब हाल सुन झटपट उनसे मिलने के लिये चले आ रहे थे। रास्ते में कितने ही उत्तेजित सिपाहियों ने उनपर हमला करना चाहा, पर एक मराठे ने उनकी जान बचा दी। उसने विद्रोहियों को इस बात का विश्वास दिलाया कि हम लोग इन्हें कैदी बनाकर महाराज के पास लिये जा रहे हैं। इससे उन लोगों ने हाथ खींच लिया और साहब महाराज के पास पहुंच गये। महाराज ने इन घटनाओं पर हार्दिक दुःख प्रकट किया। साहब ने उनसे कहा कि जो लोग भाग रहे हैं या भागना चाहते हैं उन्हें चम्बल या आगरे रवाना कर देने के लिये गाड़ियों का बन्दोबस्त होना चाहिये। इसके सिवा उन्होंने स्वयं महाराज के पास ही रहने की इच्छा प्रकट की; पर महाराज ने इस डर से यह बात अस्वीकार की कि कहीं विद्रोही इस बात को जान जायेंगे, तो उन्हींके महलों पर हमला करने लगेंगे। इसीलिये उन्होंने रेजिडेण्ट साहब को भी भाग जाने की सलाह दी। लाचार वे जाने को राजी हो गये। महाराज ने चाहा था कि अँगरेजों के जो सिपाही ग्वालियर में रहते थे, उन्हें रुपये पैसे देकर यहां से हटा दिया जाये, पर रेजिडेण्ट साहब को यह बात पसन्द नहीं आयी। उन्होंने कहा कि जब तक आगरे और दिल्ली में पुनः शान्ति नहीं हो जाती, तब तक इन्हें हटाना ठीक नहीं; क्योंकि यहां से हटकर विद्रोहियों से जा मिलेंगे।

ग्वालियर से भागे हुए अँगरेज चम्बल की ओर चले। रास्ते में बेचारों पर बड़ी मुसीबतें आयीं। विद्रोहियों ने कितने साहबों को

मार डाला और उनके रुपये पैसे लूट लिये। हां, उन्होंने किसी स्त्री-बच्चे पर हाथ नहीं उठाया। जो लोग बचे, वे चम्बल से दो मील दूर एक गांव में पहुंचे। वहां २०० विद्रोहियों से उनका सामना हुआ। इन विद्रोहियों का अध्यक्ष जहांगीरखां नामका एक हवलदार था जो पहले गवर्नमेण्ट का नौकर था और पीछे ग्वालियर दरबार का नौकर हो गया था। यह ऊपर से दिखला रहा था कि हम लोग साहबों की जान नहीं लेना चाहते; पर इसके दिल में खुटाई थी। इसी समय ग्वालियर के मन्त्री दिनकरराव के भेजे हुए ठाकुर बलदेवसिंह अपने हथियारबन्द सिपाहियों के साथ यहां आ पहुंचे और इन्हींकी सहायता से बेचारे अँगरेज सकुशल चम्बल-नदी पार कर सके। मैकफर्सन साहब की प्रार्थना के अनुसार धौलपुर के राना ने इन लोगों के लिये कई हाथी और कुछ सैनिक भेज दिये थे। भगोड़े हाथियों पर सवार हो गये और सैनिक इन्हें पहरे में रखे हुए चलने लगे। धौलपुर के राना ने उन्हें कुछ दिन बड़ी खातिर से अपने यहाँ रखा। इसके बाद वे १७ वीं जून को बड़ी-बड़ी मुसीबतें झेलकर आगरे पहुंच गये। भगोड़ों के दो और दल क्रमशः १९ वीं और २२ वीं जून को आगरे पहुंचे।

कुल २० अँगरेज ग्वालियर में मारे गये। महाराज ने नियमानुसार उन्हें कब्र में गड़वा दिया।

यथासमय ये समाचार कालविन साहब के पास पहुंचते रहे। मैकफर्सन के परामर्श के अनुसार सिपाहियों के ग्वालियर में ही रुके रह जाने से उनके द्वारा आगरे पर आक्रमण होने का भय न रहा; पर

और-और जगहों से जैसी खबरें आ रही थीं, उनसे लाट साहब की चिन्ता लगातार बढ़ती चली जाती थी। नीमच के सिपाही बिगड़ गये थे और आगरे की तरफ बढ़ते चले आते थे। पहले यह स्थान ग्वालियर के ही अधीन था; पर पीछे अँगरेजों ने अपनी छावनी स्थापित की थी और इसे अपने अधिकार में कर लिया था। इस समय यहां २ पैदल सेनाएँ और १ नं० के घुड़सवार पलटन के कुछ सिपाही थे। नीमच से १५० मील उत्तर नसीराबाद में दो पैदल सेनाएँ, एक गोलन्दाज सेना और एक बम्बैया पलटन थी। इनमें पैदल और गोलन्दाज सिपाहियों के रंग बेरंग हो रहे थे। २८ वीं मई को तीसरे पहर इनमें से कुछ लोग एकाएक तोपों के पास जाकर गवर्नमेण्ट के विरुद्ध उठ खड़े होने की सूचना देने लगे। बम्बैया पलटन पहले इनसे नहीं मिली, पर जब इस पलटन को उत्तेजित सिपाहियों पर हमला करने और तोपों को छीन लेने का हुक्म दिया गया, तब इन्होंने भी बात अनसुनी कर दी। इससे उत्साहित हो पैदल और गोलन्दाज सेना ने झट अफसरों पर हमला कर दिया। दो मरे और दो घायल हुए। अब क्या था? साहबों की जान के लाले पड़ गये। वे लोग झटपट अपनी सब सम्पत्ति को छोड़ केवल स्त्री-बच्चों को साथ ले वहां से भागकर ब्यावर चले गये। सर्वत्र की तरह यहां के सिपाहियों ने लूट-पाट कर और साहबों के बँगले जलाकर दिल्ली की यात्रा कर दी।

नसीराबाद के समाचार नीमच पहुंचते ही यहां भी वही लीला आरम्भ हो गयी। ३ री जून को यहां के सिपाहियों ने भी साहबों

के घर जलाने और सम्पत्ति-नाश करने के बाद दिल्ली की राह नापी। हां, इन लोगों ने किसी अफसर की हत्या नहीं की।

नीमच के सिपाहियों के दिल्ली की ओर जाने का समाचार सुन आगरे में हड़कम्पसा मच गया; क्योंकि इधर से ही दिल्ली जाने का रास्ता था। पर ३०० मील का रास्ता तय कर वे यहां आयेंगे और आगरे पर आक्रमण करेंगे, इसका कुछ ठीक निश्चय नहीं था, इसलिये कालविन साहब को वैसी कुछ चिन्ता नहीं थी; पर उन्हें कुछ तो फिक्रमन्द होना ही पड़ा। हां, इन्दौर की तरफ उनकी बड़ी तेज निगाह थी; क्योंकि वह रियासत विद्रोहियों के अखाड़े के बहुत पास थी।

उस समय भी 'मऊ' में अँगरेजों की छावनी थी। यह स्थान इन्दौर राज्य में है। २३ वीं पैदल सेना और १ ली घुड़सवार सेना के कुछ सिपाही और एक दल गोलन्दाजों का था। पैदल सेना में १६ अँगरेज और ११७९ देशी, घुड़सवारों में १३ अँगरेज और २८२ देशी तथा गोलन्दाजों में ६१ अँगरेज और ९८ देशी सैनिक पुरुष थे। २३ वीं पैदल सेना के सेनापति कर्नल प्लाट ही इस छावनी के सबसे बड़े अफसर थे।

इन्दौर की रेज़िडेन्सी यहां से ६ मील दूर पर थी। रेजिडेण्ट के रहने का दुतल्ला मकान पत्थर का बना हुआ और बाग के अन्दर था। रेजिडेन्सी के लम्बे-चौड़े अहाते के अन्दर ही बाजार और सरकारी रेजिडेण्ट का मकान था। इसी की पश्चिम तरफ से मऊ जाने की सड़क गयी हुई थी। रास्ते के दक्खिन और पूर्व की ओर बाग-बगीचे

और वृक्षों की श्रेणी लगी थी। पश्चिम की तरफ बाजार और कई एक मकान थे। यहीं पर रेजिडेन्सी की रक्षा के लिये महाराज होलकर की तरफ से जो सैनिक मुकर्रर थे, वे रहते थे। डाकखाना, तारघर और खजाना था। इधर भूपाल की घुड़सवार सेना रहती थी। पहले सर राबर्ट हैमिल्टन इन्दौर के रेजिडेण्ट थे। पर बीमारी के कारण जब वे विलायत चले गये, तब उनकी जगह पर कर्नल हेनरी डुराण्ड अस्थायी रूपसे काम कर रहे थे। ये बड़े नामी फौजी अफसर थे। अफगान-युद्ध में उन्होंने बड़ी नामवरी हासिल की थी। १८५७ में ये गवर्नर जेनरल के द्वारा सेण्ट्रल इण्डियाके एजेण्ट मुकर्रर हुए थे। पीछे सर राबर्ट हैमिल्टन के छुट्टी में चले जाने पर वे उनकी जगह पर मुकर्रर किये गये। सर राबर्ट हैमिल्टन बड़े धीर और सहिष्णु व्यक्ति थे। परन्तु डुराण्ड साहब बड़े कड़े आदमी थे। उनके हर काम में फौजीपन भरा रहता था। इसलिये फौज से हटाकर उन्हें राजनीतिक कार्य में नियुक्त करना अच्छा नहीं हुआ, क्यों? इसका हाल आगे लिखा जाता है।

इस समय इन्दौर के महाराज को उमर कुल २१ साल की थी। हैमिल्टन साहब ने उन्हें उचित शिक्षा दिलाने में कोई कसर नहीं की थी। उम्मेदसिंह नामक एक उच्च शिक्षा प्राप्त और दूरदर्शी ब्राह्मण उनके शिक्षक थे? इनकी शिक्षा के प्रभाव से महाराज सब तरह से सुयोग्य हो गये थे। हैमिल्टन साहब के जमाने में महाराज को कभी किसी तरह की असुविधा नहीं होने पाती थी। कोई गड़बड़ होते ही वे झट उसको शान्ति-पूर्वक मिटा देते थे; पर डुराण्ड साहब हिन्दु-

स्तानियों को बड़ी नीची निगाह से देखते थे। महाराज को वे हर तरह दबाने रखना चाहते थे। वे अपने को उनका स्वामी और नियन्ता समझते थे, वे हरदम उन्हें नीचा दिखाने की धुन में रहते थे। इसीलिये महाराज उनसे सदा कुढ़े रहते थे।

इस समय इन्दौर के चारों ओर अशान्ति फैली हुई थी। पश्चिमोत्तर-प्रान्त में हर जगह तहलका मचा हुआ था। ग्वालियर, नसीराबाद और नीमच के सिपाही बागी हो रहे थे। दिल्ली अँगरेजों के हाथ से निकल गयी थी। सभी लोग अँगरेजों को यहां से मार-कूट कर निकाल बाहर करने की धुन में थे।

ऐसी अवस्था में रेजिडेण्ट के दुर्व्यवहार से दुःखित होते हुए भी महाराज तुकोजीराव होलकर अँगरेजों के विरुद्ध न हुए। हाँ, उन्हें चारों ओर की परिस्थिति देख-देख कर बड़ी चिन्ता हो रही थी। उनकी चिन्ता का एक कारण यह भी था कि उस समय यहां हथियार बन्दूकों आदि की बड़ी कमी थी, इसीलिये महाराज ने बम्बई के गवर्नर लार्ड एलफिनिस्टन के पास दो हजार बन्दूकें, ६०० पिस्तौलें और ४ लाख कार्तूस भेज देने के लिये लिखा। गवर्नर ने सब तो नहीं; पर आधा देना स्वीकार किया। उस समय तक डुरांड साहब को महाराज की तरफ से बिलकुल निश्चिन्तता थी। जून महीने तक सब जगह शान्ति बनी रही। १ जुलाई को एकाएक ज्वालामुखी-पर्वत फूट पड़ा।

उस दिन यहाँ के सैनिक एकाएक अँगरेजों के विरुद्ध उठ खड़े हुए। सुबह का वक्त था। साहब लोग चाय-पानी में लगे हुए थे,

देशी सिपाही नहाने-धोने और रसोई पकाने में फँसे थे। इसी समय एकाएक तोप दगी। घुड़सवार सेना के सआदत खाँ नामक सैनिक ७।८ और सवारों को साथ लिये सब जगह चिल्ला-चिल्ला कर यह कहता हुआ नजर आया, कि—"बस भाइयो! झटपट तैयार हो जाओ और इन अँगरेजों को मार डालो—यही महाराज साहब का हुक्म है।" देखते-ही-देखते बहुतसे आदमी उनके पीछे हो गये। इन्दौर-दरबार के सिपाही एकदम बिगड़ उठे। सब-के-सब अँगरेजों के विरोधी हो गये। कर्नल डुराण्ड ने रेजिडेन्सी की रक्षा के लिये जो तोपें महाराज से मांगी थीं, उन्हीं से गोले बरसने आरम्भ हो गये। पहले भूपाल के घुड़सवारों और पैदल-सैनिकों की छावनी में गोले बरसाये गये। कर्नल ट्रैवर्स उन लोगों के अध्यक्ष थे। उन्होंने उन लोगों को विद्रोहियों का सामना करने के लिये ललकारा; पर वे साफ इनकार कर गये। उलटे उन्हीं के घोड़े को सिपाहियों ने घायल कर डाला, उनकी तलवार की मूठ तोड़ डाली। बड़ी-बड़ी मुश्किलों से वे जान बचा कर भागे।

कर्नल डुराण्ड तो यह हाल सुन, भौंचकसे हो रहे। जिन हिन्दुस्तानियों को वे एकदम तुच्छ पदार्थ समझते थे, उनका इस तरह उठ खड़ा होना देख, वे जैसे विस्मित हुए, वैसे ही क्रोधित भी हुए। उनका सारा फौजीपन काफूर हो गया, वे भागने को तैयार हो गये। साथ ही अन्यान्य युरोपियन और उनके बाल-बच्चे भी जान लेकर भाग चले। ३०० भील, भूपाल के कुछ पैदल सिपाही और २०० घुड़सवार उनके रक्षक होकर चले। जाते-जाते इन लोगों ने देखा,

कि इनके पीछे इनके सब घर-बार जला दिये गये ; क्योंकि उधर से धुएँ का पहाड़सा उठ रहा था और आग की लपटें आस्मान तक उठ रही थीं। लाचार, ये लोग भाग कर भूपाल की दयावती बेगम की शरण में चले आये ; पर बेगम ने उन्हें बहुत दिनों तक अपने यहां टिका रखने में कुशल नहीं समझी, इसलिये उन्हें कहीं और चले जाने को कहा। अछता-पछता कर उन्हें भूपाल छोड़ देना पड़ा। वे लोग बहुत दिनों तक प्राण-रक्षा के लिये इधर-उधर घूमते रहे।

इधर मऊ की छावनी का भी रंग पलटने लगा। कर्नल प्लाट अपने सिपाहियों पर पूरा विश्वास रखते थे ; पर गोलन्दाजों के कप्तान हैंगरफर्ड को इन पर सन्देह था, इसलिये उन्होंने तोपों को खुली जगह में रखवा देने की कर्नल प्लाट से आज्ञा मांगी। उनकी प्रार्थना स्वीकृत हुई। तब उन्होंने गोरी बीवियों और बच्चों की रक्षा के लिये एक और तोप को उचित स्थान पर रखवाने की प्रार्थना की। पर कर्नल ने यह कह कर उन्हें रोका, कि इससे सिपाहियों को यह मालूम हो जायेगा, कि उन पर सन्देह किया जा रहा है और इसका नतीजा अच्छा न होगा। अतएव युरोपियनों की रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया।

१ ली जुलाई को होलकर के सिपाहियों के विद्रोही हो जाने का समाचार सुन, कप्तान हैंगरफर्ड अपनी तोपें लिये हुए इन्दौर की ओर चले। रास्ते में ही उन्हें इन्दौर से अँगरेजों के भाग जाने का हाल मालूम हो गया, इसलिये वे बीच से ही लौट आये। यहां आकर उन्होंने सेनापति से इन्दौर का हाल सुनाया और किले पर

तोपें चढ़ा देने के लिये कहा। पर कर्नल प्लाट ने फिर वही तर्क उपस्थित किया और कोई ऐसा काम करना नहीं चाहा, जिससे सिपाहियों के मन में सन्देह हो ; पर हैंगरफर्ड ने अपना हठ नहीं छोड़ा—वे उन्हें लगातार उकसाते रहे। लाचार, उन्हें हुक्म दे देना पड़ा। बस, वे अपनी तोपें किले में ले गये। इसी समय अशान्ति के चिन्ह प्रकट होने लगे। एकाएक उस दिन रात को २३ वीं पलटन के रसोई-घरों में आग लग गयी, आसपास के मकानों में भी आग पहुंच गयी और रात्रि का अन्धकार भेदकर अग्नि का उज्ज्वल प्रकाश चारों ओर फैल गया। उस दिन रात को ९ बजे कर्नल प्लाट ने डुराण्ड साहब के पास खबर भेजी थी, कि यहां सब मङ्गल है ; पर ठीक एक ही घण्टे बाद—अर्थात् १० बजे ही यह अग्नि-लीला आरम्भ हो गयी और साथ-ही-साथ सदा के आज्ञाकारी सिपाही अपने अफसरों की जान के गाहक बन गये। कर्नल को तो काठ-सा मार गया। वे झटपट दौड़े हुए हैंगरफर्ड के पास पहुंचे और उनको तोपें तैयार रखने का हुक्म दिया। इसके बाद वे घोड़े पर सवार हो, सिपाहियों को समझाने-बुझाने के लिये आये ; पर इसी समय एक सिपाही ने गोली मार कर उनकी वक्तृता यों ही समाप्त कर दी। उनके साथी भी इसी तरह मार डाले गये। इसी तरह पहली घुड़सवार पलटन के एक अफसर को भी गोली मार दी गयी। गोली वैसी सांघातिक नहीं थी, इसलिये वे घायल हो भाग जाने की चेष्टा करने लगे। पर तुरत ही सिपाहियों ने उन्हें पकड़ कर उनका सिर तलवार से काट डाला। उसी रात को कितने ही अफसरों

का सफाया कर दिया गया। बाकी के लोग किसी-न-किसी तरह जान बचा कर भाग गये।

इधर हैंगरफर्ड चुपचाप न रहे। उनकी तोपें तैयार रखी थीं, पर कहीं कोई बलवाई सिपाही उन्हें नजर न आया। इसलिये वे किले से निकल कर छावनी की तरफ आये और अन्धेरे में ही छावनी पर गोले बरसाने लगे। सिपाहियों ने उनकी तरफ गोलियां छोड़ीं, पर उनके निशाने अन्धेरे में ठीक न बैठे। हैंगरफर्ड की तोपों की बाढ़ के सामने सिपाही देर तक डटे न रह सके। वे इन्दौर की तरफ बढ़ चले। इनके चले आने से इन्दौर के बलवाई सिपाहियों के हौसले और भी बढ़ गये।

सिपाहियों के इन्दौर चले आने से हैंगरफर्ड साहब एक प्रकार से निश्चिन्त हो रहे। उन्होंने मरे हुए अफसरों के मुर्दे गड़वा दिये और विपत्ति के निवारण के लिये आवश्यक प्रबन्ध करने लगे। उन्होंने मऊ में फौजी कानून जारी कर दिया। इसके बाद उन्होंने महाराज होलकर के दिल की थाह लेने के लिये उनके पास एक पत्र लिखा, कि मेरे पास ऐसी बहुतसी गुमनाम चिट्ठियां आयी हैं, जिनसे मालूम होता है कि आप विद्रोहियों का पक्ष ले रहे हैं, पर हमें इस विषय में सन्देह है, आप लिखिये कि क्या बात है? इसके उत्तर में होलकर-राज ने अपने ऊपर लगाये हुए मिथ्या अभियोग का खण्डन किया और सारा हाल सच-सच बतला देने के लिये अपने यहां के दो अफसरों को उनके पास भेजा। उनकी बातें सुन, हैंगरफर्ड परम सन्तुष्ट हो रहे। इसके बाद वे

इन्दौर और मऊ में अपनी बुद्धि के अनुसार उचित व्यवस्था करने लगे।

इस समय युवा महाराज बड़ी चिन्ता में पड़ गये थे। इन्दौर और मऊ में गोलमाल होने से उन पर भी कलङ्क लगता था। पर वास्तव में वे अँगरेजों के पक्षपाती थे। १ ली जुलाई से ३ री जुलाई तक चारों ओर उत्तेजना फैली रही। बहुतसे युरोपियनों को महाराज ने अपने यहां छिपा रखा। विद्रोहियों के बार-बार ललकारने पर भी महाराज ने इन शरणागतों को उनके हाथ में नहीं दिया। ४ थी जुलाई को महाराज घोड़े पर सवार हो उत्तेजित सिपाहियों के बीच में आ खड़े हुए और उन्हें शान्ति का पाठ पढ़ाने लगे, पर उन लोगों ने इनकी एक न सुनी और अँगरेजों के दुर्गुणों का बखान करते हुए इन्हें अपना सिरधरू बनाना चाहा। इस पर महाराज ने कहा,—"मैं न तो अपने बाप-दादों की तरह साहसी और वीर ही हूं और न स्त्रियों और बच्चों की हत्या का पक्षपाती। जो लोग ऐसे कर्म करते हैं, उनका साथी मैं किसी तरह नहीं हो सकता।" यह कह, वे अपने महलों में चले आये। सिपाहियों में से कुछ लोगों ने तो शान्ति-भाव धारण कर लिया और बाकी के सब लोग लूट के माल और तोपें आदि लिये हुए दिल्ली की ओर चले गये। सर्व-साधारण ने शहर में उत्पात मचाने से हाथ खींच लिया। महाराज ने सरकारी खजाने का जितना रुपया सुरक्षित रह गया था, वह सब आश्रित युरोपियनों के साथ हैंगरफर्ड साहब के पास भेज दिया। अपने यहाँ के हीरे-मोती और कम्पनी-कागज भी उन्होंने वहीं भेज

दिये। इसके बाद उन्होंने बम्बई के छोटे लाट, कर्नल डुराण्ड और अन्यान्य अँगरेज अधिकारियों के पास पत्र लिख कर अपनी नेक-नीयती और दोस्ती का उन्हें विश्वास दिलाया और साफ कह दिया, कि यद्यपि सिपाही इस समय बागी हो गये हैं, तथापि मेरी उनके साथ रत्ती भर भी सहानुभूति नहीं है।

इसी समय खबर आयी, कि कप्तान हचिनसन को मालवा के अन्तर्गत अमझेरे के अधिपति ने अपने किले में कैद कर रखा है। अमझेरा ग्वालियर के अन्तर्गत एक छोटीसी रियासत है। कप्तान हचिनसन इन्दौर के रेजिडेण्ट की तरफ से भीलों की बस्ती में सरकारी एजेण्ट की तरह से रहते थे। वे सर राबर्ट हैमिल्टन के दामाद थे। हैमिल्टन साहब की भलमनसाहत से होलकर-नरेश उनके सब नाते-रिश्तेवालों को अपना सगा समझते थे। इसीलिये यह समाचार पाकर वे बड़े चिन्तित हुए। पर यह समाचार सत्य नहीं था। कप्तान हचिनसन उस समय भूपावर नामक स्थान में भील सैनिकों के साथ मौजूद थे। यह स्थान अमझेरे के पास ही है। २ री जुलाई को जब यहां यह समाचार आया कि होलकर के सिपाहियों ने इन्दौर की रेजिडेंसी पर हमला कर दिया है और स्वयं महाराज इनके अगुआ बने हैं, तब मालवे के सभी छोटे-बड़े राज्यों में हलचलसी मच गयी। कप्तान हचिनसन ने सुना कि अमझेरे के सिपाही उनपर हमला करने को चले आ रहे हैं। २ री जुलाई की रात को खबर आयी कि धार के कुछ सिपाही भूपावर की तरफ हमला करते आ रहे हैं। यह सब समाचार सुन सब भील भाग

गये—केवल ३० जने हचिनसन साहब के पास रह गये। यह देख कप्तान और उनके यहां रहनेवाली मेमों ने बालबच्चों के साथ वेश बदले हुए भाग जाने की ठहरायी। अन्त में वे लोग फारिस के रहनेवाले व्यापारी का वेश बना वहां से 'झबुआ' नामक रियासत की ओर चले गये। यह रियासत इन्दौर और अमझेरे के बीच में थी। यहां के अधिपति जोधपुर राजवंश के थे। भागे हुए लोगों ने राजा के पास पत्र लिखकर अपनी सहायता के लिये १०० भीलों को बुलवा लिया और उनको साथ लिये हुए झबुआ राज्य में पहुंच गये।

वहां के राजा उस समय सोलह वर्ष के नाबालिग थे—उनकी दादी सारा राजकाज चलाती थीं। बूढ़ी रानी ने इन शरणागतों की रक्षा का पूरा बन्दोबस्त कर दिया। होलकर ने जब यह अफवाह सुनी कि कप्तान हचिनसन झबुआ राज्य में कैद हैं, तब वहां अपने कुछ सैनिक उनका उद्धार करने के लिये भेजे; पर पीछे जब उन्हें उसका हाल मालूम हुआ तब उन्हें लौट आने का हुक्म भेजा और शरणार्थियों को इन्दौर ले आने के लिये कुछ रक्षकों को रवाना किया। कप्तान हचिनसन को कुछ लोगों ने इन्दौर के समाचार सुनकर वहां जाने से रोका; पर उन्हें महाराज पर पूरा विश्वास था, इसलिये यहां चले आये और ऊपरके अधिकारियोंकी अनुमतिसे यहां के रेजिडेण्ट बनाये गये। कप्तान हैंगरफर्ड ने उन्हें सारा "चार्ज" सौंप दिया।

इन सब बातों से महाराज होलकर की नेकनीयती साफ जाहिर हो जाती है, तो भी कर्नल डुराण्ड ने उन पर कलङ्क लगाने की चेष्टा

की थी ! अपनी कायरता पर तो उन्हें शर्म न आयी, उल्टे सदाशय होल्करनरेश पर मिट्टी उछालने चले थे, इसलिये वे आप ही बेइज्जत हुए और महाराज की विश्वसनीयता सब पर प्रमाणित हो गयी। पर कर्नल डुराण्ड ने महाराज का पिण्ड न छोड़ा। वे बराबर होल्कर को नीचा दिखाने की चेष्टा करते ही रहे। बलवे के बाद जब वे भारत-सरकार के पर‌राष्ट्र विभाग के मन्त्री हुए, तब उन्होंने होलकर को बलवाइयों का सार्थी प्रमाणित करने की बड़ी चेष्टा की और बलवे में अंगरेजों की सहायता करने के लिये जिन-जिन राजाओं को सरकार की ओर से सम्मानित किया, उनमें इनका नाम नहीं आने दिया। तो भी सभी इतिहास-लेखक उन्हें निर्दोष मानते हैं, बम्बई के छोटे लाट उनको एकदम निर्दोष समझते थे और अन्त में भारत-सरकार को भी उन्हें सम्मानित करना ही पड़ा।

केवल इन्दौर ही नहीं, कर्नल डुराण्ड ने 'धार' का राज्य अंगरेजी रियासत में मिला लेने पर बड़ा जोर डाला था; पर अन्त में यही कहकर उनकी बात उड़ा दी गयी कि जब बड़ी-बड़ी रियासतों के मालिक भी बलवाइयों के सामने बेकाबू हो रहे थे, तब इस छोटे-से राज्य की क्या हकीकत थी ? बेचारे राजा का कोई अपराध नहीं। इस तरह कर्नल ने इस मामले में भी मुँहकी खायी। जो हो, कर्नल की तरक्की न रुकी और वे ऊपर चढ़ते-चढ़ते पञ्जाब के लाट तक हो गये।

इधर राजपूताने के रजवाड़े क्या करते हैं, यही देखने के लिये सब लोग उत्सुक हो रहे थे। परन्तु उनमें कहीं से असन्तोष नजर नहीं

आता था । हां, सब स्थानों की तरह यहाँ भी अफवाह उड़ रही थी कि अंगरेज हमारी जाति और धर्म के नाश में लगे हुए हैं ।

राजपूताने में मेवाड़, जयपुर, जोधपुर आदि १८ छोटे-बड़े राजा हैं । इनमें १७ तो हिन्दू राजा हैं और 'टोंक' नामक एक रियासत विख्यात पिण्डारी सरदार अमीरखाँ के वंशधरों के हाथ में है । इन सब राज्यों में गवर्नमेण्ट की तरफ से एक-एक एजेण्ट और सबके ऊपर एक रेजिडेण्ट रहते हैं । उस समय सर हेनरी लारेन्स के ही एक भाई कर्नल जार्ज लारेन्स यहां के रेजिडेण्ट थे । ये भी अपने भाई की तरह बड़े निडर, साहसी और कर्त्तव्यपरायण थे । जिस समय मेरठ की दुर्घटना का समाचार इनके पास पहुंचा, उस समय ये आबू पहाड़ पर थे । खबर पाते ही इन्होंने एक घोषणापत्र जारी किया, जिसमें सब देशी रजवाड़ों से शान्तिरक्षा करने और अपनी-अपनी सेना तैयार रखने का अनुरोध किया गया था । इसी समय पश्चिमोत्तर-प्रान्त के छोटे लाट कालविन साहब ने उन्हें सब गोरे सिपाहियों तथा अफसरों के सिवा कुल सरकारी खजाना लिए हुए आगरा चले आने को लिखा । इस समय राजपूताना छोड़ना इन्हें उचित न जंचा इसलिये इन्होंने कालविन साहब की बात टाल दी । वे भी इनकी बात मान चुप हो रहे । साथ ही उन्होंने इनको ब्रिगेडियर-जेनरल का पद प्रदान कर राजपूताने भर के सैनिकों का अध्यक्ष बना दिया ।

उस समय राजपूताने के केन्द्र-स्थान अजमेर में बहुत रुपया जमा था । कहीं बलवाइयों की निगाह उसपर न पहुंचे, इसलिये सबसे

पहले कर्नल लारेन्स ने अजमेर की ही रक्षा को तरफ ध्यान दिया। वहां उस समय सिपाहियों की एक पल्टन थी। साथ ही कुछ 'माहीर' नामक निम्नश्रेणी के सैनिक भी थे। 'माहीर' पहले बड़े ही असभ्य थे। अजमेर के कमिश्नर डिक्सन साहब की चेष्टा से उनकी अवस्था पहले से कुछ उन्नत हुई थी। उन दिनों डिक्सन साहब बीमार होकर 'देवार' नामक स्थान में पड़े हुए थे। वहीं बेचारे की मृत्यु भी हो गयी। पर उनकी शिक्षा के प्रभाव से माहीर बड़े काम के आदमी हो गये थे। माहीरों के साथ सिपाहियों की कभी बनती नहीं थी। इसी लिये ब्रिगेडियर जेनरल लारेन्स ने सिपाहियों को अजमेर से हटा लेना चाहा। इसी निश्चय के अनुसार लेफ्टिनेण्ट कारनेल के अधीन एक नयी माहीर-पल्टन अजमेर में ला रखी गयी और सिपाही यहां से हटा लिये गये। इससे अजमेर के साथ ही साथ सारा राजपूताना एक प्रकार से बच गया।

उदयपुर के राणा बाप-दादों के ही समय से स्वाधीन-चेता होते चले आये थे, इसलिये उन पर अङ्गरेजों की विशेष दृष्टि थी। कप्तान सावर्स यहां के अँगरेज एजेण्ट थे। उनसे मिलकर राणा ने अपनी विश्वस्तता का उन्हें विश्वास दिलाया और समय आनेपर सहायता देने का भी वचन दिया। इधर-उधर से भागे हुए बहुतसे अङ्गरेज और उनके स्त्री-पुत्रों की रक्षा कर राणा ने अपने वचन की सत्यता प्रमाणित कर दी।

जयपुर के राजा ने भी अंगरेजों को अच्छी सहायता दी। उन्हीं-की सेना आगरे की सरहद की रक्षा कर रही थी। जोधपुर के राजा

तरह-तरह के घरेलू झगड़ों में फँसे रहने पर भी अंगरेजों की सहायता करने से बाज नहीं आये। उन्होंने २००० सैनिक और ६ तोपें देकर इनकी अच्छी सहायता की।

इस प्रकार मध्यभारत और राजपूताने की सभी देशी रियासतों ने अँगरेजों के साथ अच्छी रियायत की और यद्यपि अङ्गरेजों को उनकी ओर से खटका बना ही हुआ था, तथापि अपने को विश्वास-पात्र प्रमाणित करने में उन्होंने कोई कसर नहीं रखी।

सोलहवां अध्याय।

——:※:——

कालविन साहब के अन्तिम दिन।

—:◯:—

पश्चिमोत्तर-प्रान्त के छोटे लाट कालविन साहब का शरीर दिनों-दिन छीजता चला जाता था। एक तो उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था, दूसरे चारों ओर से चिन्ताजनक समाचार आ आकर उन्हें और भी बेचैन किये डालते थे। इसके अलावा उन्हीं के देशवासी उन्हें अयोग्य और कापुरुष सिद्ध करने के लिये आसमान सिरपर उठाये हुए थे। तो भी वे धीरता के साथ अपना काम किये जा रहे थे।

जून महीने के अन्त में आगरे में खबर उड़ी, कि नीमच और नसीराबाद के बलवाई सिपाही रास्ते भर ऊधम-उत्पात मचाते और बहुतसे लोगों को अपने दल में मिलाते हुए आगरे की ओर चले आ रहे हैं। जांच करने पर यह खबर सच ही निकली। पता चला, कि १२ तोपें लिये हुए दो हजार छः सौ बलवाई चले आ रहे हैं। यह मालूम होते ही छोटे लाट ने सब कृस्तानों को किले में चले आने की आज्ञा दी। २ री जुलाई को बलवाई आगरे से २३ मील दूर फतेहपुर-सीकरी नामक स्थान में पहुंच गये। आगरे की रक्षा के लिये विशेष प्रबन्ध करना अब अत्यन्त आवश्यक हो गया।

इस समय कोटा-राज्य के सिपाही आगरे पहुंच गये थे और नवाब सैफुल्लाखां के अधीन करौली के ६०० पैदल सिपाही भी मौजूद

थे । इनके सिवा भरतपुर के ३०० घुड़सवार और २ तोपें भी अँग-रेज़ों की मदद के लिये तैयार थीं । बलवाइयों के फतेहपुर-सीकरी में पहुंच जाने का समाचार मिलते ही इन सैनिकों को यथास्थान रखने का निश्चय हुआ । कोटे के सिपाहियों को आगरे की छावनी की रक्षा का भार दिया गया । सैफुल्लाखां की फौज आगरे से ४ मील दूर शाहगञ्ज में, जो फतेहपुर-सीकरी के रास्ते में था, तैनात कर दी गयी।

३ री जुलाई को ही कालविन साहब को लकवा मार गया । वे लाचार एक कमरे में असमर्थ हो पड़े रहे और २४ घण्टे के लिये एक कमिटी के हाथ में सब काम चलाने का भार दे दिया गया । कमिटी ने बहुत कुछ सोच-समझ कर ये पांच बातें शीघ्र ही कर डालने का निश्चय किया:—

१—कैदियों में जो लोग हट्टे-कट्टे और मजबूत हैं, उन्हें नदी के उस पार पहुंचा कर छोड़ दिया जाये ।

२—किले के पासवाला यमुना का पुल तोड़ दिया जाये ।

३—सब कृस्तानों को किले में बुला लिया जाये ।

४—सैफुल्लाखां की २ तोपें किले में रख छोड़ी जायें ।

५—कोटे के सिपाहियों को आगे बढ़कर बलवाइयों का सामना करने के लिये भेजा जाय ।

इनमें पहली तीन बातें तो झटपट पूरी कर दी गयीं, लेकिन शेष दोनों बातों के पूरी होने में बड़ी बाधाएँ उठ खड़ी हुईं । कोटे के सिपाहियों पर इन लोगों को सन्देह हो रहा था, इसलिये कुछ लोगों की राय हुई, कि उनके हथियार छीन लिये जायें; पर ब्रिगेडियर ने

यह राय पसन्द नहीं की। अन्त में इन्हें पास रखना मुनासिब न समझकर फतेहपुर-सीकरी के रास्ते में तैनात कर देना ही निश्चित हुआ। पर ये लोग बलवाइयों के विरोधी न होकर अँगरेजों के ही विरोधी हो गये और लगे अफसरों पर ही गोलियां चलाने; इसके बाद इन्होंने नीमच के सिपाहियों से मिल जाने के लिये यात्रा कर दी। यह देख, एक अँगरेज सेनापति ने कुछ स्वयंसेवकों को साथ लेकर उन पर हमला कर दिया। उनके बहुतसे आदमी मारे गये और युद्ध के सामानों से लदे हुए कई ऊँट अँगरेजों के हाथ आये।

इधर सैफुल्लाखां ने भी सूचना दी, कि हमारे सिपाही रंग बदल रहे हैं, इसलिये इन पर भरोसा करना ठीक नहीं। भरतपुर के घुड़-सवारों ने हमारा साथ छोड़ दिया है, और हमारी दो तोपें हमसे ले ली गयी हैं, इसलिये करौली के सिपाहियों की हिम्मत पस्त हो गयी है। लाचार, सैफुल्लाखां को भी शाहगञ्ज से करौली लौट जाने का हुक्म दे दिया गया।

इस समय छोटे लाट की बीमारी बहुत बढ़ गयी थी, इसलिये उन्हें भी किले में पहुंचा दिया गया। पर वे तो राजी ही नहीं होते थे; पर पीछे डाक्टरों के कहने से उन्हें रुक जाना ही पड़ा।

उस समय कोटे के सिपाही चारों ओर ऊधम मचा रहे थे। यह समाचार पा कालविन साहब और भी बेचैन हो गये। बीमारी की हालत में भी वे कर्त्तव्य-चिन्ता से विमुख नहीं हुए थे। उन्होंने पुनः ब्रिगेडियर के घर जाकर रहना चाहा; पर डाक्टरों ने मना कर दिया।

५ वीं जुलाई को खबर मिली कि दुश्मन बड़ी तेजी से आगरे की तरफ चले आ रहे हैं। उसी दिन १ बजे के करीब बूढ़े ब्रिगेडियर पाल्हावेल के अधीन ८०० सैनिकों ने शत्रुओं के बिरुद्ध यात्रा की। जब वे लोग शाहगंज पहुंचे, तब ब्रिगेडियर ने वहीं ठहर कर शत्रुओं की गतिविधि देखते रहने का निश्चय किया। वहां से प्रायः मील भर दूर शानिया नामक गांव के पास दुश्मन दिखाई दिये। दुश्मनों ने ऐसे स्थान में अपना सैन्य-सन्निवेश कर रखा था, जिसके सामने टीला और घनी वृक्ष-श्रेणी पड़ती थी। इसलिये जब अँगरेजी फौज ने आगे बढ़कर गोले बरसाने शुरू किये, तब उनकी वैसी कुछ हानि न हुई। इधर अँगरेजी फौज पर उनके गोले बला की तरह बरसने लगे। इन लोगों को बड़ी हानि पहुंची। इनकी तोपों की दो गाड़ियां जल गयीं—एक तोप एकदम बेकार हो गयी। तब इन्होंने आगे बढ़ कर शत्रु पर हमला करना चाहा। इनके युद्धोपकरण कम हो गये थे, तो भी अपने अदम्य साहस के बल पर ये आगे बढ़ ही तो गये। पर अफसोस! थोड़ी देर की लड़ाई के बाद इनके कप्तान को गोली लगी और वे एक तोप ढोनेवाली गाड़ी पर सुला दिये गये। इतने पर भी उस वीरपुरुषने अपना धीरज नहीं छोड़ा और मरते दम तक कर्त्तव्य-पालन करते रहे। उसी दिन वे किले पर पहुंचा दिये गये और दूसरे ही दिन वीर-गति को प्राप्त हो गये। इसी तरह अँगरेजों की तरफसे बहुतसे वीर मारे गये। लाचार कुछ देर और लड़ाई करने के बदले पाल्हावेल साहब ने बचे-खुचे लोगों को पीछे हटने का हुक्म दे दिया। जिस समय ये लोग किले में लौट आये, उस समय किले में

जितने लोग थे, सबके सब निराशा के समुद्र में डूब गये। दो हाथी भेज कर घायल सैनिकों को युद्ध-क्षेत्र से मँगवा लिया गया, पर मरे हुओं की लाशें वहीं पड़ी रहीं।

इधर बदमाशों की वन आयी। उन्होंने यह मौका पा, चारों ओर शैतानी-राज्य विस्तार कर दिया। उन्होंने अँगरेजों के बङ्गले जला दिये और जिन फिरङ्गियों और पोर्चुगीजों ने अब तक घर छोड़कर किले में शरण नहीं ली थी, उन सभी को मार डाला।

ऊपर लिखे युद्ध में विजयी होकर भी सिपाहियों ने आगरे के किले पर हमला नहीं किया और ठेठ दिल्ली की ओर रवाना हो गये। दिल्लीवालों ने उनकी जीत पर उन्हें दिल से वधाइयां दीं और तोपें छोड़कर उनका स्वागत किया।

कहते हैं कि उस युद्ध के दूसरे ही दिन आगरे के कोतवाल मुरादअली ने सारे शहर में डौंडी पिटवा दी और दिल्ली के बादशाह को अपना अधिपति मानते हुए सबको उन्हें ही बादशाह मान लेने के लिये हुक्म जारी किया। इस काम के लिये दल के दल हथियारबन्द सिपाही शहर में चक्कर काटने लगे, जिनमें अधिकतर मुसलमान ही थे।

इस घोषणा के जारी होते ही बदमाशों ने और भी लूटपाट, मारपीट और गृह-दाह करना आरम्भ किया। दो दिनों तक घोर अराजकता छायी रही। इसी समय राजाराम नामक एक आदमी चतुराई से किले में जा घुसा और वहीं छिपे पड़े हुए मजिस्ट्रेट साहब से बोला, कि शहर में सिपाही बिलकुल नहीं हैं—केवल इधर-उधर के

गुण्डे-बदमाश लूट-पाट मचाये हुए हैं, इसलिये बाहर चलिये और अपनी धाक फिर बैठा दीजिये । यह सुन, वे कई गोरे सिपाहियों और तोपें लिये हुए बाहर आये और शीघ्र ही शहर-भर में गश्त लगा कर फिर से अँगरेजी-सल्तनत कायम होने की सूचना लोगों को देने लगे । पर तो भी किले में छिपे हुए अँगरेजों की हिम्मत न पड़ी, कि बाहर आयें । हजारों आदमी उसी में बन्द पड़े रहे । इस समय काला रङ्ग ही इन लोगों के लिये भयानक हो गया था । यदि बिना काले लोगों की सहायता ने इनका सारा काम चल जाता, तो ये कभी किसी काले को अपने सामने नहीं आने देते; पर क्या करें ? लाचार थे, इसलिये उनके साथ-साथ बहुतसे हिन्दुस्तानी भी भीतर ही रहे और कितने ही नाई-धोबी बाहर से भी आते-जाते रहे । इस तरह प्रायः ३००० गोरे, जिनमें सिविलियनों से लेकर बनिये व्यापारी तक थे, पन्द्रह-सोलहसौ हिन्दुस्तानी भी किले के अन्दर ही थे । ५००।६०० मेमें और ३००।४०० बालक भी विद्यमान थे । सबके रहने और खिलाने पिलाने का इन्तजाम जैसा कुछ हो सकता था, वैसा किया गया था । साथ ही किले को सुरक्षित रखने का भी प्रबंध किया गया था । दीवारों पर तोपें चढ़ा दी गयी थीं । नये २ आदमी गोलन्दाजों में भर्ती करके उनकी संख्या बढ़ा दी गयी । गोले-गोलियों की तादाद भी बढ़ा ली गयी । बारूदखाने और अस्त्रागार पर कड़ा पहरा पड़ने लगा । उन्हें यह भी सन्देह था, कि कहीं दुर्ग के भीतर रहनेवाले लोगों में कोई सिपाहियों का भेदिया तो नहीं है।

इस तरह किले में बन्द हो, नाना प्रकार की असुविधाएँ भोग करते हुए वे लोग दिन विता रहे थे। सारा जुलाई महीना इसी तरह वीत गया। क्रमशः अगस्तका महीना आ लगा। बेचारे बीमार कालविन साहब को कहीं से आशाजनक संवाद न मिला। चारों ओर से गड़-बड़ के ही समाचार आते रहे। इसी समय अलीगढ़ के गौसखाँ के विरुद्ध एक सैन्य-दल किले से निकल कर अलीगढ़ की ओर चला। २४ वीं अगस्त को वे लोग अलीगढ़ पहुचे। गौसखाँ की मुसलमानी फौज ने बड़ी वीरता के साथ इनका सामना किया; पर अन्त में अँगरेजी पक्ष की ही जीत हुई।

यह समाचार पाकर रोगी कालविन के चित्त को थोड़ीसी शान्ति मिली; पर इतने से उनकी चिन्ता न मिटी; क्योंकि सामने दिल्ली पर बलवाइयों का अधिकार बना था, इधर उनके सूबेके प्रधान स्थान लखनऊ में बलवाइयों का बोलबाला हो रहा था और प्रायः हर जगह अशान्ति की तरंगें उठ रही थीं। पर बीमार होने पर भी उन्होंने अपने कर्त्तव्य-पालनमें एक दिनके लिये आलस्य को पास नहीं फटकने दिया। डाक्टरों की मनाही या मित्रों का अनुरोध उन्हें कर्त्तव्य-चिन्ता से विरत न कर सका। शारीरिक खिन्नता और मानसिक-चिन्ता ने उन्हें मृत्यु के और भी निकट पहुंचा दिया। ९ वीं सितम्बर को वे संसार की सब चिन्ताओंसे सदाके लिये छुटकारा पागये। इसके दो दिन पहले तक वे अपना काम बराबर मुस्तैदी के साथ करते रहे थे। १० वीं सितम्बर को उनकी लाश को किले के अन्दर ही कब्र दी गयी।

इस तरह के एक ऊँचे दर्जे के कर्त्तव्य-निष्ठ राजपुरुष की मृत्यु से लार्ड केनिङ्ग को बड़ा दुःख हुआ। कलकत्ता, मद्रास और बम्बई आदि स्थानों में उनकी मृत्यु पर बड़ा शोक मनाया गया।

सत्रहवां अध्याय।

लखनऊ के उपद्रव।

अङ्गरेजों ने किस प्रकार न्यायान्याय का विचार छोड़कर सूबे अवध को अपनी मुट्ठी में कर लिया था, यह बात हम इस ग्रन्थ के आरम्भ में ही लिख चुके हैं। लखनऊ के नवाब की किस प्रकार दुर्गति की गयी, यह बात भी पाठकों को बतलायी जा चुकी है। इसीलिये सूबे अवध के तमाम बाशिन्दे अँगरेजों से जले बैठे थे। नवाब साहब का शासन चाहे कैसा ही बुरा क्यों न रहा हो, पर उनके ज़माने में बहुतों की दाल-रोटी का अच्छा बन्दोबस्त था—नवाबी दूर होते ही ये लोग भी निरवलम्ब हो गये। इनमें साधारण कारीगरों से लेकर बड़े-बड़े अमीर-उमराव तक थे। इसलिये छोटी बड़ी सभी श्रेणी के लोग अँगरेजोंपर नाराज थे। यहीं नहीं, इन लोगोंने अवध के ताल्लुकेदारों की शान मिट्टी में मिला दी थी। इसलिये वे भी खार खाये बैठे थे। इधर अँगरेज़ों ने नवाब के ६०,००० साठ हजार सैनिकों में से बीस हजार सैनिकों को तो अपने नौकर रख लिया और शेष ४०,००० चालीस हज़ार को कुछ रुपये दे दिला कर चलता कर दिया था। इसलिये वे लोग भी अँगरेजों पर जी-जान से कुढ़े हुए थे। इसके सिवा जबसे अँगरेज़ों के

हाथ में यहां की सल्तनत आयी, तबसे प्रजा पर तरह-तरह के 'टेक्स' लद गये। लखनऊ में अफीम का खर्च बहुत था—उस पर भी 'टेक्स' चढ़ जाने से उसकी दर बहुत ऊँची हो गयी। इससे भी लोगों में कम असन्तोष न फैला। इन्हींसे सब कारणों से असन्तोष की आग बहुत दिनों से भीतर-ही-भीतर सुलग रही थी।

उन दिनों सर हेनरीलारेन्स सूबे-अवध के चीफ-कमिश्नर थे। वे अँगरेज़ों की इस सङ्कीर्ण-नीति को दूर करने की चेष्टा करते थे; पर अब उनका किया क्या हो सकता था? जो बुराई होनेवाली थी, वह तो हो ही चुकी और अब उसका फल भी सामने आने ही को था।

उस समय सूबे भर में केवल ३२ वीं पलटन के गोरे पैदल सिपाही थे। ये लोग लखनऊ में रहते थे।

मई महीने के आरम्भ में ही अवध की ७ वीं पैदल-सेना के सिपाहियों ने टोटे का व्यवहार करना अस्वीकार किया। उन्हें समझाने-बुझाने की बड़ी चेष्टा की गयी; पर कोई नतीजा न निकला। लाचार, १० वीं मई की रात को उन्हें निरस्त्र करने के लिये परेड के मैदान में बुलाया गया। वहां कितनी ही तोपें तैयार देख, बहुत से सिपाही इसी डर से भाग गये, कि कहीं उन्हें तोप से उड़ा न दिया जाये। केवल १२० सिपाही अपनी जगह पर खड़े रह गये। उनके हथियार छीन लिये गये।

इसके पहले ही इस दल के कुछ लोगों ने ४८ वीं पैदल-सेना के सिपाहियों के पास एक पत्र अपनी सहायता के लिये लिखा था।

वह एक नौजवान सिपाही के हाथ लग गया। उसने उसे अपने सूबेदार को दिखलाया। सूबेदार सेवकतिवारी, हवल्दार हीरालाल दूबे और रामनाथदूबे ने वह पत्र अँगरेजों को दिखा दिया। यही खबर पाकर सर हेनरीलारेन्स ने सिपाहियों के हथियार छीन लेने का हुक्म दिया था। इसी प्रकार कुछ लोगों ने छावनी में आकर १३ वीं पल्टन के लोगों को भी भड़काने का प्रयत्न किया था। उन्हें हुसेन-बख्श नाम के एक सिपाही ने पकड़वा दिया।

सर हेनरीलारेन्स ने इन जासूसों को भरे दरबार में इनाम देने का विचार किया और उसे शीघ्र ही कार्य में परिणत भी कर डाला। उस दरबार में उन्होंने सीधी-सादी हिन्दी में एक वक्तृता देकर अँगरेजों की नेकनीयती और उनकी ताकत की खूब तारीफ की। इससे कुछ दिनों के लिये जोश दबा तो सही; पर एकदम ठण्डा नहीं हुआ।

उस समय जैसी दशा व्याप रही थी, उसे देखते हुए सर हेनरी-लारेन्स ने रेजिडेन्सी तथा खजाने की रक्षा का बन्दोबस्त करना शुरू किया। खजाना रेजिडेन्सी के बीचोबीच में था। उसमें उस समय तीस लाख रुपये नकद और उससे अधिक मूल्य के कम्पनी-कागज थे। इसलिये वहां गोरे सैनिकों का पहरा बैठाया गया। बहुत से घर, जहां कागज-पत्र रखे रहते थे, समय पड़ने पर गोरों और उनके बाल-बच्चों के रहने के लिये खाली करा लिये गये।

इतने में मेरठ और दिल्ली के समाचार यहां पहुंचे। सुनकर सर हेनरीलारेन्स बहुत घबराये और उन्होंने बड़े लाट से पूछकर यहां

का सैनिक-नेतृत्व भी अपने हाथ में ले लिया। पहले तो उन्होंने सब सिपाहियों के हथियार छीन लेने का विचार किया ; पर इससे और भी अनेक स्थानों में गड़बड़ फैल जाने की सम्भावना थी ; क्योंकि उन्हें केवल लखनऊ ही नहीं, सारे सूबे का खयाल करना जरूरी था। इसीसे उन्होंने यह इरादा छोड़ सिपाहियों को मेल में आनेके विचार से सब नियमित और अनियमित सैनिकों के वेतन एकसा कर दिये, पर इसका भी कुछ अच्छा परिणाम न हुआ। दिनोदिन सिपाहियों की उत्तेजना बढ़ती चली गयी। सर हेनरी-लारेन्स की अशान्ति भी बढ़ने लगी। अन्त को जो होना था वही हुआ।

३० वीं मई की रात को सर हेनरीलारेन्स छावनीके सन्निहित भोजनालयमें अपने अनुचरों और सहचरों के साथ बैठे हुए भोजन कर रहे थे। भीतर वे चाहे जितने चिन्तित हो रहे हों, पर उनके मुख पर पूरी शान्ति विराज रही थी। थोड़ी देर पहले कप्तान विल-सन ने उनसे आकर कहा था, कि आज मुझसे एक सिपाही ने कहा है, कि ठीक ९ बजे रात को यहां भी बलवा शुरू होगा। इसीलिये सब लोग रह-रह कर दीवार पर टँगी हुई घड़ी की ओर बड़ी उत्सु-कता के साथ देखने लगते थे। क्रमशः ९ बज गये—परेड के मैदान में ९ बजे की तोप दगी, पर कहीं से कुछ गड़बड़ होने की आहट न आयी। तब सर हेनरीलारेन्स ने मुसकुरा कर कप्तान विलसन से कहा,—"क्यों विलसन ! तुम्हारे दोस्तों ने तो ठीक समय पर काम नहीं किया ?"

यह बात पूरी होते-न-होते परेड की तरफ से दांय-दांय बन्दूक छूटने की आवाज आने लगी। लारेन्स अब भी मुसकरा रहे थे। इतने में विशाल जनता की उच्च कोलाहल-ध्वनि सुन पड़ी। अब तो सर हेनरीलारेन्स की हँसी गम्भीरता में बदल गयी और वे घोड़ा ले आने का हुक्म देते हुए भोजन-गृह के द्वार पर चले आये।

उस समय बलवाइयों ने घरों में आग लगा दी थी, जिसकी लपटें आसमान तक उठ रही थीं और उनकी बन्दूकों की आवाजों के साथ-साथ उनकी चिल्लाहट भी साफ सुनाई दे रही थी।

इसी समय एक रक्षक-सैन्य वहां आ पहुंचा और उसके कप्तान ने गड़बड़ का समाचार सुनाकर बन्दूकें भरने की आज्ञा कप्तान विलसन से मांगी। सर हेनरी की इच्छानुसार तुरत ही आज्ञा दे दी गयी। इस आज्ञा को उस समय बहुतों ने अनुचित समझा. क्योंकि सिपाहियों पर से सभी का विश्वास उठ गया था, पर सर हेनरी जैसे धर्मात्मा थे, वैसे ही दृढ़ निश्चय भी थे। उन्होंने कड़क कर सैनिकों से कहा,—"देखो, मैं उन शैतानों को अभी छावनी से निकाल बाहर करने के लिये जाता हूं। जब तक मैं लौट कर नहीं आता, तब तक तुम लोग इस स्थान की रक्षा करो और किसी को यहां आकर उत्पात न मचाने दो। यदि इस काम में तुम लोगों ने तनिक भी त्रुटि की, तो याद रखो,—"मैं एक-एक को फांसी पर लटका दूँगा!"

यह कह, वे चले गये। उनके अनुचर भी उनके पीछे लगे। उनकी इस दृढ़ता-भरी आज्ञा का यह परिणाम हुआ, कि इन सीपा

हियों ने इस स्थान की रात-भर बड़ी मुस्तैदी से रक्षा की—लोग बहकाने आये ; पर ये किसी के बहकाने में न आये। चारों ओर विध्वंस-लीला जारी होने पर भी यहां उसका कुछ भी असर न होने पाया ।

छावनी शहर से दो-तीन मील दूर पड़ती थी। इसलिये जिसमें इन उपद्रवियोंका नगर में प्रवेश न होने पाये, इस उद्देश्य से सर लारेन्स ने यहां से शहर जाने वाले रास्ते पर ३२ वीं पल्टन का पहरा बैठा दिया । उस रात को केवल ७१ वीं पल्टन के सिपाही, विद्रोही हुए थे। उन्होंने अपने ब्रिगेडियर को गोली मार दी थी और युरोपियनों की हत्या करने के इरादे से होटल में घुसे थे; पर वहां किसी को न देख, छावनी में उत्पात मचा दिया थां। सौभाग्य से उस समय छावनी में कोई मेम या बच्चा नहीं मारा गया। अन्यान्य सैनिक-दलों के बहुत से लोग, काम छोड़, घर भाग गये, कितने ही बागियों से जा मिले और शेष ५००।६०० सैनिक अँगरेजों के तरफदार ही बने रहे । भागे हुए सिपाहियों में से कुछ लोग घुड़दौड़ के मैदान में जाकर जमा हो गये थे । सर हेनरीलारेन्स ने वहाँ दल-बल सहित पहुंच कर कुछ खाली फायरें दगवायीं—बस इसी से वे डर गये और लगे इधर-उधर भागने । उनमेंसे ६० आदमी पकड़े गये। शहरमें कुछ मुसलमानों ने गड़बड़ मचायी थी, पर उनके लिये पुलिस की ही चेष्टा पर्याप्त प्रमाणित हुई ।

लखनऊ के इस उपद्रव की फिलहाल शान्ति हो गयी, पर इसका प्रभाव दूर-दूर तक पहुंचा। सारे सूबे-अवधमें आगसी लग गयी।

प्रतिदिन लखनऊ में जगह-जगह से चिन्ताजनक समाचार आने लगे। जहां देखो, वहीं अँगरेजोंकी हत्या, खजाने की लूट और घरों के जलाये जाने के समाचार आ रहे हैं। सीतापुर, मुलावन, फैजाबाद, सुल्ताँपुर, मुहम्मदी, सलोनी, बहराइच, गोंडा, सिफरौरा, मुल्लापुर, दरियाबाद, इत्यादि स्थानों में बलवे के कारण घोर अशान्ति मच गयी। सब जगह एकसे काण्ड हुए। गोरों की भागते-भागते जान पर नौवत आ गयी। भागनेवालों में से कितने ही रास्तेमें बुरी तरह मारे जाते, कितने ही तरह-तरह की मुसीबतें झेलते। हाँ, कहीं-कहींके लोग इन पर तरस खाकर उचित सहायता भी करते थे। कुछ दिनों के लिये सूबे भर से अँगरेजोंकी प्रधानता उठसी गयी।'

पाठकों को यह जानने के लिये अवश्य उत्सुकता होगी, कि ऊपर लिखे स्थानों में उपद्रव होने पर वहां के गोरों ने किस तरह भाग कर जान बचायी या जान बचाने की चेष्टा में उन्हें कैसी कैसी मुसीबतें उठानी पड़ीं। इसलिये हम संक्षेप में ही उसका हाल यहां लिख देते हैं:—

सीतापुर के सर मौण्ट स्टुअर्ट जैकसन नामक एक सिविलियन ने अपनी दोनों बहनों के साथ भाग जाना चाहा; पर भागते समय देखा कि उनकी एक बहन न जाने किधर चली गयी या क्या हो गयी ? लाचार वे अपनी एक ही बहन को लेकर भाग चले। रास्ते में और भी कई भगोड़ों से भेंट हो गयी। सब लोग एक साथ मिथौली चले गये। वहां के राजा लूनीसिंह ने सब लोगों को

कचियानी के जङ्गली किले में भेज दिया बेचारे भगोड़ों के पैर रास्ता चलते चलते काँटों से छिद गये थे और उनके जूतों और कपड़ों की दुर्दशा हो गयी थी। इस तरह वे लोग यहाँ प्रायः तीन महीने तक बेहद तकलीफें उठाते हुए पड़े रहे; क्योंकि उस जङ्गल में उनके व्यवाहर-योग्य कोई चीज मिलनी भी मुश्किल थी। तीसरे महीने में बलवाइयों को उनके यहां छिपे रहने का पता चल गया। खैरियत हुई कि बलवाई यहाँतक न आये और राजा ने भी अपनी जान छुड़ाने के लिये उन लोगों को यहां से कहीं और भाग जाने की सलाह दी। बेचारों पर विपत्ति टूट पड़ी। दो गाड़ियों में ये लोग भेड़ बकरों की तरह लादे गये और वहां से चले। इसी समय मिथौली के एक करपरदाज ने जिसका नाम जहीरुलहसन था, उन लोगों को सांकलों में बाँध दिया और डेढ़ सौ हथियारबन्द जवान उन्हें पहुंचाने चले। छः दिनों के बाद ये लोग लखनऊ पहुंचा दिये गये। बेचारों की बिना सोये और बिना खाये पिये मौत से भी बुरी दशा हो गयी थी। सर स्टुअर्ट जैक्सन तो रास्ते में ही बेहोश हो गये थे। औरतों को सांकल नहीं लगी थी, तो भी उन्हें ऐसा बुरा खाना और गन्दा पानी दिया जाता था कि बेचारी उसे छूती भी नहीं थीं। लखनऊ के कैसरबाग के अस्तबल के पास एक छोटीसी कोठरी में वे बेचारे अभागे रखे गये। एक पहरेदार को उनकी यह दुर्दशा देख दया आयी और वह उन्हें एक आरामकी जगह में ले गया। कैद होने पर वे लोग जरा चैनकी सांस लेने पाये। इस पहरेदार का नाम मीर वाजिदअली था।

नवाव वाजिदअलीशाह की बेगम हजरतमहल के नावालिग कादिर को ही इस समय नवाबी मसनद पर बिठा रखा गया था। बेगम अपने बेटे की तरफ से राजकाज चलाने लगीं। सब बड़े छोटे ओहदोंपर लायक कारिन्दे मुकर्रर हो गये और अवध के सब ताल्लुकेदारों को दरबार में आने के लिये कहा गया।

अँगरेजों ने अवध पर अधिकार करनेके वाद सैनिकों के १२-दल तैयार किये थे। इन्हीं लोगों ने पीछे लखनऊ को अपनी मुट्ठी में कर लिया था और कादिर को नवाब बना दिया था। दारोगा मम्मूखाँ आदि वेगम साहिवाके प्रधानसहायक पर सिपाहियोंने ऐसा रोब जमा रखा था कि उनके आगे किसी की भी एक न चलती थी। नामका नवाब कोई हो—उस समय सोलहो आने सिपाहियों की ही नवाबी थी।

इसी समय यहां मौलवी अहमदुल्लाशाह नामक एक विचित्र मौलवी साहब का शुभागमन हुआ। शाहसाहब पहले फैजाबाद में थे। वहां की मसजिद में जनवरी महीने में आप ने एक वक्तृता दी। उस से बड़ा जोश फैला। वहां के हाकिम इससे शङ्कित हुए। उन्होंने मौलवी और उनके अनेक सशस्त्र अनुचरों को हथियार रख देनेके लिये कहा। मौलवी इस वात पर राजी न हुए। बड़ी गड़बड़ मची। दोनों ओर से मारपीट जारी हो गयी। मौलवी और उनके दो तीन साथियों को चोट आयी और वे गिरफ्तार कर लिये गये। मुद्दतों तक इनपर मामला चलता रहा। इतने में बलवा शुरू हो गया और फैजाबाद में भी गोलमाल मच गया। बस उसी समय आप

अपने वन्दों के साथ कैदखाने से रिहाई पा गये और बलवाई बन बैठे। पर जब इन्होंने अपना प्रकाण्ड गुरुडम फैलाया; तब सिपाहियों ने ऊब कर इन्हें ३००) देकर चलता किया। क्रमशः दिल्ली से आये हुए कितने ही सिपाहियों ने लखनऊ में आकर इनको अपना सरपरस्त बनाया और अवध के भूतपूर्वमन्त्री अलीनकीखाँ के मकान में इन्हें टिका रखा। वहीं से ये नित्य नये फतवे जारी करने लगे। मालूम होता था, मानों ये ही सब के हाकिम हैं। यह देख लखनऊ के दरबारने इन्हें कैद कर लिया; पर दिल्लीवालों ने इन्हें छुड़ा लिया और तब से ये सब हथियारबन्द बलवाइयों के पीर बने फिरते रहे। इन मौलवी साहब की तेज-तर्रार वक्तृताओं ने उन लोगों में खूब जोश भर दिया।

अस्तु ; जो अँगरेज इस समय कैसरबाग में कैद थे, उनपर उपर्युक्त वाजिदअली के सिवा शाहगञ्ज के राजा मानसिंह ने भी दया दिखलायी थी और यदि दिल्ली के सिपाही और उपर्युक्त शाह-साहब बीचमें न होते, तो ये लोग उन लोगों को चुपचाप भगा भी देते। स्टुअर्ट जैकसन साहब की जो बहन लापता थी, वह भी पीछे यहीं आगयी थी और कप्तान 'आर' आदि भी इसी कैदीदल में थे। जिस दिन लखनऊमें जेनरल हावेलाक और आउटरम आये, उसी दिन इन शाहसाहब के हुक्म से १९ कैदियों की जान ले ली गयी! राजा मानसिंह या वाजिदअली का किया कुछ न हो सका।

२६ वीं अक्तूबर से १६ वीं नवम्बर तक दारोगा मम्मूखां रोज इन कैदियों से मिलने आते और कहते कि आप लोग कप्तान 'आर'

की ओर से एक पत्र जेनरल आउटरम के पास इस आशय का भिजवा दें कि यदि अँगरेज सदा के लिये इस सूबे को छोड़ जायें, तो सब कैदी छोड़ दिये जायंगे। परन्तु किसी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया।

अन्त में १६ वीं नवम्बर को ये सब लोग मारे गये— केवल दो स्त्रियां और एक बालिका बची। पीछे उपर्युक्त वाजिदअली ने बड़ी-बड़ी तरकीबें लड़ाकर इनको कैदखाने से भगा दिया।

इसी तरह के काण्डों का संवाद सुन-सुन कर सर हेनरीलॉरेन्सका चित्त उद्विग्नता की सीमा पार करने लगा। उन्होंने दिन रात लगातार परिश्रम करते हुए नगर की रक्षा करनी प्रारम्भ की। बदमाशों और बलवाइयों को दण्ड देने के लिये 'मच्छी-भवन' नामक दुर्ग के सामने ही फाँसी की टिक-टिकी खड़ी की गयी। बस लोग धड़ाधड़ फांसी पर लटकाये जाने लगे। गिरफ्तारी, बिचार और फैसला चटपट होने लग गया। फौजी कानून शहर में जारी कर दिया गया। कप्तान कारनेगी नामक प्रधान पुलिस-अफसर तत्परता के साथ ढूंढ़-ढूंढ़ कर बलवाइयोंको गिरफ्तार करने लगे।

एक तो सर हेनरी का स्वास्थ्य पहले से ही खराब था, दूसरे रात दिन की इस परेशानी ने उन्हें और भी अस्वस्थ कर डाला। लाचार उन्होंने आर्थिक कमिश्नर मार्टिनगबिन्स की अध्यक्षता में एक समिति सब काम चलाने के लिये बना दी। गबिन्स साहब बड़े कड़े आदमी थे। उन्होंने अधिकार पाते ही भिन्न-भिन्न

सैन्यदलों को निरस्त्र करना आरम्भ किया। कितनों को तो उन्होंने जवाब भी दे दिया। सर हेनरीलारेंस को यह बात बड़ी बुरी लगी, क्योंकि वे सब सिपाहियों को अविश्वासी नहीं समझते थे। इसीलिये सर हेनरी लारेंस ने समिति को तोड़कर फिर अपने हाथ में सारा अधिकार ले लिया और सिपाहियों के पास दूत भेजकर उन्हें बुल-वाया। ५०० सिपाही लौट आये और अन्त तक उन्होंने अपनी विश्वस्तताका पूर्ण परिचय दिया। धमकी, प्रलोभन या भय ने उन्हें एक बार भी विचलित नहीं होने दिया। वास्तवमें सर हेनरी भारत-वासियोंके प्रति हृदयसे अनुरक्त थे और जो उन्हें पहचानते थे, वे भी उनके विरुद्ध कभी न हुए। इसके बाद उन्होंने प्रायः पांच सौ पेन्शन याफ्ता सिपाहियों को चुनकर बाकी लोगों को घर भेज दिया। इसके पहले ही वे कुछ सिक्ख सिपाही जमा कर चुके थे। इस तरह लख-नऊ की रक्षा के लिये उन्होंने प्रायः ८०० विश्वसनीय सिपाही एकत्र कर लिये।

१२ वीं जून को उन सिपाहियों ने बलवा कर दिया, जिन्हें पुलिस का काम सुपुर्द किया गया था। इनमें पैदल और घुड़सवार दोनों ही श्रेणी के सिपाही शामिल थे। इन्होंने झट सुलतांपुर की यात्रा कर दी। एक अंगरेज सेनापति ने इनका पीछा किया, पर अन्त में उनकी ही जानके लाले पड़ गये और वे किसी-किसी तरह सदेह लौट आये।

इधर कानपुर से सेनापति ह्वीलर ने सर लारेंस के पास अपनी विपत्ति का समाचार भेजा और उनसे सैनिक सहायता मांगी, परन्तु जिन थोड़ेसे सैनिकों पर लखनऊ का सारा दारोमदार था, उन्हें ही यदि

कानपुर भेज दिया जाय, तो यहां का क्या हाल होगा ? यही सोच कर उन्होंने खेद के साथ सेनापति का अनुरोध न माना। इसी समय गरमी की अधिकता से लखनऊ की रेसिडेंसी में हैजे और चेचक की बीमारी फैली, जिससे युरोपियन महिलाओं और बालक-बालिकाओं को बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी। राम राम करते और जून का महीना समाप्त होते-न-होते वर्षा होने लगी, इससे इन रोगोंका जोर घट गया पर बीमारी का अभाव होने पर भी इनको चिन्ता न मिटी। उधर से समाचार आया कि सर ह्वीलर ने आत्मसमर्पण कर दिया है और सिपाही लखनऊ से २० मील दूर नवाबगंज बाराबङ्की तक पहुंच गये और शीघ्र ही यहां पहुंचा चाहते हैं। २६ वीं जून को खबर मिली कि उनका अग्रगामी दल लखनऊ से ८ मील पर चीनहाट में आ पहुंचा है। यह खबर पाते ही सर हेनरी लारेंस ३० वीं जून को सवेरे ६ बजे कुछ अंगरेज सैनिकों के साथ बलवाइयों का मुकाबला करने चले। लखनऊ और चीनहाट के बीच में कोचरैल नामकी एक नदी पड़ती है। लखनऊ से जो राह फैजाबाद को गयी है, उसमें कोचरैल का पुल भी आता है। इसी पुल को पारकर गोरी पलटन इसमाइलपुर में विद्रोहियों से जा मिली। सिपाहियों ने पहले से ही तोपें तैयार कर रखी थीं, इसलिये गोरोंको दूरसे ही देखकर उन लोगोंने तोपोंसे गोले बरसाने शुरू कर दिये। साथ ही घुड़सवारों और पैदल सिपाहियों ने भी दोनों ओर से इस छोटीसी पलटन को घेर लिया। इस तरह सब ओरसे घिरकर गोरी पलटन घबरा उठी और तितर-बितर होने लगी। सेनापतियोंके भी गोली लग गयी और उनकी सब तोपें सिपाहियोंने

छीन लीं । बहुतसे गोरे मारे गये । लाचार, उन लोगों को लखनऊ लौट चलने के लिये बाध्य होना पड़ा । रास्ते में बहुतसे सिपाही राह रोके खड़े थे । उन्होंने इन्हें लौटने में बड़ी बाधा पहुंचायी । किसी-किसी तरह ये लोग प्राण लेकर भागे । ११९ गोरे इस युद्ध में काम आये । गोरों का उत्साह टूट गया । एक तो पहले से ही इनकी संख्या कम थी—अबकी बार प्रायः सवा सौ गोरे और कम हो गये, इसलिये सिपाहियों के सामने कैसे डटा जाये ? यही सवाल सबको बेचैन करने लगा ।

चीनहाट के युद्ध में जयलाभ कर सिपाही दूनी उमंग से भरे हुए गोमती के तीर पर चले आये, पर पुल पर तोपें सजी रखी थीं, इस-लिये वे पुल की ओर न जा, दूसरी तरकीब से नदी पार करने लगे। दोपहर बीतने-न-बीतते फैजाबाद, सीतापुर, सुल्तांपुर आदि स्थानों में सिपाहियों के दल के दल पिल पड़े । लखनऊ में भी बहुतसे बलवाई सिपाही घुस आये और फिर तो उन्होंने वह उत्पात मचाया, कि जिसका नाम ! उन्होंने बात की बात में अंगरेजोंके सब बंगले-मकान रेजिडेन्सी और मच्छी-भवन के आसपासवाले मकान अपने हाथ में कर लिये और ऐसी गोलाबारी शुरू की, जो फिर दिन-रात न रुकी ।

एक दिन सर ह्वीलर ने सर हेनरीलारेन्स से सहायता मांगी था । आज इन्हींको वाध्य होकर दूसरोंके पास सहायता पानेके लिये पत्र लिखना पड़ा । ३० वीं जूनको चीनहाटमें इनकी हार हुई और १ ली जुलाई को ही लखनऊ से अंगरेजी सत्ता बिदा हुईसी मालूम पड़ने

लगी। एक ही दिन में क्या से क्या हो गया! लाचार होकर इन लोगों ने यही निश्चय किया, कि मच्छी-भवन छोड़ कर सब लोग रेजिडेन्सी में ही जमा हो जायें और मच्छी-भवन में जो युद्ध के सामान रखे हैं, वे सब नष्ट कर दिये जायें। इसी निश्चय के अनुसार मच्छी-भवन की समस्त युद्ध-सामग्री बारूद से उड़ा दी गयी और वहां के सब गोरे रेजिडेन्सी में चले आये।

सिपाहियों ने एक तरह से लखनऊ को अपने अधिकार में कर लिया। २ री जुलाई को सर हेनरी लारेंस ने जगह-जगह सैनिकोंकी तैनाती और तोपों के ठीक स्थानों पर रखे जाने का वन्दोवस्त कर दिया। उसी दिन एक बड़ी भारी दुर्घटना हो गयी, जिससे सर हेनरी लारेंस की जान आफत में पड़ गयी। सिपाहियों ने चीनहाटके युद्धमें अंगरेजों का जो 'हाविटज़ार' नामक बड़ी तोप छीनी थी, उसीका एक गोला आकर सर हेनरी लारेंस की जांघ में लगा। उस समय वे कप्तान विलसन से काम की बातें करने में लगे हुए थे। एकाएक बड़े जोर के धड़ाके के साथ गोला भीतर घुस गया और अपना काम कर गया। पास ही सर हेनरीके भतीजे जार्ज लारेंस बैठे हुए थे। उनके जरा भी चोट नहीं आयी; हां, छत की ईंटें टूटकर उन पर अवश्य गिरीं। विलसन साहब भी वेदाग बच गये, पर सर हेनरी लारेंसकी जान पर आ बनी। तुरत ही डाक्टर फेयर बुलाये गये और उन्हींकी सलाह से सर हेनरी उनके कमरे में पहुंचा दिये गये।

इस दुर्घटना से स्वयं सर हेनरी वैसे विचलित नहीं हुए, पर औरों को बड़ी उदासी हुई। भयङ्कर वेदना अनुभव करते हुए भी वे

चुपकेसे सारी यन्त्रणा सहन कर रहे थे। रह-रह कर वे यही कहते थे। "मुझे दफनाते समय बहुत धूम-धाम न करना—कर्त्तव्य-पालन करते हुए वीरगति प्राप्त करनेवाले किसी साधारण सिपाही की तरह मुझे भी गाड़ देना।" उन्होंने एक-एक करके अपने सभी देशी-विदेशी परिचितों को बुलवाकर उनसे बातें कीं और आत्म-रक्षा के अनेक उपाय अफसरों को बतलाये। सबसे उनका साग्रह अनुरोध यही था,—"कभी आत्म-समर्पण या सन्धि न करना—अपनी जगहपर डटे हुए वीरों की तरह मर जाना!"

अन्त में ४ थी जुलाई के प्रातःकाल उनकी महान् आत्मा यह संसार त्यागकर चली गयी। तोपों की गड़गड़ाहट और मारकाट की सरगर्मी के बीच उनकी देह साधारण सिपाहियों के पास ही समाधिस्थ कर डाली गयी। वह महापुरुष, जो अपने ही देशवालों का नहीं, बल्कि पद-दलित भारतवासियों का भी परम शुभचिन्तक था, परलोक सिधार गया। क्या उस समय क्या इस समय, सर हेनरी लारेंस जैसे उदार-चरित अंगरेज बहुत कम पाये जाते हैं। वे न्याय निष्पक्षपातिता और सदाशयता की मूर्त्ति थे। यदि उनकेसे न्यायवान शासक प्रत्येक प्रान्त में रहते और उन्होंकी नीतिपर इस देशका शासन होता रहता, तो शायद ही विद्रोह भारत में दावानल प्रज्वलित करने के लिये आता।

उधर सर हेनरी लारेंस का शरीर छूटा, इधर सिपाहियों की गोलाबारी ने और जोर बांधा। रेजिडेन्सी पर भीषण अग्निवर्षा होने लगी। सारे शहरमें भागाभाग जारी थी। रेजिडेन्सी में प्राण रक्षा के

लिये छिपे हुए लोगों की जानें आफत में पड़ गयीं। एक-एक दिन प्रलय-कालसा प्रतीत होने लगा। उन लोगों के नौकर-चाकर भाग गये, इसलिये उन्हें अपने हाथों कुएं से पानी खींचना और कपड़ा साफ करना पड़ता था। अपने ही हाथ जलाकर रसोई भी पकानी पड़ती थी। एक-एक घर में बहुत से लोग भरे रहते थे। किसी-किसी को तो अस्पतालमें ही रहना पड़ा था। घायलों की संख्या बढ़ जाने से सारा अस्तबल भर उठा। मेमे उन लोगोंकी खूब दिल लगाकर सेवा-सुश्रूषा करने लगीं।

सिपाहियोंने उस स्थानको ध्वंस करनेके लिये जगह-जगह तोपे लगा दीं और पास के ऊंचे ऊंचे मकानों की छतों पर चढ़कर बड़े अचूक निशाने मारनेलगे। दोपहर के लिए और मर्सी समय गोलेगोलियों की वर्षा लगातार हुआ करती थी। इस भीषण गोलाबारीसे अपने को बचाने के लिये युरोपियनोंने नयी दीवारें खड़ी करनी शुरू कीं। मौत का बाजार लगातार गर्म रहा। जितनी तकलीफें उस समय उन अवरुद्ध अंगरेजों को उठानी पड़ीं, उनका वर्णन करना कठिन है। उनके प्रधान इंजिनियर, प्रधान कमिश्नर और प्रधान गोलन्दाज मारे गये। रेजिडेन्सी की रक्षा के लिये १,६९२ मनुष्य थे, जिनमें ९२७ युरोपियन और ७६५ हिन्दुस्तानी थे। इस घेरे में ३५० अंगरेज और १३३ हिन्दुस्तानी हताहत हुए। २३० हिन्दुस्तानी भाग गये। कितने ही बच्चे संक्रामक रोगों के शिकार हो गये। अपार शत्रु-सैन्य के सामने इन थोड़े से लोगों का ठहरना मुश्किल हो पड़ा। तो भी ये लोग अगस्त महीने तक किसी तरह दिन काट ले गये। इन्हें आशा

थी, कि कहीं बाहरसे सहायता अवश्य आयेगी ; पर सितम्बर महीना आधा बीत गया, तो भी कहीं से सहायता नहीं आयी।

इस समय अङ्गद नामका एक सिपाही अंगरेजों का जासूस बना हुआ था। उसने अपना नाम सार्थक कर दिया। वह बड़ी ही चालाकी से अवरुद्ध युरोपियनों के पत्र निश्चित स्थान पर पहुंचा जाता था। उसीकी मारफत इन लोगों को खबर मिली कि जेनरल हावेलाक कानपुर से लखनऊ आ रहे हैं। सुन कर अवरुद्ध अंगरेजों के दिल की कली खिल गयी। उन्हें आशा हो गयी, कि अब हमारा उद्धार हो जायेगा।

अठारहवां अध्याय।

---*---

सेनापतियोंकी युद्ध-यात्रा।

हम पहले लिख आये हैं कि दिल्ली का विद्रोह समाप्त हो गया और वहां अंगरेजों का सिक्का फिर जम गया। इसलिये इस समय लखनऊ ही विद्रोहियों का प्रधान अड्डा हो रहा था। उसके आस पास के कितने ही स्थानों में भी बलवाई अंगरेजों को हटाकर आप मालिक बने बैठे थे। अवध में हर जगह बलवाइयों का बोल बाला हो रहा था। विहार में बाबू कुंवरसिंह आफत मचाये हुए थे, झांसी की रानी अंगरेजों को लोहे के चने चबवा रही थीं, फर्रुखाबाद में नवाब साहब की तूती बोल रही थी, तो बरेलीमें खांबहादुर खां भी अपना सिक्का जमाये हुए थे। भारत में चारों तरफ विद्रोहाग्नि धधक रही थी। सब जगह एकसी घटनाएं हो रही थीं—गोरे चमड़े पर सर्वत्र एकसो विपत्ति आ रही थी।

अस्तु; जिन दिनों दिल्ली अंगरेजों के अधिकार में आयी, उन्हीं दिनों उनके भाई-बन्धु लखनऊ की रेजिडेन्सी में घिरे हुए अपने बुरे दिन गिन रहे थे। कानपुर में शान्ति स्थापित कर सेनापति हावेलाक ने वहां का चार्ज सेनापति नील को सौंप दिया और आप लखनऊ का उद्धार करने चले। दो तीन जगहों में रास्ते में ही बलवा-

इयों से सामना हो गया और यद्यपि उन युद्धोंमें अंगरेज पक्ष की ही जय हुई, तथापि उनके बहुतसे सैनिक मारे गये। इसलिये वे फिर लौट चले। इसी समय उन्हें कानपुर से कुछ सैनिक और तोपें मिल गयीं, अतएव वे फिर लखनऊ की तरफ बढ़े। इस बार भी रास्ते में युद्ध हुआ और बहुतसे सैनिक मारे गये, अतएव उन्होंने कानपुर लौट जाना ही उचित समझा। इसी समय उन्नाव से बहुतसे विद्रोही उनकी राह रोकने चले आये। बशीरतगञ्ज नामक स्थान में तीसरी दफे हावेलाक साहब को शत्रुओं से सामना करना पड़ा। पहले भी दो दफे वे यहीं उनसे लड़कर विजयी हो चुके थे। इस बार भी वे ही जीते ; पर थोड़ीसी सेना लेकर लखनऊ जाना उचित न समझकर कानपुर लौट आये। उस समय बिठूर में ४००० हथियारबन्द सिपाही नाना साहब के अनुचरों के साथ इकट्ठे थे। सेनापति ने उनके विरुद्ध यात्रा की। १६ वीं अगस्त को वे वहां पहुंचे और बड़ी वीरता से उन्हें हराकर १७ वीं को कानपुर चले आये। इसी समय उन्होंने सुना कि सर जेम्स-आउटरम उनकी जगहपर लखनऊ उद्धार करनेके लिये सेनापति बनाये गये हैं। इससे उनको बड़ा दुःख हुआ। यह देख आउटरम साहबने विज्ञापन निकाल कर सब पर यह बात जाहिर कर दी, कि सेनापति हावेलाक को सैनिक-विभाग का पूरा अधिकार रहेगा और मैं अपनी इच्छा से उनकी सहायता किया करूंगा। इस प्रकार के आत्म-त्याग ने आउटरम को सबकी दृष्टिमें प्रशंसनीय प्रमाणित कर दिया और हावेलाक साहब का दिल छोटा हो जाने से जो बुराई होने की सम्भावना थी, वह भी न होने पायी।

इसके बाद २१ वीं सितम्बर को हावेलाक और आउटरम कानपुर से रवाना हुए। उस समय उनके पास ३१७९ सैनिक और १८ तोपें थीं। एक सैनिक दल का एक भाग सेनापति नील के अधीन कर दिया गया और वे भी इन लोगों के साथ ही चल पड़े। मंगलौर में इन लोगों का शत्रु-सैन्य से सामना हुआ। उन्हें हराते और उन्नाव को पीछे छोड़ते हुए वे लोग आलमबाग नामक एक महल के पास पहुंचा गये, जो लखनऊ के दक्खिन में था। यहां बलवाई पहले से ही डटे हुए थे। उनसे खासा युद्ध छिड़ गया और कुछ देर की लड़ाई के बाद अंगरेजों ने उन्हें खदेड़ भगाया। २५० आदमियों को यहां रखकर शेष सैनिकों को रेजिडेन्सी की तरफ कूच करने को कहा गया। रास्ते में नहर का पुल पार करना था। उसे चार बाग का पुल कहते हैं। वहां पहुंचते ही बलवाइयों ने बड़े ओरों से गोलाबारी शुरू की। चारों ओर के मकानों की छतों पर से भी लगातार गोलियां बरसने लगीं। आउटरम की बांह में भी एक गोली लगी, पर वह वैसी संघातिक नहीं थी, इसीलिये उन्होंने झटपट उस पर पट्टी बंधवा ली और वे अपनी सेना को एक बाग के अन्दर ले गये। बहुतसे गोरे सैनिक मारे गये।

थोड़ी देर बाद हावेलाक के पुत्र ने कुछ सिपाहियों को साथ लिये हुए पुल की ओर प्रस्थान किया और जबतक सिपाही अपनी बन्दूकें भरने की चेष्टा में ही थे, तबतक सङ्गीनों और तलवारों की लड़ाई शुरू हो गयी। मारते-काटते हुए अङ्गरेजी फौज ने दुश्मनों को तितर-

वितर कर दिया और पुल पार करने लगी । रास्ते में फिर वैसे ही चारों ओर से गोलियां बरसनो शुरू हुईं, पर इन लोगों ने उनकी जरा भी परवा न कर, आगे बढ़ने पर ही ध्यान रखा। जिस समय ये लोग कैसर-वाग नामक महल के पास पहुंचे. उस समय इन्हें बड़ी भयङ्कर गोला-वारी का सामना करना पड़ा। इसका यथाशक्ति उत्तर देते हुए ये लोग फरीदवख्श और छतर-मञ्जिल के पास आ पहुंचे। इसके आगे ही वह घूमघुमौआ पतला रास्ता था, जिसे पार कर वे रेजिडेन्सी में पहुंचते । बड़ी सलाह-मशविरा के बाद आगे बढ़ना ही निश्चय हुआ । हाईलैण्डर्स-सैनिकों को अग्रसर कर ये लोग आगे बढ़ने लगे। रास्ते के दोनों तरफके मकानों पर सिपाहियों का कब्जा था । इसीलिये ज्यों ही यह सेना खास बाजार में पहुंची, त्यों ही दोनों ओर के मकानों से गोलियां बरसने लगीं । सेनापति नील को यहीं एक गोली लग गयी और वे तुरत ही मर गये । पर इससे निरुत्साह न हो सैनिकगण आगे बढ़ते चले गये । अन्त में रात को वे लोग अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच गये । इस प्रयत्न में हावेलाक साहब के प्रायः साढ़े पांचसौ सिपाही हताहत हुए।

सर जेम्स आउटरम का विचार हुआ, कि जबतक हो सके, तबतक रेजिडेन्सी की सर्वतोभावेन रक्षा की जाये । अवतक वे लोग अवरुद्ध गोरे-गोरियों को यहाँ से निकाल कर बाहर ले जाने को समर्थ नहीं थे, क्योंकि सिपाहियों का चारों ओर बड़ा जोर था। इसीलिये वे लोग और कुमुक आ जाने की राह देखते हुए रेजिडेन्सी में ही पड़े रहे।

इधर दिल्ली पर अधिकार होते ही सेनापति विलसन शिमले चले गये और गङ्गा-यमुना के बीचवाले प्रदेशों से विद्रोहियों को खदेड़ भगाने का बन्दोबस्त करते गये। उन्होंने ७५० गोरों और १९०० देशी सैनिकों की पल्टन इसके लिये तैयार करायी। यह सेना २४वीं सितम्बर को दिल्ली से रवाना हुई। कर्नल ग्रिथेड इस सेना के अध्यक्ष बनाये गये। २८ वीं सितम्बर को यह सेना बुलन्दशहर पहुंच गयी। यहाँ विद्रोही सिपाहियों के साथ उनकी खास लड़ाई हो गयी, जिसमें अंगरेजों की ही जीत रही। वहां से चलकर वे मालघर पहुंचे, जहां नवाब वलीदाद खां मुगल बादशाह की तरफ से हुकूमत कर रहे थे। अंगरेजों के आते ही वे भाग गये। १ ली अक्तूबर को उनका किला ढा दिया गया। ३ री अक्तूबर को यह विजयी सेना खुर्जा नामक स्थान में आ पहुंची। वहां उन्हें एक जगह एक मेम की सिरकटी लाश दिखाई दी। यह देखते ही ये लोग गुस्से से भर उठे पर जब उन्हें अच्छी तरह समझा दिया गया, कि यह काम यहाँ के किसी आदमी ने नहीं किया, तब वे शान्त हुए। वहाँ से चलकर वे अलीगढ़ पहुंचे। सिपाही तो पहले ही यहां से चले गये थे, इसलिये इन्हें यहां की उत्तेजित जनता का ही सामना करना पड़ा। उन लोगों को सीधी राह पर लाते देर न लगी। तब वे लोग अकबराबाद की ओर चले, जहां मङ्गलसिंह और महताबसिंह नामक दो भाई सर्वेसर्वा बने बैठे थे। शाम को ही वे लोग पकड़ कर मार डाले गये और उनके घर की चीजें लूट ली गयीं।

इसी समय आगरे और कानपुर आदि स्थानों से अनेक गुप्तचरों ने ग्रिथेड को पत्र लाकर दिये, जिनमें उनसे सहायतार्थ आने के लिये अनुरोध किया गया था। तदनुसार वे आगरे की ओर रवाना हो गये उन दिनों आगरे में विद्रोही सैन्यों की बड़ी प्रबलता थी। ग्वालियर भूपाल, मुहीदपुर, मालवा आदि नाना स्थानों के सिपाही यहां आ जुटे थे। १० वीं अक्तूबर को ग्रिथेड साहब आगरे पहुंच गये। वहां पड़ाव डालकर ज्यों ही विश्राम करने लगे, त्यों ही शत्रुओं ने उन पर अचानक हमला कर दिया और लगातार गोले गोलियां बरसाने लगे। थोड़ी देर बाद वहां घोर द्वन्द्व-युद्ध होने लगा। तलवारों और सङ्गीनों की मार जारी हो गयी। इस तरह कुछ देर आफत मचा कर सिपाही लौट चले। तब ग्रिथेड साहब ने उनका पीछा किया और उन्हें बेतरह हैरान कर डाला। वे अपनी १० तोपें पीछे छोड़कर चले गये।

यह सेना ११ वीं अक्तूबर तक आगरे में रही। इसके बाद वह मैनपुरी पहुंची। रास्ते में ही ऊपर के अधिकारियों के हुक्म से इस सेना के अध्यक्ष कर्नल होपग्राण्ट बनाये गये और उन्होंने दिल्ली से यहां आकर ग्रिथेड साहब से चार्ज ले लिया। मैनपुरी के राजा इसके आने की खबर पाते ही भाग गये। उनका किला बारूद से उड़ा दिया गया। इसके बाद वे वहां पूरी शान्ति स्थापित करने लगे। वहां के जितने सिविलियन भागकर आगरे के किले में जा छिपे थे, वे सब बुला लिये गये और सब काम पहले की तरह होने लगे। तदनन्तर वे लोग सेनापति आउटरम का पत्र पाकर लखनऊ की ओर रवाना हुए। ज्यों ही वे लोग 'सरांयमीरां' नामक स्थान में पहुंचे, त्यों ही उन्हें

सिपाहियों से युद्ध करना पड़ गया। इस युद्ध में भी अंगरेजों की जीत रही। २६ वीं अक्तूबर को यह दल कानपुर पहुंच गया और वहां पहुंचकर ३१ वीं तारीख को आलमबाग और बानी के पुल के बीचवाले मैदान में पड़ाव डाल प्रधान सेनापति के आने की राह देखने लगा।

सर कालिन कैम्पबेल भारतवर्ष के प्रधान सेनापति होकर १३ वीं अगस्त को ही कलकत्ते पहुंच गये थे। इस समय चारों ओर विद्रोहाग्नि धधक रही थी। सारे अवध और रुहेलखण्ड में धांधली मची हुई थी। उन्होंने हर जगह विद्रोह शान्त करने के लिये सेना भेजनी शुरू की। यह बात दूसरी है कि कहीं वह समय पर पहुंची और कहां नहीं, पर इन्होंने अपनी ओर से भूल या देर नहीं होने दी।

२७ वीं अक्तूबर को वे स्वयं कलकत्ते से रवाना हुए और रात दिन घोड़ागाड़ी से चलकर १ ली नवम्बर को इलाहाबाद पहुंच गये। उसके दूसरे ही दिन वे फतेहपुर पहुंचे। उनका उद्देश्य लखनऊ पहुंचना था।

२ री नवम्बर को ही कानपुर के रास्ते में कप्तान पील को सिपाहियों से लड़ना पड़ा था। यह युद्ध 'कजवा' नामक उसी प्रसिद्ध स्थान में हुआ, जहां १६५९ ई० में औरङ्गजेब ने अपने भाई सुल्तान शुजा को हरा कर अपने सिंहासन का रास्ता साफ कर लिया था। कप्तान पील को भी विजय ही प्राप्त हुई। ३ री नवम्बर को प्रधान सेनापति कानपुर पहुंच गये। वहां से चलकर वे ९ वीं नवम्बर को उस जगह

आ पहुंचे जहां कर्नल होपग्राण्ट उनको इन्तजारी में पड़ाव डाले पड़े हुए थे।

कानपुर में सर कैम्पबेल ने वहां के भयानक कृत्योंका हाल सुना और बीबीघर की दुर्घटना की स्मृति लिये हुए ही वहां से आये थे। इसीलिये उन्होंने अपने सैनिकों को वहां सब हाल सुनाकर उत्ते-जित करते हुए कहा कि हमें प्राणपण से इस बात के लिये उद्योग करना होगा जिसमें कानपुर का काण्ड लखनऊ में न दुहराया जाये।

सर कैम्पबेल ने जेनरल हावेलाक की तरह पतली गलियों और सड़कों की राह जाकर दुश्मनों पर हमला करना अच्छा न समझा था। इसी समय सर जेम्स आउटरम ने उनके पास एक गुप्तचर भेज कर उनको आक्रमण करने के सरल उपाय और मार्ग बतला दिये। इस सूचना से सेनापति को बड़ा लाभ हुआ। इधर कर्नल होपग्राण्ट और सर कालिन कैम्पबेल के सैन्यों का आगमन सुनकर सिपाहियों ने जगह-जगह तोपें खड़ी कर उनकी राह रोकने का प्रबन्ध करना आरम्भ कर दिया।

१२ वीं नवम्बर को प्रधान सेनापति ने लखनऊ-उद्धार के लिये कूच कर दिया और १३ वीं नवम्बर को विलकुल और आलमबाग के बीचवाले जलालाबाद के किले पर अधिकार कर लिया। दूसरे दिन सवेरे ही इन लोगों ने दिलकुशाबाग और मार्टिनियर कालेजको को कब्जेमें कर लिया। इसके बाद लोग सिकन्दर-बागके पास पहुंचे। यहां पर सिपाहियोंने घरोंकी खिड़कियों की राह दनादन गोलियां छोड़नी आरम्भ की और अंगरेजी सेना को हैरान कर

डाला। इससे ऊब कर एकदम जोश में आकर सभी सिक्ख, पञ्जाबी मुसलमान और गोरे हाईलैण्डर्स सिकन्दरबाग की दीवार तोड़ कर भीतर घुसने के लिये जी होम कर लड़ने लगे। अन्त में इनकी चेष्टा सफल हुई और सारे सैनिक भीतर घुस गये।

१६ वीं नवम्बर को अंगरेजों ने फिर रेजिडेंसी की ओर पैर बढ़ाया। क्रमशः ये लोग नवाब गाजीउद्दीनहैदर के शाहनजफ नामक समाधि-मन्दिर के पास आ पहुंचे। उससे कुछ दूर पर कदमरसूल नामक एक छोटी-सी मसजिद थी। सिक्ख सवारों ने मसजिद पर तो अधिकार कर लिया, पर शाहनजफ पर कब्जा करना कठिन प्रतीत होने लगा। इस मसजिद के पासवाले जङ्गल और उसकी ऊंची चहारदिवारी के भीतर छिपे हुए सिपाही छोटे छोटे सुराखों से गोलियाँ छोड़ते हुए अंगरेजों की सेना में तबाही फैलाने लगे। रात हो आयी, पर दुश्मनों का जोर न घटा, यह देख सेनापति ने पीछे हट जाना ही अच्छा समझा, पर जब यह बात कर्नल होपग्राण्ट को मालूम हुई, तब उन्होंने छिपकर इस बात का पता लगाना शुरू किया कि कहीं से इस चहारदिवारी के अन्दर घुसने का रास्ता है या नहीं? निदान, उन्हें एक जगह दीवार टूटी हुई मिली और वे लोग उसी राहसे भीतर घुस गये। शाहनजफ पर अंगरेजों का अधिकार हो गया। इसके बाद उन्होंने और भी दो एक मार्के के स्थान ले लिये।

इधर रेजिडेंसी में अटके हुए लोग भी चुप नहीं थ। वे भी सेनापति से मिलने के लिये तड़प रहे थे और उनका उद्देश्य पूरा करने में

सहायक हुआ चाहते थे। सेनापति हावेलाक को जब यह मालूम हुआ कि सर कालिन कैम्पबेल ने सिकन्दरबाग ले लिया तब इन्होंने भी 'फरीदबख्श-मञ्जिल' नामक महल की चहारदिवारी ढा दी और सिपाहियों पर गोले बरसाने शुरू कर दिये। इतने में इनके पैदल सैनिकों ने फरीदबख्श और मोतीमहल के बीच के दो मकानों पर अधिकार जमा लिया। इससे सेनापति का मार्ग और सरल हो गया। यह घटना १६ वीं नवम्बर की है।

१७ वीं नवम्बर को बड़े तड़के सर कालिन कैम्पबेल के सैनिकों ने 'खुर्शेद-मञ्जिल' पर हमला करके उसे अधिकार में कर लिया। इसे लेकर वे मोतीमहल की ओर बढ़े। सिपाही इसकी रक्षा के लिये खूब बहादुरी के साथ लड़े, पर सूर्योदय होते-न-होते वे हार गये और मोतीमहल पर अंगरेजों का अधिकार हो गया।

इतने पर भी सिपाहियों ने हिम्मत न हारी और कैसरबाग से मोतीमहल तथा खुर्शेद-मञ्जिल पर गोले बरसाने लगे। कड़ी गोला-बारी होते हुए भी सर जेम्सआउटरम और सर हेनरी हावेलाक खुर्शेद मंजिल में प्रधान सेनापति से जा मिले। इन लोगों को तो चोट नहीं आयी, पर कर्नल नेपियर और हावेलाक साहब के बेटे को हलकी चोट पहुंची। इस प्रकार पांच दिन बाद प्रधान सेनापति अपने लक्ष्य स्थान पर पहुंचे। इतने ही दिनों में उन्हें ४५ अफसरों तथा ४९६ सैनिकों की बलि देनी पड़ी।

अब यह विचार होने लगा, कि बालक-बालिकाओं और स्त्रियों को ले-दे कर रेजिडेन्सी से चल देना ही ठीक है, पर हावेलाक,

आउटरम तथा अन्यान्य बड़े-बूढ़े सेनापतियोंको यह बात न रुची। पर प्रधान सेनापति ने उन्हें रेजिडेन्सी छोड़ कर चले जाने का ही आदेश दिया। वहाँ से पांच मील दूर दिलकुशाबाग में ही जाना स्थिर हुआ। परन्तु रास्ते में केसरबाग से सिपाहियों के छोड़े हुए गोलों से घायल होने का भी डर था। इसलिये बीचवाले मैदान में झटपट मिट्टी की दीवार खड़ी की गयी और वहाँ से सिपाहियों पर गोले बरसाये जाने लगे। इधर १९ वीं नवम्बर को बालक-बालिकाओं तथा स्त्रियों को दिलकुशा पहुंचा दिया गया। यहां पर नवाब परिवार के छोड़े हुए २५ लाख रुपये के हीरे-मोती अंगरेजों के हाथ लगे। अन्यान्य बहुतसी सामग्रियां भी प्राप्त हुईं। दुर्भाग्यवश २० वीं नवम्बर को सर हेनरी हावेलाक को आमातिसार हो गया और २४ वीं को ही वे इसी रोग से परलोकवासी हो गये। इससे अंगरेजी सेना में बड़ा शोक फैला। आलमबाग में ही उनकी लाश को कब्र दी गयी।

इधर दो-तीन दिनों से कानपुर की तरफ से बड़ी-बड़ी तोपों की लगातार गड़गड़ाहट सुनाई दे रही थी। सर कालिन कैम्पबेल को संवाद भी मिला था, कि वहां तांतियाटोपी की अधिनायकता में सिपाहियों ने बड़ी आफत ढा रखी है, इसलिये सेनापति आउटरम को ४००० सैनिकों और २५ तोपों के साथ आलमबाग में ही ठहरने की आज्ञा देकर वे कानपुर की ओर चल पड़े। उनके साथ उस समय ३००० सैनिक और २००० रक्षणीय जीव थे, जिनमें बालक-बालिकाएँ, स्त्रियां और घायल सैनिक थे।

उस समय कानपुर की रक्षा का भार सेनापति बाइण्डहैम पर था। उनसे यह काम अच्छी तरह अंजाम न हो सका। सर कालिन ने कानपुर आकर देखा, कि तांयियाटोपी और ग्वालियर की सेनाओं ने अंगरेजों को परास्त कर भगा दिया है। उन्हें आज्ञा दी गयी थी कि कानपुर छोड़ कर कहीं न जायें, पर वे जोश में आकर २००० सैनिकों के ही बल पर २५००० सिपाहियों से जा भिड़े, जिसका नतीजा यह हुआ, कि उन्हें कानपुर से ही अलग हो जाना पड़ा और प्रायः सारा कानपुर तांतियाटोपी के अधीन हो रहा।

अब किस प्रकार प्रधान सेनापति ने तांतिया टोपी को पराजित कर कानपुर में अंगरेजों का अधिकार पुनः तिष्ठित किया, उसका वर्णन अगले अध्याय में है।

छब्बीसवां अध्याय।

प्रधान सेनापति और तांतिया टोपी।

तांतिया टोपी का नाम पहले आ चुका है। ये जाति के ब्राह्मण और अहमदनगर के रहनेवाले मराठा थे। ये नानासाहब के खास सलाहकारों में थे। नानासाहब के लिये ये सदा जान देने को तैयार रहते थे। बहादुरी इनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। नाना साहब के भाग जाने पर भी इन्होंने उनका जारी किया हुआ काम बन्द न होने दिया और अंगरेजों के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करनेमें लगे रहे। इस समय इनके पास बहुत बड़ी विशाल सेना थी। ग्वालियर के चुने हुए वीर इस समय इनके साथ थे। इसी विशाल तथा पराक्रमी सेना के बल से बलवान् होकर ये अंगरेजों के छक्के छुड़ाने के लिये तैयार थे। इन्होंने अंगरेजी सेना के पास रसद पहुंचाने के सभी रास्ते बन्द कर दिये थे और कालपी से शिवराजपुर तक सभी मौके के स्थानों पर हजारों चुने हुए जवान और दर्जनों तोपें तैनात कर रखी थीं। आस-पास के सभी स्थानों पर मराठा सेनापति ने अधिकार कर लिया था। यह सब जानते हुए भी अपनी वीरता के घमण्ड में चूर वाइण्डहैम साहब ने उनके विरुद्ध युद्ध-यात्रा की। उस समय उनके पास बहुत थोड़ी सेना थी और तांतिया टोपी की तरफ २५००० पैदल सिपाही, ५०० घुड़सवार और ६ बड़ी-बड़ी तोपें थीं। सिपाहियों के सामने पेड़ों की घनी कतारें थीं। पास ही पाण्डु नाम की एक छोटी सी नदी थी। उसीके किनारे दोनों दलों में खूब घमासान युद्ध हुआ। कुछ ही देर में तांतिया की फौज हटने लगी और

वाइण्डहैम साहब ने सोचा, कि अब दुश्मन सिर न उठा सकेंगे। पर उनका यह सोचना बेकार साबित हुआ। मराठा सेनापति ने उन्हें २४ घंटे की भी मुहलत न दी और ५ घंटे जी होम कर युद्ध करने के बाद उन्हें भागने में ही कुशल दिखाई देने लगी। युद्ध में प्रायः उनके ३०० सैनिक मारे गये। शेष सब तितर-बितर होकर भाग चले। यह घटना २७ वीं नवम्बर को है।

पर इतनी बड़ी हार खाकर भी बाइण्डहैम साहब किले में जाकर न छिप रहे; बल्कि बाहर ही पड़े रहे। २८ वीं नवम्बर को तांतिया टोपी ने नगर पर अधिकार कर लिया और जगह-जगह उनकी तोपें विराजने लगीं। इन तोपों से ऐसी भीषण गोलाबारी जारी हुई, कि अंगरेजी सैन्य की भागते-भागते जान आफत में पड़ गयी। उनके सारे सामान सिपाही-सैन्य के हाथ लगे। सिपाहियों ने जरूरी सामान अपने पास रख कर और सब चीजें जला कर खाक कर दीं, बाइण्डहैम साहब अपने सब सैनिकों को लिये हुए पूर्वोक्त मिट्टी के बने हुए दुर्ग के अन्दर चले गये। कितने ही सेनापति और अफसर भी इस युद्ध में काम आ गये।

किसी-किसी तरह रात कटी। सबेरे ही अर्थात् २९ वीं नवम्बर के प्रातःकाल ही प्रधान सेनापति सर कालिन कैम्पबेल कानपुर पहुंच कर बाइण्डहैम साहब से मिले। उस दिन गङ्गा के उस पार उन्होंने पड़ाव डाला और बाइण्डहैम साहब के यहां बहुतसी तोपें भेजीं और उनके पास रहनेवाली यूरोपियन महिलाओं और बालक-बालिकाओं को अपने पास बुला लिया।

नानासाहबके वीरसेनापति,
विद्रोहके नेता—तांतियाटोपी।

तांतियाटोपी को जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने गङ्गा का पुल तोड़ देना चाहा, जिसमें प्रधान सेनापति की फौज नदी पार न कर सके। इसी उद्देश्य से बहुतसी तोपें पुल के सामने खड़ी की गयीं ; पर कप्तान पील की तोपों ने इसी समय ऐसी भयङ्कर गोला-बृष्टि आरम्भ की, कि तांतियाटोपी की तोपें कुछ काम न कर सकीं और अंगरेजी सेना पुल पार करने लगी। लगातार दिन-रात यह अवतरण कार्य्य होता रहा। तांतियाटोपी की कोई चेष्टा काम न आयी। ३० वीं नवम्बर की शामको ६ बजे सब लोग कानपुर पहुंच गये। गङ्गा की नहर के उस पार इनका पड़ाव पड़ा।

इधर शत्रुओं ने सारा नगर और गङ्गा किनारे के प्रायः प्रत्येक स्थान पर अधिकार कर रखा था। इसलिये उन्होंने इन सब स्थानों की रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करना आरम्भ किया। सब ओर से रक्षा का बन्दोबस्त होते हुए भी एक ओर बहुत दूर तक फैला हुआ लम्बा मैदान था। अंगरेज सेनापति ने उसी तरफ उन पर आक्रमण करना निश्चित किया।

परन्तु पहले अपने पास जो असहाय स्त्रियां, बच्चे और घायल थे, उन्हें निरापद स्थान में पहुंचाये बिना वे अपना यह विचार कार्य्य में परिणत न कर सके। १ ली, २ री और तीसरी दिसम्बर को ये लोग लगातार इलाहाबाद भेजे जाते रहे। इस बीच सिपाहियों की ओर से इन पर आक्रमण भी हुए ; पर उनसे वैसी कुछ हानि न हुई। सब रक्षणीय जीवों को इलाहाबाद भेज कर सेनापति कैम्पबेल युद्ध की तैयारी करने लगे। इस समय उनके

पास ५००० पैदल, ६०० घुड़सवार और ३५ तोपें थीं । उधर शत्रुओं के पास २५००० सिपाही और ४० तोपें तैयार थीं ! पर इनमें कुल १४००० जवान ही युद्ध-विद्या में निपुण थे । ७००० सिपाही ग्वालियर के थे । शेष सब नानासाहब के अनुचर अथवा बुन्देल-खण्ड और मध्य भारत से आये हुए सिपाही थे । तांतियाटोपी इस विशाल सेना के सेनापति थे । कहते हैं, कि स्वयं नानासाहब भी इस समय तांतियाटोपी की सहायता को चले आये थे और इस सैन्यदल के एक भग का सञ्चालन कर रहे थे ।

६ ठी दिसम्बर के सवेरे ही दोनों दलों में युद्ध छिड़ गया । अंगरेजों की ओर से कैम्पबेल, वाइण्डहैम , वालपोल आदि चतुर सेनापति समर-क्षेत्र में आ डटे । सारा दिन युद्ध होता रहा । कप्तान पील की तोपों ने इस लड़ाई में बड़ा काम किया । अन्त में तांतियाटोपी की हार हुई और उनकी विशाल सेना तितर-बितर हो गयी । १४ मील तक अंगरेजी फौज ने इनका पीछा किया, पर अन्त में रात हुई देख, वह कानपुर लौट आयी । यहां आकर उसने सिपाहियों के निवास-स्थान पर अधिकार जमा लिया और उनकी सब चीजें हथिया लीं ।

भागे हुए कुछ सिपाही सरैयाघाट से गङ्गा पार कर अयोध्या की ओर चले जा रहे थे, इसी समय कर्नल होप ग्राण्ट ने इन्हें रोका और बुरी तरह हराकर इनकी तोपें छीन लीं । इस तरह शत्रुओं के दो दलों को दो युद्धों में परास्त करने से अंगरेजों को बड़ी खुशी हासिल हुई ।

इधर ग्वालियर की पल्टन भागती हुई कालपी चली आयी। तांतियाटोपी ने फिर से उनका सङ्गठन कर डाला।

नानासाहब बिठूर चले आये थे, पर जब तक अंगरेज वहां पहुंचे तब तक वे अपने अनुचरों और टोपों को साथ लिये हुए अयोध्या की ओर चल दिये। चिड़िया को यों हाथ से निकल जाते देख, अंगरेजों ने उनका गुस्सा बिटूर पर उतारना शुरू किया। बिठूर को ध्वंस करने का जो कार्य्य जुलाई में हावेलाक साहब ने शुरू किया था, उसे प्रधान सेनापति ने साङ्गोपाङ्ग सम्पूर्ण कर डाला। ११ वीं दिसम्बर को उनके हुक्म से कर्नल होपग्राण्ट बिठूर पहुंचे और उन्होंने नानासाहब के महल में आग लगवा कर वहां का मन्दिर तोप से उड़वा दिया! नानासाहब ने जाते समय ३० लाख रुपये, बारूद और गोले-गोलियोंके तोड़े, सन्दूक में भर कर एक कुएं में डाल दिये थे। बहुतसे सोने चांदी की चोजें भी इस कुएं में फिकवा दी थीं। १५ वीं से लेकर २६ वीं दिसम्बर तक रात-दिन इन चीजों के उद्धार की चेष्टा जारी रही और सभी चीजें अंगरेजों के हाथ आ गयीं ; पर जिन लोगों ने कुछ इनाम पाने की आशा से यह खबर उन्हें दी थी अथवा जिन्होंने इनको कुएंसे निकाल कर बाहर किया था , उन्हें धेला भी न दिया गया।

कानपुर से निश्चिन्तसे होकर सर कालिन कैम्पबेल ने अन्य स्थानों की ओर दृष्टि फेरी। उस समय केवल दिल्ली, इलाहाबाद और आगरे पर ही अंगरेजी सत्ता पुनः प्रतिष्ठित हो सकी थी। फतेहगढ़, मैनपुरी आदि स्थानों में विद्रोहियों की ही प्रधानता थी।

इसलिये प्रधान सेनापति ने २४ वीं दिसम्बर को कानपुर छोड़ दिया और ३१ वीं तारीख को गुरसाहीगञ्ज पहुंच गये। यदि विद्रोहियों में जरा भी बुद्धि होती, तो वे लोग रास्ते के पुल वगैरह तोड़ कर इनकी यात्रा में बाधा पहुंचा सकते थे; पर उनसे कुछ भी करते न बना। पीछे जब उन्होंने सेना को गुरसाहीगञ्ज पहुंचा देखा, तब चेते, पर उस समय क्या हो सकता था? उन्होंने काली-नदीका पुल तोड़ा, पर सारा पुल न टूट सका और शीघ्र ही मरम्मत कर लिया गया। १ ली जनवरी को ये लोग फतेहगढ़ पर चढ़ाई करने चले।

२ री जनवरी को खुदागञ्ज नामक गांव में फर्रुखाबाद के नवाब की फौज से अंगरेजी फौज का सामना हुआ। नवाबी फौज ने शत्रु-सैन्य का भीषण संहार किया, पर जब कप्तान पील की तोपें छूटने लगीं, तब उन्हें ३।४ मील तक पीछे हट जाना ही पड़ा। इसके बाद उन लोगों ने एक बार फिर आगे बढ़ कर युद्ध किया, पर पुनः हार कर भाग जाना पड़ा। इस बार वे हार कर रुहेलखण्ड की ओर चले गये।

उनके भागते ही अंगरेजी फौज ने फतेहगढ़ के किले पर कब्जा कर लिया। किले की सारी चीजें अंगरेजों के हस्तगत हो गयीं। इसके बाद घोषणा हुई, कि यदि फर्रुखाबाद के नवाब न पकड़े गये, तो अंगरेजी फौज शहर में लूट-तराज जारी कर देगी। खैर, नवाब साहब पकड़ कर विचारक के सामने हाजिर किये गये। पर ये असल में नवाब साहब नहीं, बल्कि उनके एक रिस्तेदार थे। लेकिन उस समय गुस्सेसे उबले हुए हाकिमों को तो अपने दिल का बुखार

निकालना था—फिर यह कौन सुनता है, कि ये नवाब हैं या उनके कोई नातेदार ? बेचारे को सुअर का मांस जबरदस्ती खिलाया गया, डोम के हाथों बेत से पिटवाया गया और अन्त में फांसी दे दी गयी !

प्रधान सेनापति फतेहगढ़ में ही डटे रहे। रुहेलखण्ड के बहुत-से सिपाही उन पर नज़र रखे हुए थे। अबके उन्होंने सुना, कि स्वयं सेनापति रामगङ्गा के पुल की देख-भाल कर रहे हैं, तब चटपट ५००० सिपाही और २ तोपें लिये हुए शमसाबाद में टिके हुए अंगरेजों पर चढ़ आये। पर हार ही उनके बांटे पड़ी। इसके बाद आस-पास के सन्दिग्ध मनुष्यों की धर-पकड़, विचार और फांसी होनी शुरू हुई। १३० मनुष्य इस तरह फांसी पर लटकाये गये !

एक महीने तक प्रधान सेनापति यहीं अड़ रह गये, इसके लिये बहुतों ने उन्हें कोसा, पर वे जल्दबाजी करने को तैयार न हुए। वे यहीं बैठे-बैठे रुहेलखण्ड का हाल-चाल ले रहे थे। उनकी इच्छा वहीं जानेकी थी, पर इसी बीचमें उन्हें फिर लखनऊ जानेकी आज्ञा मिली। लाचार, ये ३ री फरवरी को लखनऊ के लिये रवाना हो गये। ये लोग कानपुर होते हुए ८ वीं को उन्नाव पहुंच गये। इस समय गवर्नर-जेनरल इलाहाबाद में थे। प्रधान सेनापति ने वहां जाकर उनसे मुलाकात की और फिर उन्नाव आकर लखनऊ के लिये कूच कर दिया।

इस समय भी लखनऊ पूरी तरह अंगरेजों के अधिकार में नहीं आया था। सर कालिन कैम्पबेल केवल वहां असहाय अवस्था में पड़े हुए गोरों की रक्षा मात्र कर सके थे। उनके चले जाने पर उनके अधिकृत स्थानोंमें से अनेक सिपाहियों के हाथ में फिर आ गये थे।

इन दिनों पदच्युत नवाब की बेगम हजरतमहल की यहां हुकूमत जारी थी। जिन लोगों ने किसी दिन विपद् में पड़े हुए अंगरेजों की रक्षा की थी, वे भी बेगम साहब के तरफदार बन गये थे। फैज़ाबाद के महाराज-मानसिंह * प्रत्येक विषय में अंगरेजों के पक्षपाती होते हुए भी बेगम का पक्ष लिये बिना न रह सके। सेनापति आउटरम आलमबाग में मौजूद थे और सिपाही उनकी छावनो पर समय समय पर आक्रमण कर दिया करते थे। बेगम हजरतमहल खुद उनकी सेनाध्यक्षता करती थीं। पर बेगम के बुरे दिन दूर नहीं थे। शीघ्र ही सर कैम्पबेल २१००० सैन्य और १६० तोपें लिये हुए लखनऊ में आ धमके। २ री मार्च को उन्होंने चढ़ाई कर दी। शीघ्र ही शाहनजफ़ और सिकन्दरबाग पर उनका अधिकार हो गया। इसके बाद कैसर बाग़ और बेग़मकोठो लेने के लिये अंगरेजों को बड़ी घमासान लड़ाई करनी पड़ी। सिक्खों ने इस लड़ाई में बड़ी वीरता दिखायी। प्रायः सभी सिपाही वीरगति को प्राप्त हो गये।

१० वीं मार्च को बेगम कोठी पर हमला हुआ। इस समय सर कालिन कैम्पबेल नेपाल के राना जंगबहादुर के सम्मानार्थ एक दरबार करने में लगे थे। राना साहब भी नेपाल से साहबों की मदद को चले आये थे और गोरखपुर तथा फूलपुर में सिपाहियों को हरा कर अयोध्या में आ पहुंचे थे। दरबार में ही सर कालिन को

* ये जातिके शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। इनके वंशधर अबतक अयोध्या में राजा हैं। महाराज मानसिंह हिन्दीके बड़े प्रतिभाशाली कवि और कवियोंके आश्रयदाता थे। आपके बनाये कई ग्रन्थ छप चुके हैं।

संवाद मिला, कि बेगमकोठी पर अंगरेजों का अधिकार हो गया। इसी लड़ाई में मुगल-बादशाह को कैद करनेवाले तथा अपने हाथों शाहजादों का वध करनेवाले कप्तान हडसन मारे गये।

पूर्वोक्त मौलवी हमदुद्दौला लश्करशाह नामक एक फ़कीर बहुतसे मुसलमानों को जोश दिलाकर अंगरेज़ों के विरुद्ध उभाड़ लाये थे, पर अन्त में इनके आदमी भी बुरी तरह हराकर भगा दिये गये। मौलवी साहब खुद भी रूपोश हो गये।

इसी तरह छोटी-मोटी अनेक लड़ाइयों के बाद २५ वीं मार्च को लखनऊ-शहर विद्रोही सिपाहियों से एकबारगी ही खाली हो गया। बेगम हज़रतमहल दूसरी जगह चली गयीं। अंगरेज-पक्षके सैनिकों ने दिल्ली की तरह यहां भी खूब लूट-पाट मचायी। इस लूट-पाट में शहर के बहुतसे बदमाशों की भी बन आयी। कई दिनों तक मन-मानी लूट-मार जारी रही।

लखनऊ पर पूरी तरह अधिकार हो जाने पर कप्तान पील कान-पुर चले गये और वहीं चेचक की बीमारी से मर गये। प्रधान सेनापति ने रुहेलखण्ड की तरफ निगाह फेरी। उन्होंने रुहेलखण्ड के भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न सेनापतियों को भेज कर सब जगह अंगरेजों की सत्ता पुनः प्रतिष्ठित करवा दी। रुहेलखण्ड के नामी-नामी विद्रोहियों के होश ठिकाने आ गये। कोई भागे, कोई फांसी पड़े। पूर्वोक्त मौलवी अहमदुद्दौला भी बुरी तरह मारे गये। उन्होंने कई जगह जाकर आग सुलगायी, पर अन्तमें उनके भाग्य में कुत्ते की मौत मरना ही बदा था।

बीसवां अध्याय ।

झांसीकी रानी लक्ष्मीबाई ।

झांसीका विद्रोह इस इतिहास की एक विचित्र घटना है और उसका सम्वन्ध वहां की वीर रानी लक्ष्मीबाई से होने के कारण हम उसका वर्णन संक्षेप में नहीं कर सके, इसीलिये हम इस अध्याय में रानी साहबा का पूर्ण परिचय देते हुए झांसी की कुल घटनाओं का सिलसिलेवार वर्णन करना चाहते हैं। रानी साहिबा का कुछ परिचय हम इस ग्रन्थ की उपक्रमणिका में भी दे चुके हैं।

महाराष्ट्र प्रदेश में कृष्णानदी के किनारे वाई नामक एक ग्राम है। वहां कृष्णाराव ताम्वे नामके एक महाराष्ट्र ब्राह्मण रहते थे, जो पेशवाई के जमाने में बड़े ऊंचे पद पर काम करते थे। इनके पुत्र बलवन्तराव पेशवा सरकार में सिपहसालार थे। इनके दो पुत्र हुए— मोरोपन्त और सदाशिवराव। अन्तिम पेशवा बाजीराव के भाई चिमाजी अप्पासाहब की मोरोपन्त पर बड़ी कृपा रहती थी। जब बाजीराव पेशवा बिठूर भेज दिये गये, तब अंगरेजों ने चिमाजी को पेशवाई की गद्दी पर बिठाना चाहा, पर उन्होंने इस नाममात्र की पेशवाई को लात मार दी और काशी में आकर रहने लगे। मोरोपन्त भी इनके साथ ही काशी चले आये।

यहीं मोरोपन्त को १६ वीं नवम्बर १८३५ के दिन एक कन्या हुई, जिसके जन्मलग्न का विचार कर ज्योतिषियों ने कहा कि यह कन्या राजमहिषी और अत्यन्त शौर्यशालिनी होगी। कन्या का नाम मनुबाई रखा गया।

चिमाजी अप्पा साहब की मृत्यु के बाद मोरोपन्त बिठूर चले आये और बाजीराव के कृपापात्र हो, सुख से समय बिताने लगे। दुर्भाग्य-वश इसी समय उनकी पत्नी भागीरथीबाई का भी देहान्त हो गया। बेचारी मनुबाई ३-४ वर्ष की ही अवस्था में मातृहीना हो गयी।

मोरोपन्त अपनी कन्या का स्वयं लालन पालन करने लगे और घरमें कोई स्त्री न होने से मनु प्रायः पिता के साथ दरबार में भी जाया करती थी। बाजीराव भी उस बालिका पर अत्यन्त स्नेह रखने लगे। उनके दत्तकपुत्र नानासाहब भी उस समय लड़के ही थे। वे भी मनु के साथ ही खेल-कूद किया करते थे। धीरे धीरे बालकों के साथ खेल-कूद करते करते मनुबाई ने घोड़ा चढ़ना और तलवार चलाना भी सीख लिया। इसके सिवा वह लिखने पढ़ने में भी बड़ी होशियार हो गयी। क्रमशः बालिका, विवाह योग्य हुई। मोरोपन्त वर की खोज में लगे।

एक ज्योतिषी ने पहले भी कहा था और दूसरे ने इस बार भी कहा कि यह लड़की अवश्य ही किसी राजाकी रानी होगी। इसी समय झांसी के राजा गङ्गाधररावकी पत्नी का देहान्त हुआ। ज्योतिषी ने मोरोपन्त से कहा कि तुम अपनी लड़की का विवाह उन्हीं से कर दो—वे झट राजी हो जायेंगे। पहले तो मोरोपन्त को

यह बात दुःसाहससी मालूम पड़ी, पर पीछे ज्योतिषी के बहुत जोर देने पर उन्होंने उसी ज्योतिषीको गङ्गाधरराव के पास बाजीराव का पत्र देकर भिजवाया। उस पत्र में बाजीराव ने मनुबाई की सुन्दरता आदि का बखान करते हुए उनसे इस बात की सिफारिश की थी कि वे इसी लड़की से विवाह कर लें।

गङ्गाधरराव के मन्त्री कन्या को देखने के लिये आये और देख कर बहुत प्रसन्न हुए। उनके कहने से गङ्गाराव को बाजीराव की बात मान लेनेमें कोई आपत्ति न रह गयी और सम्बन्ध पक्का हो गया। सन १८४२ ई० में महाराज गङ्गाधररावके साथ मनुबाई का विवाह हो गया। ससुराल आने पर उसका नाम 'लक्ष्मी बाई' रखा गया। विवाहके बाद मोरोपन्त झांसी दरबार में ३००) महीने पर नौकर हो गये और यहीं रहने लगे। यहां आकर उन्होंने भी अपना दूसरा विवाह कर लिया। काल पाकर मोरोपन्त की इस पत्नी से भो एक पुत्र और एक कन्या हुई।

ईश्वर की कृपा से १८५१ ई० में लक्ष्मीबाई के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, परन्तु तीन महीने बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। पुत्र-वियोग से लक्ष्मीबाई और गङ्गाधरराव दोनों ही बड़े दुःखी हुए। महाराज को तो इस शोक का ऐसा धक्का लगा कि वे बीमार पड़ गये और कुछ ही दिनों की बीमारी के बाद स्वर्गवासी हो गये। मृत्यु के पहले उन्होंने दामोदरराव नामक एक लड़के को गोद ले लिया और अंगरेज सरकार से प्रार्थना की, कि जब तक लड़का बालिग न हो जाये तब तक मेरी विधवा पत्नी और इस बा-

लककी माता राज्यकी देखभाल करें—इन लोगों के अधिकार न छीने जायं, क्योंकि मैं अंगरेज सरकार का पुराना खैरख्वाह और मददगार हूं।

पर बेचारे की सारी खैरख्वाही पर धूल डाल दी गयी और लार्ड डलहौसी की सर्वग्रासिनी नीति ने झांसी की गद्दी को लावारिस करार देकर उसे अंगरेजी राज्य में ही मिला लेना उचित समझा। जिस दिन यह आज्ञा महारानी लक्ष्मीबाई को सुनायी गयी उस दिन ही उन पर बिना बादल का वज्र घहरा पड़ा।

वे किले से हटा कर शहर के एक मैदान में भेज दी गयीं। गंगाधरराव के ६ लाख रुपये दामोदरराव के नाम से सरकारी बेङ्क में जमा कर दिये गये और कहा गया कि यह रकम उन्हें बालिग होने पर दे दी जायगी। सब पुराने सैनिकों को जवाब दे दिया गया। पुरानी तोपें और अनेक युद्ध-सामग्रियां नष्ट कर डाली गयीं। मतलब यह कि पुराने चिह्न सब नष्ट कर दिये गये। महारानी ने अपना राज्य पाने के लिये विलायत तक चेष्टा की, पर विफलता ही हाथ आयी। लाचार, वे मन मार कर रह गयीं और धर्मानुष्ठान करती हुईं वैराग्यमय जीवन व्यतीत करने लगीं। उन्हें ५०००) हर महीने खर्च को दिये जाते थे। इसी रकम से वे अपना सारा काम चलाती रहीं।

इस तरह तीन साल उन्होंने बड़े दुःख से बिताये। १८५७ में सारे हिन्दुस्तान में गदर की आग भड़क उठी। झांसी में भी वह आग आ पहुंची। इस बलवे का मूल कारण कुछ अंगरेज लक्ष्मीबाई

को ही मानते हैं, पर यह उनके पापी मन का सन्देह मात्र है। वास्तव में वे उस बलवे में भरसक अंगरेजों को मदद को ही तैयार रहीं। हिन्दू—विशेषतः हिन्दू-स्त्रियां वैसी क्रूर प्रतिहिंसा-परायणा नहीं होतीं, कि शत्रु के गाढ़े दिनों का लाभ उठाना ही अर्थ समझें। इस सन्देह के कारण उन्हें कैसा दुःख भोगना पड़ा, यह आगे के वर्णन से स्पष्ट हो जायगा।

इस समय झांसी में बंगाल-नेटिव-इन्फैण्टरी की १२ वीं पल्टन, १४ वीं अनियमित कैवलरी और एक तोपखाना—इतनी सेना थी। इन सब सैनिकों के अध्यक्ष थे कप्तान डनलाप। झांसी के कमिश्नर स्कीन और कप्तान डनलाप दोनों का विश्वास था, कि यहां कुछ गड़-बड़ न मचेगी। मई में मेरठ में जब बलवा मचा, तब यहां के सिपाही उसका समाचार सुनकर भी चुपचाप रहे। किसी तरह यह महीना पूरा हो गया। जून के आरम्भ में ही गोलमाल शुरू हो गया। ३ री जून को छावनी के दो बंगले दिन-दहाड़े जलकर खाक हो गये। ५ वीं जून को किले की तरफ से बन्दूक छूटने की आवाज सुनाई देने लगी। बस, सारे गोरे अपनी जान और माल की रक्षा के लिये व्याकुल हो गये। सब लोगों ने नगर के किले में जाकर आश्रय ग्रहण किया। कप्तान डनलाप और उनके अफसरों ने सिपा-हियों को शान्त रखने की बड़ी चेष्टा की, पर वह सफल न हुई।

उसी दिन कमिश्नर स्कीन और डिपटी कमिश्नर गार्डन साहब कप्तान डनलाप से मिलने के लिये छावनी में आये। वहां से लौटकर वे किले में चले गये और वहां जो ४०।४५ युरोपियन तथा युरेशि-

झांसी की वीर रानी

श्रीमती लक्ष्मीबाई की युद्ध-यात्रा ।

यन छिपे हुए थे, उन्हें आत्मरक्षा के लिये गोली, बारूद और बन्दूक आदि युद्ध-सामग्रियां दे दीं।

इधर डनलाप साहब एक पत्र लेकर डाकखाने गये और वहां से टेलर साहब के साथ परेड पर आये। ज्यों ही वे दोनों वहां पहुंचे, त्यों ही १२ वीं पलटन के सिपाहियों ने उन दोनों को गोली मार दी। इसके साथ ही और भी कितने ही अंगरेज अफसरों का बध कर डाला गया। फिर तो बलवाइयों ने वह ऊधम मचाया कि जिसका नाम ! सारी छावनी तहस-नहस हो गयी। खून की नदियां बह चलीं। वहां से चलकर उन्होंने कैदखाने को तोड़कर सब कैदियों को छुटकारा दे दिया और कचहरियां जला कर खाक कर दीं। बलवाई सिपाहियों, शहर के बदमाशों, बहुतसे पुलिसवालों और छुटकारा पाये हुए कैदियों की एक बहुत बड़ी फौज तैयार होकर किले की ओर चली। किला घेर लिया गया।

लाचार किले में छिपे हुए स्कीन साहब ने लक्ष्मीबाई की शरण लेनी ही उचित समझी। गोरे चमड़े ने जिसका सर्वस्व हरण कर लिया था, फिर उसीका पर पकड़ना चाहा ! कमिश्नर साहब ने रानी की मदद पाने के लिये दो युरोपियनों को, जिनके नाम स्काट और पर्सैल थे, दूत बनाकर रानी के पास भेजा, पर वे रास्ते में ही मार डाले गये।

विद्रोहियों ने किले पर कई धावे किये, पर भीतर न घुस सके। उनके कुछ छिपे हुए मददगार किले के अन्दर अंगरेजों के हितू बनकर घुसे हुए थे। उन लोगों ने विद्रोहियों को गुप्त मार्ग से भीतर

ले आना चाहा। यह बात प्रकट हो गयी और पाविस नामक झांसी के एसिस्टेण्ट लेफ्टिनेण्ट ने उन्हें रोका, पर उन्हें अपनी जान से हाथ धोना पड़ा ! बड़ी मुश्किलों से इन आस्तीन के सांपों के विष के दांत तोड़ने में अवरुद्ध अंगरेज सफल हुए। कुछ दिनों के लिये विघ्न टल गया; पर जब रसद-पानी चुक गया, गोला-गोली खतम होने लगी, तब दुर्गस्थित अंगरेजों ने आत्मसमर्पण कर दिया। वे हथियार नीचे डालकर सन्धि करने को मजबूर हुए। सन्धि के बाद जब वे निहत्थे होकर बाहर आये, तब हथियार-बन्द सिपाहियों ने उन्हें कैद कर लिया और पीछे एक-एक करके सब स्त्री-पुरुषों और बालक बालिकाओं को मार डाला ! इनकी संख्या सब मिलाकर ११४ थी। कोई-कोई ६७ ही बतलाते हैं। पर इस नर-हत्या-काण्ड में महारानी लक्ष्मीबाई का कोई आदमी शामिल नहीं था। उलटे उन्होंने सिपाहियों के बलवाई हो जाने पर गोरों को अपने पास रखना चाहा था और जब वे उन पर विश्वास न कर किले में चले गये, तब भी उन्हें खानेपीने के सामान पहुंचाये थे। यह देखते हुए जो अंगरेज झांसी के बलवे का सारा दोष महारानी पर मढ़ते हैं, वे कहां तक सत्यवादी हैं, यह बात स्पष्ट विदित हो जाती है। रानी ने बार बार गार्डन साहब को मदद देने की बात कहलवा भेजी थी, पर उनका दिल साफ नहीं था, इसलिये वे स्वयं अस्वीकार करने लगे।

आखिरकार, बागियों ने मनमाने ढङ्ग से गोरे-गोरियों की हत्या की और शोरगुल मचाते हुए महारानी का महल घेर लिया और

उनके पास सन्देशा भेजा कि हमलोग दिल्ली जा रहे हैं—आप तीन लाख रुपये से हमारी मदद कीजिये। रुपया न पाने पर महल को तोप से उड़ा देने की धमकी भी दी गयी। इस पर रानी ने बागियों के सरदार के पास कहला भेजा कि इस समय मेरा राज्य, मेरी सम्पत्ति सब कुछ अंगरेजों के हाथ में है, मेरे पास कुछ भी नहीं है, फिर मुझ अभागिनी को आप लोग क्यों सता रहे हैं? पर सिपाहियों ने न माना और उनके पिता को कैद कर लिया। लाचार रानी ने अपने गहने आदि बेंचकर उन्हें एक लाख रुपये दिये और पिता को छुड़वा लिया। इसपर सिपाही 'खल्क-खुदा का, मुल्क बादशाह का और अमल महारानी लक्ष्मीबाई का'—कहते हुए दिल्ली की ओर चले गये। इस आर्थिक सहायता को पाकर बलवाइयों की बलवृद्धि भले ही हुई हो, पर रानी ने जानबूझ कर उनकी मदद नहीं की, बड़े फेर में पड़कर उन्हें अपने गहने बेंचने पड़े थे!

उस समय झांसी में राज्य-प्रबन्ध करने योग्य कोई अंगरेज नहीं था, इसलिये महारानी ने सागर के कमिश्नर से पत्र लिखकर पूछा कि अब क्या करना चाहिये? साथ ही उन्होंने यहां की सारी अवस्था की सूचना भी दे दी, जिससे वे सावधान हो गये और सागर में कोई गड़बड़ नहीं मचने पायी। सागर के कमिश्नर ने अस्थायी रूप से झांसी प्रान्त के शासन का भार महारानी लक्ष्मी-बाई को ही सौंप दिया।

परन्तु महारानी के पास उस समय राजनीति-कुशल कार्यकर्त्ताओं का सर्वथा अभाव था, इसलिये अंगरेजी सरकार की तरफ

से जो पत्रादि आते, उनका ठीक समय पर उत्तर नहीं दिया जाता था। इसीलिये अंगरेज अधिकारियों के मन में चोर बैठता चला गया और वे रानी को विष-दृष्टि से देखने लगे। महारानीने मार्टिन साहब की मारफत जब्बलपुर में कर्नल अर्कसाइन और आगरे के चीफ कमिश्नर कर्नल फ्रेजर के पास खरीते भेजकर अपनी शुद्ध-हृद-यता का पूर्ण परिचय दे दिया था, पर किसी ने उन खरीतों की ओर ध्यान नहीं दिया। अंगरेज अधिकारियों के दिमाग में यह बात घुस गयी थी कि महारानी बागी हैं। यह मिथ्या भ्रम किसी तरह दूर न हुआ। इसे "दैवी विचित्रा गति" न कहें तो और क्या कहें?

इसी समय झांसी के राजघराने का एक सम्बन्धी, जिसका नाम सदाशिवनारायण था, झांसी की गद्दी हथियाने के लिये उद्यत हुआ। उसने १३ वीं जून १८५७ को झांसी से ३० मील दूर करेरा नामक स्थान के किले पर हमला कर, अंगरेजों की ओर से नियत किये हुए थानेदार और तहसीलदार को मार भगाया और किले पर कब्जा कर लिया। उसने आसपास के ठाकुरों को जबर्दस्ती अपने अधीन बना लिया। उनसे काफी रकमें ऐंठीं और महाराज की पदवी धारण कर ली। इसके बाद उसने अपने को झांसी का अधिपति बत-लाते हुए गांव गांव में यह समाचार भेज दिया। साथ ही उसने जहां-तहां लोगों पर जुल्म करना भी शुरू किया। महारानी ने यह समा-चार पा करेरा-दुर्ग पर अधिकार करने के लिये सेना भेजी। उस सेना से डर कर सदाशिव भाग गया और ग्वालियर के नरवर नामक स्थान में चला आया। वहीं वह गिरफ्तार कर लिया गया और

झांसी के किले में कैद कर रखा गया। सदाशिव की यह दुर्गति देख, और किसी ठाकुर या बुन्देले ने सिर नहीं उठाया।

थोड़े ही दिन बाद टेहरी का दीवान नत्थे खां २० हजार सेना लिये हुए झांसी की रानी को दबाने चला। रानी ने बुन्देल सरदारों को बुलवा कर उनसे सहायता मांगी और आप भी टेहरी का मान-मर्दन करने के लिये मुस्तैद हो गयीं। वे स्वयं वीर-वेश बनाये किले के बुर्ज पर जा खड़ी हुईं, जहां अंगरेजी और पेशवाई झण्डे फहरा रहे थे। नत्थेखां को इस लड़ाई में हार ही हाथ आयी—उसकी सारी सेना तितर-बितर और नष्ट-भ्रष्ट हो गयी। लाचार उसने ओछड़े (टेहरी) की रानी की ओर से लक्ष्मीबाई के पास सुलह का पैगाम भेजा, जो कबूल कर लिया गया।

पर नत्थेखां का दिल साफ नहीं था—उसने महारानी के ऊपर और तरह से विपद् ढानी चाही। महारानी ने नत्थेखां की हरकतों का पूरा ब्योरा इन्दौर के पोलिटिकल एजेण्ट राबर्ट हैमि ल्टन साहब के पास लिख भेजा, पर नत्थेखां को किसी तरह इस बात का पता चल गया और उसने पत्र ले जानेवाले दूत को गिरफ्तार कर मार डाला, जिससे महारानी का पत्र हैमिल्टन साहब के पास नहीं पहुंच सका। इतना ही नहीं, उसने अपनी ओर से एक पत्र उक्त साहब के पास लिख भेजा, जिसमें रानी लक्ष्मीबाई के बागी होकर सिपाहियों से मिल जाने की बात लिखी थी। साथ ही उसने यह भी लिख मारा कि मैं बलवाई सिपाहियों और रानीसाहिबा की बगावत को दबाने के लिये उनसे लड़ रहा हूं। इस प्रकार सच्ची बात पर परदा

पड़ गया और अंगरेज अधिकारियों के गले के नीचे नत्थेखां की बातें आसानी से उतर गयीं। बलवाई मित्र और सहायक शत्रु समझा गया! विधि-विधान इसे ही कहते हैं।

जो हो, झांसी से अंगरेजों के हट जाने पर नौ दस महीनों तक रानी लक्ष्मीबाई ने बड़ी योग्यता से वहां का शासन किया। वे प्रति दिन ३ बजे नारी या पुरुष के वेश में दरबार में आतीं और परदे के अन्दर बैठी हुई कर्मचारियों को उचित आदेश-उपदेश दिया करती थीं। कभी कभी वे लिखकर हुक्मनामे जारी करती थीं। उनमें राज्य-शासन की जैसी योग्यता थी, वैसी ही दीन-दुखियों पर दया, प्रजा पर प्रीति और देवता में निष्ठा भी थी। उन्होंने हर तरह से अपने को उत्तम शासक साबित कर दिया था। उनके गुणों ने उन्हें प्रजा की आराध्य देवी बना दिया। यदि सच पूछिये तो यह उन्हीं का काम था जो झांसी बलवाइयों का अड्डा न बनने पाया। यह काम वे इसी आशा से कर रही थीं कि उनके दत्तक पुत्र दामोदरराव के हक का विचार किया जायगा और उसे कालान्तर में झांसी की गद्दी दिलायी जायेगी; पर उनकी आशा तो फलवती न हुई, उलटे वे बागी समझी गयीं और सेनापति सर हिउरोज अपनी विशाल सेना लिये हुए झांसी पर चढ़ाई करने चले आये!

यह विपद् महारानी पर इसलिये आयी, चूंकि उनके राज-कर्मचारियों ने ठीक समय पर उनकी ओर से पत्र लिख कर अंगरेज अधिकारियों के पास नहीं भेजे और कुछ दुष्टों ने महारानी के विरुद्ध झूठी बातें लिख मारीं, जिनसे अंगरेजों के सिर फिर गये।

सर हिउरोज की सेना के आगमन का संवाद सुन, झांसी-दरबार में हलचलसी मच गयी। कुछ लोगों ने सुलह करने की राय दी और कुछ युद्ध के पक्ष में हुए। महारानी अन्तःपुर में रहती थीं, इसलिये उन्हें अधिकतर मन्त्रियों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। इन लोगों ने रानी लक्ष्मीबाई को जंचाया, कि इस समय युद्ध करना ही ठीक है, क्योंकि आप इन पर इतना विश्वास करती हैं और इनकी बराबर सहायता करती आयी हैं, तो भी ये आपसे लड़ने के लिये फौज उतार लाये हैं! यह बात महारानी को पसन्द आ गयी। उन्हें यह सोचकर बड़ा निराशापूर्ण दुःख और क्रोध हुआ, कि मेरे बार बार विश्वस्तता के प्रमाण देने पर भी अंगरेज मुझे बागी ही समझते हैं! लाचार उन्होंने भी युद्ध के पक्ष में ही राय दे दी।

युद्ध करना निश्चित हो जाने पर रानी ने नगर और दुर्ग की रक्षा का झटपट प्रबन्ध कर डाला। बड़े-बड़े बुन्देल-सरदारों और ठाकुरों के अधीन सेनाएं सज्जित होने लगीं। महारानी स्वयं कुछ स्त्रियों के साथ सैनिक कार्यों में भाग लेने लगीं। लक्ष्मीबाई ने इतनी जल्दी और ऐसा अच्छा प्रबन्ध कर लिया, जिसे देख उनके परम शत्रु सेनापति हिउरोज को भी उनके रण-कौशल की प्रशंसा करनी ही पड़ी।

२३ वीं मार्च को युद्ध आरम्भ हो गया। किले की दीवारों पर चढ़ी हुई तोपों ने एक बार तो अंगरेजों के छक्के छुड़ा ही दिये और वे भाग चले। २४ वीं मार्च को अंगरेजों ने कई स्थानों पर मोर्चे-बन्दी कर, किले और शहर पर गोले बरसाने शुरू किये। इस भीषण

गोलाबारी से झांसी के बहुतसे गोलन्दाज मारे गये, तोपें बन्द हो गयीं और दीवारों में छेद हो गये। पर तब तक अंगरेज शहर में न घुस पाये। इतने में किसी देशद्रोही ने अंगरेजों को यह बतला दिया कि पश्चिम की ओर मोर्चा बांधने से शहर पर आक्रमण मजे में हो सकेगा। अंगरेजों ने इस विभीषण की सलाह मान कर उधर ही मोर्चा बांधा और लगे शहर पर गोले बरसाने, इससे सारे शहर में हाहाकार मच गया। चारों ओर सन्नाटा छा गया। यह हाल देख, रानी को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने और भी बहुतसे सैनिक भेज कर शहर की रक्षा की।

२५ वीं को ख़ासी लड़ाई हुई, पर अंगरेजों को कुछ लाभ न हुआ। २६ वीं को बड़ी भयानक लड़ाई हुई। उस दिन तो अंगरेजों ने झांसी के कितने ही गोलन्दाजों को मार गिराया, पर अन्त में जब इधर की बड़ी-बड़ी तोपों ने उनके गोलन्दाजों के हाथ-पैर ढीले कर दिये, तब रानी के सैन्य में शान्ति-सी छा गयी।

३१ वीं मार्च तक लगातार लड़ाई होती रही। दोनों ओर के योद्धाओं ने पराक्रम की पराकाष्ठा दिखला दी। इसी दिन सर हेनरी ह्यिउरोज ने सुना, कि तांतियाटोपी २० हजार फौज लिये रानी की सहायता को चले आ रहे हैं। इससे उन्हें चिन्ता तो अवश्य हुई, पर वे अपनी बुद्धि पर भरोसा कर, निश्चिन्त रहे। उन्होंने झट एक फौज तांतियाटोपी से लड़ने के लिये रवाना कर दी। उस समय तांतियाटोपी वेनवती नदी के किनारे के मैदान में पड़ाव डाले पड़े थे।

पहली अप्रैल के सवेरे ही अंगरेजी फौज का तांतियाटोपी की सेना के साथ युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में भी तांतियाटोपी को विजय न मिली और उनके सैनिक अपनी बड़ी-बड़ी तोपें पीछे छोड़ भाग चले।

तांतियाटोपी के आने की खबर पा, रानी के सैनिकों में बड़ा उत्साह छा गया था। वह उत्साह उनकी हार का समाचार सुन कर भी कुछ कम न हुआ। ३ री अप्रैल तक वे अनुपम वीरता के साथ युद्ध करती रहीं। कमर में तलवार बांधे, वे हर मोर्चे पर जातीं और अपने सैनिकों को जोश दिलातीं।

३ री अप्रैल को अंगरेजों को नगर में घुसने की सुविधा हो गयी। ओड़छा-दरवाजा उनके हाथ आ जाने से वे सीढ़ी लगाकर दीवार पर चढ़ गये। इस तरह नगर में प्रवेश कर उन्होंने नगर के दोनों पार्श्वों के मकानों में आग लगानी शुरू की, सारा शहर जल उठा। स्त्री, पुरुष, बच्चे—सभी इस संहार-लीला के शिकार होने लगे।

इधर सर हिउरोज ने नगर के मध्य में बने हुए राजमहल पर अधिकार कर लिया। वहां के पहरेदारों ने अनुपम वीरता दिखलाते हुए अंगरेजी फौज से मुकाबला किया और लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हो गये।

रानी किले के अन्दर थीं। उन्होंने देखा कि अब अंगरेजी फौज का मुकाबला करना मुश्किल है, इसलिये उन्होंने अपने प्रियतम राज्य को छोड़ देने का ही संकल्प किया। उनके पिता मोरोपन्त भी उनके

साथ जाने को तैयार हुए। दोनों बाप-बेटी घोड़े पर सवार हुए, एक हाथी पर मणि-माणिक्य और दामोदरराव को रखा गया। पीछे उन्होंने दामोदर को अपनी पीठ पर ही बांध लिया।

४ थी अप्रैल की रात को चुपचाप रानी अपने सहचरों के साथ किले से बाहर हुईं। यह खबर मिलते ही अंगरेज सेनापति ने उन्हें पकड़ने के लिये लेफ्टिनेण्ट बौकर को भेजा, पर वे रात के अंधेरे में रानी का पता न लगा सके। रानी का तेज घोड़ा, उनकी पहुंच से बाहर हो गया था। वास्तव में उनकी-सी तेज घुड़सवार को पकड़ना भी आसान नहीं था।

महारानी के चले जाने पर सारा किला सुनसान हो गया और अंगरेजों ने बड़े आनन्द से उस शून्य-दुर्ग पर अधिकार कर लिया। महारानी के बचे-बचाये सिपाहियों ने अन्त तक खूब जी होम कर युद्ध किया, पर अन्त में सब के सब बड़ी निर्दयता से मार डाले गये।

इधर धन-रत्नों से लदे हुए हाथी को साथ लिये महारानी के पिता मोरोपन्त को किसी ने अचानक घायल कर दिया और वे अपनी लड़की के साथ न जाकर दतिया के एक तमोली के घर चले गये। दतिया के राजा ने उन्हें पकड़वा दिया और उनके पास से सब धन-रत्न छीन लिये। सर हिउरोज और सर राबर्ट हैमिल्टन की आज्ञा से उन्हें फांसी दे दी गयी!

झांसी पर अधिकार हो जाने के बाद, अंगरेजों ने सारे शहर को मनमाने ढंग से लूटा-खसोटा और महल की पाई-पाई लूट ली। प्राचीन पुस्तकालय भी नष्ट करने से वे बाज नहीं आये! चारों

वेद, उनके भाष्य, छहों शास्त्र, अठारहों पुराण, समस्त स्मृतियां और उपनिषदें नष्ट कर डाली गयीं। गत जर्मन-युद्ध में जब जर्मनों ने बेलजियम के लुवेन-नगर का प्राचीन पुस्तकालय जलाया था, तब जिन अंगरेजों ने खुले दिल से जर्मनों को गालियां दी थीं, उन्हीं के भाई-बन्धुओं ने झांसी में जो काण्ड किया था, उसे भी शायद ही कोई अंगरेज अच्छी निगाह से देख सकता; पर उस समय तो स्वयं ही वे प्रतिहिंसा-परायण हो रहे थे, इसलिये उन्हें भले-बुरे का विचार करने की फुर्सत ही कहां थी?

जो हो, सात दिनों तक झांसी में खूब लूट-पाट मची रही। आठवें दिन नागरिकों को अभयदान देकर शान्त किया गया और नगर का प्रबन्ध करना शुरू किया। झाँसी के युद्ध, लूट-पाट, अग्नि-लीला और कत्लेआम के परिणामस्वरूप ५००० मनुष्य मारे गये! सैनिकों ने लूट-पाट करके ही लोगों को न छोड़ा, बहुतों को बेकसूर कत्ल भी कर डाला, यह बात इतिहास सिद्ध है।

इधर किले से निकल कर रानी लक्ष्मीबाई, अपनी पीठ पर दामोदरराव को लिये, तेजी के साथ घोड़ा दौड़ाये, कालपी की ओर चल पड़ीं। दूसरे दिन वे भांडेर नामक गांव में पहुंचीं। वहां उनके रहने की खबर पाकर लेफ्टिनेण्ट बौकर कुछ सैनिकों के साथ आ धमके। रानी झटपट अपने पुत्र दामोदरराव को पीठ से बांध, घोड़े पर सवार हो, तलवार चलाती हुईं चल पड़ीं। बौकर को उनकी तलवार ने बेतरह घायल कर डाला और वे आप देखते-देखते उनकी नजरों से गायब हो गयीं। बौकर अपना-सा मुंह लिये लौट आये।

नानासाहब के भाई रावसाहब उन दिनों कालपी में ही डटे हुए थे। तांतियाटोपी भी वहीं थे। रानी ने उन लोगों से अपना दुखड़ा कह सुनाया और उनसे सहायता करने की प्रार्थना की। रावसाहब झट राजी हो गये और रानी भी फिर युद्ध के लिये तैयार हो गयीं।

बांदे के नवाब, बानपुर के राजा तथा अन्यान्य जमींदारों ने भी महारानी की मदद करने के लिये अपनी-अपनी सेनाएं रावसाहब के पास भेज दीं। तांतियाटोपी की अधीनता में एक बड़ी भारी फौज फिर तैयार हो गयी।

कालपी की इस तैयारी का समाचार सुन, सर हिउरोज ने झांसी को रक्षा का खूब अच्छा बन्दोबस्त कर कालपी पर चढ़ाई करने की ठहराई। २५ वीं अप्रैल को उनकी सेना कालपी की ओर चली। इतने में खबर आयी कि रानी लक्ष्मीबाई झांसी पर चढ़ाई करने आ रही हैं और कौंच तक पहुंच गयी हैं। लाचार, उन्हें कुछ सेना कौंच की ओर भेजनी पड़ी। यहां विद्रोहियों और अंगरेजी फौज में खूब घमासान लड़ाई हुई। बहुतसे विद्रोही मारे गये, बाकी के भाग गये। वहां का किला अंगरेजों के हाथ आ गया।

कौंच से दस मील दूर लोहारी में मराठों का बनवाया हुआ एक बड़ा मजबूत किला था। उसे हाथ में कर लेने से अंगरेजों का बल बहुत कुछ बढ़ जाने की सम्भावना थी, इसलिये सर हिउरोज ने थोड़ी-सी फौज उस ओर रवाना की, जो भाग्यवश विजयी हुई।

इधर बहुतसे रजवाड़े अपनी सेनाएं लिये तांतियाटोपी की मदद को कौंच में आ पहुंचे थे। इस बार भी खूब जम कर अंगरेजी

और विद्रोही सेनाओं में युद्ध हुआ। विद्रोही फिर भी हार कर भाग चले। यानी लक्ष्मीबाई की राय से सब काम होते, तो इस लड़ाई में विद्रोहियों की कभी हार न होती, पर वहां तो 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' थी, इसीलिये हार ही उनके गले का हार हुई। ऐतिहासिकों का मत है, कि इस समय लक्ष्मीबाई जैसी कुछ सलाहें उन्हें दे रही थीं, वही विद्रोहियों के लिये हितकर थीं। इससे बढ़कर रानी लक्ष्मीबाई की रण-कुशलता का और क्या प्रमाण चाहिये ?

अब रावसाहब, बांदेके नवाब साहब, रानी लक्ष्मीबाई और तांतियाटोपी में यह परामर्श होने लगा, कि इस समय क्या कर्त्तव्य है ? और लोगों ने तो ऐसी ही वैसी बात बतलायी, पर साहसी, बुद्धिमती और प्रतिभाशालिनी रानी ने एक बड़ी ही विलक्षण युक्ति सोच निकालीं। उन्होंने कहा,—"जैसी अवस्था है, उसे देखते हुए किसी किले के अन्दर रहकर युद्ध करना ही ठीक है। मेरी राय है कि हम लोग इधर-उधर अपनी शक्ति नष्ट न कर, ग्वालियर चलें और वहां के सैनिकों को धर्म के नाम पर उत्तेजित कर अपनी ओर मिला लें। इसके बाद हमारी विजय निश्चित है।" बड़े वादानुवाद के बाद यही बात तय पायी और ३० वीं मई को यह सारा लश्कर ग्वालियर की ओर रवाना हो गया।

ग्वालियर के सचतुर मन्त्री दिनकरराव ने सोचा, कि पेशवा के भाई यहां आ पहुंचे, तो यहां सभी लोग अवश्य उनके दल में जा मिलेंगे, इसलिये कूट-नीति का ही अवलम्बन करना ठीक है। इसलिये उन्होंने ऊपर से रावसाहब के साथ दोस्ती दिखलानी शुरू की

और भीतर-ही-भीतर अंगरेजों से सहायता की प्रार्थना करने लगे। पहले तो महाराज को भी मन्त्री की ही बात पसन्द आयी; पर पीछे यह देख कर, कि दिल्ली अंगरेजों के हाथ आ गयी है, लखनऊ उनके अधिकार में आ गया है और मध्यभारत के अधिकांश स्थानों में उनके विजय के झंडे फहरा रहे हैं, वे खुल्लमखुल्ला सिपाहियों के विरुद्ध फौजी तैयारी करने लगे। वे ६००० पैदल, १५०० घुड़सवार, ६०० शरीर-रक्षक और ८ तोपें लिये हुए मुरार से दो मील पूर्व की ओर आ पहुंचे। १ ली जून के सवेरे ७ बजे से ही उनको तोपों से गोले बरसने लगे। रावसाहब ने सोचा, कि महाराज की ओर से हमारे स्वागत में गोले छोड़े जा रहे हैं, इसलिये वे चुप-चाप रहे, पर लक्ष्मीबाई से चुप न रहा गया। वे सिर्फ २०० सैनिकों के साथ महाराज के तोपखाने पर ऐसी तेजी से टूट पड़ीं, कि गोलन्दाजों को प्राण लेकर भागना ही पड़ा।

इधर ग्वालियर के बहुतसे सैनिक रावसाहब के दल में जा मिले। कितने ही रण-भूमि छोड़, खेतों में जाकर तरबूज खाने लगे। अन्त में महारानी की चेष्टा से महाराज को हारना ही पड़ा। उनके बहुत-से सैनिक मारे गये। थोड़ेसे सैनिकों को लिये हुए वे मैदान से भाग खड़े हुए। ग्वालियर से चलकर वे आगरे पहुंचे। इधर महारानी लक्ष्मीबाई की जय होते ही ग्वालियर के दीवान दिनकरराव के होश उड़ गये। उन्होंने राजमहल से रानियों को हटाकर नरवर भेज दिया और आप महाराज की खोज में आगरे चले। विजयोल्लास मनाते हुए रावसाहब नगर में घुस पड़े। किले के साथ-साथ खजाने
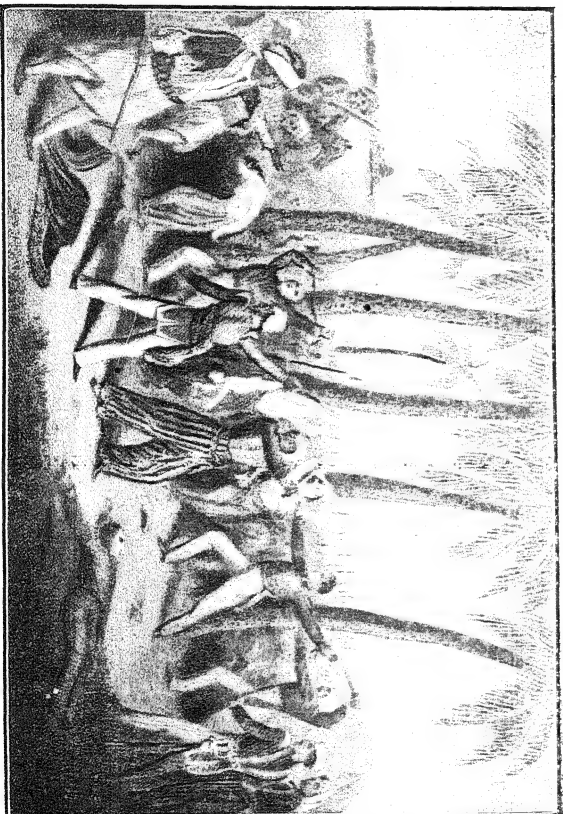
झांसीका भीषण हत्याकाण्ड ।

और सिलहखाने पर उनका अधिकार हो गया। उनके हुक्म से उनके सैनिकों ने लूट-पाट नहीं मचायी। रावसाहब ग्वालियर के शासन-कर्त्ता बन बैठे और एक दरबार कर ग्वालियर के सैनिकों के साथ-साथ अपने सैनिकों को भी खूब इनाम बांटे। ग्वालियर-दरबार से निकाले हुए रामरावगोविन्द नामक एक कर्मचारी प्रधानमन्त्री बनाये गये। शाहगढ़ और कानपुर के राजाओं के पास यहां आने के लिये पत्र लिखे गये। महारानी लक्ष्मीबाई का यह उद्योग सर्वांश में सफल हो गया—उनकी वीरता की धाक बंध गयी।

परन्तु अदृष्ट उनके अनुकूल नहीं था। विजय के मद में राव-साहब उनकी हित-शिक्षाओं की उपेक्षा करने लगे। इसी बीच गङ्गा-दशहरा का पर्व आ गया। रावसाहब के सैनिक उसके उपलक्ष में उत्सव की तैयारी करने लगे। रानीने उत्सव बन्द कर सैनिक-संग-ठन दृढ़ करने की सलाह दी, पर रावसाहब ने इधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया।

इतने में सर हिउरोज अपने सैनिकों को साथ लिये ग्वालियर में आ धमके। यह सुन कर भी रावसाहब न चेते—उन्होंने तांतिया-टोपी को सैन्य-संगठन की आज्ञा-मात्र देकर अपने कर्त्तव्य की इति-श्री समझ ली। तांतियाटोपी अपने सैनिकों को लिये हुए अंगरेज सेनापति का मुकाबला करने चले। पर उनका मनोरथ सिद्ध न हुआ। १६ वीं जून को मुरार पर अंगरेजों का अधिकार हो गया। इस समाचार से रावसाहब बड़े चिन्तित हुए और फिर रानी का मुंह जोहने लगे। रानी वीर-वेश से सज्जित हो स्वयं सैनिक-शृंङ्खला का

सङ्गठन करने लगीं। उन्होंने अपनी रण-कुशलता और श्रमशीलता की पराकाष्ठा दिखला दो ।

१७ वीं जून को कोटे की सराय में रानो बड़ी वोरता के साथ अंगरेजी फौज से सारा दिन युद्ध करती रहीं, पर उसका परिणाम उनके लिये अच्छा न निकला । लाचार, वे कुछ विश्वासी अनुचरों और परिचारिकाओं के साथ रण-भूमि से निकल भागीं ।

वहांसे आकर उन्होंने ग्वालियर के अस्तबल से एक दूसरा घोड़ा लिया और अपने अनुचरों के साथ भाग चलीं । रास्ते में अंगरेजी फौज के एक घुड़सवार ने उनकी सुन्दरा नामक प्रिय सहचरी को घायल कर दिया। यह देख, रानी उस पर टूट पड़ीं और उसे मार गिराते हुए फिर भाग चलीं । रास्ते में एक पतला नाला देख, उनका घोड़ा अड़ गया और नाले को पार न कर सका । इतने में कई अंगरेज घुड़सवार वहां आ पहुंचे, रानी ने बड़ी देर तक उनके साथ असि-युद्ध किया । घायल होने पर भी रानी ने तलवार चलानी न छोड़ी और अपने ऊपर हमला करनेवालों में से किसी को मारती और किसी को घायल करती रहीं । तो भी रानी को बेतरह चोट आयी थी । वे केवल वीरता की उमंग में जी रही थीं, नहीं तो अब तक कभी की गिर पड़ी होतीं । थोड़ी देर में उनके अनुचरों ने उन्हें पास की एक कुटिया में पहुंचा दिया, जहां उनकी तुरत ही मृत्यु हो गयी ।

इस तरह वह सुन्दरता, साहस और वोरता की खान, सदा के लिये इस संसार से चली गयी । २३ वर्ष की चढ़ती जवानी में इस भारतीय वीरनारी ने जैसी वीरता दिखलायी, वह भारतीयों के लिये

एक गर्व की वस्तु है। उनके विपक्षी अंगरेज सेनापतियों ने भी उनके युद्ध-कौशल और बुद्धि-चातुर्य की बार-बार बड़ाई की है। अनेक ऐतिहासिक उनकी वह कमसिनी और अलौकिक तेजस्विता देख, विस्मय-विमुग्ध-हृदय से उनकी प्रशंसा करते हुए नहीं अघाये हैं। मालेसन साहब ने उनके बारे में लिखा है,—"चाहे अंगरेजों की आंख में उनका अपराध बहुत ही बड़ा क्यों न हो, पर उनके देशवाले सदा यह बात याद रखेंगे, कि अंगरेजों की बेइन्साफी ने ही रानी को विद्रोही बनाया और उन्होंने स्वदेश की सेवा करते-करते प्राण-विसर्जन किया। उन्होंने बदला लेने के लिये तलवार उठायी थी सही, पर उन्होंने जो वीरता दिखलायी, उसके प्रति उनके कट्टर शत्रु भी असम्मान नहीं प्रकट कर सकते।"

अस्तु; १८ वीं जून को लश्कर और फूलबाग पर भी अंगरेजी फौज ने अधिकार कर लिया और २० वीं जून को ग्वालियर-नरेश जायाजीराव अपनी राजधानी में लौट आये।

रानी के प्यारे पुत्र दामोदरराव दो साल तक इधर-उधर जङ्गलों में छिपते फिरे। इसके बाद अंगरेजों को उनका पता चल गया। इन्दौर के उस समय के रेजिडेण्ट सर रिचमण्ड शेक्सपियर ने उनको बड़े आदर से रखा और उन्हें १५०) महीना खाने के खर्च के लिये मिलने लगा। पीछे यह रकम २००) तक बढ़ा दी गयी, किन्तु झांसी के राजघराने का इस प्रकार सर्वस्वान्त हो गया!

इक्कीसवां अध्याय ।

——०——

तांतियाटोपीको फांसी ।

—:००:—

ग्वालियर की जीत के बाद सर हिउरोज़ ने सेनापति का पद त्याग कर दिया। उनकी जगह रावर्ट नेपियर मुकर्रर किये गये। इधर तांतियाटोपी ग्वालियर से हारकर जयपुर की तरफ चले। उस समय तांतियाटोपी को पकड़ने के लिये जगह-जगह सैनिकों के पहरे मुकर्रर किये गये थे। झाँसी, सीपरी, गूना, नसीराबाद, ग्वालियर, भरतपुर तथा अन्य कई स्थानों में ऐसे अड्डे कायम किये गये; पर मराठा सेनापति अपने अपूर्व बुद्धि-कौशल से ऐसे छिपते रहे, कि कोई उनका पता न पा सका। उन्होंने सारा राजपूताना छान डाला और कभी लड़ते, कभी छिपते हुए अंगरेजों को वेतरह हैरान किया।

१२ वीं अगस्त को तांतियाटोपी नाथद्वारा-तीर्थ में दर्शन के लिये पहुंचे। १४ वीं अगस्त को वहीं बनास नदी के तीर पर उन्हें अंगरेज-सेनापति से युद्ध करना पड़ा, परन्तु अन्त में हार ही नसीब हुई—और वे भाग चले।

वहां से चलकर वे झालरापाटन पहुंचे। वहां के राजा ने उन्हें हटाने के लिये बड़ी चेष्टा की, पर उनके सैनिक मराठा सेनापतिके तरफ-

दार हो गये, इससे उनकी चेष्टा व्यर्थ हुई। उनका किला तांतिया-टोपी ने घेर लिया। राजा ने उन्हें ५ लाख रुपये देने की बात कही, पर तांतियाटोपी २५ लाख से कम लेने को राजी न हुए। अन्त में १५ लाख पर मामला तै हुआ, जिनमें से ५ लाख तुरत दे दिये गये। उसी दिन रात को राजासाहब भाग कर मऊ चले गये और रानी से कहते गये, कि यदि तुम्हारे ऊपर अत्याचार होने की बारी आये, तो तुम बारूद से अपना महल उड़वा कर प्राण दे देना।

५।६ दिन तक वहां रहकर तांतियाटोपी ने अपने सैनिकों के वेतन चुकाये—इधर रावसाहब और बांदे के नवाब की सलाह इन्दौर चलने की हुई। पर रास्ते में ही अंगरेजी फौज से सामना हो जाने से उन्हें फिर लड़ते-भिड़ते और भागते हुए नाना स्थानों में भ्रमण करना पड़ा।

इसी तरह कुछ दिन बीतने पर रावसाहब से तांतियाटोपी का मन-मुटाव हो गया और बांदे के नवाब ने भी उनका साथ छोड़ दिया। मानसिंह नामक उनके एक दूसरे साथी अब तक उनके साथ रहे। इस तरह साथियों के मनोमालिन्य से तांतियाटोपी बड़े दुःखित हुए। वे एक जंगल में जाकर छिप रहे।

इधर मानसिंह अंगरेजों से मिल गये। अंगरेजों ने उन्हें अभ-यदान देकर तांतियाटोपी को पकड़वा देने के लिये कहा। विश्वास-घातक मानसिंह झट राजी हो गये। अन्त में इन्हीं "विषकुम्भपयो-मुखम्" मित्र ने एक दिन सोते समय तांतियाटोपी को गिरफ्तार करवा दिया!

सोपरी में उन पर फौजी कानून के मुताबिक मामला चला। तांतिया ने अपनी सफाई में कहा,—“मैंने आज तक जो कुछ किया, रावसाहब के हुक्म से ही किया। मैंने स्वयं न तो किसी अंगरेज को मारा, न किसी को फांसी लटकाने की आज्ञा दी। इसके सिवा मुझे और कुछ नहीं कहना है !”

पर उनकी सफाई न सुनी गयी। उन्हें फांसी का हुक्म सुनाया गया और सन् १८५९ की १८ वीं अप्रैल को उन्हें फांसी दे दी गयी !

इस तरह उस वीर-पुरुष का शोचनीय अन्त हुआ, जिसने वर्षों से अंगरेजों को हैरान कर रखा था और अनेक गोरे सेना-पतियों के छक्के छुड़ा दिये थे। यदि उनके मित्र उनके साथ दगा न करते, तो वे शायद कभी न पकड़े जाते, पर भारतवर्ष में ऐसे मित्रों की कमी कभी नहीं हुई और आज भी वे दुर्लभ नहीं हैं !

बाईसवां अध्याय।

विहारी वीर बाबू कुंअरसिंह।

जिन दिनों सारे भारत में विद्रोह की अग्नि धांय-धांय कर जल रही थी, उन दिनों विहार-प्रान्त भी सुस्त नहीं पड़ा रहा। यहां के युरोपियनों के हृदय में भी हड़कम्प समा गया था। और वे छोटे लाट को दानापुर * की छावनी के सिपाहियों को निरस्त्र करने के लिये बार-बार लिख रहे थे। उस समय वहां १० वीं युरोपियन पैदल सेना और ७ वीं, ८ वीं और ४० वीं देशी पैदल-सेनाएं थीं। मेजर जेनरल लायड इन सबके अध्यक्ष थे। पटने के कमिश्नर टेलर और विहार के सभी युरोपियन इन सिपाहियों को बेहथियार कर डालने के पक्ष में थे; पर गवर्नर जेनरल इस पर राजी नहीं हुए। कुछ लोग इसे लार्ड केनिङ्ग की भूल समझते हैं; पर वास्तव में यह भूल न थी। यदि तत्काल वे निरस्त्र कर दिये जाते, तो सारे बिहार में ही नहीं, बङ्गाल में भी हल-चल मच जाती।

जो हो, बनारस के सिपाहियों के निहत्थे कर दिये जाने का समाचार सुन, दानापुर के सिपाही कुछ चञ्चल जरूर हुए, पर उस समय बला आती-आती रह गयी। इस तरह जुलाई महीने

---

* दानापुर पटना नगरसे ७ मील पश्चिम फौजी स्टेशन है। इसे एक प्रकारसे पटनेका ही अंश समझना चाहिये।

के मध्य तक वे बिलकुल शान्त रहे, पर उन्हें भीतर-ही-भीतर अंगरेजों पर शक होने लगा। उन्हें समाचार मिला, कि बहुतसे गोरे सिपाही जहाज द्वारा यहां आ रहे हैं। यह खबर कहां से उड़ी, सो तो मालूम नहीं, पर कम्पनी के सिपाहियों के मन में सन्देह और भय पैदा कर गयी। साथ ही गोरे भी देशी सिपाहियों को टढ़ी निगाहों से देखने लगे थे, इससे भी दोनों ओर दिलों में रंजिश पड़ गयी।

एकाएक दिल्ली में मुगल-बादशाह का झंडा फहराने की खबर पटने पहुंची ; इससे पटने जिले के मुसलमानों में बड़ा जोश फैला। सब जगह उत्तेजना के चिन्ह स्पष्ट दिखाई देने लगे। अवध की नवाबी मिट्टी में मिल जाने पर वहां के बहुतसे लोग पटने चले आये थे। उन लोगों ने पुराने वैर के कारण लोगों में खूब उत्तेजना फैलानी शुरू की। इसी समय एक दिन खबर उड़ी कि दानापुर के सिपाही बलवाई हो गये हैं और पटने चले आ रहे हैं। बस, पटने के गोरे प्राण-रक्षा के लिये व्याकुल हो पड़े। बड़ी भागाभाग मची, पर पीछे यह खबर गलत साबित हुई।

टेलर साहब चाहे जितने बुद्धिमान क्यों न रहे हों और अपने स्वदेशी भाइयों की रक्षा के लिये कितने ही तत्पर क्यों न हो गये हों, पर उन्होंने जो नीति अवलम्बन की, वही पीछे सारी गड़बड़ की जड़ हो गयी। पहले कहा जा चुका है, कि पटने के मुसलमानों में बड़ा जोश फैला हुआ था। टेलर साहब ने उस आग पर पानी न डाल कर घी डाल दिया ; उन्होंने सारी जनता को बागी

जगदीशपुर नरेश और वीर तेजस्वी विद्रोही-नेता—
बाबू कुंवरसिंह।

समझ लिया और लगे लोगों को पकड़-पकड़ कर फांसी देने। पटने के सभी-मुसलमान अपनी जान को खतरे में समझने लगे। परेड का मैदान खासा फांसी-घर हो गया। वहां एक बड़ी भारी फांसीकी टिकटिकी खड़ी कर दी गयी। सबको आज्ञा दी गयी, कि रात के नौ बजे के बाद जो कोई बाहर घूमता नजर आयेगा, वह पकड़ लिया जायेगा। कमिश्नर साहब की इस स्वेच्छाचारिता से बड़ी तबाही फैल गयी।

पटने में शाहमहमूदहुसैन, अहमदुल्ला और वाजुलहक नामक तीन बड़े प्रतिष्ठित मौलाना रहते थे। कमिश्नर ने उन्हें बागी समझ कर गुप्त रूप से पकड़ लेना चाहा। उन्होंने उन्हें सलाह करने के बहाने अपने पास बुलाया और कुछ देर बातचीत करने के बाद उन्हें तब तक के लिये वहीं नजरबन्दी की हालत में रहने को कहा, जब तक चारों ओर शान्ति नहीं स्थापित हो जाती। लाचार, उन्हें कमिश्नर की आज्ञा माननी पड़ी और वे वहीं के एक बंगले में नजरबन्द कर रखे गये। इसके बाद शहर के लोगों के हथियार छीने जाने लगे। यद्यपि बहुतों के हथियार छीने गये, तथापि अधिकांश लोगों ने हथियार छिपा रखे। इन सब हरकतों से मुसलमानों का जोश और भी बढ़ गया। वे खुल्लमखुल्ला अपना हरा झंडा फहराते हुए अपनी दल-वृद्धि करने लगे। अफीम-मुहकमे के डाक्टर लायल उन्हें समझाने गये, पर तुरत ही गोली के शिकार हो, ढेर हो रहे। यह देख, बहुत-से गोरे और सिक्ख दानापुर से बुला लिये गये। इन लोगों ने तुरत ही पटने में शान्ति स्थापित कर दी।

इसके कई दिन बाद ही फिर धर-पकड़ शुरू हुई। इनमें लखनऊ का पीरअली कुतुबफरोश भी था। उस पर उपर्युक्त डाक्टर लायल साहब को गोली मारने का अपराध लगाया गया और उसे फांसी दे दी गयी। फांसी पड़ने के पहले कमिश्नर ने कितना चाहा कि उससे कुछ भेद की बात मालूम कर लें, पर उसने कुछ भी न बतलाया और बड़ी दृढ़ता से कहा,—"दुनियां में बहुतसे काम ऐसे हैं, जिनके लिये अपनी जान बचा लेनी जरूरी होती है, पर बहुतसे काम ऐसे हैं, जिनके लिये जान दे देनी ही लाजिमी है। आप मुझे ही क्या, सैकड़ों और लोगों को फाँसी दे दें, पर इससे आपका मतलब पूरा न होगा। एक-एक शहीद के बदले सौ-सौ दूसरे शहीद उठ खड़े होंगे!"

इसके बाद पीरअली का मकान जमीनदोज़ कर दिया गया, उसकी सम्पत्ति सरकार में जब्त कर ली गयी!

अब कमिश्नर साहब ने कुछ धनी मुसलमानों को गिरफ्तार करने का विचार किया; क्योंकि उनका खयाल था कि ये लोग रुपये-पैसे देकर विद्रोहियों की मदद कर रहे हैं। इसीलिये उन्होंने लुफ्तअली नामक एक रईस को पकड़ा; पर जब अदालत में वे निरपराध साबित हुए, तब ये हाथ मलकर रह गये।

इसी तरह जुलाई का आधा महीना बीत गया। पश्चिमोत्तर-प्रान्त के नगरों की खबरें तरह तरह के रङ्ग-रोगन के साथ दानापुर के सिपाहियों के पास पहुंचने लगीं। उनकी चञ्चलता बढ़ने लगी।

२४ वीं जुलाई को ३७ वीं गोरी पलटन के कुछ सैनिक दानापुर आये। दानापुर के सेनापति ने उन्हींके सहारे देशी सिपाहियों के व्यवहार में आनेवाले टोटे उनके यहां से हटवाने शुरू किये। अपनी इस बेइज्जती को सिपाही वर्दाश्त न कर सके। उनके हृदय में घोर विद्वेष उत्पन्न हुआ। इसके बाद जब स्वयं उनके पास के टोटे मांगे जाने लगे, तब तो ७ वीं और ८ वीं पलटन के सिपाही एकबारगी बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने सामने जितने गोरों को खड़ा देखा, सब को दनादन गोलियों से मार गिराया और छावनी से बाहर चले जाने को तैयार हुए। ४० वीं पल्टन अबतक शान्त थी। पर घटना-चक्र ने इन्हें भी बागी बना ही दिया। कुछ गोरों ने उपर्युक्त दोनों दलों के सिवा इन पर भी गोलियां चला दीं, इसलिये ये भी अपने साथियों से जा मिले। तीनों दल दानापुर से चल पड़े। अंगरेज सेनापति एक जहाज में, जो गङ्गा में था, जा छिपे। वे बूढ़े और कमजोर थे, इसलिये दानापुर में ठहरने की उनकी हिम्मत न पड़ी।

अस्तु, गोरे सिपाही हिन्दुस्तानियों का पीछा करने को तैयार हुए। कुछ लोग जो भूल से गङ्गा की ओर जाकर नाव पर सवार हुए, वे तो अंगरेजों की गोलियों के शिकार हो गये, पर बाकी सब लोग निर्विघ्न सोन नदी के किनारे चले आये। ये लोग शाहाबाद जिले के सदर स्थान आरा पहुंचना चाहते थे।

घटनाचक्र से आरे के एक प्रसिद्ध और बूढ़े जमींदार, जिनका नाम बाबू कुंअरसिंह था, इनके सहायक हो गये। उनके इन बल-

वाइयों से मिल जाने से आरे में जो घटनाएं हुईं, वे कदाचित् नहीं होतीं और बाबू कुंअरसिंह का नाम भी इस इतिहास में इतनी प्रसिद्धि न प्राप्त करता। बाबू कुंअरसिंह का चरित्र विशेष मनोरंजक होने के कारण संक्षेप में उनका सारा हाल नीचे दिया जाता है।

आरे से प्राय: आठ कोस पश्चिम में जगदीशपुर नामकी एक बड़ी बस्ती है। बाबू कुंअरसिंह वहीं के रहनेवाले थे। वहां उनका सुदृढ़ दुर्ग, महल और देवमन्दिर आदि थे। उनकी प्रतिष्ठा इस जिले के प्रसिद्ध भूम्याधिकारी डुमरांव के महराज से भी अधिक थी। आरे जिले के राजपूतों में उनका घराना बड़ा ही आदरणीय समझा जाता था। जिले भर के राजपूत उनको अपना सिरधरू मानते थे।

आरे में उन्होंने अपनी एक कोठी बनवा रखी थी, जिसके चारों ओर बाड़ा लगा हुआ था। बाड़े के भीतर मन्दिर भी था। उनका शरीर नाटा और बदन गठीला था। बूढ़े हो जाने पर भी उनमें बल, पराक्रम और साहस की कमी न थी। आंखों की ज्योति अबतक मन्द नहीं हुई थी। इतने बड़े आदमी होकर भी उनकी पोशाक बहुत सीधी-सादी रहती थी।

लड़कपन से ही उन्हें वीरता के कार्य बहुत पसन्द थे। इसीलिये उन्होंने पढ़ने-लिखने की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। वे सदा हथियार चलाने, घुड़सवारी करने और शिकार खेलने में ही मस्त रहते थे। वे अकसर रोहतासगढ़ के जङ्गलों में शिकार खेलने

जाया करते थे। साथ ही राजपूती शान और आत्माभिमान भी उनमें कूट-कूट कर भरता चला गया। और अपनी जवानी में ही वे सारे बिहार के राजपूतों के अग्रगण्य हो गये। सब लोग उनका आदर करते, कोई उनके विरुद्ध एक बात भी बोलने का साहस नहीं करता था।

आरा-शहर एक मुसलमान-परिवार के दखल में था। इसके एक तिहाई के मालिकों को कुछ कुचक्रियों ने बेदखल कर दिया था। उन लोगों ने जब किसी तरह अपना हिस्सा मिलते न देखा, तब अपना हिस्सा बाबू कुंअरसिंह के हाथ बेंच दिया। किन्तु बाबूसाहब ने केवल उतना ही हिस्सा अपने अधिकार में नहीं कर लिया, बल्कि सारी जमींदारी ही अपनी मुट्ठी में कर ली। उनके प्रताप के सामने कोई चूं भी न कर सका। सारा शहर उनके दखल में हो गया। इसके बाद सारे शहर में उनका ही रोब छा गया। यहां पर जैनियों की खासी बस्ती है। बाबूसाहब के हिन्दू होने के कारण जैनियों की एक न चलने पाती थी। इन्हें मन्दिर बनाने तक की आज्ञा नहीं मिली। बाबूसाहब के मरने के बाद जैनियों के बहुत-से मन्दिर यहां बन गये; पर उनके जीते जी कोई जैन-मन्दिर न बनने पाया। रुपयेवाले होने पर भी जैनी, बाबूसाहब के प्रताप के आगे सिर न उठा सकते थे। इसी तरह आरे में ही नहीं, सारे शाहाबाद जिले में उनकी धाक मची हुई थी। उनका ऐसा प्रताप विराजमान था, कि वे जिस रास्ते निकल जाते थे, उधर के लोग रास्ते के दोनों किनारे हाथ जोड़े खड़े हो रहते थे। कोई उनके

सामने ऊँचे स्वर से बातें न करता, तम्बाकू न पीता, छाता लगाकर न चलता और किसी तरह की बेअदबी नहीं कर सकता था।

हम इस ग्रन्थ के आरम्भ में लिख आये हैं, कि कैदियों के लिये मिट्टी के बर्त्तनों में खाने का हुक्म जारी हो जाने से आरे में बड़ी गड़बड़ी मच गयी थी। उस समय यहां के कलक्टर को बाबू-साहब की सहायता लेनी पड़ी थी। इन्हीं की डांट-डपट से कैदी चुपचाप हो गये थे। सच तो यह है कि वे स्वयं कैदियों के सामने नहीं गये थे, बल्कि एक दूत द्वारा उनके पास अपना सन्देशा भिजवाया था!

बाबू साहब जैसे शक्तिशाली और प्रतापी थे, वैसे ही शरणागत-वत्सल, दानी और परोपकारी भी थे। कोई कैसा ही पाप करके क्यों न आये; पर यदि वह बाबू साहब की शरण पकड़ लेता, तो वह उनका कृपापात्र बन जाता था। नैपाल के रणदलनसिंह खून कर के उनके पास चले आये थे। उन्हें भी बाबू साहब ने अपने पास रख लिया था। पीछे चलकर ये बाबू साहब के खास सलाहकारोंमें हो गये थे।

बाबू साहब के पिता बाबू शाहजादासिंह * उन्हें अपनी जमीं-

* उन दिनों 'बाबू' की पदवी आजकल की तरह सस्ती न थी। 'बाबू' का दर्जा राजा से कम नहीं था। आज भी इस जिले में 'बाबूसाहब' एक बड़ी प्रतिष्ठित उपाधि मानी जाती है। साधारण बोलचाल में भी लोग कहते हैं कि क्या आप कहीं के राजा-बाबू हैं? पर बंगाली बाबुओं की बदौलत इस उपाधि की आजकल बेतरह मिट्टी पलीद हो गयी है।

दारी के तीन चौथाई भाग का मालिक बना गये थे। शेष एक चौथाई भाग में उनके तीन भाई दयालसिंह, राजपतिसिंह और अमरसिंह शामिल थे। यद्यपि वाबू कुंअरसिंह वहुत वड़ी जमींदारी के मालिक थे, तथापि अपने वेहद खर्चीलेपन के कारण उन्हें बरावर कड़े सूदपर महाजनों से कर्ज लेना पड़ता था।

धीरे-धीरे कर्ज बीस लाख के करीब पहुंच गया। रुपये देनेवाले आरे के अगरवाले महाजन रुपये देकर भी डर के मारे भीगी बिल्ली बने रहते थे। इसलिये उन्हें हिम्मत नहीं पड़ती थी, कि बाबू साहब पर नालिश करें। अन्ततोगत्वा महाजनों ने नालिश कर दी। डिग्री हो गयी और इजराय की नौबत आ पहुंची। लाचार, बाबू साहब कलक्टर के पास गये। वे बाबू साहब की बड़ी इज्जत करते थे। उन्होंने बाबू साहब के मुंह से सारा हाल सुन, पटने के कमिश्नर को लिखा, कि बाबू साहब की जमीन्दारी बिकने न पाये, इसलिये उचित है, कि अंगरेजी सरकार उसका प्रबन्ध अपने हाथ में कुछ दिनों के लिये ले ले और उनका ऋण क्रमशः चुका दे।

पर बोर्ड-आफ़-रेविन्यू ने जमीन्दारी का प्रबन्ध करना तो स्वीकार किया, किन्तु ऋण का भार बाबू साहब पर ही रखा। बाबू साहब ने लाचार होकर यहीं प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और २० लाख रुपये इकट्ठे करने की धुन में लगे।

कुछ रकमें उनके पास पहुंची ही थीं, कि इतने में बोर्ड ने लिखा, कि यदि आप १ महीने में रुपये न अदा कर देंगे, तो सरकार आपकी जमीन्दारी का प्रबन्ध छोड़ देगी। आरे के कैलक्टर ने

कुंअरसिंह का पक्ष लेकर बड़ी लिखा-पढ़ी की , पर बोर्ड टस-से-मस न हुआ ।

इस घटना से बाबूसाहब को बड़ा दुःख हुआ । वे समझ गये, कि अंगरेज़ों की नीयत खोटी है और वे इसी बहाने मेरा सर्वनाश किया चाहते हैं । एक तो वे, पुत्र जीवित न होने के कारण तथा पौत्र के पागल हो जाने से दुःखित रहते थे, अबके बोर्ड की इस चाल ने उन्हें और भी निराश कर दिया । पर इतने पर भी वे अंगरेज़ों के विरुद्ध न उठे । आरे के कलक्टर और पटने के कमिश्नर को उनकी राजभक्ति पर सन्देह करने का कोई कारण न दीख पड़ा ।

पर चुग़लख़ोरों ने बाबू साहब के विरुद्ध अंगरेज अधिकारियों के कान भरने शुरू कर ही दिये और वे भी यह सोच कर उन दुष्टों की बात पर विश्वास करने लगे, कि अराजकता फैलने में बाबू साहब का लाभ है, इसलिये वे जरूर ही विद्रोहियों से मिले होंगे । पटने के कमिश्नर को बाबू साहब पर सोलहो आने सन्देह हो गया । उन्होंने बाबू साहब को पटने ले आने के लिये सैयद अज़ीमुद्दीन हुसैन नामक एक डिप्टी कलक्टर को आरे भेजा ।

उस समय बाबू साहब जगदीशपुर में थे । उनके पास पहुंच-कर जब मियां अजीमुद्दीन ने कमिश्नर साहब का हुक्म सुनाया, तब उन्हें कमिश्नर का हार्दिक अभिप्राय समझने में देर न लगी । पटने के मौलवियों को कमिश्नर ने इसी तरह मित्र-भाव से बुलाकर क़ैद कर लिया था, यह बात वे जानते थे । वे समझ गये, कि मेरे साथ भी वे यही चाल चल रहे हैं । उन्होंने पटने जाने से इनकार

कर दिया और कहा, कि मैं बीमार हूं, अच्छा होने पर किसी दिन पटने आकर साहब से मिलूंगा। जाते समय मियां अजीमुद्दीन ने कहा,—"आपने बड़ी भूल की। आपके पटने न जाने से साहब को आप पर जरूर ही शक होगा।" इस पर बाबू कुंअरसिंह ने गम्भीर भाव से उत्तर दिया,—"आप मेरे पुराने दोस्त हैं। उसी दोस्ती की याद दिलाते हुए मैं आपसे पूछता हूं, कि क्या आप ईमान से कह सकते हैं, कि पटने जाने पर मेरी कोई बुराई न होगी?" डिप्टी-साहब इसका कुछ उत्तर न दे सके और चुप-चाप चलते बने। बाबू-साहब महलों में चले आये।

वास्तव में बाबू साहब या उनके आदमी विद्रोह करने के लिये तैयार नहीं थे। यदि होते, तो वे स्वयं आरे के खजाने से रुपये पटने क्यों पहुंचवा देते? उसी समय लूट न लेते? कैदी जब बिगड़े थे, तभी उन्हें क्यों शान्त करने जाते। और आग न लगा देते, कि खूब धांय-धांय जलने लगती! आरे के कलक्टर ने खुद उनके घर जा कर तहकीकात की; पर कोई ऐसा प्रमाण न पाया जिससे बाबू साहब का विद्रोहियों के साथ सम्पर्क साबित हो। उन्होंने जो पटने जाने से नाहीं कर दी, उसका कारण टेलर साहब की हरकतें ही थीं। वे सन्देह में ही पटने के लोगों को कैद करते, मारते और फांसी पर लटका देते थे, यह बात उस समय विख्यात हो गयी थी, फिर वे क्यों जान-बूझकर आग में कूदने जाते?

बाबू कुंअरसिंह को उभाड़ने के लिये बहुतों ने बड़ी बड़ी चेष्टा की, पर उन्होंने किसी की बात न सुनी। हां, उनके मुसाहिबों में से

बहुतसे विद्रोह के पक्ष में थे, पर उनकी बातों का भी बाबूसाहब पर कुछ असर न हुआ। वे बराबर अंगरेजों के हितैषी बने रहे।

पूर्वोक्त रणदलनसिंह और हरकिशनसिंह, ये दोनों बाबूसाहब के बड़े मुंहलगे मुसाहिब थे। ये लोग अकसर उनसे बलवाई सिपाहियों का सरदार बन जाने को कहा करते थे, किन्तु उनकी बातें सुनकर वे अपने भाई दयालसिंह और अमरसिंह से भी सलाह ले लेते थे। ये लोग बाबूसाहब को बलवे में शामिल होने से बराबर रोकते और कहते कि अंगरेजों के विरुद्ध होने में हमारी भलाई नहीं है। इसीसे बाबूसाहब अपने उत्तेजित मुसाहिबों को डांट-डपट कर चुप कर देते।

इतने में पटने से उपर्युक्त दूत उन्हें बुलाने आये। रणदलन और हरकिशन ने बाबू साहब को टेलर साहब की चाल बतलाकर कुछ करने के लिये उत्तेजित किया और कहा कि अब न तो आपका चुप बैठ रहना ठीक है, न पटने जाना ठीक है। दोनों हालतों में आपकी खैर नहीं है। बात बाबूसाहब को जँच गयी। कमिश्नर साहबकी एक चाल ने सदा के विश्वासी कुंअरसिंह को भी अपना शत्रु बना लिया! हरकिशन दानापुर के सिपाहियों से मिलने के लिये गये और शाहाबाद में विद्रोह का बीज अंकुरित हो उठा।

हरिकिशनसिंह केवल दानापुर के सिपाहियों के मन की थाह लेकर ही न लौटे, बल्कि उन्हें खुल्लमखुल्ला विद्रोही बना, आरे लिवा लाने को ही मुस्तैद हो गये। उस समय तक बाबू साहब जगदीश-

पुर में ही थे। उनकी राय इतनी जल्दी विद्रोही बन जाने की न
थी, पर उनके उक्त कर्मचारी उनका नाम ले-लेकर काम करने
तैयार हो गये थे।

अन्त में दानापुर के सिपाही हरिकिशनसिंह के साथ आरे पहुं
गये। यहां से जगदीशपुर खबर भेजी गयी, कि यदि बाबूसा
शीघ्र यहां न आयेंगे, तो ये सिपाही जगदीशपुर जाकर लूटप
मचा देंगे और उनका बड़ा अपमान करेंगे। यह समाचार
बाबू साहब चौंक उठे। लाचार, उन्हें आरे आना पड़ा। उन
आने से सिपाहियों का जोश दूना हो गया और वे दूसरे ही दि
उनसे मिलने के लिये उनकी कोठी पर पहुंच गये। बाबू सा
कोठी के सामनेवाले मैदान में घोड़े पर सवार हो आये। सिपाहि
ने उन्हें फौजी कायदे के मुताबिक सलाम कर, उन्हें अपना अ
नायक बनाया। उसी दिन इच्छा न रहते हुए भी, लाचार हो
बाबूसाहब को अंगरेजी सरकार के विरुद्ध हथियार उठाना पड़ा
अमरसिंह आदि उनके अनुज अनिच्छुक होते हुए भी अग्रज
अनुगामी हुए।

आरे ? में गड़बड़ होते ही वहां के गोरों ने अपने बाल-बच
दानापुर भेज दिये थे। साथ ही शहर में किसी तरह की गड़ब
न होने देने के लिये पहरे का अच्छा बन्दोबस्त तथा दानापुर अ
बक्सर के गमनागमन का पथ सुरक्षित करने के लिये पूर्ण प्रब
किया गया। खजाने की रक्षा के लिये पटने से सिख सिपाही बु
लिये गये। इन्हीं की संरक्षकता में ५ लाख रुपये यहां के खज

से पटने भेज दिये गये। इस तरह औरत-बच्चों और रुपये को यहां से हटा कर अधिकारी निश्चिन्तसे हो गये !

इधर सबकी सलाह से रेलवे इञ्जिनियर बायल साहब को एक ऐसा मकान शीघ्र तैयार करने का हुक्म दिया गया, जिसमें विपद् पड़ने पर अंगरेज अधिकारी और गोरे सैनिक आश्रय ग्रहण कर सकें। बायल साहब ने झटपट एक मजबूत दोतल्ला मकान बनवा डाला। सब अंगरेज उसी में आ रहे। रसद का पूरा इन्तजाम कर लिया गया।

२७ वीं जुलाई को दानापुर के सिपाहियों ने कैदखाना तोड़कर कैदियों को छुटकारा दे दिया और खजाना लूट लिया। अदालत के कुल कागज-पत्र नष्ट कर डाले गये। हां, कुंअरसिंह के कहने से उन्होंने कलक्टरी के कागज-पत्र नहीं नष्ट किये, क्योंकि वैसा होने से फिर बहुतों को जगह-जमीन का स्वत्व-निर्णय करना कठिन हो जाता।

इसके बाद अंगरेजों के आश्रय-दुर्ग पर घेरा डाला गया। उस समय दुर्ग के अन्दर १६ अंगरेज और ५० सिक्ख थे। इन थोड़ेसे लोगों को पराजित करना बलवाइयों के लिये कोई बड़ी बात नहीं थी, पर एक तो बाबू कुंअरसिंह बिना मन के लड़ाई में पड़े थे—दूसरे उनके दल में उत्तमोत्तम अस्त्र-शस्त्रों का अभाव था। इसलिये वे लोग इस दुर्ग का ध्वंस न कर सके। इधर घर के अन्दर छिपे हुए अंगरेज और उनके सहायक सिक्ख मोखों से

गोलियां छोड़-छोड़ कर लगातार विद्रोहियों की बलहानि करते रहे। बलवाइयों ने घर के चारों ओर लकड़ी, पुआल और फूस के ढेर लगा कर आग लगा दी, जिसमें धुएं से उकता कर दुर्गस्थित मनुष्य बाहर चले आयें। पर उलटी हवा चल जाने से उनका मनोरथ सिद्ध न हुआ। इसी तरह लालमिर्च के बोरे के बोरे जलाये गये, मरे हुए घोड़े लाकर वहां जमा किये गये—तो भी उन की दुर्गन्ध दुर्ग के भीतर न पहुंची, किन्तु सिपाहियों ने घेरा न उठाया और रण-भूमि में डटे रहे। इसी तरह कई दिन बीत गये। उस छोटेसे घर में बन्द अंगरेजों और उनके सैनिकों को अपार कष्ट होने लगा।

इसी समय एक दिन रात को दानापुर से कप्तान डनबर के अधीन बहुतसे गोरे आरे आ पहुंचे। देशी सिपाहियों ने उन पर खूब गोलियां बरसायीं। कप्तान साहब मारे गये और शेष लोग इधर-उधर खेतों में जा छिपे। सिपाहियों ने वहां भी उन्हें आराम से न रहने दिया। वे लोग गङ्गा पार कर जहाज द्वारा दानापुर से आरे आये थे। वह जहाज आरे से ९ मील दूर था, क्योंकि गङ्गा नगर के पास न थी। कप्तान डनबर के सिपाही हार मान उसी जहाज पर चढ़ने के लिये गङ्गा की ओर जाने लगे। जाते-जाते भी उन पर गोली-वर्षा होती ही रही। क्रमशः बहुत ही थोड़ेसे सैनिक बच रहे। इसी समय सिपाहियों की गोली-बारूद चुक गयी। नहीं तो शायद ही उनमें से कोई जीता-जागता बचता। पर तो भी सिपाहियों ने उनका पीछा न छोड़ा।

जिस नाले के * पास वे लोग नाव पर सवार होकर गङ्गा तक जाना चाहते थे, वहां पहुंच कर सिपाहियों ने उनकी कई नावें डुबो दीं। एक में आग लगा दी। इतने पर भी बेचारों को मुक्ति न मिली। कोई गोलियों का शिकार हुआ, कोई पानी में डूब मरा, कोई जलती हुई नाव के साथ जल कर खाक हो गया। कुछ थोड़ेसे लोग जो नाले के उस पार पहुंच गये थे, निर्विघ्न गङ्गा तक पहुंच गये और जहाज पर सवार हो दानापुर चले गये। ४०० गोरे दानापुर से आरे आये थे, जिनमें २०० तो आरे में ही मारे गये, बाकी लोगों में से केवल ५० ही सशरीर दानापुर पहुंच सके। इनके दानापुर पहुंचने पर वहां के गोरों में गम्भीर शोक छा गया।

इधर आरे के अवरुद्ध अंगरेजों का बुरा हाल था। पानी घट जाने से वे मारे प्यास के तड़प रहे थे। बाहर जाने का उपाय न रहने के कारण साहसी सिक्खों ने उसी मकान के अन्दर कुआं खोदना शुरू किया और रात-दिन परिश्रम कर १८ फीट गहरा कुआं खोद कर पानी निकाल लिया।

इधर सिपाहियों ने उस दुर्ग को उड़ा देने की भी चेष्टा की, पर वह सफल न हुई। एक सप्ताह दुर्ग पर घेरा पड़ा रहा। अंगरेज बुरी तरह उसी छोटे से मकान में बन्द रहे।

---

* यह नाला गंगा से मिला हुआ है और बरसात में इसमें पूरा पानी रहता है। यह आरा नगर से उत्तर की ओर है और गंगा से मिला हुआ होने के कारण (गांगी) कहलाता है। बरसात में इसमें बराबर नावें चलती हैं। यों तो इसमें साल भर पानी रहता है, पर बरसात में बहुत ज्यादा पानी भर जात है।

इन्हीं दिनों तोपखाने के परिचालक विनसेण्ट आयर साहब कलकत्ते से इलाहाबाद जाते हुए दानापुर में आये। वहां का समाचार सुन, वे झट आरे जाने को तैयार हो गये और २६ वीं जुलाई को वहां से बक्सर के लिये रवाना हो गये।

तब तक आरे में कुंअरसिंह की सत्ता स्थापित हो चुकी थी। अंगरेजों की सत्ता सोलहो आने नष्ट हो चुकी थी, पर दयालु वीर कुंअरसिंह के हुक्म से नगर में कहीं कुछ गोलमाल न हुआ। बहुत-से बंगाली, जो अंगरेजों की नौकरी करते और उन्हीं से मिले हुए थे, पकड़ कर उनके सामने लाये गये, पर उन्होंने किसी को कुछ दण्ड न दे, हाथी पर सवार करा कर पटने भेज दिया।

जो हो, विनसेण्ट साहब दानापुर से बक्सर चले आये थे और वहीं से आरे आना चाहते थे। ३० वीं जुलाई को उन्होंने आरे के लिये प्रस्थान किया। उस समय वर्षा के कारण रास्ते खराब हो रहे थे। इसलिये उनके सैनिकों को रास्ता चलने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। क्रमशः वे लोग गजराजगञ्ज में पहुंचे, जहां बावू कुंअरसिंह ने उनके मुकाबले के लिये फौज जमा कर रखी थी। दोनों दल भिड़ गये, पर बावू साहब के पास तोप न होने के कारण उन्हें अंगरेजी तोपों की बाढ़ के सामने से हट जाना पड़ा। बीच में एक नदी पड़ती थी। उसका पुल बावू साहब के आदमियों ने तोड़ डाला, जिसमें अंगरेजी फौज इधर आसानी से न आ सके। लाचार, आयर साहब को रेलवे के बांध की ओर से नदी को पार करना पड़ा। बावू साहब ने वहां के घने वृक्षों की ओट से छिप कर अंगरेजी सैन्य पर

गोलियों की वर्षा करने की आज्ञा अपने सैनिकों को दे रखी थी। इसलिये ज्यों ही उन लोगों ने अंगरेजों की फौज को आगे बढ़ने देखा, त्यों ही गोलियों की बेतरह बौछार शुरू कर दी। अंगरेजी फौज हैरान हो गयी—उसका आगे बढ़ना बन्द हो गया। बूढ़े राजपूत के पराक्रम ने अंगरेज सेनापति को चौंका दिया।

इस जीत से उत्साहित हो, सिपाही अंगरेजी फौज के पास पहुंच कर उनका तोपखाना दखल करने की चेष्टा करने लगे। बस, संगीनों की खचाखच मार शुरू हुई और सिपाहियों को हारकर भाग जाना पड़ा। आयर साहब का रास्ता साफ हो गया। वे निर्विघ्न ३ री अगस्त को आरे पहुंच गये।

इधर बाबू कुंअरसिंह जगदीशपुर चले आये थे। उनके कितने ही सिपाही आयर साहब के सैनिकों के हाथ बन्दी हो चुके थे। उन सबको साहब ने निर्दयता के साथ मरवा डाला। आरे आकर साहब ने शहर भर के लोगों के हथियार छीनने शुरू किये। एक सप्ताह में यह काम पूरा हुआ। इसके बाद वे जगदीशपुर की ओर चले। रास्ते के घने जङ्गलों में बाबू साहब की सेना ने इनकी राह रोकी, पर सफलता नहीं हुई। साहब जगदीशपुर चले ही गये।

वहां पहुंचकर उन्होंने पहले तो बाबूसाहब का संग्रह किया हुआ गल्ला हाथ में किया, इसके बाद उनके सब महल-मकान ढा दिये। पवित्र देवमन्दिर को भी उन्होंने न छोड़ा! कुंअरसिंह के भाइयों के मकान भी ढा दिये गये। जगदीशपुर के पास ही जितौरा नामक स्थान में भी बाबूसाहब का एक मकान था, वह भी मिसमार कर दिया गया।

इसके बाद दानापुर की १० वीं पलटन के गोरे सिपाही आरे आये। उन्होंने प्रतिहिंसा के वशवर्त्ती हो और भी गजब ढाया। उन लोगों ने घायल सिपाहियों को पकड़-पकड़ कर फांसी पर लटका दिया, मरे हुओं को पेड़ों से बांधकर लटका दिया। ५० सिपाहियों को गोलियों से मार कर उनकी लाशें भी इसी तरह लटका दीं और जगदीशपुर पहुंच कर आसपास के कितने ही गांवों और गांववालों को जला कर खाक कर डाला।

इस पलटन के गोरे इतनी ही दानवी-लीला करके न रह गये। जब ये जगदीशपुर को सोलहो आने ध्वंस करके दानापुर लौटे, तब इन लोगों ने नीचता और पैशाचिकता की पराकाष्ठा कर दिखायी। ४० वीं पलटन के १०० सिपाही अब तक बागी नहीं हुए थे और दानापुर की छावनी में ही पड़े हुए थे। इन लोगों ने दानापुर पहुंच कर उन वेचारे नमकहलाल सिपाहियों को भी गोलियों और सङ्गीनों के मजे चखाने शुरू किये। कितने ही मुफ्त में मारे गये। उसी समय यदि जेनरल आउटरम वहां न पहुंचते तो शायद एक भी जीता न बचता। जेनरल आउटरम ने १० वीं पलटन के गोरों को रोका तो सही, पर इस निरपराध-हत्या के लिये उन्हें दण्ड नहीं दिया !

जगदीशपुर का ध्वंस और सिपाहियों की हार हो गयी, पर बाबू कुंअरसिंह ने आत्मसमर्पण नहीं किया। वे ससराम की ओर रवाना हो गये। उनके घर की औरतें अपने-अपने मायके भेज दी गयी थीं, इसलिये उनकी तरफ से वे निश्चिन्त थे। वे कुछ अनु-चरों और धर्मनबीबी नामक अपनी एक रखेल मुसलमानी के साथ

ससराम के पहाड़ की ओर चले गये । वहीं पहाड़ पर सभा बैठी । रणदलनसिंह और हरकिशनसिंह भी पास ही थे । बाबू साहब की आखों से आंसू जारी थे । लोगों ने कहा,—"आप रोते क्यों हैं ? युद्ध में हार-जीत तो हुआ ही करती है, फिर वीर होकर आप रोते क्यों हैं ?"

बाबू साहब ने कहा,—"रोता इसीलिये हूं कि मेरे ही करते मेरी पैतृक सम्पत्ति का नाश हुआ । इस समय यदि मेरा पुत्र जीता होता, तो मेरा सिर काट कर अंगरेजों के पास ले जाता और नष्ट वैभव का उद्धार करता । एक पोता है, वह भी पागल ही है ! तुम लोग साथी ही ठहरे—तुम्हारे ही ऊपर मेरा भरोसा ठहरा । सो तुम लोग लड़ने का हाल भी नहीं जानते । मैं ८० वर्ष का बूढ़ा क्या कर सकता हूं ? तो भी जब युद्ध छेड़ दिया है, तब युद्ध के सिवा और उपाय ही क्या है ?"

इस घटना से भी यही बात प्रमाणित होती है, कि बाबू साहब अपने मन से विद्रोही नहीं हुए—घटना चक्र में पड़कर उन्हें विद्रोह का झण्डा उठाना पड़ा ।

इसके सिवा बाबू साहब की सच्ची वीरता का भी प्रमाण और क्या हो सकता है, कि उन्होंने युद्ध किया तो हथियारबन्द सिपाहियों के ही साथ किया, किसी निहत्थे अंगरेज या उनके स्त्री-बच्चे के खून से उन्होंने अपना हाथ नहीं रंगा । इसके विपरीत उनके शत्रुओं ने केवल उन्हीं का घर-द्वार नष्ट नहीं किया, बल्कि आस-पास के गांव भी जला दिये ! कुंअरसिंह का सिर ले आनेवाले को

२५ हजार रुपये इनाम देने की घोषणा की गयी ! पर इस बिहारी वीर का दूर-दूर तक इतना नाम और सम्मान था, कि कहीं किसी ने उनका बाल बांका न होने दिया और वे बेखटके एक जगह से दूसरी जगह भागते चले गये। जहां-जहां अब तक शान्ति विराज रही थी, वहां भी बाबू साहब की दुर्दशा का हाल सुनकर लोग उत्ते-जित हो उठे और चारों ओर आगसी लग गयी।

कहते हैं कि बरार और उसके आसपास भी इनकी धाक फैली हुई थी। जब्बलपुर के सिपाही भी इनके लिये बलवाई हो गये थे। नागपुर से सागर-नर्मदा-प्रदेश तक में इनके लिये हलचल मच गयी। सुदूर आसाम-प्रदेश के एक राजा के सैनिक भी बाबू साहब के लिये बिगड़ खड़े हुए थे। इसीसे उनकी व्यापक-प्रतिष्ठा का हाल मालूम हो जाता है।

बाबूसाहब क्रमशः उत्तर-पश्चिम के प्रदेशों में गये और उधर ही से दिल्ली भी जाना चाहते थे, पर दिल्ली में अंगरेजों की पुनः सत्ता प्रतिष्ठित हो गयी है, यह सुनकर वे अवध की ओर चले गये। मध्य भारत और उत्तर भारत के बहुतसे सिपाही उनके अधीन हो गये और उन्होंने आजमगढ़ पर हमला करने की तैयारी की। उनका विचार था कि आजमगढ़ के बाद इलाहाबाद या बनारस पर हमला करें और यहीं से फिर जगदीशपुर चले जायें।

आजमगढ़ में सेनापति मिलमैन को इनके सैनिकों के आगे दो दो बार पराजित होना पड़ा। इलाहाबाद से लार्ड केनिङ्ग ने फिर एक गोरी पलटन यहां भेजी, जिसके अध्यक्ष लार्ड मार्क-

कार थे। बड़ी ही मुश्किलों से यह सेना बाबू कुंअरसिंह को यहां से हटा सकी।

इधर जेनरल लुगार्ड के अधीन एक और सेना लखनऊ से आजमगढ़ आ रही थी। उसके मुकाबले के लिये भी बाबू कुंअर-सिंह की सेना पहले से ही तैयार थी। इस लड़ाई में बाबू साहब के सिपाहियों ने गजब की वीरता दिखायी। इधर लुगार्ड साहब आजमगढ़ पहुंच गये।

बाबू कुंअरसिंह को यह मालूम था कि अंगरेजी फौज अवश्य उनका पीछा करेगी, इसलिये उन्होंने नघाई नामक गांव में आकर फिर अपनी फौज सजायी। बड़े बड़े वृक्षों की आड़ में तोपें रखी गयीं। कप्तान डगलस की सेना ने यहीं आकर उन पर हमला किया। उन्होंने चतुराई से फौज के एक टुकड़े को कप्तान की सेना से भिड़ने की आज्ञा देकर दो टुकड़ों को और और तरफ रवाना कर दिया और आप भी साफ वहां से बच कर निकल भागे। रात को उनकी सब फौज फिर एक जगह इकट्ठी हो गयी। वहां से चलकर वे सिकन्दरपुर की ओर बढ़े। रातों-रात उन्होंने घाघरा-नदी पार कर डाली। यह खबर पाकर कप्तान डगलस उनके पीछे दौड़े और उनके करीब करीब पहुंच गये। यहां दोनों दलों में खूब लड़ाई हुई। रात में ये लोग फिर इधर-उधर भाग गये और गङ्गा पार करने की धुन में लगे।

कप्तान डगलस ने उनका इरादा ताड़कर गंगातट की कुछ नावें डुबो दी थीं; पर गांववाले कुंअरसिंह के नाम पर लट्टू थे,

इसलिये उन्होंने डुबोयी हुई नावों का पता बतला दिया। फिर क्या था ? नावें बाहर निकाली गयीं और उन्हींपर पार होकर वे लोग उस पार पहुंच गये। पार पहुंचकर बाबू कुंअरसिंह एक हाथी पर सवार हुए। रणदलनसिंह उनके पीछे बैठे। एक नौकर उनके सिर पर राज-चिन्ह-स्वरूप छत्र धारण किये रहा।

यही छत्र पीछे उनका काल हो गया। सवेरा होते ही बहुतसे अंगरेज सैनिक गंगा के किनारे आ पहुंचे और उनकी तोपके गोले उस पार तक निशाना मारने लगे। एक गोला उस छत्रधारी अनुचर और रणदलनसिंह को लगा, जिससे वे तुरन्त ही मरकर गिर पड़े। कुंअरसिंह को भी चोट पहुंची। वे बेहोश होकर दौड़े, पर गिर पड़े। पीलवान उन्हें उसी हालत में बड़ी दूर तक ले गया। उनकी दाहिनी भुजा में गोला लगा था। जब वे होश में आये, तब उन्होंने अपने अनुचरों से वह बांह काट कर गंगा में फेंक देने को कहा। पहले तो कोई राजी न हुआ; पर पीछे उनके बहुत आग्रह करने पर एक ने तलवार से उनकी वह बांह काट कर गंगा में फेंक दी ! उसी हालत में वे जगदीशपुर लाये गये। उस समय वहां उनके भाई अमरसिंह हजारों सिपाहियों के साथ डटे हुए थे। कुंअरसिंह के सिपाही आकर उनसे मिल गये।

उस समय आरे में अंगरेजों की बहुतसी पल्टनें पहुंच गयी थीं। कप्तान ली ग्राण्ड इनके अधिनायक थे। उन्होंने एक बार

फिर जगदीशपुर पर चढ़ाई करनी चाही और कुछ सैनिकों को लिये हुए वहां जा धमके ; पर मृत्यु और पराजय ही उनके बांटे पड़ी । बाबू कुंअरसिंह ने मरते-मरते भी अपनी वीरता अँगरेजों को दिखा ही दी !

इस समाचार से शाहाबाद के गोरे अधिकारी बड़े घबराये और उन्होंने कप्तान डगलस से आरे आने के लिये आग्रह-पूर्वक अनुरोध किया। उनके आने के पहले ही बाबू कुंअरसिंह का शरीर छूट गया। एक सच्चा वीर संसार से उठ गया। अँगरेजी राज्य का प्राचीन मित्र और घटना-प्रेरित शत्रु जगत् से बिदा हो गया।
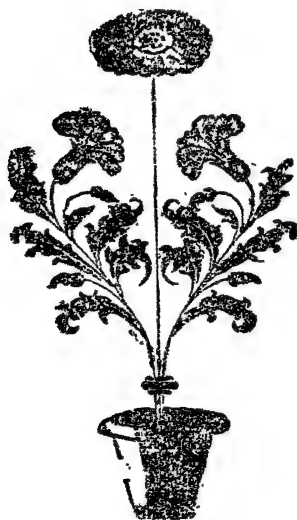
तेइसवां अध्याय ।

—◌◦◌—

बाबू अमरसिंह ।

—::※::—

बाबू कुंअरसिंह की मृत्यु के बाद उनके भाई बाबू अमरसिंह सिपाहियों के सरदार बने । उनके वृद्ध भ्राता में जैसी वीरता और रण-कुशलता थी, वैसी इनमें न थी, तो भी ये दृढ़ता और एकाग्रता में उनसे किसी दर्जे कम न थे । सेनापति ली ग्राण्ड को पराजित कर इन्होंने आरे पर चढ़ाई करने का विचार किया । इधर-उधर के बहुतसे आदमी इनके भाई को याद कर इनके साथी हो गये । सेनापति डगलस ने पूर्वोक्त सेनापति लुगार्ड को बुला भेजा । इधर अमरसिंह ने बिहिया और जगदीशपुर के बीच दावां के जंगलों में अपनी सेना एकत्र कर रखी ।

८ वीं अप्रैल को लुगार्ड साहब बिहिया पहुंच गये । अपनी फौज की एक टुकड़ी आरे भेज कर वे ९ वीं अप्रैल को जगदीशपुर के पश्चिमवाले मैदान में आ पहुंचे और सासराम के अंगरेज सेनापति करफील्डके आने की राह देखने लगे । इसी दिन अमरसिंह की फौज इन पर टूट पड़ी । खासी लड़ाई हुई, जो कई दिनों तक जारी रही । बड़ी-बड़ी मुश्किलों से ये अपना रास्ता साफ कर सके । जब अमरसिंह सहतबार के जङ्गल में चले गये, तब इन्होंने जगदीशपुर पर जाकर अधिकार कर लिया ।

इसके बाद लुगार्ड साहब सिपाहियों का पीछा करते हुए इधर-उधर घूमने लगे। ११ वीं मई को सासराम से करफील्ड साहब आये और उनसे पिअरो * नामक स्थान में मिले। करफीलु साहब को सासराम से पिअरो तक अनेक बार अमरसिंह की सेना से भिड़ना पड़ा था। जिस दिन ये लुगार्ड साहब से आ मिले थे, उसी दिन लुगार्ड साहब के सिपाहियों ने बलवाइयों को हेतमपुर नामक गांव में हराया। उस दिन से लगातार दोनों दलों में युद्ध होता ही रहा। २० वीं मई की लड़ाई में एक अंगरेज अफसर मारा गया। २७ वीं को लुगार्ड ने दिलीपपुर में सिपाहियों को पराजित किया।

परन्तु इन हारों से अमरसिंह ने हिम्मत न हारी। आरे के जङ्गलों का हाल उन्हें बखूबी मालूम था, इसलिये उन्हें लड़ने और छिपने में बड़ी सुविधा होती थी। छिपे छिपे वे अंगरेजों का पता पाते ही उनपर टूट पड़ते थे। इससे अंगरेज तङ्ग आ गये। वे हजार कोशिसें करके भी अमरसिंह को तितर-बितर न कर सके।

इधर सिपाहियों ने डुमरांव के पास की एक नील-कोठी लूट ली। उनके एक दल ने बक्सर के पास का राजपुर गांव

* पिअरो—यह वही स्थान है, जहां सन् १९१७ ईस्वीमें आरेका प्रसिद्ध बकरीदी दंगा हुआ था, जिसमें ३ लाख हिन्दुओंने गायकी कुर्बानीसे उत्तेजित हो, १९ दिनों तक खूब लूट-पाट की और ११९ गांवोंसे मुसलमानोंको एकदम भगा दिया था।

लूट लिया। दूसरा दल रेलवे का आफिस लूटने की चेष्टा में लगा। सारे जिले में त्राहि त्राहि मच गयी। अंगरेज रातदिन डरे रहने लगे। अंगरेजों की दुर्दशा होने लगी। लाचार लुगार्ड साहब सेनापतित्व से इस्तीफा दे विलायत चले गये। अमरसिंह ने अपने सब खोये हुए स्थान पुनः अपने हाथ में कर लिये। जगह जगह से हजारों और नये आदमी उनकी फौज में आ मिले।

ब्रिगेडियर डगलस लुगार्ड साहब का काम करने लगे। उन्होंने कर्मक्षेत्र में पदार्पण करते ही सुना कि अमरसिंह के आदमियों ने गया के जेलखाने से कैदियों को भगा दिया है। वे लोग पुलिसवालों से मिलकर अंगरेजों को शहर से भगा चुके हैं। इधर आरे के सिपाहियों में भी षड्यंत्रकारियों के कारण हलचल जारी है। शाहाबाद की कोई ऐसी जगह नहीं रह गयी है, जहां से अंगरेजों की सत्ता और प्रतिपत्ति उठ नहीं गयी हो। यह सब सुनकर ब्रिगेडियर डगलस को बड़ी चिन्ता हुई और वे अमरसिंह को जगदीशपुर से निकाल बाहर करने की चेष्टा में लगे। पर अक्तूबर के अन्त और नवम्बरके प्रारम्भ तक वे सफलीभूत न हो सके।

इधर मई से लेकर सितम्बर महीने तक अमरसिंह ने जिले भर में अपनी सत्ता जमा दी। उन्होंने आरे पर अधिकार करने की भी बड़ी चेष्टा की और वहां की घुड़सवार पलटन को हैरान कर मारा। अमरसिंह की मुस्तैदी, बहादुरी और चतुराई ने अंगरेज सेनापति को चक्कर में डाल दिया।

डगलस साहब ने १३वीं अक्तूबरको अपनी सेनाकी ७ टुकड़ियां भिन्न-भिन्न स्थानों में भेजीं और इसी ताक में रहे, कि सब बलवाई जब जगदीशपुर में इकट्ठे हो जायें, तब उनपर धावा बोल कर उन्हें हरा दिया जाये। १४ वीं को उन्होंने "कारीसाथ" नामक स्थान से सिपाहियों को भगाया। कम्पसागर और पिअरोमें भी दोनों दलों में खूब लड़ाई हुई; पर बलवाइयों को दोनों स्थानों में हार ही मिली, किन्तु उनका दल भङ्ग न हुआ। वे चतुराई से हटते चले जाते थे। इसीसे डगलस साहब को पूरी सफलता नहीं मिलती थी।

अवध की लड़ाई के नामी वीर सर हेनरी हावेलाक भी इस समय डगलस साहब के ही दल में थे। उन्होंने अपनी घुड़सवार पलटन लेकर सिपाहियों से युद्ध किया और बड़ी दूर तक खदेड़ते हुए अन्त में उन्हें भागने पर लाचार कर दिया। "नोनार" नामक स्थान में अमरसिंह की फौज को इस घुड़सवार पलटन के हाथों गहरी हार मिली। अमरसिंह एक ईखके खेत में जा छिपे। उनके सिपाही कुछ देर तक लड़ते रहे। इसके बाद फिर भागे और रात के अँधेरे में अंगरेजी फौज को धोखा देकर शाहाबाद की दक्खिन-पश्चिम ओर की पहाड़ियों में जा छिपे।

वहां भी अंगरेजी फौज ने उन्हें स्थिर न होने दिया। उन्हें फिर युद्ध करना ही पड़ा। सिपाही बड़ी मुस्तैदी से लड़े; पर उनकी बड़ी हानि हुई। हावेलाक साहब के चन्द घुड़सवारों ने अमरसिंह के दल को जितना हैरान किया, उतना छः महीने तक ३००० सैनिक लेकर भी डगलस साहब न कर सके थे।

इसी तरह सात महीने तक लगातार अमरसिंह ने अंगरेजी फौजके साथ बड़ी वीरता और रणचातुरी के साथ युद्ध किया। बड़ी-बड़ी मुश्किलों से वे अमरसिंह की शक्ति का ह्रास कर सके। बिहार के इन खण्ड-युद्धों में अंगरेजों को जैसी परेशानी उठानी पड़ी थी, वह आज तक उनको नहीं भूली है और शाहाबाद के लोगों की वीरता आज तक उनके स्मृति-पट पर अङ्कित है। इसीलिये गत जर्मन-युद्ध के पहले तक यहां के लोग रंगरूटों में मुश्किलों से भर्त्ती हो पाते थे।

इस प्रकार कुंअरसिंह की मृत्यु और अमरसिंह की पराजय के बाद शाहाबाद जिले में शान्ति हो गयी। पूर्वोक्त रणदलनसिंह और हरकिशनसिंह को उक्त अपराध की पूरी-पूरी सजा मिली। पहले तोप के गोले से उड़ा दिये गये और दूसरे को फांसी दी गयी! कुंअरसिंह की जैसी प्रतिष्ठा इस जिले में थी, उसका विचार कर सरकार ने उनके परिवारवालों के साथ बुरा वर्ताव न किया! उन्हें वह सब सम्पत्ति दे दी गयी, जिस पर उनका न्यायतः अधिकार था। अमरसिंह कहां लापता हो गये, यह कोई न जान सका।

आरे में बाबूसाहब की जो कोठी थी, उसे बाबू हरवंशसहाय नामक एक वकील ने खरीद लिया; पर गृह-प्रवेश के पहले ही उनकी मृत्यु हो गयी! उसका कुछ अंश बाबू कांधजीसहाय वकील ने भी खरीदा और वहां अपने रहने के लिये मकान बनवाया था। पर वे भी उसमें न रह सके। एक दिन गाड़ी से गिर कर उन्हें ऐसी चोट आयी, कि उनका प्राणान्त ही हो गया! और एक वकील ने

उसका उत्तरी हिस्सा खरीदा था, पर मकान तैयार होते-न-होते वे भी बीमार होकर स्वर्गवासी हो गये! सारांश यह, कि बाबू साहब की जमीन पर इनमें से कोई भी वास न कर सका। आरे के लोग इन विचित्र घटनाओं पर तरह-तरह की अटकलें लगाते हैं।

जो हो, कुंअरसिंह और अमरसिंह तो न रहे; पर उनकी वीरता की कथा आज भी इस जिले के घर-घर में कही-सुनी जाती है। सारी बातों पर विचार करने से यही मालूम होता है, कि उस समय यदि बाबू साहब का बुढ़ापा न होता, निस्सन्तान होने का दुःख उनके हृदय में सदैव न व्यापता रहता, वे सचमुच शुरू से ही अंगरेजों के शत्रु होते, उनके पास उत्तमोत्तम शस्त्रास्त्र होते और उनके अपने ही आदमियों में उनके शत्रु न होते, तो निश्चय ही उनकी यों हार न होती, और कम से कम शाहाबाद जिले में वे अपनी सत्ता सदा के लिये जमा लेते। उनका प्रभाव इस जिले और आसपास के जिलों में बहुत ही चढ़ा-बढ़ा हुआ था और वे जो चाहते, कर सकते थे। पर सच तो यह है, कि वे अनिच्छा से इस बलवे में शामिल हुए थे और उन्हें तैयारी करने का जरा भी मौका नहीं मिला था।

इसके सिवा वे कितने बड़े दानी, दयालु और गुण-ग्राहक थे, यह सब बातें उनके चरित्र की निर्मलता बतलाने के लिये काफी हैं। उनकी दी हुई लाखिराज जमीन, जिले के कितने ही ब्राह्मणों के अधिकार में आजतक है। अंगरेजी सरकार ने उनके दिये

हुए दान को आज तक रद्द नहीं होने दिया ।—इस पुस्तक के लेखक के बाप-दादाओं को भी महाराज कुंअरसिंह से बहुतसो जमीन इसी तरह मिली थी और आज भी लेखक को उसी जमीन पर बसने का सौभाग्य प्राप्त है।
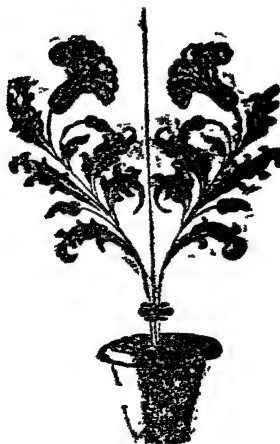
चौबीसवां अध्याय।

——:०:◯:०:——

बङ्गाल और बिहारमें बलवेका प्रभाव।

——:०:◯:०:——

सिगौली।

पटने से १२ मील दूर सिगौली नामक स्थान में १२ नं० देशी रिसाला रहता था, जिसके अधिनायक मेजर हालमेस थे। पटने के कमिश्नर टेलर साहब की तरह ये भी सारे बिहार प्रान्त को अपना शत्रु समझते थे और तिहुंत, छपरा, चम्पारन, आजमगढ़, गोरखपुर आदि विभागों में फौजी कानून जारी करने के लिये बार-बार लाट साहब को लिख रहे थे; पर उनकी बात न रही। तब उन्होंने अपने भिन्न-भिन्न जिलों के शासकों के पास फौजी कानून जारी करने का परवाना लिख भेजा, जिसके लिये उन्हें और पटने के कमिश्नर टेलर साहब को पीछे कैफियत देनी पड़ी। ये लोग यह हरकत बिहार के निलहे गोरोंके उकसाने से कर बैठे थे। इसका नतीजा अच्छा न हुआ। ३० वीं जुलाई को हालमेस साहब अपनी गाड़ी पर चढ़े चले जाते थे। इसी समय १२ वीं पलटन के ६ घुड़सवारों ने उनकी गाड़ी रोक ली और उनका तथा उनकी पत्नी का सिर तलवार से काट डाला! इसके बाद उन्होंने सिगौली के और भी अंगरेजों को मार डाला। एक हिन्दुस्तानी ने दया करके एक छोटी-सी बालिका को बचा लिया। रिसाले के सभी

सवार बिगड़े हुए थे, उन लोगों ने खूब लूट-पाट मचायी और अंगरेजों के घर जला दिये। इसके बाद वे शोर-गुल मचाते हुए दूसरी ओर चले गये।

मुजफ्फरपुर।

दानापुर के सिपाही बिगड़े ही थे—सिगौली का रिसाला फरण्ट हो चुका था—आरे में बाबू कुंअरसिंह का प्रचण्ड-प्रताप व्याप्त हो रहा था—इसलिये पटने के कमिश्नर साहब का सिर चकरा उठा। उन्होंने छपरा, मुजफ्फरपुर और गया आदि स्थानों के अफसरों को पटने आने का हुक्म दिया। वे सोचते थे, कि कम से कम पटने में सब लोगोंके चले आने से यहाँ हम लोगों की प्रधानता बनी रह जायेगी।

दानापुर और सिगौली की खबर पाकर तिहुँत-विभाग के युरोपियन बेतरह घबराये हुए थे। इतने में कमिश्नर साहब का बुलावा आने से उन लोगों को यह डर होने लगा, कि शीघ्र ही इस विभाग में बलवा मचा चाहता है। मुजफ्फरपुरवाले भागने को तैयार हो गये। मैजिस्ट्रेट ने मना किया। पर किसी ने उनकी एक न सुनी। सब गोरे पटने चले आये—मैदान बलवाइयों के लिये साफ हो गया। पर वहां अंगरेजों की ओर से जो लोग नगर-रक्षा कर रहे थे, उन्होंने बलवाइयों का साथ नहीं दिया, इसीलिये यहां ज्यादा गड़बड़ न होने पायी—केवल कुछ गोरों की कोठियां लूट ली गयीं। मैजिस्ट्रेट ने पटने से लौटकर देखा, कि यहां अधिक हानि नहीं हुई है।

छपरा ।

छपरे के पास ही ४५ गोरे और १०० सिक्ख सिपाही रहते थे। इनके रहते हुए भी कमिश्नर की आज्ञा पाकर यहां के गोरे पटने चले ही गये। गोरों के मैदान खाली कर चले जाने पर यहां के एक रईस ने यहां का सब इन्तजाम अपने हाथ में ले लिया। उनका नाम था—काजी रमजानअली। उन्होंने नगर, खजाना, कचहरी सब कुछ ज्योंका त्यों बना रहने दिया। जब अंगरेज लौट आये, तब सब कुछ ठीक पाकर बड़े ही खुश हुए। जिस समय टेलर साहब पटने के मुसलमानों पर तबाही लाने में जी तोड़ परिश्रम कर रहे थे, उसी समय छपरे के एक मुसलमान रईस ने अंगरेजी सल्तनत की इस प्रकार बहुमूल्य सहायता की।

गया ।

उस समय मनी साहब गया के मैजिस्ट्रेट थे। वहां ८४ वीं पदल सेना के ४० सिपाही और ११६ सिक्ख उस समय मौजूद थे। वे बेतरह घबराये हुए थे। इसी समय कमिश्नर का पत्र पहुंचा। बस खजाने में ७।८ लाख रुपया छोड़कर सब लोग यहां से भागकर पटने चले गये। शहर की रक्षा का भार दारोगा और नजीबों के सूबेदार के ऊपर रहा।

रास्ते में मनी साहब को यों नामर्द की तरह भागना बड़ा बुरा मालूम हुआ। इसलिये वे होलिंगस नामक अफीम मुहकमे के साहब के साथ गया लौट आये। कुछ दिनों तक सब कुछ ठीक

रहा। इसके बाद अफवाह उड़ी कि बाबू कुंअरसिंह गया आ रहे हैं। इस बात से हड़कम्प मच गया। मैजिस्ट्रेट ने खजाने के रुपये लेकर कलकत्ते भाग जाने का विचार किया। चौथी अगस्त को कुछ गोरे सैनिकोंके साथ कलकत्ते भाग जाने का विचार स्थिर हुआ। इतने में नजीब लोग बिगड़ उठे। कैदखाना तोड़ दिया गया। कैदी सब छुटकारा पा गये। मैजिस्ट्रेट साहब कलकत्ते जा रहे हैं, यह बात उन लोगों को मालूम थी। इसलिये उन्होंने खजाना लूट लेनेके विचार से उनका पीछा किया, पर उनका मनोरथ सिद्ध न हुआ। रुपया ठिकाने पहुंचने में विघ्न न पड़ सका। इसके लिये मनी साहब की बड़ी प्रशंसा सरकार में हुई।

टेलर साहब टले।

इतने में टेलर साहब अपने बेजा जोशीलेपन और हद से ज्यादा होशियारी के कारण कमिश्नरी से अलग कर दिये गये और उनकी जगह सैमुएल्स साहब कमिश्नर बनाये गये। टेलर साहब के हटाये जाने से लोगों में बड़ी शान्ति हो गयी। लगातार लोगों का फांसी पड़ना बन्द हुआ। नजरबन्दों को छुटकारा मिला और मुंशी अमीरअली नामक एक मुसलमान को सहकारी कमिश्नर बनाकर पटने के मुसलमानों को शान्त करने की चेष्टा की गयी। इस पर कलकत्ते के गोरों ने बड़ी हाय-तोबा मचायी, पर जब मुंशीजी ने अपनी दक्षता से पटने में पूरी शान्ति स्थापित कर दी, तब वे अपनी हरकतों पर आप ही शर्मा गये।

सन्ताल परगना ।

सन्ताल परगना प्रसिद्ध तीर्थस्थान वैद्यनाथसे कुछ दूर है। निकटस्थ रोहिणी नामक स्थान में ५ नं० अनियमित रिसाला था। १२ वीं जून को सन्ध्या समय उसके अधिनायक मैकडानल्ड, दूसरे सेनापति सर नारमन लेसली और एक डाक्टर साहब के साथ बैठे चाय पी रहे थे। इसी समय तीन घुड़सवार मामूली पोशाक पहने उनके पास पहुंच गये और उन पर हथियार चलाने लगे। मैकडानल्ड और डाक्टर साहब घायल हुए। लेसली साहब की तो जान ही चली गयी। उस समय तो किसी ने आक्रमण करनेवालों को नहीं पहिचाना, पर पीछे तीन आदमी सन्देह में पकड़े गये। एक ने अपना अपराध स्वीकार भी किया। मैकडानल्ड ने तीनों को फांसी देने का विचार किया। तदनुसार वे तीनों फांसी पर लटका दिये गये। इसके बाद तीन महीने तक कोई दुर्घटना नहीं हुई। शेष घुड़सवार विश्वासी बने रहे। इसके बाद यह रिसाला भागलपुर भेज दिया गया। इसी समय दानापुर में अंगरेजों ने जिस दानवी-लीला का परिचय दिया था, उसका समाचार यहां पहुंचा, जिससे सभी देशी सिपाहियों में आतंक फैल गया। १५ वीं अगस्त को जेनरल आउटरम का जहाज भागलपुर पहुंचा, जिससे सिपाहियों में अफवाह उड़ी, कि आज ही ५ नं० रिसाले के हथियार छीने जायेंगे। यह खबर फैलते ही सबके सब अपनी चीजें जहां की तहां छोड़ कर इधर उधर भाग गये। सरकार का विश्वासी सैन्य-दल उसके हाथ से यों निकल गया !

चटगांव

उन दिनों चटगांव में ३४ वीं पल्टन थी। वह १८ वीं नवम्बर को एकाएक बागी हो गयी। अंगरेज डर के मारे शहर छोड़ कर भाग गये और सिपाहियों ने वेखटके खजाना लूट लिया, कैदखाने का फाटक खोल कर कैदियों को छुटकारा दे दिया। इसके बाद वे लूटका माल हाथी घोड़ों पर रख कर त्रिपुरा (टिपरा) की ओर चले। चटगांव के कमिश्नर ने त्रिपुरा के महाराज को बल्वाइयों की गति रुद्ध करने के लिये लिखा। दो और बड़े-बड़े जमींदारों को भी इसी आशय के पत्र लिखे गये। २ री दिसम्बर को उक्त महाराज और अन्य कई जमीन्दारों के आदमियों ने सिपाहियों को त्रिपुरा राज्य में न घुसने दिया; इसलिये वे कुमिल्ले की ओर चले गये। पर उस पहाड़ी मुल्क में उन पर बड़ी तवाही आयी। उनके १० हजार रुपये नष्ट हो गये और तीन हाथी छिन गये। उनके छुड़ाये हुए कैदियों में से अनेक पकड़े गये। त्रिपुरा वगैरह स्थानों के अधिपतियों ने उन्हें चैन न लेने दिया। तब लाचार होकर वे मणिपुर की ओर जाने लगे। रास्ते में उन्होंने एक पुलिस चौकी लूट कर ध्वंस कर डाली। इसी समय सिलहट के प्रधान गोरे कर्मचारी ऐलन साहब ने १५ वीं दिसम्बर को सिलहट की देशी पल्टन को उनका रास्ता रोकने का हुक्म जारी किया। लातू नामक स्थान में यह पलटन बलवाइयों से भिड़ गयी। बलवाइयों ने उन्हें बहकाने की बड़ी चेष्टा की, पर वे लोग उनके बहकावे में न आये। इस लड़ाई में सिलहट के सेनापति मेजर बाइंग की मृत्यु हो गयी, तो भी उनकी सेना ने सिपा-

हियों को वहां से भगा दिया। वे लोग लातू और मणिपुर के बीच-वाले घने जंगलों में जाकर छिप गये। क्रमशः ये लोग मणीपुर-राज्य में पहुंचे। वहां ९ वीं जनवरी को फिर सिलहटवाली सेना से उनका मुकाबला हुआ। इसमें भी उनकी हार हुई और उन्हें पहाड़ों पर जा-कर छिप जाना पड़ा। इसी प्रकार कभी छिपते और कभी बाहर आकर लड़ते-लड़ते उनका बल बहुत कुछ घट गया। तोभी वे जङ्गलों में छिपे रहे। इनकी दशा चारों तरफ के रास्ते बन्द हो जाने से बड़ी बुरी हो गयी।

ढाका।

चटगांव का समाचार पाते ही ढाके के अधिकारिवर्ग ने वहां के सिपाहियों के हथियार छीनने का सङ्कल्प किया। २३ वीं नवम्बर को सवेरे ही नौ-सेना-विभाग के लेफ्टिनेण्ट लिउविस कुछ जहाजी गोरों और दो तोपों के साथ यह कार्य-सम्पादन करने के लिये तत्पर हुए। पहले खजाने के सिपाहियों के हथियार छीने गये। इसके बाद इञ्जि-नियरिङ्ग विभाग के रक्षक निरस्त्र कर डाले गये। तदनन्तर छावनीके मालगुदाम के सिपाही बे हथियार कर दिये गये। यहांतक तो कुशल रही, लेकिन जब खास सिपाहियों के अस्त्र छीनने के लिये ये लाल-बाग पहुंचे तब दोनों ओर से गोलियों की बौछारें होने लगीं। प्रायः ४० सिपाही मारे गये। कितने ही घायल हुए, कितने ही नदी पार करते समय डूब गये। आधे घण्टे की लड़ाई के बाद सिपाही जल-पाईगुड़ी की ओर भाग चले। उधर का रास्ता रुका देख, वे भूटान के पहाड़ी प्रदेश में जा छिपे।

जलपाईगुड़ी और पूर्णिया आदि

चटगांव और ढाके की खबर पा कलकत्ते के अधिकारियों ने ५४ वीं पल्टन के सिपाहियों को १०० जहाजी गोरों के साथ नदी की राह रवाना किया। इधर भागलपुर के कमिश्नर साहब भी ढाके के सिपाहियों के जलपाईगुड़ी जाने का समाचार पा वहां के लिये रवाना हो गये।

इधर मदारीगञ्ज और जलपाईगुड़ी की ११ वीं पल्टन के सिपाही बलवाई होकर दीनाजपुर की ओर बढ़े जा रहे थे। यह खबर पाते ही रङ्गपुर के कलक्टर ने वहां का खजाना एक निरापद स्थान में भेज दिया। सिपाहियों ने जब भागलपुर के कमिश्नर साहब के बहुतसे गोरों के साथ आने का हाल सुना, तब वे दीनाजपुर न जा पूर्णिया की ओर बढ़ने लगे। वहां पहुंच कर वे लूटपाट मचाना ही चाहते थे कि भागलपुर के गोरे सिपाही वहां पहुंच गये। थोड़ी देर की लड़ाई में जब उनके बहुतसे आदमी मारे गये, तब वे उत्तर की ओर भाग चले। भागलपुर के कमिश्नर ने उनका पीछा करना न छोड़ा और नाथंपुर में उनका रास्ता एकदम रोक दिया। लाचार वे नेपाल की तराई के जङ्गलों में जा छिपे।

इसी समय ढाके का समाचार सुन, कमिश्नर विल साहब जलपाईगुड़ी की ओर चले। रास्ते में ही ढाके के सिपाहियों से उनकी मुठभेड़ हो गयी। सिपाही हार कर नेपाल की ओर बढ़ चले, पर वहां भी उन्हें चैन न मिली। विलसाहब ने नेपाल के राणा जङ्गबहादुर को इस मामले में सहायता करने के लिये लिखा। उन्होंने उसी

समय रत्नमणि नामक एक सेनापतिको सिपाहियोंका मुकाबला करने के लिये भेजा, पर उनके आने से पहले ही सिपाही बड़ी उस्तादी के साथ अवध की ओर भाग गये। कोई पकड़ा न गया।

छोटा नागपुर ।

छोटा नागपुर बिहार का दक्षिणी भाग है। वहां के रांची, हज़ारीबाग, चाईबासा और पुरुलिया आदि स्थानों में प्रधान छावनियां थीं। इनमें सब देशी सिपाही थे। ३० वीं जुलाई को हजारीबाग में आरे और दानापुर के समाचार पहुंचे। बस यहां के सिपाहियों में भी जोश फैल गया। लाचार यहां के अंगरेज़ों को भाग जाना पड़ा। हजारीबाग के सिपाही परमःस्वतन्त्र होकर मनमानी करने लगे। उन्होंने रांची और उसके पास का एक और नगर हाथ में कर लिया। रांची का जेलखाना तोड़ दिया गया, खजाना लूट लिया गया और सर्वसाधारण की सम्पत्ति भी लूट ली गयी।

उस समय छोटा नागपुर के कमिश्नर कप्तान डाल्टन ने रामगढ़ के राजा से सहायता मांगी। उन्होंने उचित सहायता दी। इधर रांची और हजारीबाग की तरह पुरुलिया और चाईबासा आदि स्थानोंमें भी लूट-पाट हुई। इसी समय कुछ मद्रासी सिपाही कप्तान डाल्टन की सहायता के लिये आ पहुंचे।

२ री अक्तूबर को चतरा नामक स्थान में बलवाइयों और अंगरेजों का युद्ध हुआ। एक ही घंटे के युद्ध में सिपाही हार गये और इधर-उधर भागने लगे। पर इससे उनका जोर घट नहीं गया। उन्होंने पलामू, सम्बलपुर और सिंहभूमि आदि प्रदेशों में गड़बड़ी मचानी शुरू

कर दी । इधर यहां के आदिम-निवासी 'कोल' भी तीर-धनुष लेकर उन राजाओं को गद्दी से उतारने लगे, जिन पर वे किसी कारण से नाराज हो गये थे । इन सब गड़बड़ों को मिटाने में अंगरेजों को बड़ी हैरानी उठानी पड़ी । पहाड़ और जङ्गल उनके कार्यों में बड़े बाधक बन गये । इसीलिये बलवाइयों की खूब बन आयी । देखते-देखते सारे छोटानागपुर प्रदेश में दावाग्नि-सी धधक उठी । एक दिन ४ हजार कोलों ने एक सिक्ख-सैन्य को घेर लिया । बहुतसे सिक्ख मारे गये । बड़ी-बड़ी मुश्किलों से सिक्खों ने उन्हें भगाया । इसी तरह कितनी ही बार दोनों पक्षों में मुठभेड़ें हुई ।अन्तमें सरकार की तरफ से बड़े कड़े उपाय काम में लाये जाने लगे । यों ही गांव के गांव जलाये जाने लगे, लोग पकड़-पकड़ कर फांसी पर लटकाये जाने लगे । जिन लोगों पर जरा भी सन्देह होता, वे पकड़े जाते और उनकी जायदाद जब्त कर ली जाती । बहुतेरे निरपराध इसी तरह पीस डाले गये । इस तरह उग्रता और कठोरता की चक्की में पिस कर छोटा नागपुर के बलवाइयों का जोश ठंडा हो गया, पर पूरी शान्ति १८५८ ई० के अन्त तक न हो सकी ।

पच्चीसवां अध्याय।

विद्रोह की समाप्ति।

दिल्ली दुबारा अंगरेजों के हाथमें चली आने और लखनऊ पर इनका प्रभुत्व प्रतिष्ठित हो जाने से बलवे की कमर टूटसी गयी। तथापि १८५८ ई० के अन्त तक रुहेलखण्ड के पार्वत्य प्रदेश से लेकर मध्य-भारत की समतल भूमि तक फैला हुआ वह विकट विद्रोह, शान्त न हो सका। इसके लिये अंगरेजों को उत्कट दमन-नीति का सहारा लेना पड़ा। अपराधी-निरपराधी का विचार किये बिना लोगों को दण्ड दिये जाने का क्रम तबतक जारी रहा, जबतक बचे बचाये विद्रोही भी अपने-अपने गांव में न जा छिपे और उनके सभी नेता फांसी पर न लटका दिये गये। केवल बलवाइयों के नेता ही नहीं, कितने ही निरपराध भी अंगरेजों के सन्देह के शिकार हो, फांसी पर चढ़ गये! लोगों में घोर आतंक व्याप्त हो गया। इधर एक तो राजे-रजवाड़े और जमीन्दार पहले से ही अंगरेजों के तरफदार थे, यह दमन-चक्र उठा देख, वे और भी हाथ बंटाने लगे।

इधर विद्रोह के सबसे बड़े नेता नानासाहब धंधुपन्त का पतन, तांतियाटोपी की फांसी, महारानी लक्ष्मीबाई तथा बाबू कुंअरसिंह की मृत्यु ने भी बलवे की कमर तोड़ दी। अन्यान्य स्थानों में इन लोगों के समान प्रभावशाली नेता नहीं थे। इसलिये जो कुछ हुआ, वह साधारण उपद्रव की श्रेणी में गिना जा सकता है।

जिस दिन ग्वालियर में तांतियाटोपी की पराजय हुई और जयाजीराव सेंधिया फिर से वहां की गद्दी पर बैठाये गये, उस दिन सभी देशी नरेशों की आंखे खुल गयीं और वे समझ गये कि अंगरेज किस धातु के बने हैं। यह बात निश्चितसी हो गयी कि भाग्य अंगरेजों के अनुकूल है और वे ही इस देश के शासक होने योग्य हैं। देशी नरेशों ने अंगरेजों के साथ रहने में ही अपना मङ्गल समझा। तात्पर्य यह कि ग्वालियर की इस विजय ने न केवल विद्रोहियों की आशा ही नष्ट कर दी, वल्कि देशी नरेशों को सदा के लिये अंगरेजों का पक्षपाती बना लिया।

सर कालिन कैम्पबेल ने लखनऊ-विजय करके जो प्रभूत उपकार अंगरेज जाति का किया, उसके लिये वे लार्ड की उपाधि से विभूषित किये गये और लार्ड क्लाइव के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने प्रायः समस्त अवधप्रान्त में शान्ति स्थापित कर दी, पर १८५९ के अन्त तक कहीं-न-कहीं गड़बड़ होती ही रही।

अमेठी के राजा लालमाधवसिंह और शङ्करपुर के राना वेणीमाधव अवध की बेगम के तरफदार बनकर अङ्गरेजों से युद्ध करने को तैयार हुए। सन् १८५८ को ६ ठी नवम्बर को अङ्गरेजों ने उन पर हमला कर उनका किला अपने हाथ में कर लिया और उन्हें आत्म-समर्पण करना पड़ा।

राना वेणीमाधव, अमेठी के राजा साहब की दुर्दशा देखकर भी न चेते और विरोध पर कमर कसे रहे। १५ वीं नवम्बर को लार्ड क्लाइव ने उनपर हमला करने के लिये प्रस्थान किया। रानासाहब

अपने हथियारबन्द सिपाहियों, परिजनों और रुपये-पैसे के साथ डौंड़ियाखेरा चले गये। वहां वे अङ्गरेजी फौज के साथ बड़ी बहादुरी से लड़े, पर विजय उनके भाग्य में न थी। उनके सिपाही हार कर भाग गये और उनको बड़ा नुकसान उठाना पड़ा, पर तोभी उन्होंने अंगरेज़ों के आगे सिर न झुकाया। वे गोरों से बेहद चिढ़े हुए थे, क्योंकि उनके २२३ गांवों में से ११९ गांव अंगरेजों ने छीन लिये थे। नवाबी अमलदारी में ये सभी गांव उनके अधिकार में थे। इसीलिये उन्होंने मरते दम तक बेगम हजरतमहल का पक्ष नहीं छोड़ा और अपना सर्वस्व त्यागकर नेपाल की तराई में चले गये। कहते हैं, कि वहीं राना जङ्गबहादुर के साथ लड़ाई हुई, जिसमें मारे गये।

इसी तरह गोंडेके राजा देवीबख्श भी नेपाल की तराई में भाग गये और वहीं उनकी मृत्यु हो जाने के बाद उनकी धर्म-पत्नी ने अंगरेजों की शरण ले ली। अवध के अन्य छोटे-मोटे राजा भी अंगरेजों की शरण में चले आये। फर्रुखाबाद के नवाब ने मांफी मांगकर जान बचायी और मक्काशरीफ चले गये। बेगम हज़रतमहल नेपाल की तराई में जा रहीं। उनके मुसाहब मेंहदी हुसेन ने आत्मसमर्पण किया। बालराव भी नेपाल की तराई में ही चले गये और वहीं मरे भी। १८५८ ई० के जुलाई महीने में बरेली के खांबहादुर खां को वहां के कोतवाल ताहिरबेग ने गिरफ्तार करवा दिया। कुछ ही दिन बाद उन्हें फांसी दे दी गयी। दिल्ली के पासवाले झज्झरके नवाब और बलरामगढ़ के राजा को भी फांसी हुई। बानपुर और शाहगढ़ (मध्यप्रान्त) के अधिपतियों ने

आत्मसमर्पण कर दिया। उन्हें अपना देश छोड़, लाहौर में जा बसने को कहा गया। तिथौली के बूढ़े राजा कालेपानी भेज दिये गये। बांदा के नवाब ने बृटिश सरकार के सामने सिर झुका दिया। उन्हें ४०००) सालाना पेन्शन मिली। नानासाहब और अजीमुल्ला खां को कोई पकड़ न सका। उनका क्या हुआ? यह कोई न जान सका। कहा जाता है, कि पीछे बाबू कुंअरसिंह के भाई अमरसिंह ने भी आत्मसमर्पण कर दिया था, पर कोई-कोई कहते हैं, कि वे लापता हो गये। इसी प्रकार विद्रोह के अन्यान्य नेताओं की भी अन्त में बड़ी दुर्गति हुई।

१८५८ ई० की २७ वीं जनवरी को दिल्ली के बूढ़े बादशाह बहादुरशाह पर मामला चलाया गया। ४० दिनों तक उनके मामले की सुनाई होती रही। इसके बाद उन पर कई जुर्म कायम किये गये और उन्हें बर्मा के पेगू नगर में निर्वासित कर जीवन व्यतीत करने के लिये भेज दिया गया! एक दिन जिस ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के एजेण्ट दिल्ली के बादशाह के आगे हाथ जोड़े खड़े हुए थे, उसी कम्पनी के एजेण्टों ने आज उसी बादशाह के वंशधर को देश-निकाले का दण्ड दे डाला। इसे ही कहते हैं, विधि-विधान! दूर क्यों जाइये? आज भी राव से रङ्क होने के दो ज्वलन्त उदाहरण हमारे नेत्रों के सन्मुख वर्त्तमान हैं। एक तो ससागरा पृथ्वी को अपनी हुङ्कार-ध्वनि से चार वर्ष तक कम्पायमान करनेवाले जर्मन-सम्राट्, द्वितीय-विलियम कैसर और दूसरे रूस के प्रबल-पराक्रमी यथेच्छाचारी शासक जार निकोलस!

जो हो, सिपाही–विद्रोह ने यहां की राजनीति में विचित्र परिवर्त्तन कर डाला। ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के हाथ से यहां का शासन-दण्ड छीन लिया गया और इङ्गलैण्ड की रानी विक्टोरिया ने २ री अगस्त १८५८ को यहां का शासन-सूत्र अपने हाथ में ले लिया। राज्य-भार ग्रहण करते ही उन्होंने दयालुता, न्याय-प्रियता और समदर्शिता से पूर्ण एक घोषणा-पत्र जारी किया, जो १८५८ के अक्तूबर महीने में प्रयाग के एक भरे दरबार में सुनाया गया। उसके अनुसार लार्ड केनिंग भारत के पहले वायसराय नियुक्त हुए और कम्पनी का राज्य लुप्त हो गया। कम्पनी का कुशासन इस विद्रोह का मूल कारण था, यह बात हम कई स्थानों पर कह चुके हैं, इसलिये उसका अन्त होना स्वाभाविक और उचित ही था।

महारानी विक्टोरिया की उदारतामयी घोषणा और लार्ड केनिंग की सदाशयता ने विद्रोह की छिपी चिनगारियों पर भी पानी डाल दिया और भारतवर्ष में अंगरेजी-साम्राज्य की जड़ मजबूत कर दी। लोग बृटिश छत्र-छाया में आकर अपने को परम सौभाग्यवान समझने लगे। देश की नैया एक नयी धार में बह चली! घोषणापत्र के ऐन्द्रजालिक प्रभाव ने देश को अंगरेजों और अंगरेजी सभ्यता के चरणों पर झुका दिया। महारानी के पवित्र विचार, न्यायनिष्ठा और समदर्शिता ने अंगरेज जाति के लिये वाञ्छित फल उत्पन्न कर दिया।

———

छब्बीसवां अध्याय ।

—⁖○⁖—

महारानी विक्टोरिया की उदार घोषणा ।

—::※::—

"मैं—विक्टोरिया—जगदीश्वर की दया से ग्रेटबृटेन और आयर्लैण्ड-संयुक्तराज्य तथा एशिया, अफ्रीका, अमेरिका और आस्ट्रेलियास्थित उपनिवेशों और जनपदों की अधीश्वरी तथा रक्षिका हूं।

"भारतवर्ष के जो प्रदेश मेरे अधिकार में हैं, उनका शासन अब तक ईस्ट-इण्डिया कम्पनी कर रही थी, अब पार्लियामेण्ट की सम्मति से मैं उनका शासन-भार स्वयं अपने हाथों में लेती हूं।

"इस घोषणापत्र के द्वारा मैं सर्वसाधारण पर यह बात प्रकट करती हूं, कि मैंने पार्लियामेण्ट की सम्मति से भारत का शासन-भार अपने हाथ में ले लिया है। इसलिये मैं भारतवर्ष की प्रजा को हुक्म देती हूं, कि वह प्रजा के यथार्थ कर्त्तव्य का पालन करे, मेरे और मेरे वारिसों के प्रति श्रद्धा दिखलाये, जो कर्मचारी मेरी ओर से वहां काम करते हों, उनकी इज्जत करे और उनका हुक्म माने।

"अपने विश्वसनीय कर्मचारी और स्नेहभाजन चार्ल्स-जौन-वाइकौण्ट केनिङ्ग साहब की प्रभु-भक्ति, कार्यदक्षता और विवेक-

बुद्धि पर मुझे पूरा भरोसा है, इसलिये मैं उन्हें अपने साम्राज्य के भारतीय भाग का पहला राज-प्रतिनिधि (वायसराय) और गवर्नर-जेनरल नियुक्त करती हूं। मैं अपने किसी प्रधान मन्त्री द्वारा जो नियम और आदेश समय-समय पर जारी करती रहूंगी, उन्हीं के अनुसार वाइकौण्ट केनिङ्ग हिन्दुस्तान की हुकूमत चलाते रहेंगे।

"ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के समय में जो लोग जिस पद पर थे, वे उसी पर बहाल रखे जाते हैं, परन्तु आगे चल कर मेरी जसी इच्छा होगी या जैसे नियम बनाये जायंगे, उन्हीं पर इन लोगों का रहना या न रहना निर्भर रहेगा।

"इस घोषणापत्र के द्वारा मैं भारतवर्ष के राजाओं से भी यह कह देती हूं, कि कम्पनी के साथ उन्होंने जो सन्धि और शर्तें की हैं, उनका मैं भी पालन करती रहूंगी। आशा है, कि वे लोग भी उनका अवश्य पालन करते रहेंगे।

"भारतवर्ष के जिन-जिन प्रदेशों पर इस समय मेरा अधिकार है, उनके सिवा मैं अब और किसी प्रदेश पर अधिकार करना नहीं चाहती। इसलिये दूसरे लोग यदि मेरे राज्य पर आक्रमण करेंगे, तो मैं उन्हें पूरा दण्ड दिये बिना न रहूंगी। जो लोग मेरे पक्ष में हैं, उन्हें भी मैं दूसरों के राज्य पर हाथ-पैर न फैलाने दूंगी। मैं भारतवर्ष के राजाओं के अधिकार, पद और मर्यादा को अपने समान ही समझूंगी। देश में शान्ति रहने से जो सुख-सौभाग्य प्राप्त होते हैं, उनका उपभोग भारतवर्ष के राजाओं और मेरी प्रजा को सुलभ होगा।

"राजधर्म के पालन के लिये मैं अन्य प्रजाजनों से जिस प्रतिज्ञा में बंधी हूं, वैसी ही प्रतिज्ञा में भारतीय प्रजा के सामने भी आबद्ध हूं। यदि ईश्वर की कृपा हुई, तो मैं इस प्रतिज्ञा का पालन करूंगी।

"ईसाई-धर्म पर मेरा दृढ़ विश्वास है। मैं कृतज्ञ-हृदय से यह बात स्वीकार करता हूं, कि इस धर्म की शरण लेने से सुख और सन्तोष प्राप्त होता है। पर मैं इस विश्वास के बल पर प्रजा के साथ कोई वर्त्ताव न करूंगी। मैं यह बात घोषित किये देती हूं, कि कोई आदमी अपने मजहब के मुताबिक कोई काम करने के लिये न तो इनाम पायेगा, न सजा। सभी अपने-अपने विश्वास के अनुसार धर्मानुमोदित कार्य कर सकेंगे और मेरे अधिकार में सबकी समान भाव से रक्षा की जायगी—उनका सब तरह से प्रतिपालन किया जायेगा। मैं अपने भारतीय कर्मचारियों को भी हुक्म देती हूँ, कि वे लोग मेरी प्रजा के किसी धार्मिक कार्य में दस्तन्दाज़ी न करें। जो ऐसा करेंगे, उन पर मैं हद से जियादा नाराज हूंगी और उनको सजा दूंगी।

"मेरी प्रजा का कोई आदमी किसी विशेष जाति या धर्म का मनुष्य होने के कारण—अपनी विद्या, योग्यता और सच्चरित्रता के लिहाज से कोई सरकारी काम पाने से वञ्चित न किया जायेगा। जो जिस कार्य के योग्य होगा, वह कार्य उसे विना किसी प्रकार का पक्षपात किये, सौंपा जायेगा।

"भारतवासियों की अपनी पैतृक-सम्पत्ति पर जैसी ममता होती है, वह मैं अच्छी तरह जानती हूं। इसलिये सबसे कोई

पैतृक-स्वत्व या अधिकार से वञ्चित न होने पायेगा। हां, उसे सरकार का प्राप्य अंश नियमानुसार देना पड़ेगा। कानून बनाने और कानून के अनुसार कार्य करने के समय भारतवासियों के प्राचीन स्वत्वों और रीति-नीतियों पर सदा ध्यान दिया जायेगा।

"कितने ही दुष्टों ने झूठमूठ की अफवाहें उड़ा कर अपने देश-वालों को धोखा दिया और उन्हें राज-विद्रोही बना डाला। इससे देश की बड़ी हानि हुई है। इसका मुझे बड़ा भारी दुःख है। विद्रोह की शान्ति हो जाने से अंगरेजों का प्रभाव और पराक्रम लोगों पर अच्छी तरह प्रकट हो गया है। जो लोग बहकावे में आकर विद्रोही बन गये थे, वे यदि पुनः प्रजाधर्म का पालन करने को प्रस्तुत हो जायें, तो मैं उन्हें माफ कर दूँगी और उनके प्रति सौजन्य और दया दिखलाऊँगी।

"भारत-साम्राज्य को निरुपद्रव बनाने के अभिप्राय से प्रति-निधि और गवर्नर जेनरल वाइकौण्ट केनिंग ने एक प्रान्त के अपराधियों को इसके पहले ही माफी की आशा दे रखी है, उन लोगों को उचित दण्ड देने की भी बात कही है, जिनके अपराध क्षमा करने योग्य नहीं हैं, मैं उनके कार्य्य का अनुमो-दन करती हूं और सर्वसाधारण की सूचना के लिये यह प्रकट करती हूं कि,—"जो लोग खुलमखुल्ला गोरों की हत्या करने में शामिल थे, उनके सिवा सबके प्रति दया दिखलायी जायेगी। इन हत्यारों पर न्यायानुसार दया नहीं दिखलायी जा सकती, जिन्होंने जानबूझ कर अपनी इच्छा से इन हत्यारों को अपने

यहां टिका रखा है अथवा जो लोग राजविद्रोह के अगुआ बने हुए थे, उन्हें फांसो तो नहीं दी जायेगी, पर और तरह की काफी सजा जरूर दी जायेगी। विचार के समय इस बात का ध्यान रखा जायेगा, कि उन्होंने किस अवस्था में पड़कर, किसके बहकावे में आकर राजविद्रोहियों को सहायता दी थी। धूर्तों के बहकावे में आकर जिन्होंने अत्याचार कर डाला है, उन पर यथोचित अनुग्रह किया जायेगा।

"इसके सिवा जिन्होंने सरकार के विरुद्ध हथियार उठाया था, वे यदि अपने घर जाकर शान्तभाव से काम-धन्धा करने लगें, तो उनको माफ कर दिया जायेगा और अपराध उपेक्षा की दृष्टि से देखा जायेगा।

"अपराध-मार्जन और दया-दर्शन के जो नियम बतलाये गये हैं, उनके अनुसार १ ली नवम्बर तक कार्य करनेवालों को माफ कर दिया जायेगा और उनपर अवश्य दया दिखलायी जायेगी।

"ईश्वर की दया से शान्ति स्थापित होने पर भारतवर्ष में कृषि और वाणिज्य की उन्नति के लिये यथोचित उत्साह प्रदान किया जायेगा, सर्वसाधारण की भलाई और उन्नति के लिये उपाय किये जायेंगे और भारतवर्ष का शासन भारतवासी प्रजा के उपकार की दृष्टि से ही किया जायेगा। भारतवासियों की श्रीवृद्धि से ही मैं अपनेको प्रबल और पराक्रमी समझूंगी। प्रजा के सन्तुष्ट रहने से ही मैं अपने को निःशङ्क और निरापद मानूंगी। प्रजा सन्तुष्ट होकर जो कृतज्ञता और राजभक्ति दिखलायेगी, उसे ही मैं अपना सबसे बड़ा पुरस्कार समझूंगी।

"अन्त में यही प्रार्थना है कि सर्वशक्तिमान् परमात्मा मुझे और मेरे आदेशानुसार कार्य करनेवालों को ऐसी शक्ति दे, जिससे हम लोग प्रजा के मंगल के लिये इन संकल्पों को कार्य में परिणत कर सकें ।"
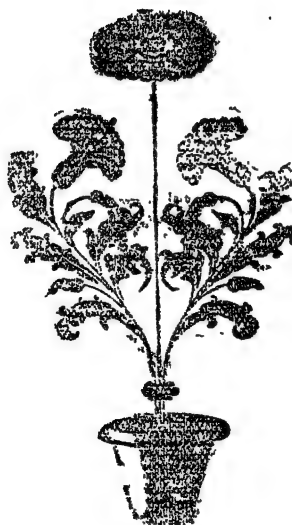
सत्ताइसवां अध्याय ।

सिंहावलोकन ।

हमारा विद्रोह का इतिहास पूरा हो गया । उसके आरम्भ से लेकर अन्त तक की प्रायः सभी घटनाओं का हमने वर्णन कर दिया । यह आग किन किन कारणों से लगी, यह बात भी हम स्थान-स्थान पर बतला चुके हैं । तो भी एक बार कुछ घटनाओं को सरसरी निगाह से देख जाना और उन पर विचार करना, ग्रन्थ-समाप्ति के समय हमारा कर्त्तव्य मालूम पड़ता है, इसीलिये हमने इस अध्याय की अवतारणा की है ।

महामति बेकन ने एक स्थान पर लिखा है:—

"If there be fuel prepared, it is hard to tell whence the spark shall come that shall set it on fire. The matter of sedition is of two kind, much poverty and much discontentment. It is certain, so many overthrown estates, so many votes for troubles. ... ... The causes and motives for sedition are, innovations in religion, taxes, alteration of laws and customs, breaking of privileges, general oppression, advancement of unworthy persons, strangers, deaths,

disbanded soldiers, factions grown desperate; and whatsover in offending people joineth and kintteth them in a common cause."

अर्थात्—"जहां ईंधन पहले से ही तैयार रखा है, वहां यह कहना बड़ा कठिन हो जाता है, कि किधर से चिनगारी आकर उसमें आग लगा देगी। घोर दरिद्रता और अतिशय असन्तोष ये ही दो विद्रोह के मूल कारण हैं। यह निश्चय जानिये, कि जहां बहुत-सी छोटी-छोटी रियासतें बरबाद होती हैं, वहां बहुतसे उत्पात उठ खड़े होते हैं।....राजविद्रोह के कारण उत्तेजक ये ही कई प्रधान विषय हैं:—धर्म के मामलों में परिवर्तन करने की चेष्टा, कर-वृद्धि रीति-रिवाज और कानून का हेर-फेर, स्वत्व-हरण, सार्वजनिक दमन-नीति, अयोग्य और विदेशी मनुष्यों का समादर, मृत्यु-संख्या में वृद्धि, काम से अलग किये हुए सैनिक, घोर दल-बन्दी तथा अन्य ऐसी बातें जिनसे प्रजा को कष्ट पहुंचे और वह एकमत होकर उनके विरोध में उठ खड़ी हो।"

हमारे वर्त्तमान विद्रोह के इतिहास के पढ़नेवाले बेकन की ऊपर लिखी बातें पढ़कर अवश्य ही कह उठेंगे कि उन्होंने ये बातें इसी इतिहास को लक्ष्य कर लिखी होंगी; पर नहीं, उनका यह सिद्धान्त इस इतिहास में वर्णित घटनाओं से बहुत पहले ही प्रकाशित हो चुका था। वास्तव में बेकन साहब का कहना सोलहो-आने सच है। सिपाही-विद्रोह के आरम्भ होने के बहुत पहले ही यहां असन्तोष की सृष्टि हो चुकी थी। लार्ड डलहौसी की पर-स्वापहरण-नीति ने

कितने ही राज्यों और राजघरानों को चौपट कर दिया और उन्हें अँगरेजी सरकार का शत्रु बना रखा था। जहां-तहां लोगों पर नये-नये टैक्स लगने शुरू ही हो गये थे और अंगरेजी कानूनों के दांव-पेंच ने कितनों ही को अपनी पैतृक-सम्पत्ति और अधिकार से वञ्चित कर दिया था, इसलिये कहीं से चिनगारी उड़कर आने की ही देर थी—आग लगते देर न लगी।

हिन्दुस्तान के लोग धर्म के मामलों में शीघ्र ही उत्तेजित हो उठते हैं। इन्हें पुराने रीति-रवाजों पर इतनी बढ़ी-चढ़ी हुई श्रद्धा रहती है, कि आज भी उन्हें छोड़ते हुए घबराते हैं और कितने ही कुसंस्कार-मूलक रिवाजों से भी जोंक की तरह चिपके हुए हैं। अंगरेजों ने बहुत दिनों तक यहाँ रहकर भी उनकी इस प्रकृति को नहीं पहचाना और न केवल अपना राजनीतिक आधिपत्य-विस्तार करने की ही चेष्टा की, बल्कि अपनी सभ्यता, अपना कानून और अपनी रीतियां भी हिन्दुस्तानियों में प्रचलित करनी आरम्भ कीं। आत्म-प्राधान्य-स्थापन की यह अनुचित चेष्टा भी अनेकांश में इस विद्रोह की उत्पत्ति, स्थिति और विस्तार का कारण बनी।

सिपाही-विद्रोह के प्रसिद्ध इतिहास-लेखक 'के' साहब ने अपने ग्रंथ की भूमिका में यह बात स्पष्ट रूप से स्वीकार की है। वे लिखते हैं:—

"The story of the Indian rebellion of 1857, is parhaps the most signal illustration of our great national character ever yet recorded in

the anals of our country. It was the vehement self-assertion of the Englishman that produced this conflagration."

अर्थात्—"१८५७ के भारतीय विद्रोह की कथा हमारे (अंगरेजों) के उस प्रधान जातीय गुण का एक ज्वलन्त प्रदर्शन मात्र है, जिसका परिचय हमारे देश का इतिहास, सदा से देता चला आया है। अंगरेजों के इसी आत्म-प्राधान्य की चेष्टा ने यह दावाग्नि धधकायी।"

आत्म-प्राधान्य की यह चेष्टा अंगरेजों का एक जातीय गुण है, यह बात 'के' साहब साफ शब्दों में कहते हैं। इसलिये अंगरेज भला इस चेष्टा से विरत क्यों कर होते ? पर इसके सिवा एक और प्रबल दुर्गुण उनमें यह है कि उन्हें अपने आगे और सब तुच्छ ही प्रतीत होते हैं। उनकी निगाह में भारतीयों का कभी कुछ मूल्य नहीं हुआ। वे सदा हिन्दुस्तानियों के प्रति घृणा के भाव रखते आये और समय-समय पर उनके हृदय से छिपी हुई यह घृणा प्रकट भी होती रही। अन्याय करनेवाले अंगरेजों पर जिस प्रकार दया और क्षमा का भाव दिखाया जाता, बेकन के लेखानुसार यह भी इस विद्रोह का एक कारण बन गया।

हेनरी गिल्बर्ट अपनी "The story of Indian mutiny" नामक पुस्तक में एक स्थान पर लिखते हैं:—

"a handful of the ruling white race, with their women and children, spent their lives in the daily routine of business or pleasure in the

midst of a vast sea of alien people whose thoughts and emotions they did not guessat and whom, indeed, they generally despised too much to have any wish to know them intimately."

अर्थात्"......मुट्ठीभर गोरे शासक, अपने स्त्री-बच्चों के साथ; दैनिक कार्यों और आमोद-प्रमोद में जीवन व्यतीत करते हुए एक विभिन्न जाति की समुद्र-समान विशाल जनता के भीतर टिके थे। इस भिन्न जाति के लोगों के मनोभावों और विचारों से अवगत होने को वे कभी चेष्टा न करते थे; क्योंकि सच पूछिये तो इन लोगों पर वे लोग जी से घृणा करते थे, इसीलिये इनसे पूर्णतया परिचित होने की इच्छा भी उन्हें नहीं होती थी।"

इस घृणा के अतिरिक्त अंगरेज पादरियों की प्रचार-नीति भी असन्तोष का बीज बोने में कम सहायक न हुई। वे उस समय ईसाई मजहब की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने की बड़े ज़ोरों से चेष्टा कर रहे थे और कर्नल ह्वीलर वर्षों से ३४ वीं पलटन के सिपाहियों को क्रस्तान बनाने की ताक में लगे हुए थे। इसीलिये हिन्दू-पण्डितों और मुसलमान मौलवियों में अंगरेजों के प्रति घोर विद्वेष हुए विना न रहा। दूसरे नयी-नयी अंगरेजी शिक्षा प्राप्त कर, लड़के जिस प्रकार बिगड़ते चले जाते थे, उसने भी बड़े-बूढ़ों के दिमाग में यह बात बैठा दी कि अंगरेजों की नीयत हमारे मजहब को मिट्टी में मिला देने की है। यही बात हर जगह तरह-तरह की नमक-मिर्च और रंग-मसाले के साथ कही-सुनी गयी। इसीसे सर्वसाधारण में प्रबल उत्तेजना फैलते देर नहीं लगी।

अवध के नवाब का सर्वस्वहरण, उस प्रान्त के सिपाहियों में असन्तोष का बीज-वपन करने में बड़ा भारी सहायक हुआ। परम नीतिज्ञ और बुद्धिमान् सर हेनरी लारेंस ने अवध के इस राज्यनाश की बड़े कड़े शब्दों में निन्दा की थी; पर उसकी सर्वथा उपेक्षा की गयी और अवध अंगरेजी राज्य का एक भाग बना लिया गया। इसका क्या परिणाम हुआ, वह एक अंगरेज के ही मुंह से सुन लीजिये। वह कहते हैं:—

"The king of Oudh, feeble-minded though he was, had always been our friend. Why, then, ask the natives, should we have annexed his country ? In Oudh this action has created thousands of enemies, not only among people in the province itself, but in the ranks of our Bengal army, the greater part which has been recruited from Oudh."

अर्थात्—अवध के शासक, दुर्बल मस्तिस्कके मनुष्य होते हुए भी, सदा हम लोगों के (अंगरेजों के) मित्र बने रहे। इसीसे देशवालों के मन में यह प्रश्न उठता है कि, उनका राज्य-हरण करके हमने (अङ्गरेजोंने) क्या अच्छा काम किया है ? इस कार्रवाई ने अवध में हमारे हजारों दुश्मन पैदा कर दिये और केवल उसी प्रान्त में नहीं, बल्कि हमारी बङ्गाली पलटन में भो हमारे बहुतसे शत्रु उत्पन्न हो गये, क्योंकि इसका अधिकांश अवध से आये हुए सिपाहियों को लेकर ही बना है।"

इसीलिये सर हेनरी लारेन्स ने "कलकत्ता रिव्यू" की एक पुरानी संख्या में एक लेख लिखकर यह बात अधिकारिवर्ग को बलवा शुरू होने से पहले ही बतला दी थी, कि यदि शीघ्र प्रतिकार न किया गया, तो निश्चय ही सिपाही, विद्रोही हो जायेंगे। उनकी बात अन्त में सच साबित हुई, परन्तु पहले उनकी बात सुनकर अङ्गरेजों को राज्यलोभ का चश्मा आंखों पर चढ़ा रहने के कारण कुछ भी चेत न हुआ।

इसके सिवा जो हजारों छोटे-मोटे भूम्यधिकारियों को नया बन्दोबस्त जारी कर उनके पैतृक अधिकार से वञ्चित किया गया, अनेक प्राचीनवंशों को दरिद्र बना डालने की जा कुचेष्टा की गयी, उसने भी हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों में प्रतिहिंसा का प्रबल भाव उत्पन्न कर दिया और वे लोग पश्चिमीय शासन-प्रणाली के ही नहीं, अंगरेज-जाति के ही सहज शत्रु बन गये।

ऐसी प्रबल उत्तेजना, घोर असन्तोष और विकट प्रतिहिंसा का भाव सर्वत्र विद्यमान रहते हुए किसी क्षण भी आग लग जाना कोई बड़ीं बात नहीं थी। सब लोग अवसर की ताक लगाये बैठे थे। लोग यही मौका देख रहे थे, कि कब कहीं गड़बड़ शुरू हो और हम लोग गोरों से गिन-गिन कर बदला वसूल करें!

अन्त में वह अवसर आ ही गया और उसने अंगरेजी-राज्य की जड़ हिला डाली। किस प्रकार इस विद्रोह ने समस्त भारत में कुछ दिनों के लिये अँगरेजों का टिकना विपद्-संकुल कर डाला और हर जगह से उनके पैर उखड़ते हुए मालूम पड़ने लगे थे, यह

बात विगत अध्यायों का अनुशीलन करनेवाले पाठकों को अच्छी तरह मालूम हो चुकी है।

अब हमारे मन में स्वभावतः ही यह प्रश्न उठता है कि इस विद्रोह को हम क्या समझें?—कुछ प्रतिहिंसा-परायण-विकृत-मस्तिष्कों की उछल-कूद, उन्मत्त-अराजकता-वाद, आततायियों की ताण्डव-लीला—या परतन्त्रता के जुए को कन्धे से उतार फेंकने का विफल प्रयास? सब बातों का विचार करने से तो यही अन्तिम बात समीचीन प्रतीत होती है।

संसार-भर की जातियों की भाँति भारतवासी भी, स्वाधीनता-प्रिय हैं। जिस युग में आधी से अधिक दुनियाँ अज्ञान की गोद में पल रही थी, उसी युग से भारतवर्ष की हिन्दू-जाति अपनी विद्या, सभ्यता, कला-कौशल और ज्ञान-विज्ञान के लिये संसार-भर की शिक्षादात्री और गुरुवत् आदरणीय बनी हुई थी। इसके ब्राह्मणों का वह विशाल विद्या-वैभव, क्षत्रियों का वह अतुलनीय वीर्य-विक्रम, वैश्यों का विश्व-व्यापी वाणिज्य-व्यापार देख, सारी दुनियाँ इसके पैर चूमती थी। अदृष्ट-दोष से युग का वह गौरव, वह पराक्रम, वह वैभव, मुसलमान-जाति के पैरों के नीचे आ गया। हिन्दुओं के हाथ से छिनकर राज्य-सूत्र मुसलमानों के हाथ में चला गया! पर स्वाधीनता की वासना हिन्दुओं के हृदय से तब भी दूर न हुई। अपने ८०० वर्षों के प्रबल शासन, तलवार के बलपर धर्म-परिवर्तन की चेष्टा करने पर भी मुसलमान न तो भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक अकण्टक राज्य ही स्थापित कर सके, न हिन्दू जाति या

धर्म को ही लुप्त कर सके ! स्वाधीनता के प्रबल उपासक महाराणा प्रतापसिंह और हिन्दुओं के सौभाग्य-सूर्य शिवाजी कैसे वीर तब भी उत्पन्न होते रहे और उन्होंने स्वाधीनता की यज्ञ-वह्नि को सदा प्रज्वलित रखा। भारत के मुसलमान-शासन-काल के इतिहास में स्थान-स्थान पर ऐसे अनेक स्वाधीन वीरों का पता चलता है, जिन्होंने अत्याचारी मुसलमान शासकों की मनमानी-घरजानी का अन्त करने की प्राणपण से चेष्टा की और भाग्य के विधानानुसार कभी सफल और कभी विफल होते रहे। मतलब यह कि जो होना था, वह तो हुआ ही; पर स्वाधीनता का भाव न मर मिटने पाया और अन्त में इसने मुसलमानी साम्राज्य के छक्के बखेर डाले।

इस साम्राज्य के जब बुरे दिन आ गये, तभी एक नयी जाति यहां की राजनीति में प्रविष्ट हुई। इस जाति के लोग पहले साधारण बनिये बनकर यहां आये थे, पर भाग्य में राज्यलक्ष्मी बदी थी, इसीलिये मुसलमान शासकों के गृह-कलह, दुर्बलता और दिग्विदिग्ज्ञान-शून्यता का इन्होंने खूब लाभ उठाया और नामका शासक कोई रहे, पर दरअसल ये ही सब जगह के हर्त्ता-कर्त्ता बन बैठे! मुसलमान आरम्भ से ही इस देश को जीतने की चुनौती देकर घुसे थे और संग्राम की लाल-नदी पैर कर यहां के अधीश्वर बने थे, पर अँगरेज, व्यापारी बनकर आये और अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों के बल पर जिस घर में घुसे, उसी के मालिक को धक्का देकर आप ही मालिक बन बैठे। ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी दूकानदारी करने आकर भारत-साम्राज्य की प्रधान भाग्य-विधाता बन बैठी। एक दफ जहां

इन्होंने पैर जमा दिये, फिर वहां से उठाये न उठे—यही नहीं, बल्कि यहां के प्रभुओं को इन्होंने दासता की बेड़ी पहना कर ही छोड़ा। इसी तरह सारे भारत में कम्पनी का राज्य हो गया। दिल्ली का तख्त डावाँडोल हो गया, लखनऊ की नवाबी की दीवार गिरने के दिन गिने जाने लगे, बंगाल की नवाबी सन् १७५७ ई० में लार्ड क्लाइव की कूटनीति के चक्र में पड़कर चौपट हो ही गयी थी। कम्पनी की धाक सारे देश में बैठ गयी। सभी राजा-रजवाड़े डरने लगे, कि कहीं अब की बार उन्हीं के राज्य पर तबाही न आ जाये। क्रमशः हाथ-पैर फैलाते-फैलाते कम्पनी ने किस तरह उचिताउचित रूप से यहाँ अपने राज्य का स्थापन और विस्तार किया, उसका परिचय भारत का इतिहास स्पष्ट रूपसे दे रहा है। लार्ड डलहौसी ने तो इस कार्य्य का सम्पादन करने में अपने पूर्व अधिकारियों के कान ही काट लिये और यद्यपि उन्होंने अपने अधिकांश सजातीयों की प्रशंसार्जन की, तथापि वे भारतवासियों को घोर असन्तोष के शिकार बना, प्रतिहिंसा के लिये उत्तेजित करते गये! उनके धड़ाधड़ एक के बाद दूसरे राज्य पर दाँत गड़ाने और उसे साफ निगल जाने का ही यह परिणाम हुआ, कि हिन्दू और मुसलमान—दोनों एक होकर अपनी लुप्तप्राय स्वाधीनता के उद्धार के लिये उठ खड़े हुए।

सिपाही-विद्रोह लुप्तप्राय स्वाधीनता के उद्धार के लिये भारतवासियों की अन्तिम चेष्टा-मात्र थी। सौ सवासौ वर्षों से कम्पनी-वाले जिस तरह इस देश के पैरों में परतन्त्रता की मोटी बेड़ियां

पहनाते चले आ रहे थे, इसी नीति को जड़ से उखाड़ फेंकने का यह उद्योग था। राजविद्रोह बुरी बात है, इसमें सन्देह नहीं; पर यहां राजा ही कौन रखा था? एक व्यापारी मण्डल था, जो अपने स्वार्थ के लिये भारतवासियों के न्यायानुमोदित पैतृक-स्वत्वों और मनोष्योचित अधिकारों पर भी दाँत गड़ाये हुए था और नित्य नये-नये कानून बनाकर इस देश का रक्त-शोषण करने के लिये तुला हुआ था। इसीलिये भारत के हिन्दू और मुसलमान, जो राजा को देवता से कम नहीं मानते, इस मण्डल के अखण्ड प्रभाव को खण्ड-खण्ड कर डालने के लिये बड़े प्रबल वेग से उठ खड़े हुए! उन्होंने सोचा, कि जो इस प्रकार न्याय एवं जन्म-सिद्ध अधिकारों को पददलित कर रहे हैं, उनको सर्वथा विध्वंस कर डालना ही हमारा कर्त्तव्य है।

इसी विचार से जिन लोगों को अँगरेजों के द्वारा प्रत्यक्ष हानि पहुंची थी, जो कुचक्र में पड़कर राजा से रङ्क और स्वाधीन से पराधीन बन गये थे, वे सब लोग विद्रोह का झण्डा हाथ में लेकर मैदान में उतर आये! जहां तक उनसे बन पड़ा, उन्होंने अपनी बलवती प्रति-हिंसा की तृप्ति-साधना की। इसीलिये हम विद्रोह को स्वाधीनता-भिलाषी भारत का स्वातन्त्र्य-युद्ध कहने को विवश हैं और यदि कदाचित् वह सफल हो जाता, तो संसार का इतिहास भी इसे इसी नाम से अभिहित करता।

दुनयां में ऐसा विद्रोह अकेले भारत में ही नहीं हुआ। जहां कहीं शक्तिशाली हाथों के द्वारा अन्याय-अत्याचार होने लगते हैं

और लोग पिसते-पिसते ऊब उठते हैं, वहीं इस तरह के विद्रोह उठ खड़े होते हैं। फ्रांस के राजतन्त्र का पतन, अमेरिका के संयुक्तराज्य से अंगरेजों का बहिष्कार, रूस की ज़ारशाही का अन्त, जर्मनी की शहनशाही की समाप्ति आदि घटनाएँ जिस ध्रुवसत्य की ओर संकेत करती हैं, भारत का 'सिपाही-विद्रोह' भी उसी की ओर इशारा करता है। ईस्ट-इण्डिया कम्पनी जिस कठोर नीति का अवलम्बन कर एक प्रान्त के बाद दूसरे प्रान्त पर, एक राज्य से दूसरे राज्य पर हाथ साफ करती चली जाती थी, उसने शान्त, निरीह और साधारणतया भाग्यवादी भारतीयों को भी क्रियात्मक प्रतिरोध के लिये उत्तेजित कर डाला! उस समय तक हिन्दुस्तानियों की सैनिक-प्रवृत्ति, साहस, वीरता और कार्यदक्षता का सर्वथा लोप नहीं हो गया था। इसीलिये जब यह धारणा प्रबल हो उठी, कि ये अंगरेज सुविचार और सदाशयता की आड़ में हमारा सर्वस्व-हरण करते चले जाते हैं और अन्त में हमारे धर्म और जाति का भी नाश कर डालेंगे, तब उनका उत्साह, साहस, शक्ति और सामर्थ्य इस तरह का जातीय अपमान करनेवालों से बदला लेने के लिये प्रवृत्त हो गया। उस समय उनके हृदयसे दया, माया, सहानुभूति आदि कोमल भावों ने बिदा ले ली और कानपुर के हत्या-काण्ड केसे भीषण कृत्य भी उनके हाथों से बन पड़े!

इन कृत्यों के लिये मनुष्यता का रञ्चमात्र भी हृदय में लवलेश रखनेवाले सहृदय व्यक्ति, विद्रोहियों की तीव्र निन्दा करते हैं और सदा करते रहेंगे; पर ऐसी घटनाएँ ऐसे अवसरों पर पृथ्वी में सर्वत्र

होती आयी हैं। १६४१ ई० में आयर्लैण्ड के प्रोटेस्टेण्ट-मताव-लम्बियों को कैथोलिक सम्प्रदायवालों के हाथ इसी प्रकार बुरी तरह मरना पड़ा था। फ्रांस में एक पर्व के अवसर पर 'हुगुईनाट' नामक प्रसिद्ध धार्मिक सम्प्रदायवालों को शत्रुओं ने ऐसी ही दुर्गति की थी। सिसिली की राजधानी में सन्ध्या के समय उपासना करने के अवसर पर बहुतेरे फ्रांसीसी स्त्री-पुरुषों और बालक-बालिकाओं को शत्रुओं का शिकार बन जाना पड़ा था। युरोप के इतिहास में ही इस तरह की सैकड़ों घटनाएँ पायी जाती हैं। फिर अंगरेज लोग भारतवासियों के इस विद्रोह को पृथ्वी में सबसे बड़ी असाधारण-घटना और उनके उत्तेजना के समय किये हुए कार्यों को अभूतपूर्व कुकृत्य क्यों कहते हैं? इसका कारण उनकी अहम्मन्यता के सिवा और कुछ नहीं है। जिन लोगों को वे 'काला' 'निगर' आदि अवज्ञा एवं अपमानपूर्ण शब्दों में याद करते थे, वे ही यहां तक सिर उठा सकेंगे, यह बात उनको स्वप्न में भी नहीं दिखाई दी थी। इसीलिये वे इसे अतिशय असाधारण घटना न कहें, विद्रोहियों के आचरण को पशु-प्रवृत्ति से भी अधिक निन्दनीय न प्रमाणित करें, तो और क्या करें? पर युरोप का मध्य-युग का इतिहास और वर्तमान सुसभ्य जगत् का इतिहास कुछ और ही बात बतलाता है। वे साफ शब्दों में कह रहे हैं, कि विप्लव के समय ऐसी-ऐसी घटनाएँ न हों, यही आश्चर्य है!

परन्तु विद्रोहियों ने चाहे जो कुछ भी किया, उसके लिये इतिहास में उनके नाम पर अमिट कलङ्क लगा दिया गया।

कोई ऐतिहासिक उनके साथ सहानुभूति न दिखला सका। भाग्य ने भी उनका साथ नहीं दिया। सभी विद्रोहियों को अपने किये का विषमय पुरस्कार मिला। कोई मरा, कोई निर्वासित हुआ, कोई जीवन-भर के लिये जङ्गलों में जा छिपा। पर इसमें सन्देह नहीं, कि भारत की स्वाधीन-प्रवृत्ति की यह अन्तिम 'लौ' थी, जिसके बुझते ही स्वाधीनता का टिमटिमाता हुआ चिराग बहुत दिनों के लिये बुझ गया। पर जिस कम्पनी की करतूतों ने इतनी बड़ी आग सुलगायी थी, वह भी राजसत्ता को अपने हाथ में नहीं रख सकी। इङ्गलैण्ड की उदार-हृदया महारानी विक्टोरिया के हाथों में यहां का शासन-सूत्र चला गया और कम्पनी के राज्य में जो धींगाधींगी और धांधली मची रहती थी, उसका भी अन्त हो गया।

इस विद्रोह के समय एक बात बड़ी विचित्र दिखाई दी थी और वह किसी तरह भूल जानेवाली बात नहीं है। जिस समय देश भर में अँगरेजों के विरुद्ध विद्रोहात्मक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था, देश का सबसे बड़ा भाग उनकी आधीनता से विमुक्त होने के लिये व्यग्र हो उठा था, जगह-जगह अंगरेज मारे-कूटे जा रहे थे, उस समय भी उनकी रक्षा इसी देश के लोगों ने की। पञ्जाबी सिक्खों की वीरता ने उनकी लुप्त होती हुई सत्ता को बचा दिया! किस तरह साधारण देहातियों से लेकर बड़े-बड़े राजा-रजवाड़ों और जमीन्दारों ने उनकी प्राण-रक्षा की थी, यह हम यथास्थान दिखला चुके हैं। यद्यपि उस समय अंगरेज सारे भारतवासियों को अपना शत्रु समझते थे, तथापि यदि भारतवासी

ही उनकी सहायता न करते, तो उस सङ्कट से उनका उद्धार होना कठिन था। देश-भर के सिपाही जिस समय विद्रोह कर उठे थे, उस समय भी बहुसंख्यक देशी सिपाही गोरों से कन्धा मिलाये, काले भाइयों के इस विद्रोह का दमन करने को तैयार थे। सैकड़ों हिन्दुस्तानियों ने बिना किसी प्रकार के लाभ-लोभ के, केवल दया-परवश हो गोरों की जान बचायी थी। उनको कभी इस बात का ध्यान भी न आया, कि यह युद्ध अंगरेज लोगों और उसी देश के निवासियों के बीच ठना हुआ है, जिसमें हम भी रहते हैं। अंगरेज सिपाही और गोलन्दाजों ने इस युद्ध में कितनी ही वीरता क्यों न दिखलायी हो; पर भारतवासियों की सहायता बिना वे इस सङ्कट के समुद्र से पार नहीं हो सकते थे।

पर अंगरेजों ने अपनी प्रतिहिंसा के समय किसी तरह की कोमल-प्रवृत्ति को हृदय में स्थान नहीं पाने दिया। विद्रोहियों के मैदान खाली कर भाग जाने पर भी वे निरीह ग्रामवासियोंको मारते-काटते और उनके घरों में आग लगा देते थे। हजार-हजार निरपराध जीवों का बध करके भी वे न अघाये! राम जाने, कहीं विद्रोह के बाद भी महारानी विक्टोरिया का राज्य यहां न हो जाता, तो कितने और भारतवासियों को मुफ्त में जानें गँवानी पड़तीं। युद्ध के समय काले तो यह भूल गये, कि यह युद्ध गोरे-काले का है; पर गोरे यह न भूले और सब कालों को समूल नष्ट कर डालने के लिये तुल गये। कानपुर में नील साहब ने जिस निर्दयता के साथ बहुसंख्यक हिन्दुस्तानियों का बध किया और गोरे खून की गिन-गिन

कर बदला वसूल कर लिया, यह बात इतिहास पुकार-पुकार कर कह रहा है। उस सङ्कट-काल में किले में घिर कर छिपे हुए अंगरेज अपने काले नौकरों तक के साथ दुर्व्यवहार करते नजर आते थे। बहुतसे अंगरेज अपनी इस कठोरता, निर्दयता, असहनशीलता और दुर्विनीतता को ही अपनी विजय का प्रधान कारण मानते हैं, पर सब बातों पर विचार करने से हमें तो उनकी सफलता के दो ही प्रबल हेतु मालूम पड़ते हैं। एक तो विद्रोहियों के सिवा अन्य सभी श्रेणी के भारतवासियों का गोरों के साथ सहानुभूति प्रदर्शन करते हुए उनकी सहायता करना और दूसरा विद्रोहियों का अच्छा संगठन न होना। यदि विद्रोहियों का अच्छा सङ्गठन होता, उनके साथ चतुर और दूरदर्शी सेनापति होते तथा वे जम कर अपने लक्ष्य-स्थान पर टिके रह जाते, तो कदाचित् उन्हें इस प्रकार उलटे लेने के देने न पड़ जाते। साथ ही उनके अपने भाई ही उनके शत्रु हो गये, काले वीरों ने ही कालों की गरदनें काटीं, यह भी उनकी विफलता का बड़ा भारी कारण हुआ।

जो कुछ हुआ, वह उस लीलामय परमेश्वर की एक लीला थी। ऐसे ही अवसरों पर किसी जाति के सहज-स्वाभाविक गुणों का विकास देखने में आता है। इस युद्ध के समय भी भारतीयों ने अपने भाइयों की उपेक्षा कर दुर्दशा-ग्रस्त अंगरेज़ों की सहायता की, उनके प्राण बचाये और उन्हें विजयी बनाया! वे लोग सिपाहियों की धमकियों या बहकावे में न आये, उनके दिये हुए प्रलोभनों को उन्होंने पैरों से ठुकरा दिया और निःस्वार्थ होकर

विपद् में पड़े हुए अङ्गरेजों की अपनी जानपर खेलकर सहायता की। ऐसे महत् और उदारता-पूर्ण उदाहरण इस युद्ध के समय अनेक बार देखने में आये। इधर अंगरेजों ने भी दृढ़ता, वीरता और साहसिकता की पराकाष्ठा दिखला दी। उनकी जगह यदि दूसरी कोई जाति ऐसी विपद् में पड़ी होती, तो कभी की दुम दबा कर भाग जाती, पर ये लाख सङ्कटों की परवा न कर एक मुद्दत तक रण-भूमि में डटे रह गये। उनकी इस साहसिकता और दृढ़ता का पुरस्कार भी उन्हें हाथों हाथ मिल गया। विद्रोही पराजित हुए और अंगरेजों का अकण्टक-राज्य इस भारत-भूमि पर स्थापित हो गया। हां, इस दृढ़ता के साथ-साथ उन्होंने प्रत्येक स्थान पर अपनी बलवती प्रतिहिंसा और निष्ठुरता की भी सीमा दिखला दी। इस पुस्तक में अनेक स्थानों पर इसके भयानक उदाहरण पाठकों को मिले होंगे।

सारांश यह, कि प्रतिहिंसा से ही इस युद्ध की उत्पत्ति हुई और प्रतिहिंसा से ही उसकी समाप्ति भी हुई। गोरों के खून से जिस यज्ञ का आरम्भ हुआ था, कालों के खून से ही उसकी अन्तिमाहुति हुई और इस यज्ञ का परिणाम यह हुआ कि भारत में न तो कम्पनी का राज्य रह गया, न विद्रोही रह गये। रह गयी—अस्त्र-शस्त्र-विहीन, शान्त, शिष्ट, निरीह और निर्बल भारतीय प्रजा और प्रबल-पराक्रमशालिनी महारानी विक्टोरिया का शासन! महारानी की उदारता-मयी घोषणा ने घोर अशान्ति को मिटाकर शान्ति की निर्मल धारा बहा दी और भारतीयों ने ब्रिटिश सिंह के चरणों पर नतजानु हो, शिर झुका दिया! स्वाधीन-चिन्ता,' स्वाधीन-प्रवृत्ति,

स्वातन्त्र्यानुराग कुछ दिनों के लिये गहरी नींद में सो गया और महारानी के शासन के मधुर फल चखने में लोग ऐसे मस्त हुए कि सारे देश पर एक नया ही रङ्ग चढ़ गया! देश, एक नये रास्ते से गुजरने लगा, लोगों के मन में क्रान्ति होने लगी, अंगरेजी शिक्षा और सभ्यता का विपुल प्रचार हो चला। महारानी का शासन-काल भारतवासियों के लिये बड़ा ही शान्तिमय रहा। कहीं असन्तोष, अत्याचार या राजविद्रोह का चिन्ह न रह गया। महारानी की उदार घोषणा ने प्रजा के मन पर जादू की छड़ी फेर दी। देश ने स्वतः-प्रवृत्त हो सन्तुष्ट चित्त से अँगरेजी-राज्य की सोलहोआने अधीनता स्वीकार कर ली। चारों ओर अँगरेज, अँगरेजी और अंगरेजी-हुकूमत का दौरदौरा हो गया। अंगरेजों की हरएक बात में देशवालों ने दरियादिली, नेकनीयती, रिआयापरवरी और मुन्सफी देखनी शुरू की। हथियारों के कानून ने सारे भारत को निरस्त्र कर देशभर से सैनिक प्रवृत्ति, वीरता, साहसिकता और स्वातन्त्र्य-प्रवृत्ति को देश-निकाला दे दिया। कालान्तर में भी राजसत्ता के अन्याय-अविचारों के विरोध में सशस्त्र उत्थान होने की सम्भावना भी मिट गयी। समस्त भारत देश, नवीनता का जामा पहनकर पूर्व से पश्चिम की ओर दौड़ चला! पूर्व की सभी बातों से लोगों को विराग हो चला और पश्चिम की सभी बातों पर अपार श्रद्धा हो गयी!

सब कुछ पुराने से नया हो गया; पर 'सिपाही-विद्रोह' की स्मृति, अबतक किसी को नहीं भूली। अँगरेजों को भी इसकी याद

बनी हुई है और हिन्दुस्तानियों को भी, पर दोनों के दृष्टिकोण में बड़ा अन्तर है। एक की आंखों में यह कुछ और ही तरह का दीखता है और दूसरे की आंखों में कुछ और। सच पूछिये तो यही स्वाभाविक भी है। पाठकों से बिदा होते हुए हम भी उनसे यही पूछते हैं, कि क्या यह स्वाभाविक नहीं है?